श्रीमस्तनाथचरितम्

(विमलानाम्नी-भाषाटीकालंकृतम्)

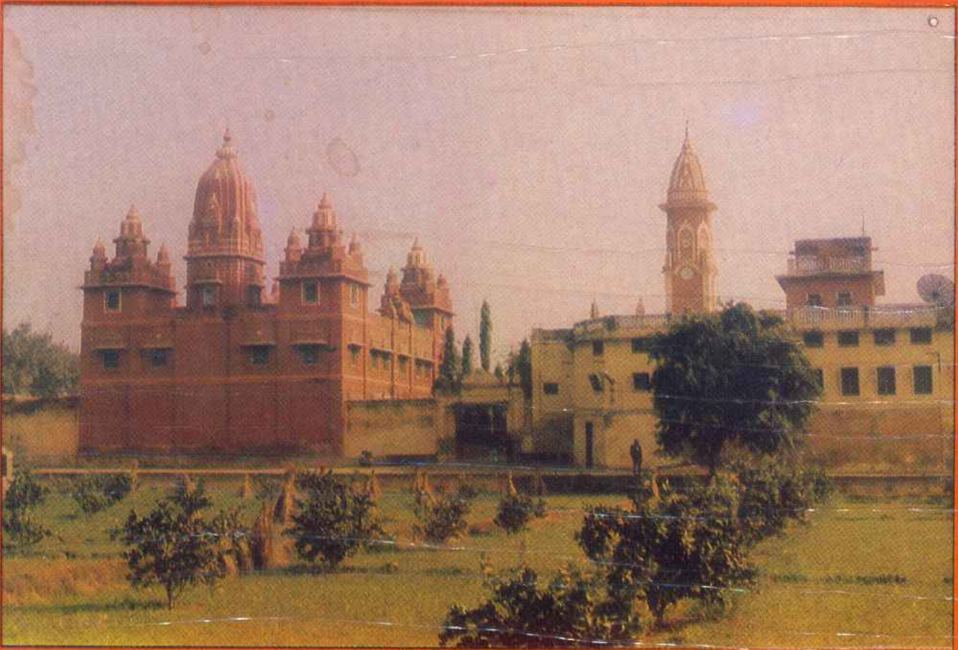

मूलकर्ता

पं० हरदत्त शास्त्री

सम्पादिका एवं अनुवादिका

डॉ० सौभाग्यवती नान्दल

श्रीमस्तनाथचरितम्

(विमलानाम्नी-भाषाटीकालंकृतम्)

मूलकर्ता

पं० हरदत्त शास्त्री

सम्पादिका एवं अनुवादिका

डॉ० सौभाग्यवती नान्दल

❑ प्रकाशक :-
अनन्तश्रीविभूषित श्रीचाँदनाथ योगी
अस्थलबोहर सिद्धपीठाधीश्वर
रोहतक (हरियाणा)

❑ प्रथम वार : फाल्गुन शुक्ला नवमी, २०५५ वि०
(२४ फरवरी १९९९ ई०)

❑ पुनर्मुद्रण का अधिकार केवल संस्था एवं लेखिका को

❑ मूल्यम् : १०० रूप्यकाणि

❑ मुद्रक :-
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
गोहाना मार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५७७७४, ५६८३३

महन्त अवेद्यनाथ
पूर्व संसद सदस्य (लोकसभा)
श्री गोरखनाथ मन्दिर

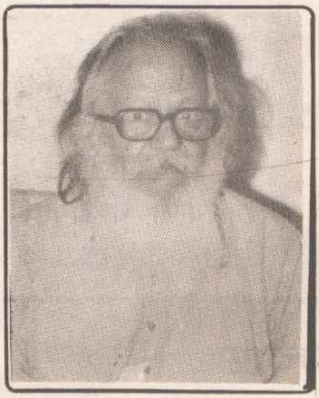

शुभकामना-संदेश

नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध परम्परा में महायोगी सिद्ध बाबा मस्तनाथजी महाराज का बहुत ही सम्माननीय स्थान है। उन्होंने अपनी महान् सिद्धियों से न केवल हरियाणा, पंजाब, राजस्थान को प्रभावित किया, अपितु सम्पूर्ण देश के नाथ सिद्धों में उनकी ख्याति शिखर पर है।

नाथ सम्प्रदाय में जितने भी सिद्ध हुए हैं उन्होंने सम्पूर्ण भारत ही नहीं, अपितु नेपाल, तिब्बत, मंगोलिया आदि देशों को भी अपनी योगसाधना एवं सिद्धियों से प्रभावित किया है। सिद्ध बाबा मस्तनाथ भी इन्हीं सिद्धों के समकक्ष रहे हैं। यद्यपि उनका साधना क्षेत्र भारत तक ही रहा है। विशेष रूप से हरियाणा, पंजाब, राजस्थान के जन–जन में उनके चमत्कार की गाथायें आज भी सुनी जा सकती हैं। नाथ सम्प्रदाय को सिद्ध सम्प्रदाय के रूप में विख्यात करने में सिद्ध बाबा मस्तनाथजी जैसे महान् साधकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

एक समय ऐसा भी था जब भारतीय धर्म–सम्प्रदायों में वामाचार एवं तान्त्रिक साधना जोरों पर थी और समाज आध्यात्मिक साधना से भ्रमित होगया था, आध्यात्म के नाम पर भोगवाद अपनी चरमसीमा पर था ऐसे समय उसकी प्रतिक्रियास्वरूप साहित्य को जो नयी धारा मिली, उसमें सात्विक जीवन एवं आडम्बर रहित रहन–सहन नाथपंथी योगियों की ही देन है। जितने भी विख्यात नाथ हुए हैं उन्होंने हमेशा बाह्य आडम्बरों का खण्डन एवं समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, जातिवाद, ऊँच–नीच एवं छुआछूत का डटकर विरोध किया है। उसमें सिद्ध बाबा मस्तनाथजी का महान् योगदान रहा है।

महान् सिद्ध बाबा मस्तनाथजी के योग एवं आध्यात्मिक साधना से संबंधित ग्रन्थ **श्रीमस्तनाथचरितम्** का हिन्दी अनुवाद डॉ० सौभाग्यवती ने किया है उससे न केवल उनकी महानता एवं सिद्धियों पर प्रकाश पड़ेगा, अपितु नाथ सम्प्रदाय की साधना एवं सिद्धांतों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होगी एवं जन–जन को बाबा मस्तनाथजी की महानता जानने का अवसर भी मिलेगा ।

आपके इस प्रयास के लिए साधुवाद देते हुए शुभकामना भेज रहा हूँ ।

शुभेच्छुः–
महन्त अवेद्यनाथ

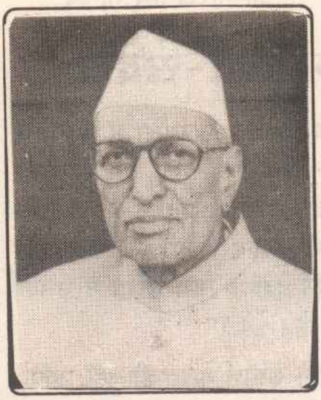

मुख्यमन्त्री,
हरियाणा, चण्डीगढ़।

सन्देश

पं० हरदत्त रचित **श्रीमस्तनाथचरितम्** संस्कृत भाषा का एक अनूठा एवं उच्चकोटि का महाकाव्य है। यह महाकाव्य सिद्धशिरोमणि श्री बाबा मस्तनाथजी के अमर उपदेशों से परिपूर्ण त्रिविध ताप से सन्तप्त मानव का कल्याण करने में सक्षम है। संस्कृत भाषा में होने के कारण यह उच्चकोटि का ग्रन्थ अन्य भाषा के साहित्यप्रेमियों एवं ज्ञानपिपासुओं के लिए अब तक केवल मृगतृष्णा था।

यह खुशी की बात है कि इस महाकाव्य का डॉ० (श्रीमती) सौभाग्यवती नांदल, प्राध्यापिका, संस्कृत–विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, रोहतक ने हिन्दी में रूपान्तरण किया है। ऐसा करके उन्होंने न केवल साहित्यिक दृष्टि से एक उच्चकोटि का कार्य किया है, अपितु सामाजिक जनकल्याण की दृष्टि से भी यह सराहनीय है। यह अनुवादित ग्रन्थ आम आदमी के लिए एक प्रेरणास्रोत होगा। इस कार्य का श्रेय महन्त चाँदनाथ जी को भी जाता है, जिन्होंने इस दिशा में सत्प्रयास किया।

बंसीलाल

आशीर्वचन

भारतभू ने समय–समय पर संतों एवं योगियों को जन्म देकर युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप वेद, पुराणादि ग्रन्थों में निहित शाश्वत सन्देश को पुनः–पुनः नवीन रूप में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इसी शृंखला में नाथसम्प्रदाय की अपूर्व भूमिका रही है। इस सम्प्रदाय के योगियों ने अपने दिव्य चरित के माध्यम से त्रिविध ताप से संतप्त मानव को मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर किया है। इसी परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए आधुनिक युग में शिवावतार महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी जगत् कल्याण हेतु श्री मस्तनाथजी के रूप में अवतरित हुए। इन्हीं नाथजी के चरित पर आधारित ग्रन्थ **'श्रीमस्तनाथचरितम्'** संस्कृत भाषा में निबद्ध है जिसका अभी तक कोई हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं था। इसीलिए श्रद्धालु भक्तजनों के लिए यह ग्रन्थ दुर्बोध था परन्तु डॉ० (श्रीमती) सौभाग्यवती नान्दल ने इसको लोकभाषा में सर्वजनहितार्थ प्रस्तुत करके इसे सुबोध बना दिया है, इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है और मैं इन्हें शुभाशीर्वाद देता हूँ कि इनका यह कार्य निःसंदेह जनकल्याणकारी होवे और परम आराध्य गुरुदेव महांसिद्ध श्री मस्तनाथजी की कृपा से वे भविष्य में भी इसी प्रकार के सत्कार्य करती रहें। शुभकामनाओं सहित–

महन्त चाँदनाथ योगी

मठ, अस्थल बोहर, रोहतक

(हरियाणा)

शुभ-कामना

पुण्यभारतभूमावनेके महात्मानो लोकोपकाराय जन्म लेभिरे। तेष्वेको हरियाणाधरित्रीमपि स्वस्थित्या पावितवान्। स चास्ति पुण्यस्मरणः श्रीमस्तनाथः। हरियाणाप्रदेशेऽसौ लोकपूजितोऽभूत्।

तज्जीवनकार्यविचारप्रभावितेन पञ्चनदीयेन कविवरेण श्रीहरदत्तेन देवभाषया चतुर्विंशतिसर्गात्मकं महाकाव्यं व्यरचि। महाकाव्यमेतत् इदानीं यावत् केवलं देवभाषानिबद्धमिति सर्वजनसुलभं नासीत्। तच्च सर्वलोकोपकार-बुद्ध्या प्रबुद्धया धीमत्या मदीयशिष्यया प्राध्यापिकया श्रीमत्या डॉ० सौभाग्यवतीनांदलमहोदयया सौभाग्यवत्या हिन्दीभाषयाऽनूदितम्। महता परिश्रमेण वर्षत्रयेण सतताध्यवसायेन सरलभाषया सर्वजनगाह्यताम् उपनीतम्।

अन्यच्च महात्मनां भक्त्या ये मठाः सुसम्पन्ना दृश्यन्ते तैर्देवभाषा-प्रचाराय सहयोगं दत्त्वा स्वस्थितिः प्रख्यापनीया येन संस्कृताध्येतारो लाभान्विता भवेयुः सर्वत्र च संस्कृतप्रचारो वर्धेत।

अन्ते पुनरपि कर्मशीलायै अध्ययननिरतायै डॉ० सौभाग्यवत्यै अस्मै महते कार्याय साधुवादान् ज्ञापयामि, अभिलषामि च यदियं वेदवचनरत्नानि सकलजनसुलभानि विधाय सत्यवेदविद्यां प्रति तेषां चेतांस्यावर्जयतु। इति शुभं कामये।

कृष्णलालः
दिल्लीविश्वविद्यालयीय–
संस्कृतविभागाचार्यः

दि० आश्विन शुक्ला द्वितीया
सं० २०५५ (२२.९.१९९८)

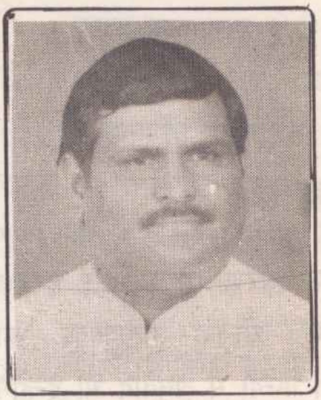

राज्यमंत्री,
वन एवं शिक्षा,
हरियाणा, चण्डीगढ़।

सन्देश

पं० हरदत्त शास्त्री कृत **श्रीमस्तनाथचरितम्** नाथ सम्प्रदाय के सिद्धशिरोमणि श्रीबाबामस्तनाथजी के चरित को उजागर करनेवाला एक अपूर्व ग्रन्थ है जिसमें न केवल नाथजी का जीवनचरित वर्णित है अपितु उनके सार्वभौम उपदेशों का भी संकलन है। यह ग्रन्थ संस्कृतभाषा में निबद्ध होने के कारण अभी तक सर्वसाधारण के लिए दुर्बोध था परन्तु डॉ० सौभाग्यवती ने इसका सरल, प्रवाहमयी एवं हृदयग्राही लोकभाषा में अनुवाद प्रस्तुत करके और अनेक कठिन स्थलों की सरलभाषा में व्याख्या करके इसे जिज्ञासु पाठक के लिए सुबोध बना दिया है। मात्र जनकल्याण हेतु किया गया इनका यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है क्योंकि यह ग्रन्थ न केवल नाथ सिद्धान्तों का वर्णन करता है अपितु कुमार्गप्रवृत्त मानव को सन्मार्ग पर प्रवृत्त करने में सक्षम है। अतः मैं आशा करता हूं कि जनसमुदाय इसे अवश्य पढ़े और लाभान्वित होवे।

शुभाशीर्वाद के साथ।

जगदीश यादव

प्राक्कथन

सन् १९२७ में गुरुदेव पूर्णनाथजी की प्रेरणा से पण्डित हरदत्त शास्त्री द्वारा रचित **'श्रीमस्तनाथचरितम्'** संस्कृत- महाकाव्य का संस्करण-सम्पादन डॉ० सौभाग्यवती ने किया। हिन्दी में अनुवाद भी इन्होंने किया। उस अनुवाद के साथ यह सम्प्रति प्रकाशित हो रहा है यह समस्त संस्कृतानुरागियों के लिए प्रसन्नता का विषय है। काव्य में कतिपय स्थल इस प्रकार के थे जो व्याख्या सापेक्ष थे। कवि ने कहीं-कहीं दुरूह शब्दों का प्रयोग किया है जहां योगिशंकरनाथ फलेग्रहि जी की संस्कृत टीका भी बहुत प्रकाश नहीं डाल सकी। विदुषी अनुवादिका ने उन स्थलों को अपनी सूझ-बूझ के अनुसार समझ अनुवाद किया है जिसके लिये वे विशेष साधुवाद की पात्र हैं।

मूल के भाव की सशक्त अभिव्यक्ति किसी भी अनुवाद की कसौटी है। प्रस्तुत अनुवाद इस कसौटी पर खरा उतरता है। इसमें हिन्दी के स्वारस्य को तदवस्थ रखते हुए मूल का रूपान्तरण किया गया है जिससे यह ग्रन्थ सङ्ग्रहणीय बन गया है।

'श्रीमस्तनाथचरितम्' संस्कृत महाकाव्यों की शृङ्खला की एक महनीय कड़ी है। इसमें छब्बीस सर्गों में नाथसम्प्रदाय के आचार्य आद्य नाथ योगी श्री गोरखनाथजी के अवतारभूत श्रीमस्तनाथजी का जीवनचरित अविकलरूप में वर्णित है। काव्य की भाषा सरस एवं प्रवाहमयी है। छन्दों और अलंकारों के समुचित प्रयोग ने इसे एक अपूर्व छटा प्रदान की है।

काव्य का अङ्गीरस शान्त है। अद्भुतरस प्रमुख अङ्ग के रूप में यहां उपस्थित हुआ है। योगी मस्तनाथजी की अनेक सिद्धियां तथा उनके द्वारा की गई अनेक अद्भुत घटनाएं इसका प्रमाण हैं।

काव्य का पाठक योगी मस्तनाथजी के जीवनचरित्र से मात्र प्रभावित ही नहीं होता, वह उनके द्वारा दिये गये उपदेशों तथा दार्शनिक प्रतिपादनों से अपूर्व ज्ञानार्जन भी करता है। महापुरुषों का चरितगान पापों का नाश करता है–**पापनाशं प्रकुरुते महापुरुषकीर्तनम्।** पापनाश के साथ मनुष्य पुण्य की ओर प्रवृत्त होता है। इस दृष्टि से **'श्रीमस्तनाथचरितम्'** जैसे महाकाव्यों की समाज में बहुत आवश्यकता है।

हिन्दी अनुवाद के साथ इसे पाठकों को सुलभ एवं बोधगम्य बनाकर डॉ० सौभाग्यवती ने बहुत ही महनीय कार्य किया है। उन्हें प्रभु ने योगी मस्तनाथ के चरित को सामान्य जनता तक पहुंचाने का माध्यम बनाया इसलिए वे नाम्ना ही नहीं कर्मणा भी सौभाग्यवती हैं।

मैं उनके स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य की कामना करता हूं।

सत्यव्रत शास्त्री
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
दिल्ली विश्वविद्यालय तथा
पूर्व कुलपति, श्री जगन्नाथ
संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी, उड़ीसा

दिल्ली
११.१२.१९९८

भूमिका

श्रीमस्तनाथचरितम् पं० हरदत्त शास्त्री रचित एक अपूर्व महाकाव्य है जो नाथसम्प्रदाय के अत्यन्त विख्यात सन्त श्रीबाबा मस्तनाथजी के दिव्य चरित को उजागर करता है। इसकी तुलना बृहत्त्रयी से की जा सकती है। प्राचीन संस्कृत कवियों की भाँति इसके मूलकर्ता के विषय में भी अत्यल्प जानकारी मिलती है। ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर मूलकर्ता पं० हरदत्तशास्त्री 'पञ्चनदीयः' लिखा हुआ है जिससे शास्त्रीजी का पंजाबनिवासी होना सिद्ध होता है। भूमिका में तत्कालीन पीठाधीश्वर स्वर्गीय श्रेयोनाथजी ने इसी सम्बन्ध में लिखा है कि किसी समय गुरुदेव पूर्णनाथजी ने विचार किया कि संस्कृत पद्यों में नाथजी के चरित को निबद्ध कराया जाए। उन्होंने हरदत्त शास्त्री को इस रचना के लिए प्रेरित किया और हरदत्त शास्त्री ने १९२७ ई० में अपना नामोल्लेख किए बिना ही इस ग्रन्थ की रचना की और मैंने इसे प्रकाशित करवाया। शास्त्रीजी सुधा सरोवर (अमृतसर) प्रान्त में किसी ग्राम के वासी थे। वे माँ शारदा के वरद पुत्र, न्याय, वेदान्त और वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा उनमें शक्तिपूजा का अद्भुत चमत्कार विद्यमान था।[1]

हरियाणा के वयोवृद्ध स्वर्गीय पं० स्थाणुदत्त शास्त्री-थानेसर ने इनके सम्बन्ध में कुछ मौखिक जानकारी दी है– "पं० हरदत्त शास्त्री एक तान्त्रिक विद्वान् थे। उन्होंने गुरुमुख से किसी शास्त्र का अध्ययन नहीं किया परन्तु उनके कण्ठ पर सरस्वती सिद्ध थी। इनके मुख से अनायास ही छन्दोबद्ध वाणी निकलती रहती थी। वे सुरा-मांस का भी सेवन करते थे। जब वे कश्मीर गए तो वहां के विद्वानों ने कश्मीर-नरेश से हरदत्त की शिकायत की कि ये मांस और मदिरा का सेवन करते हैं। एक दिन राजा ने अपने कुछ राजपुरुषों को हरदत्त के घर तलाशी के लिए भेजा। जब हरदत्त बाजार से मांस और मदिरा खरीदकर घर जा रहे थे, तभी राजपुरुषों ने उनका पीछा किया। घर में जाकर हरदत्त ने मांस और मदिरा को अलमारी में रख दिया। जब राजपुरुषों ने कहा कि आप मांस और मदिरा का सेवन करते हैं और आपने अभी हमारे देखते-देखते उन्हें इस अलमारी में रखा है। इस पर हरदत्त ने कहा कि तुम झूठ बोलते हो। हरदत्त ने अलमारी खोली तो सुरा शर्बत

---

१. द्रष्टव्य-श्रीमस्तनाथचरितम्-(टीकाकार श्रीशंकरनाथ फलेग्रहि) की भूमिका, पृ० १४।

के रूप में और मांस प्रसाद के रूप में उपलब्ध हुए। ऐसी अलौकिक सिद्धि उनके पास थी।[१]

प्रस्तुत ग्रन्थ के मूलस्रोत के विषय में नाथसम्प्रदायावलम्बी योगियों की किंवदन्ती है कि पं० हरदत्त शास्त्री की इस रचना का मूलस्रोत शंकरनाथ योगीश्वरकृत श्रीमस्तनाथचरितम् (श्रीमस्तनाथ अद्भुत लीला प्रकाश) रहा है जो महाराज चेतनाथजी की आज्ञानुसार नारायणदास जङ्गलीमल बुकसेलर (दिल्ली) ने २२००/ १६-१-६९ टैक्निकल प्रिंटिग प्रेस सोनीपत से छपवाया था। चेतनाथजी सन् १८७८ से १९०६ ई० तक मठ, अस्थल बोहर की गद्दी पर विराजमान रहे। यह ग्रन्थ दोहे-चौपाइयों में लिखा हुआ है। इसमें चौबीस सर्ग हैं। इसी की कथावस्तु को लेकर इसी के विषयानुक्रम से ही संस्कृत ग्रन्थ की रचना की गई है। संस्कृत ग्रन्थ में भी हिन्दी ग्रन्थ के समान ही चौबीस सर्ग हैं जिनमें अस्थल बोहर मठ के जीर्णोद्धारक सिद्धशिरोमणि श्रीबाबा मस्तनाथजी का जीवनचरित वर्णित है। बीच-बीच में स्थल-स्थल पर गुरुदेव द्वारा दिए गए अनेक दार्शनिक, सामाजिक एवं धार्मिक उपदेशों का भी संकलन है परन्तु वर्तमान प्रकाशित ग्रन्थ में छब्बीस सर्ग उपलब्ध होते हैं जिसके प्रथम एवं अन्तिम सर्ग की रचना ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार योगी शंकरनाथ फलेग्रहि जी ने की है तथा मूलसर्गों में भी अनेक पद्य स्वयं लिखे हैं एवं प्रसंगानुकूल अन्य ग्रन्थों से भी संकलित किए हैं। साथ ही शास्त्री जी रचित अनेक पद्यों के अनेक शब्दों के स्थान पर स्वरचित शब्द भी रख दिए हैं जिस कारण इस ग्रन्थ में अनेक प्रक्षेप आ गए हैं और मूलरचना को पहचानना असंभव सा होगया है। योगीजी के प्रक्षिप्त अंशों में कतिपय स्थलों पर पुनरुक्ति भी हुई है। उन्होंने प्राचीन टीका-पद्धति से हटकर एक स्वतन्त्र शैली में इस सम्पूर्ण ग्रन्थ पर विशद एवं परिष्कृत संस्कृत टीका भी लिखी है जिससे इस ग्रन्थ का और अधिक गौरव बढ़ गया है। उन्होंने ग्रन्थ के दार्शनिक एवं धार्मिक पक्षों को वेदोपनिषद्, लौकिक संस्कृत के अनेकानेक उद्धरणों एवं अमरकोषादि के व्याख्या अंशों से स्पष्ट करने का प्रयास किया है तथा व्याख्या करते समय अनेक देशी मुहावरों का प्रयोग भी किया है परन्तु कहीं-कहीं अनेक दुरूह पद्यों के विषय में कुछ न कहकर 'अन्यत् सर्वं स्पष्टम्' कहकर मौन हो जाते हैं।

---

१. द्रष्टव्य-उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के महाकाव्यों का विवेचनात्मक अध्ययन डॉ० रामेश्वरदत्त शर्मा। 'श्रीमस्तनाथचरितम् एक विवेचनात्मक अध्ययन' के पृष्ठ ३६ पर उद्धृत।

शंकरनाथ फलेग्रहिजी ने स्वयं को पयालाग्रामवासी शान्तिनाथजी का शिष्य बतलाया है। उन्होंने यह टीका अस्थल बोहर के आश्रम में रहकर की।[१] इनके जीवन के विषय में भी थोड़ी सी मौखिक जानकारी मिलती है–

फरीदाबाद के समीपवर्ती असावटी ग्राम में इनका जन्म हुआ। बाल्यकाल में ही इनके पिता की मृत्यु होगई थी। ये अपनी माता की इकलौती सन्तान थे। कहा जाता है कि बचपन में ही ये एक बार मरणासन्न हो गए थे, तब इनकी माता ने मनौती मानी थी कि "यदि मेरा पुत्र स्वस्थ हो जाए तो मैं इन्हें बाबाजी की सेवा में समर्पित कर दूंगी।" स्वस्थ होने पर इनकी माता ने इन्हें तद्ग्रामवासी सिद्ध शान्तिनाथजी के चरणों में समर्पित कर दिया। इनके गुरु सिसायग्रामवासी थे जो क्रोधी प्रकृति के थे परन्तु शंकरनाथजी उद्यमी प्रवृत्ति के थे। यही कारण था कि बाल्यकाल में अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए इन्होंने गुरु आश्रम में स्थित तालाब के निर्माण में कठोर परिश्रम किया, जिस कारण इनकी कमर कुछ झुक गई थी। इन्हांने काशी विश्वविद्यालय से विद्या अर्जित की थी। इन्हें वेदों, शास्त्रों एवं व्याकरण का उत्कृष्ट ज्ञान था जो इनकी मौलिक रचना से विदित होता है। डॉ० रामेश्वरदत्त जी की सन्मति में फलेग्रहि की टीका-विधि मल्लिनाथ से न्यून नहीं कही जा सकती।[२]

श्रीमस्तनाथचरितम् का काव्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह काव्यशास्त्रियों की कसौटी पर खरा उतरता है। यह मठ, अस्थल बोहर के जीर्णोद्धारक सिद्धशिरोमणि श्रीबाबा मस्तनाथजी के जीवन-चरित का वर्णन करता है। परन्तु इसके प्रक्षिप्त अंश प्रथम एवं अन्तिम सर्ग में क्रमशः भक्त पूर्णमल्ल की करुण कथा और महाराज श्रेयोनाथपर्यन्त मस्तनाथजी के उत्तराधिकारियों के जीवनवृत्त का भी वर्णन है। इसमें अनेक दर्शन-सम्बन्धी गुत्थियों को भी सुलझाया गया है और कहीं-कहीं कलिप्रभाव के कारण भ्रष्ट समाज का चित्रण भी मिलता है परन्तु कवि ने इस तथ्य को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि नैतिक आचरण ही अन्ततः सुखदायी है और त्रिविध ताप से मुक्ति का एकमात्र उपाय है। कवि को यमक अलंकार अत्यन्त प्रिय था जो इस रचना में पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने विषयानुरूप ही छन्दों एवं अलंकारों का प्रयोग करके वैदर्भी शैली

---

१. द्रष्टव्य-श्रीमस्तनाथचरितम्–२६ सर्ग, ९४, ९५, ९९ पद्य।

२. द्रष्टव्य-टीकाकार योगी शंकरनाथ फलेग्रहि (शोध लेख, संस्कृत सुधा, जयपुर)। श्रीमस्तनाथचरितम्–एक विवेचनात्मक अध्ययन के पृष्ठ ४७ पर उद्धृत।

के माध्यम से कृति को सरस एवं मनोहारी बना दिया है। इस कारण यह भक्तजन के लिए अभी तक आकर्षण का विषय बना हुआ है।

इस ग्रन्थ का महत्त्व इसी से स्पष्ट हो जाता है कि १९७० ई० में तत्कालीन पीठाधीश्वर ने इस पर विशद संस्कृत टीका लिखवाकर इसका प्रकाशन करवाया तथा इसकी भूमिका में दर्शन से संबंधित उपदेशात्मक लगभग ढाई सौ (२५०) पद्य स्वयं भी लिखे हैं, जिनसे उनकी ज्ञानगरिमा, कवित्वशक्ति एवं पाण्डित्य का सहज ही परिचय हो जाता है।

श्रीमस्तनाथचरितम् का संक्षिप्त कथासार–

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम सर्ग में वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के साथ सियालकोट के राजा शालिवाहन का वर्णन करते हुए भक्त पूर्णमल का करुण, हृदयग्राही एवं उपदेशात्मक आख्यान वर्णित है। दूसरे सर्ग में केसरिहट्ट के निवासी सबला को यमुना के निकट दिल्ली में किसी सिद्ध का दर्शन देना, उनके द्वारा नि:संतान सबला को पुत्र-प्राप्ति का वर देना तथा महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी का विक्रमी संवत् १७६४ में मस्त बालक के रूप में अवतार धारण करने का आख्यान है। तीसरे सर्ग में मस्तनाथजी के बालचरित एवं सिद्धि-प्रदर्शन का उल्लेख है। चौथे सर्ग में दुग्ध-वर्षा सिद्धि का वर्णन है तथा सर्ग के अन्त में मस्त बालक की लीलाओं की तुलना कृष्ण की लीलाओं से की गई हैं। पांचवें सर्ग में सिद्धगोष्ठी के मध्य बालक मस्त का सिद्धरूप में दृष्टिगोचर होने का उल्लेख है। इस सर्ग में मस्त बालक के दिव्य चरित की विवेचना की गई है। छठे सर्ग में मस्त बालक द्वारा शिष्यत्व-ग्रहण करने हेतु इधर-उधर भटकना तदनन्तर नरमाईनाथजी का नम्रभाव से शिष्यत्व ग्रहण करना एवं उनकी गुरुसेवा का वर्णन है और अन्त में मस्त की गुरुसेवा से प्रसन्न हो संवत् १७८८ में उन्हें दर्शनी साधु (कुण्डलधारी) बनाने का उल्लेख है। सातवें सर्ग में मस्तनाथजी द्वारा आईपंथ को 'नाथ' नामकरण देने तथा नाथजी की सिद्धियों का वर्णन किया गया है। आठवें सर्ग में प्रजादु:खहरण, सनातनधर्म की पुन: स्थापना, बोहर ग्राम का वर्णन एवं तत्स्थानीय दुर्भिक्षपीड़ित जनता को वृष्टि की सान्त्वना देकर वर्षा कराने का उल्लेख है। नौवें सर्ग में विभूति प्रदर्शन तथा दार्शनिक तत्त्वों का पूर्ण विवेचन हुआ है और इसी सर्ग में पंगु नारी को पैर प्रदान करने तथा अन्धे द्विजकुमार को दृष्टि प्रदान करने का आख्यान है। यहीं पर इन दोनों प्रतीकों के माध्यम से कवि ने सांख्य के दार्शनिक तत्त्वों का भी निरूपण किया है। दसवें सर्ग में संगति के सुपरिणाम एवं कुपरिणाम का वर्णन करते हुए नाथजी

की त्रिकालदर्शिता का विवेचन हुआ है। ग्यारहवें सर्ग में ग्रामीण शीलका का उद्धार एवं मस्तनाथजी द्वारा अपने शिष्यों को दी गई यम एवं नियमविषयक शिक्षा का समावेश है। बारहवें सर्ग में नाथजी ने अपने शिष्य योगराज की जिज्ञासा के निवारण हेतु गोपीचन्द एवं भर्तृहरिजी का प्रत्यक्ष दर्शन कराकर उनकी अमरता को सिद्ध किया है। तेरहवें सर्ग में वैदिक धर्म, कर्म तथा दण्डविषयक विचार व्यक्त किए गए हैं। चौदहवें सर्ग में सूखे पेड़ को हरा करने तथा वृद्ध दम्पती को पुत्रप्राप्ति का वर देने का उल्लेख है। पन्द्रहवें सर्ग में सुन्दरी पाई का दर्पहनन कर उसे शापग्रस्त करना और उसके पति हरिसिंह के मद को चूर करना एवं उसके द्वारा क्षमा-याचना करने पर पुन: अपने सौम्यरूप को प्रकट करते हुए शापग्रस्त पाई को अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार करने का उल्लेख है। सोलहवें सर्ग में मृतगाय को पुन: जीवनदान देने और यमराज के साथ देवादि संग्राम एवं गौ महत्त्व का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में नाथजी ने झज्जर वन में आखेट खेलनेवाले सरदार को जीवहिंसा से निवृत्त करके मानवमात्र को जीवहिंसानिषेध का उपदेश दिया है। अठारवें सर्ग में यवनराज्यपरिवर्तन है। उन्नीसवें सर्ग में पचोपा ग्राम के महन्त देवीदास को नाथजी द्वारा कुलगद्दी से च्युत कर सम्पूर्ण ग्राम को भस्मीभूत करने का उल्लेख है। बीसवें सर्ग में बीकानेर राज्य में सिद्ध मस्तनाथजी द्वारा दिखाए गए अनेक चमत्कारों का निरूपण किया गया है। इक्कीसवें सर्ग में मदोन्मत्त राजा भीमसिंह को मृत्युदण्ड देने तथा भक्त मानसिंह को राज्याधिरूढ़ करवाकर उसे शासनविषयक उपदेश देने का वर्णन है। बाइसवें सर्ग में धड़ीनाथ शिष्य की क्षुधानिवृत्त कर उसे पाथरयोगी बनाने और शिष्य के प्रार्थना करने पर उसे पुन: पूर्वावस्था प्राप्त कराने, बाबा रणपत एवं मानधाताजी को दीक्षा देकर उन्हें हस्तिबल एवं अनेकानेक सिद्धियां प्रदान करने का उल्लेख है। तेईसवें सर्ग में रणपत, मानधाता को ग्राम से लाने का वर्णन है और मोक्षादि दार्शनिक विषयों पर भी चर्चा की गई है। चौबीसवें सर्ग में भक्तजनों को उपदेश देना, तोतानाथजी की दीक्षा, सिद्ध मस्तनाथजी का निर्वाण तत्पश्चात् तोतानाथजी द्वारा समाधिस्थल का निर्माण करवाना आदि विविध विषयों का विवेचन किया गया है। पच्चीसवें सर्ग में बाबा तोतानाथ, मेघनाथ, मोहरनाथ और चेतनाथकालीन गतिविधियों का उल्लेख है। तदनन्तर चेतनाथजी के शारदावत्सल शिष्य पूर्णनाथजी के जीवनचरित के साथ-साथ विशिष्ट भक्तजनों द्वारा आश्रम की सेवा में किये गए योगदानों का वर्णन है और अन्त में अपनी पूर्वपरम्परा विच्छिन्न करते हुए पूर्णनाथजी द्वारा अपने जीवनकाल में ही अपने योग्य शिष्य महाराज श्रेयोनाथजी को सन् १९३९ ई० में पदाधिरूढ़ करने के साथ यह सर्ग समाप्त होता है। छब्बीसवें सर्ग

में महाराज श्रेयोनाथ उपाख्यान, मठ की उन्नति, प्रदेश की उन्नति आदि विविध विषयों की चर्चा की गई है। यह महाकाव्य यहीं समाप्त होता है परन्तु नाथपरिपाटी को अक्षुण्ण बनाये रखने की दृष्टि से मैंने परिशिष्ट में महाराज श्रेयोनाथजी का निर्वाण और उनके योग्य एवं प्रियशिष्य वर्तमानकालीन पीठाधीश्वर का जीवनचरित तथा उनके द्वारा जनकल्याणहेतु अनेकानेक शिक्षणसंस्थाओं की स्थापना और अन्यान्य विशिष्ट उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए काव्य को अग्रसर किया है।

मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ में पं० हरदत्तशास्त्रीकृत मूलपद्यों को ही लेने का प्रयास किया है और प्रक्षिप्त अंशों को नीचे टिप्पणी में रख दिया है परन्तु फलेगहिजी की मौलिक रचना का भी ग्रन्थ में समावेश किया है। इसके अतिरिक्त जीर्णता के कारण पाण्डुलिपि में कुछ पद्य एवं पद्यों के अंश उपलब्ध नहीं थे, उनके स्थान पर मैंने फलेग्रहिजी की रचना को ही लिया है। ऐसा करने से ग्रन्थ का आकार बढ़ गया है।

हिन्दी अनुवाद करते समय मैंने कठिन स्थलों को भी यथाशक्ति स्पष्ट करने का प्रयास किया है। फिर भी कहां तो सिद्धशिरोमणि नाथजी का वह गरिमामय दिव्य चरित और कहां मेरी अल्प मति। वह तो सूर्य के समक्ष दीपक की भांति है।

ग्रन्थलेखन में सहयोगकर्त्ताओं के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम मैं दिव्यशक्तिस्वरूप सिद्धशिरोमणि श्रीबाबा मस्तनाथजी, महाराज चांदनाथजी, पुजारी श्री हजारीनाथजी एवं तपस्वी श्री दीवाननाथजी (ग्रन्थलेखन में जिनका सबसे अधिक सहयोग रहा) के प्रति विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनके शुभाशीर्वाद से मैं यह कठिन कार्य कर सकी। श्री बाबा आनन्दनाथजी, मंत्री, योगी महासभा, हरिद्वार का धन्यवाद करती हूँ जिनकी सत्प्रेरणा से मैंने पाण्डुलिपि एवं प्रकाशित प्रति का यह मिलाजुला रूप तैयार किया जिसके लिए मुझे बहुत परिश्रम करना पड़ा क्योंकि पाण्डुलिपि की उपलब्धि से पूर्व मैं प्रकाशित प्रति के १७ सर्गों का अनुवाद कर चुकी थी। बालसाधु सुरेशनाथजी के प्रति भी धन्यवादात्मक भाव व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अतिपरिश्रम से ग्रन्थ की जीर्णशीर्ण पाण्डुलिपि उपलब्ध कराई जो अनुवाद करते समय उपयोगी सिद्ध हुई। मठ की सेवा में संलग्न रहनेवाले सहोदरवत् स्नेही श्री जयप्रकाश दहिया की भी आभारी हूँ जिन्होने कई शब्दकोष मुझे सहायतार्थ उपलब्ध करवाए। पं० वेदव्रत शास्त्री जी के अपूर्व सहयोग के लिए कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समस्त ग्रन्थ का अध्ययन करके मुझे आवश्यक निर्देश दिए तथा प्रूफ-संशोधन भी किया। डॉ० (श्रीमती) देवेन्द्रकौर का धन्यवाद करने के लिए मेरे

पास कोई उपयुक्त शब्द नहीं है, जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकालकर मुझे पदे-पदे सहयोग दिया। डॉ० सुदर्शनदेवजी के सहयोग के लिए भी सादर आभार व्यक्त है।

मेरे परम पूजनीय गुरुदेव जो न केवल भारत अपितु विश्व में लब्धप्रतिष्ठ, अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित, सरस्वती के साक्षात् अवतार डॉ० सत्यव्रत शास्त्री सेवानिवृत्त आचार्य, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् एवं समाज सुधारक, तपस्या की मूर्ति डॉ० कृष्णलालजी के प्रति नतमस्तक हो आभार व्यक्त करती हूँ जिनके करकमलों से ग्रन्थ का आशीर्वादात्मक प्राक्कथन लिखवाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ और भविष्य में भी मैं उनके आशीर्वाद की आकांक्षिणी हूँ।

मैंने टीकाकारों विशेषरूप से श्री शंकरनाथ फलेग्रहि एवं स्वर्गीय द्रव्येश झा (अप्रकाशित टीका) के श्रम का उपयोग किया है उनकी मैं ऋणी हूँ। इसके अतिरिक्त उन विद्वानों के प्रति भी मेरी विनम्र कृतज्ञता अर्पित है जिनसे मुझे यत्किञ्चित् भी सहाय्य प्राप्त हुआ।

पूज्य पतिदेव श्री ओमप्रकाशजी के प्रति भी आभार व्यक्त करना अपेक्षित है जिनके अपूर्व सहयोग से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका। इसी के साथ मैं अपनी पुत्री कु० सुनीति एवं पुत्र हर्षवर्धन के सहयोग के लिए आशीर्वादात्मक आभार व्यक्त करती हूँ जिन्हें मैंने अत्यावश्यक सुविधाओं से वंचित रखकर इस ग्रन्थ को पूरा किया। एम०बी०ए० (अस्थल बोहर) के प्रिंसिपल श्री राजेश गुलिया के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने श्रीमती सज्जन से ग्रन्थ का फोटो स्टेट बड़ी प्रसन्नता से करवाया। इसके अतिरिक्त टंकणकर्त्ता श्री सुरेन्द्रजी के प्रति आभारी हूं जिन्होंने यथासामर्थ्य ग्रन्थ को शुद्धरूप में टंकित करने का प्रयास किया।

अनेक व्यवधानों को पार करने हुए भी मुझे जो लक्ष्यप्राप्ति हुई यह सब मेरे गुरुजनों के शुभाशीर्वाद का ही परिणाम है। शेष ग्रन्थगत त्रुटियां मुझ नाथभक्त की हैं। उनके लिए मैं नाथवर्ग, भक्तजन एवं विद्वद्वर्ग से क्षमाप्रार्थी हूँ। मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी यदि कोई सहृदय विज्ञजन मेरी त्रुटियों का संशोधन मुझे सूचित करने का कष्ट करेंगे। मेरी बुद्धि अल्प थी, मैं नाथजी के अलौकिक चरित को जितना हृदयंगम कर सकी उसी के अनुरूप मैंने लिखने का प्रयास किया है। टंकण में हुई अशुद्धियों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

सौभाग्यवती नांदल
एच०ई०एस०, हरियाणा

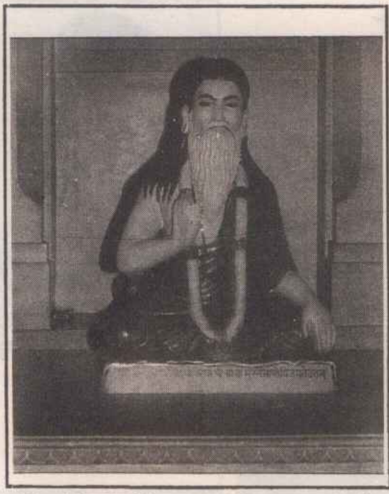

सिद्धशिरोमणि बाबा श्री मस्तनाथजी

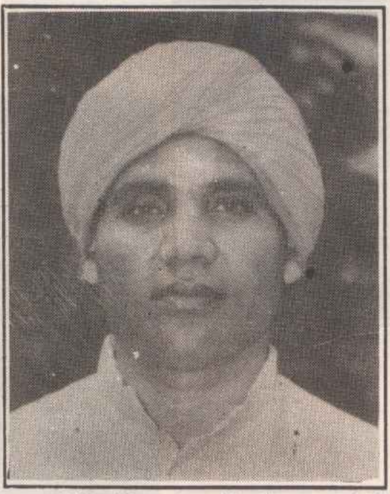

अनन्तश्रीविभूषित बाबा श्री चाँदनाथ योगी

त्वदीयं वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये !!!

तपःपूतं महात्मानं निष्कामकर्मयोगिनम्।
नमामि शतशः पूज्यं भगवन्तं महेश्वरम्।।

सौभाग्यवती

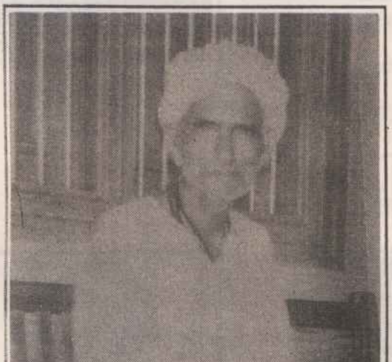

मुख्यपूजक मान्यवर बाबा श्री हजारीनाथजी
धर्मवृद्धो महानात्मा सेवाधर्मपरायणः

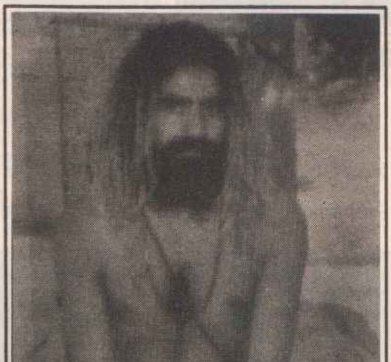

तपस्वी बाबा श्री दीवाननाथजी
(जिनके सतत प्रयासों से स्वास्थ्यलाभ पाकर मैं प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रस्तुत कर सकी)

श्री महंत तोतानाथ योगी

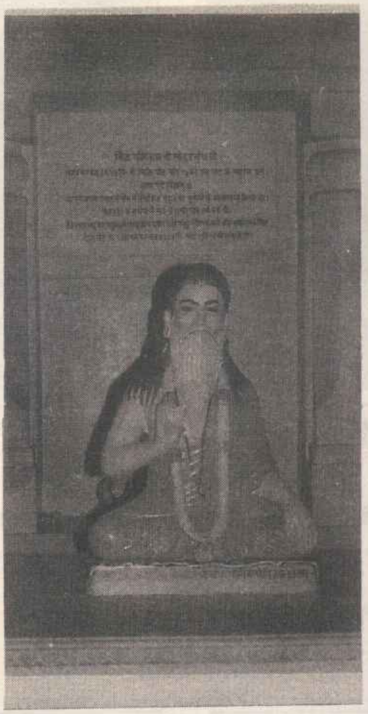

श्री महंत श्रेयोनाथ योगी

श्री महंत मेघनाथ योगी

श्री महंत पूर्णनाथ योगी

श्री महंत मोहरनाथ योगी

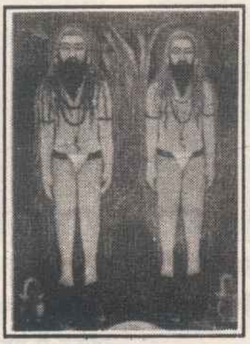

रणपत मान्धाता

श्री महंत चेतनाथ योगी

विषय-सूची

			पृष्ठ
१.	प्रथम: सर्ग:	सिद्धचौरंगीनाथवृत्तम्	१-१०
२.	द्वितीय: सर्ग:	श्रीमस्तनाथावतारप्रकरणम्	११-२५
३.	तृतीय: सर्ग:	बालचरित्रादिप्रकरणम्	२६-४३
४.	चतुर्थ: सर्ग:	दुग्धवर्षासिद्धिप्रकरणम्	४४-५६
५.	पञ्चम: सर्ग:	सिद्धगोष्ठीस्थमस्तनाथदर्शनप्रकरणम्	५७-६६
६.	षष्ठ: सर्ग:	शिष्यत्वसम्पादनादिप्रकरणम्	६७-८१
७.	सप्तम: सर्ग:	आईमार्गे पुनर्नाथसंज्ञावतारादिप्रकरणम्	८२-९३
८.	अष्टम: सर्ग:	प्रजादु:खहरणादिप्रकरणम्	९४-१०५
९.	नवम: सर्ग:	विभूतिप्रदर्शनादिप्रकरणम्	१०६-११७
१०.	दशम: सर्ग:	त्रिकालवार्ताज्ञानप्रकरणम्	११८-१३१
११.	एकादश: सर्ग:	शीलकोद्धारप्रकरणम्	१३२-१५६
१२.	द्वादश: सर्ग:	आत्मपरिचयादिप्रकरणम्	१५७-१७२
१३.	त्रयोदश: सर्ग:	वेदनियमप्रचारप्रकरणम्	१७३-१८८
१४.	चतुर्दश: सर्ग:	नीरसतरुहरितीकरणादिप्रकरणम्	१८९-१९९
१५.	पञ्चदश: सर्ग:	पाईदण्डदानप्रकरणम्	२००-२१८
१६.	षोडश: सर्ग:	धेनुसंजीवनादिप्रकरणम्	२१९-२३४
१७.	सप्तदश: सर्ग:	झज्जरवने विविधजीववधादिप्रकरणम्	२३५-२५४
१८.	अष्टादश: सर्ग:	इन्द्रप्रस्थगमनादिप्रकरणम्	२५५-२७५
१९.	एकोनविंश: सर्ग:	प्रलयाग्निग्रामदाहादिप्रकरणम्	२७६-२९१
२०.	विंश: सर्ग:	मिष्टान्नसुवर्णकरणादिप्रकरणम्	२९२-३१०
२१.	एकविंश: सर्ग:	भीमसिंहदर्पहरणादिप्रकरणम्	३११-३३८
२२.	द्वाविंश: सर्ग:	श्रीधड़ीनाथबुभुक्षानिवारणादिप्रकरणम्	३३९-३७०
२३.	त्रयोविंश: सर्ग:	धातारणपत्यानयनादिप्रकरणम्	३७१-३८४
२४.	चतुर्विंश: सर्ग:	जनतोपदेशादिप्रकरणम्	३८५-४०६
२५.	पञ्चविंश: सर्ग:	उत्तराधिकारिप्रकरणम्	४०७-४३२
२६.	षड्विंश: सर्ग:	श्रीमच्छ्रेयोनाथाख्यानादिप्रकरणम्	४३३-४५४
२७.	परिशिष्टम्	सिद्धश्रीचाँदनाथवृत्तम्	४५५-४६२

॥ श्रीमस्तनाथचरितम्॥

(विमलानाम्नी भाषाटीकालंकृतम्)

अथ प्रथमः सर्गः

अथ सिद्ध-चौरंगीनाथवृत्तम्

गोरक्षनाथं सत्कृत्य मस्तनाथं संस्मृत्य च।
विमलानाम्नी टीका लिख्यते हितकाम्यया।।

पत्तनं सियाल्कोटाख्यं तद्भूपः शालिवाहनः।
तस्य प्रधानाया राज्ञ्यास्तनूजत्वेन पप्रथे।।१।।

सियालकोट नाम का एक नगर है। उसका राजा शालिवाहन था। उसकी प्रधान रानी (पटरानी) के पुत्र के रूप में पूर्ण प्रसिद्ध हुआ अर्थात् पूर्णमल उसकी पटरानी इच्छावती (इच्छिरा) का पुत्र था।

लघीयसी च या राज्ञी रूपयौवनसम्पदः।
मुमोह रूपगर्वा सा कुमारस्याविचारतः।।२।।

और जो उनकी छोटी रानी (लवणादेवी) थी वह रूप व यौवन से सम्पन्न थी, सौन्दर्य पर अहंकार करनेवाली उस नारी ने (कभी) अपने कुविचार से कुमार को मुग्ध करना चाहा।

स्मरोपतप्ता भृशमाजुहाव तं कुमारमारान्निजवासनावशा।
मेने न तस्या वचनं विदूषितमारोपयामास तदापराधनम्।।३।।

कामदेव से संतप्त हुई उसने अपनी वासना के वशीभूत हो उस कुमार को अपने समीप बहुत बार बुलाया परन्तु उसने उसके दूषित वचन को नहीं माना, तब रानी ने उस पर अपराध आरोपित कर दिया अर्थात् उस कुमार पर शीलभङ्ग प्रयास का आरोप लगा दिया।

कुदृष्टिः पातिता राजन् ! कुमारेण तवाधुना।
शीलभङ्गे प्रवृत्तोऽयं भवता साध्यतामिह।।४।।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र ने अभी-अभी मुझ पर कुदृष्टि डाली है और यह शीलभङ्ग करने के लिए तत्पर हुआ है। अतः इस विषय में आपको उचित कदम उठाना चाहिए।

तस्या विरुद्धं वचनं निपीय कृत्वा सकोपो नृपतिर्मदान्धः।
तं हस्तपादादिविहीनमङ्गं निपातयामास स कूपमध्ये।।५।।

उसके विपरीत वचन को हृदयंगम करके, मारे क्रोध के राजा मदान्ध होगया और उसने उसे हाथ-पैर आदि से रहित अंगोंवाला करके कुएं के अन्दर गिरवा दिया।

कदाचिद् गोरक्षो वनवसतिमास्थाय शुशुभे
विनेयं स्वं प्रेष्य त्वरितमुदकं चानय मम।
तदा शिष्यो गत्वा प्रहिमुपरि भूत्वा जलमल-
मपश्यन्नीचैर्यद् गुणदशनसंयोगमचिरम्।।६।।

किसी समय सिद्ध गोरक्ष जी वन में निवास कर सुशोभित हुए और अपने शिष्य को भेजकर कहा कि मेरे लिए शीघ्र जल लाओ। तब शिष्य ने जाकर कुएं की मुंडेर के ऊपर खड़ा होकर ज्यों ही नीचे जल को देखा तब उसने तुरन्त ही रस्सी को दांतों से पकड़ा हुआ पाया। (इसे देख शिष्य को आश्चर्य हुआ कि मेरी रस्सी को दांतों से किसने पकड़ा है।)

प्राङ्जन्मार्जितपुण्यवैभववशान्मृत्युं न पूर्णो गतः,
तस्मिन्नेव समागतो गुरुवरो गोरक्षनाथः स्वयम्।
काले कालजयी यमाङ्गणजयी तृष्णोदयाद्रेर्जयी,
हाहाकारविकारकलकलकलायोगोत्थितः शङ्करः।।७।।

पूर्वजन्म में अर्जित की गई पुण्य की सम्पत्ति के कारण पूर्ण ने मृत्यु को प्राप्त नहीं किया, तब उसी समय गुरुश्रेष्ठ गोरक्षनाथ जी स्वयं वहां आ पहुंचे, मानो.उसके हाहाकार से क्षुब्ध हुए साक्षात् भगवान् शंकर जो कि प्रलयकाल में भी काल (मृत्यु) को जीतनेवाले, यम की सैन्यशक्ति को भी पराजित करनेवाले, तृष्णारूपी उदयाचल को जीतनेवाले हैं; वे अपने रुचिकर कलायोग से उठकर आगये हों अर्थात् अपने

भक्त का आर्त्तनाद सुनकर भगवान् शंकर समाधि छोड़ उसकी सहायतार्थ उपस्थित होगये हों।

न जाने कूपेऽस्मिन्नसुरसुरमध्ये यमिषु वा
प्रविष्टः संहृष्टो ग्रसितगुणकोटिः श्रमरतः।
गतः शिष्यो नाथं कथयितुमथो नाथ ! भगवन्
स्वयं ज्ञेयः कोऽसौ कथयति स कोऽप्यस्मि विपदि।।८।।

तब शिष्य लौटकर गुरुदेव को कहने लगा कि हे नाथ ! मैं नहीं जानता कि कुएं में असुर, देव अथवा योगियों में से कौन है जो कूप के मध्य प्रविष्ट हुआ भी बलिष्ठ प्रतीत होता है और शान्ति में लीन उसने रस्सी के छोर को पकड़ा हुआ है। वह कहता है कि मैं विपत्ति में पड़ा हुआ कोई हूं। अतः हे भगदन् ! स्वयं ही पता लगाओ कि वह कौन है ?

प्रयातः श्रीनाथः प्रहिनिहितवृत्तिः कथितवान्,
भवान् कोऽयं कूपे पतित इति वा पातित इति।
व्यतीतं भो ब्रूहि प्रणिहितमनास्तिष्ठसि कथं,
कथङ्कारं वृत्तिं वहसि बत गोरक्षनिकटः।।९।।

अपने शिष्य के मुख से इस प्रकार सुनकर गोरक्ष जी स्वयं कुएं की ओर गए और कुएं की ओर मुख करके कहने लगे कि आप कौन हैं ? कुएं में स्वयं गिरे हो अथवा तुम्हें किसी दूसरे ने गिरा दिया है ? इस समय बीते हुए समय के विषय में बताओ कि इस कूप में स्थिरमन हुए अपनी जीवनयात्रा कैसे चला रहे हो ? अब बीते दिनों की चिन्ता मत करो क्योंकि तुम्हारे समीप गोरक्ष है।

प्रगृह्यं लोकेषु क्वचिदपि विधातर्हृदि सतां,
विजानीषे सर्वं तव न किमपि प्राप्तुमथवा।
प्रकाशं कुर्वाते तव नयनवृत्ती कविवराः,
स्तुवन्तो देवन्ते दधति तव पादस्य कणिकाः।।१०।।

सम्प्रति पूर्ण गोरक्षजी की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे विधाता ! संसार में कहीं भी, तुमसे कुछ छिपा नहीं है क्योंकि आप सज्जनों के हृदय में जो रहस्य है, उस सबको जानते हो। तुम्हारी नयनवृत्ति प्रकाश करती हैं अर्थात् तुम्हारी दृष्टि पर ही आश्रित हुए सूर्य-चन्द्रमा समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते हैं और कवि भी

तुम्हारी चरणधूलि को धारण करते हैं। अत एव वे स्तुति करते हुए कम्पित होते हैं (क्योंकि उनमें आपके गुणों का बखान करने का सामर्थ्य नहीं है।) कहां तक कहा जाए, आपके लिए कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है (क्योंकि आप आप्तकाम हैं।) कहने का भाव यह है कि श्रेष्ठ कवि भी आपकी स्तुति नहीं कर पाते तो मेरे जैसा विपद्ग्रस्त व्यक्ति भला आपकी क्या स्तुति करेगा ? आपकी पहुंच से कुछ भी बाहर नहीं है। आप कुछ भी कर सकते हैं।

इति श्रुत्वा वाचं शिशुजनवदान्यस्य सरसां,
समुद्दध्रे कूपात् क्षितिपतनयं ध्वस्तकलुषम्।
क्षणेनापक्वेन प्रहिगतगुणेन प्रतिवचो,
ददानो गोरक्षः श्रुतवचनसंज्ञामकुरुत।।११।।

उसी समय बालक के समान मधुरभाषी कुमार पूर्ण की मधुरवाणी सुनकर गोरक्षनाथ जी ने कच्चे धागे से बनी रस्सी से नष्ट हुए दोषवाले राजा के पुत्र को कुएं से बाहर निकाला और फिर प्रत्युत्तरस्वरूप आशीर्वचन देते हुए उसे नाथ पदवी प्रदान की।

अहो धन्यो ज्ञानी गुणगणयुतः शुद्धविमलः
कृतं कार्यं लोके पितुरपि मुखं प्रोज्ज्वलमभूत्।
इदानीं संजातं तव पदमनन्तेन मिलितं
नयन्ते योगानां विरलमतयो बुद्धिविषयम्।।१२।।

इस समय भगवान् गोरक्षनाथ जी बालक पूर्ण को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि अहो! तुम्हारी तपस्या असाधारण है, क्योंकि आप भाग्यशाली हैं, विद्वत्ता को प्राप्त हैं, गुणराशि से युक्त हैं अर्थात् समस्त गुण आप में एक साथ विद्यमान हैं। शुद्धचित्त होने के कारण निर्मल हैं। संसार में तुम्हारे द्वारा किए गए इस प्रकार के कार्य से तुम्हारे माता-पिता का मुख उज्ज्वल होगया है। इस समय तुम्हारी स्थिति परमात्मा से मिल गई है अर्थात् अब तुम्हारा स्थान ईश्वर के तुल्य पूजनीय होगया है जिससे कि मन्दबुद्धि भी योगियों की बुद्धि के विषय को प्राप्त कराये जाते हैं।

अर्थात् इस दृष्टान्त से अल्पबुद्धि मनुष्य भी, जो विषय (ब्रह्म) केवल योगियों की पहुंच में है, उसके प्रति विश्वास करने लग जाता है अर्थात् अच्छे सदाचरण के मार्ग पर चलने से निकृष्ट से निकृष्ट प्राणी का भी उद्धार हो जाता है। अतः किसी

भी अवस्था में मनुष्य को अपना चरित्र नहीं गिराना चाहिए चाहे बदले में उसे कितना ही कष्ट उठाना पड़े। ऐसे चरित्रवान् व्यक्ति का अन्त में कल्याण ही होता है। ऋषियों की यह पावन उक्ति **'सत्यमेव जयते नानृतम्'** यहां पर सत्य सिद्ध होती है।)

न मृत्युर्नो चिन्ता भवतु न च सातेन भविता
पिता माता लोकास्तव नगरवास्तव्यजनता।
फलन्तो दृश्यन्ते फलिततपसां राशय इव
सुखानां संघातः परमत इति स्यात्तव पुरः।।१३।।

इस समय अमरता के कारण तुम्हारी न तो मृत्यु होगी और मृत्यु की चिन्ता भी न रहेगी तथा न ही तुम संज्ञाहीनता (बेहोशी) से युक्त होओगे। तुम्हारे माता-पिता, बन्धुजन और तुम्हारे नगर में रहनेवाली जनता फलित तपोराशि की भांति फलित (समृद्ध) दिखाई देगी। इसके अतिरिक्त इससे भी अधिक तुम्हारा नगर सुखों का संघात हो जायेगा अर्थात् तुम्हारे नगर में प्रत्येक प्रकार के सुख होंगे।

शरीरं ते वज्रं भवतु मघवा निर्जरसमं
पुरारिः सर्वेषां प्रतिपदसुखानि प्रतनुताम्।
अहं स्वप्ने स्वापे तव विपदि तापे रिपुततौ
भवान् भूयाद् यायात्परमलोकं सहचरः।।१४।।

तुम्हारा शरीर देवों के तुल्य दृढ़ (वज्र) हो जाए। आप इन्द्र हो जाएं अर्थात् आपके अंगों में सब जगह आने जाने की शक्ति आ जाये। पुरों का शत्रु भगवान् शंकर सभी के लिए प्रत्येक क्षेत्र में कल्याणों का विस्तार करें। मैं तुम्हारे स्वप्न में, सुषुप्ति अवस्था में, विपत्ति में, कष्ट में तथा किसी के साथ शत्रुता होने पर तुम्हारा सहचर हूं और (अधिक क्या कहा जाए) आप परमधाम को चले जाएं।

अगाधा ते बाधा व्रजतु तव साधारणधिया
धनानां संघातो भवतु सुखदो दीर्घतपसः।
फलं जातं तात प्रथयतुतरां कीर्तिलतिकां
भवान् पूर्णोऽपूर्णोऽभवदथ भवेन्नात्र वचनम्।।१५।।

इस समय तुम्हारी गम्भीर पीड़ा अनायास दूर हो जाए अर्थात् संताप सामान्य हो जायेगा। तुम्हारे समक्ष धनसमुदाय सुखदायी होवे, तुम्हें दीर्घकालीन तपस्या का

सुख मिल गया है। हे तात! आप अपनी यशोराशि का विस्तार करें। आप अपूर्ण होते हुए भी पूर्ण हो गए हैं। इस विषय में और अधिक क्या कहना अर्थात् अब आपके लिए इससे अधिक और कहने के लिए कुछ बचा ही नहीं है।

पुरावृत्तं लोको भणति भुवि शोकाकुलधिया-
मपारां सम्पत्तिं दिशति तव कारुण्यकथनम्।
असत्याः सत्ये ते पथि दधति वृत्तिं श्रुतवतां
कथा पुण्या धन्याऽधनपतिधियां धर्मसुखदा।।१६।।

इस पृथ्वी पर सारा लोक तुम्हारे पूर्व के करुणापूर्ण वृत्तान्त को कहता है जिससे तुम्हारी शोकाकुल बुद्धि एवं अपार सम्पत्ति (पूर्वजन्म में अर्जित पुण्य सम्पत्ति) प्रकट हो रही है। तुम्हारे इस सत्य के मार्ग पर चलने से असत्य (असज्जन) पुरुष भी ज्ञानियों के आचरण को धारण कर लेते हैं अर्थात् तुम्हारे दृष्टान्त से असज्जन भी सज्जनों की भांति व्यवहार करना सीख रहे हैं। तुम्हारी यह धन्य एवं पुण्य कथा विरक्तों को (भी) धर्म एवं सुख प्रदान करनेवाली है अर्थात् इससे न केवल सांसारिक व्यक्ति ही धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त होंगे अपितु संन्यासी भी धर्मलाभ प्राप्त कर आनन्दित होंगे।

त्वया गत्वा नूनं जनकजननीबोधविधुरे
प्रदेयं तज्ज्ञानं हृदि भवतु येनाशु शमनम्।
उपाधिर्व्याधीनां लयमयमयेत प्रथितयो-
र्भवितां सम्मानस्मितसुखमनन्येन सुखिनौ।।१७।।

गोरक्षजी अपने कथन को आगे बढ़ाते हुए पुनः कहते हैं कि हे पूर्ण! तुम अपने नगर में जाकर अपने माता-पिता के ज्ञान से रहित चित्त में अवश्य ही ज्ञान का संचार कर देना ताकि उस ज्ञान से उन्हें शीघ्र ही शान्ति मिल जाए। तुम्हारे (जगत्) विख्यात माता-पिता के मानसिक संताप का जो तूफान था, उसका विनाश होवे। तुम्हारे माता-पिता सम्मान, मुस्कराहट (हर्ष) तथा असाधारण सुख से युक्त हो जाएं।

तदा श्रीनाथेनापरपरविधानं शिवकुले
समायातं दत्तं श्रुतिविवरतत्कुण्डलयुगम्।
गले शैली श्रृंगी शिरसि वपुषि क्षारभरणं
चिता चिन्ता दग्धा रघुकुलकुमारस्य सहितम्।।१८।।

तब गोरक्षजी द्वारा दर्शन की गई (अथवा बढ़ाई गई) शिवकुल में परब्रह्म की शक्ति की जो व्यवस्था थी (योगविषयक ज्ञान) उसे उन्होंने पूर्ण को दे दिया। पूर्ण ने कानों में कुण्डल पहन लिए, गले में सेली, सिर पर सींगी और शरीर पर भस्म ही उनका आभूषण थी। उस रघुकुल के कुमार की ज्ञान से तुरन्त ही चिन्ता भी नष्ट होगई।

तदा गत्वा माता झटिति सुखिनी तेन विहिता
प्रदत्ते ते नेत्रे प्रियसुतवियोगेन गमिते।
पिता नाम्ना शाली निजतनयमाश्लिष्य सुखभाग्
बभौ पूर्णं प्राप्य त्वरितमथ मायामयमनाः।।१९।।

तब उस पूर्ण ने अपने नगर में जाकर अपनी माता को अपने दर्शन से तुरन्त आनन्दविभोर कर दिया क्योंकि पहले वह माता प्रियपुत्र के वियोग के कारण दृष्टिविहीन होगई थी, वह पुनः दृष्टि से युक्त होगई। शालिवाहन नाम का उसका पिता भी अपने पुत्र का आलिंगन कर सुखी होगया और माया से युक्त मनवाला वह पूर्ण को पाकर तुरन्त सुखी होगया।

तदीयोद्यानं यद् हरितकुसुमाकारकलितं
प्रजा मेने राजाऽभवदथ तदा ध्याननिरतः।
विजेतारं मृत्योर्नयनजननी सापि सुखिनी
बभूव व्योम्नीव प्रसुमबहुवृष्टिः सुरशयैः।।२०।।

(पूर्ण के नगर में प्रवेश करते ही) सूखा हुआ उद्यान तुरन्त हरा होगया और उसमें फूल व कलियाँ भी निकल आईं। तदनन्तर निरन्तर पूर्ण के चिन्तन में मग्न राजा तथा प्रजा ने तब पूर्ण को जीवित देख उसे मृत्यु को जीतनेवाला माना। उनकी दूसरी जननी (विमाता) भी आनन्द से विभोर होगई। (उस समय इस कृत्य को देखकर) आकाश में मानो देवताओं के हाथों से पुष्पवृष्टि होने लगी।

अहो ! श्रीगोरक्ष ! त्वमसि यमिनां मण्डनमणिः
प्रसिद्धः सिद्धानां कपिलमुनिपूज्यः सुरगुरुः।
स दत्तात्रेयोऽपि स्मरति गुरुगोरक्षगुरुतां
न ते लीलां लोकः कथमपि मतौ बोद्धुमभवत्।।२१।।

अहो ! गोरक्षजी ! आप योगियों के आभूषण की मणिस्वरूप हो तथा (चौरासी) सिद्धों में प्रसिद्ध हो। कपिलमुनि के भी पूजनीय हो, देवों के भी गुरु हो क्योंकि वह दत्तात्रेय भी आप गुरु गोरक्षनाथ जी के माहात्म्य का स्मरण करता है और आपकी लीला (योगमाया) को संसार किसी प्रकार भी बुद्धि में आत्मसात् करने में समर्थ न हो सका अर्थात् संसार में इतना सामर्थ्य नहीं है जो गोरक्ष जी के गौरव को स्वयं में आत्मसात् कर सके।

चतुरंगी ततो जातो हस्तपादादिकर्त्तनात्।
पूर्णश्च पूरणाज्जातो ह्यंगानां नाथदर्शनात्।।२२।।

जब पहले हाथ और पैर आदि कटने के कारण चतुरंगी कहलाया और नाथ जी की कृपा के कारण पुन: अंगों की पूर्ति होने के कारण पूर्ण (भक्त) कहलाया।

पूर्णस्य कूपाज्जलमानयन्ति ये
स्नानं प्रकुर्वन्ति जना: सहस्रश:।
सिध्यन्ति तेषां हृदि कल्पितानि हि
सिद्धो भवेत्तत्र निवासवान् पुमान्।।२३।।

इस समय कवि पूर्णमल के कूप का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो लोग पूर्ण के कुएं से जल लाते हैं और जो हजारों व्यक्ति उससे स्नान करते हैं, उनकी हृदयगत मन:कामनाएं निश्चितरूप से पूर्ण होती हैं तथा वहां निवास करनेवाला व्यक्ति सिद्ध हो जाता है।

अपुत्रा: पुत्रवत्य: स्युर्वन्ध्या नार्योऽपि साम्प्रतम्।
पूर्णकूपमहिम्ना यत् नात्र कार्या विचारणा।।२४।।

जो कि इस समय भी पूर्ण के कुएं की महिमा से पुत्ररहित बांझ स्त्रियां भी पुत्र से युक्त हो जाती हैं, इस विषय में संदेह नहीं करना चाहिए अर्थात् वास्तव में आजकल भी जिस कुएं में पूर्ण को हाथ-पैर कटवाकर डाल दिया था उसके जल में स्नान करने से बांझ नारियों के भी पुत्र उत्पन्न हो जाते हैं। कूप का प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।

शिष्यो गोरक्षनाथस्य प्रसिद्धि: सर्वत: स्थिता।
पूर्णभक्तो महायोगी चौरंगीनाथ एष क:।।२५।।

प्राय: सभी नाथग्रन्थों में पूर्णभक्त की गोरक्षनाथजी के शिष्य के रूप में प्रसिद्धि है परन्तु यह महायोगी चौरंगीनाथ कौन है ? यह विवादास्पद है अर्थात् पूर्णभक्त और महायोगी चौरंगीनाथ एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं अथवा नहीं।

लोकेषु पूर्णभक्तेति निगदन्ति जना: समे।
खण्डयित्वा कालदण्डमधुनापि विराजते।।२६।।

(तीनों) लोकों में लोग समान स्वर से चतुरंगीनाथ को पूर्णभक्त कहते हैं। वह कालदण्ड का खण्डन करके आज भी विराजमान हैं अर्थात् पूर्णभक्त ने मृत्यु को पार कर लिया और वे अपने यश के कारण आज भी अमर हैं।

जातोऽष्टम्यां शताब्द्यां स चतुरंगी महायति:।
बोहरपीठस्थलेऽसौ कृतवाँस्तप उत्तमम्।।२७।।

वह महायति चतुरंगीनाथ आठवीं शताब्दी में हुए और उन्होंने बोहर में स्थित मठ में उत्तम तपस्या की।

प्रावर्त्ति पादमार्गोऽपि स्थित्वाऽत्रैव महामठे।
तेनैव पावपन्थश्च पाकलश्चेति नामत:।।२८।।

इसी मठ में रहते हुए उन्होंने पादमार्ग को भी चलाया तथा उन्हीं के द्वारा पाव और पाकल नाम के पंथ भी चलाए गए।

चतुरशीतिसंख्याका: पालिका: प्रचलन्ति हि।
अस्मादेव मठाद् योगप्रचाराय दिगन्तरम्।।२९।।

नि:सन्देह इसी मठ से योगप्रचार हेतु चौरासी संख्या में पालकियां विभिन्न दिशाओं में जाया करती थीं।

समृद्धिशालिता चासीद् मठस्यैतस्य वैभवात्।
किंवदन्ती वदत्येषा नह्यमूला जनश्रुति:।।३०।।

किंवदन्ती है कि वैभव के कारण इस मठ की ऐसी समृद्धिशालिता थी। यह जनश्रुति वस्तुत: निराधार नहीं है।

ख्यातो देवालयानामा कासार: परमोऽद्भुत:।
यन्मृत्तिकाप्रभावेण रोगमुक्ता भवन्ति हि।।३१।।

वस्तुतः यहीं बोहर मठ में देवालय नाम का अत्यन्त अनोखा एक प्रसिद्ध सरोवर है जिसकी मिट्टी के प्रभाव से लोग निःसन्देह रोग से मुक्त हो जाते हैं।

अद्यापि विद्यते सिद्धिः सिद्धस्य चतुरंगिणः।
साधवश्च नरा नार्यो मृत्तिकामाहरन्ति ते।।३२।।

आज भी सिद्ध चतुरंगी जी की सिद्धि प्रत्यक्ष देखी जा सकती है और वे महात्मा, पुरुष व स्त्रियां मिट्टी को ले जाते हैं अर्थात् मिट्टी को अपने-अपने घर ले जाते हैं और उसके प्रयोग से रोगरहित हो जाते हैं।

कालप्रवाह के कारण आज यह तालाब मात्र एक खड्डा रह गया है परन्तु इसका कुछ प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।

केचिच्च शास्त्रान्तरगौरवाश्रयान्
मत्स्येन्द्रशिष्यं समुदाहरन्ति तम्।
प्रसिद्धिरेषा जगतस्तलेऽधुना
गोरक्षशिष्यश्चतुरंगिनाथकः।।३३।।

और कई दूसरे शास्त्रों में गौरवमय स्थान पाए हुए उसे मत्स्येन्द्रनाथ जी का शिष्य कहते हैं परन्तु आजकल भूतल पर यह प्रसिद्धि है कि चतुरंगीनाथ गोरक्ष जी के शिष्य थे।

भाव यह है कि कई दूसरे शास्त्रों जैसे योगप्रदीपिका की व्याख्या में ब्रह्मानन्द जी ने इन्हें मत्स्येन्द्रनाथ जी का शिष्य बताया है और प्राणसंकलिका तथा मञ्जुनाथसंहिता में भी इन्हें मत्स्येन्द्रनाथ जी का ही शिष्य कहा गया है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते योगिशंकरनाथरचिते
सिद्धचौरंगीनाथवृत्तं संक्षेपतः समाप्तम्।

(इस सर्ग का मूलकर्त्ता योगी शंकरनाथफलेग्रहि है।)

द्वितीयः सर्गः

श्रीमस्तनाथावतारप्रकरणम्

विचित्रं सचित्रं कृतं येन सर्वं स सर्वज्ञनाथेश्वरः सञ्चिकाय।
स्वतन्त्रत्वकार्यं स्वकं तज्जगत्यास्तथा स्थानमुद्भावनं येन जातम्।।१।।
गुर्व्यो गरीयान् न तस्मात्परोऽस्ति स सर्वर्षिदेवेश्वरेशान एकः।
नुमः स्वादिनाथं परब्रह्मरूपं सदा वेदवादैः स्तुतं सर्वहेतुम्।।२।।

जिसने स्वतन्त्र रूप से ब्रह्माण्ड को प्रकट किया, उसकी सृष्टि की, जो इसका संहार करता है और जिसने इस निखिल जगत् को चित्र-विचित्र रूप से सजाया है अर्थात् प्रकृति की अद्भुत विभूतियों से इसको भूषित किया है। जिसके समान इष्ट दूसरा गुरु नहीं है, जो गुरुओं में भी श्रेष्ठ है, वह सबको जाननेवाले नाथ का भी ईश्वर, सभी ऋषियों और देवों के स्वामी (इन्द्र) का भी स्वामी है, अद्वितीय (एकः) है, वेद की ऋचाएं जिसकी स्तुति करती हैं; ऐसे सबके कारण परब्रह्मस्वरूप आदिनाथ को नमस्कार!

यतो ब्रह्मविष्ण्वादिषट्त्रिंशदंशो जगत्सर्वमात्मैव नानाविधोऽस्ति।
य एकः परा[1]त्पूरुषः पूर्वजातः स्वलीलाविलासेन संसारदर्शी।।३।।

जिससे ब्रह्मा, विष्णु आदि छत्तीस अंश देवता व समस्त जगत् उत्पन्न हुआ और वही आत्मा रूप में नाना रूपों में भासित हो गया। जो एकस्वरूप हिरण्यगर्भ पुरुष से भी पहले उत्पन्न हुआ है और अपनी माया के वैभव से समस्त संसार का द्रष्टा है।

पुरा मायया संगमाश्रित्य सर्वप्रभावाऽनुभावप्रभाभासितार्थम्।
जगत्संतनोति स्म लीलाविलासः स जाल्पेश्वरः स्वादिनाथः स पायात्।।४।।

जिसने पहले माया का साथ लेकर समस्त प्रभाव (तेज) और अनुभाव (ज्ञान) की प्रभा से प्रकट हुए विषय (पदार्थ) वाले संसार का विस्तार किया था। माया के साथ क्रीड़ा (रमण) करनेवाला प्रकृति (भगवती) का अधिष्ठाता वह आदिनाथ=ईश्वर मेरी रक्षा करे।

---

१. पाठभेद-परः। (प्रकाशित प्रति)

यदीयोऽथ सद्भूतहेतुः स्वदेहः स भूतादिनाथो निजभूतमूर्त्या।
तथाविर्बभूवाऽथ मत्स्येन्द्रनाथः स सिद्धेशनाथादिसंज्ञाभिरासीत्।।५।।

जिसका स्वकीय देह पवित्र पञ्चभूतों से हुआ है, प्राणियों का आदिनाथ वह अपनी पांचभौतिक मूर्त्ति से उस प्रकार प्रकट हुआ कि वह मत्स्येन्द्रनाथ, सिद्धेश व नाथ आदि नामों से जाना जाता था।

यहाँ पर मत्स्येन्द्रनाथजी को आदिनाथ के अपने स्वरूप से सीधा उत्पन्न माना गया है। आदिनाथ निराकार था और उन्हीं से भौतिक शरीर वाले मत्स्येन्द्रनाथ **जी प्रकट** हुए। **इस विषय को स्पष्ट करने के लिए यहां मकड़ी का दृष्टान्त दिया जा रहा है**—मकड़ी के भीतर **जाला अमूर्त रूप में होता है**। जब वह चाहती **है, उसे** मूर्तरूप में प्रकट कर देती **है** उसी प्रकार आदिनाथ से पांचभौतिक-देहधारी मत्स्येन्द्रनाथ जी के प्रकट होने का उल्लेख है। प्राणी का शरीर पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं तेज (अग्नि) इन पांच तत्त्वों से निर्मित होता है। मत्स्येन्द्रनाथजी को सिद्धों का स्वामी इसीलिए कहा जाता है क्योंकि उन्हीं ने परवर्ती सन्तों को सिद्धियां प्रदान की थीं। वह नाथ आदि नामों से भी लोक में विख्यात थे।

मत्स्येन्द्रनाथस्य बभूव शिष्यो गोरक्षनाथो गुरुवर्य एषः।
स द्वादशानां हि पथां प्रवर्त्तकः प्रचण्डमार्त्तण्डमहेन्द्रधामा।।६।।

यह गुरुश्रेष्ठ गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथजी का शिष्य था वह वस्तुतः बारह पंथों का प्रवर्त्तक व प्रचण्ड सूर्य एवं महेन्द्र (इन्द्र) के समान तेजस्वी था।

गोरक्षोऽप्यनपत्यस्य धनिनोऽध्यक्षतामितः[१]।
अनूपे हरियानाख्ये रोहिताश्वपुरान्तिके।।७।।

गोरक्ष भी अतीव रमणीय हरियाणा प्रान्त में रोहिताश्व (रोहतक) नगर के निकट किसी सन्तानहीन धनी के घर प्रकट हुए। (इन्हीं का वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया जायेगा)।

तज्जनपदे सम्पदां विपदां च निवर्त्तके।
वर्त्तके रससम्पन्ने सारस्वतपरायणे[२]।।८।।

सम्पत्ति से युक्त (वर्त्तके) और विपत्ति से रहित, वीररस से सम्पन्न (अथवा परस्पर स्नेह से युक्त) विद्यार्जन में लगे हुए उस जनपद में (गोरक्षजी ने मस्तनाथ जी के रूप में अवतार लिया।

१. पाठभेद-गृहगोऽभवत् (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य पाण्डुलिपि मे नहीं है।

जनपदे सुप्रसिद्धे यत्र लोका: स्वधर्मगा:।
सिद्धमार्गे[1] स्थिता दुग्धदधिभोज्यप्रिया: सदा।।९।।

अत्यन्त प्रसिद्ध उस हरियाणा प्रदेश में सदैव स्वधर्मानुयायी सिद्धों के मार्ग पर चलनेवाले, दूध और दही के भोज्य पदार्थों में रुचि रखनेवाले लोग रहते हैं।

सिद्धमार्गे स्थिता: सर्वे गोपाला: कृष्णसम्मता:।
आस्तिकास्तर्कहीनाश्च भगवद्ध्यानतत्परा:[2]।।१०।।

जहां पर सभी लोग सिद्धमार्ग पर चलते हैं। श्रीकृष्ण की भांति गायों का पालन करते हैं, आस्तिक (भगवान् में विश्वास करना) और कुतर्क से रहित हैं तथा भगवद् ध्यान में लीन रहते हैं।

साधुभक्ता हरेर्भक्ता दयावन्तो रसप्रिया:[3]।
सत्यसङ्गा दृढाङ्गाश्च प्रेमासक्तरसस्पृहा:[4]।।११।।

विष्णु (परमात्मा) एवं सन्तों में भक्ति रखनेवाले, दयालु, शस्त्ररस के प्रेमी (वीर), सत्य के साथी, बलिष्ठ शरीर वाले, परस्पर प्रेम में लीन व काव्यशास्त्र (रस) में आसक्ति रखने वाले लोग रहते हैं।

दया न दानेन विनाऽस्ति यत्र दानं न धर्मेण विना च तत्र।
दानं न भक्त्या रहितं हि तत्र भक्त्या विहीनो न नरश्च तत्र।।१२।।

जहां दान के बिना दया नहीं है और वहां दान भी धर्म के बिना नहीं है अर्थात् धर्मानुसार ही योग्य पात्र को दान दिया जाता है। वस्तुत: दान भी भक्ति से रहित नहीं होता और वहां पर नि:संदेह कोई भी व्यक्ति भक्ति से रहित नहीं है।

अहिंसनं शक्तिसमञ्च भक्तौ गुणानुरागश्च हरेरघाते।
रागे गुणानामपि साधुचर्य्या समुत्कटाऽऽसीच्च सदा पुराऽत्र।।१३।।

यहां पर लोग हिंसा से रहित हैं, यथाशक्ति प्रभुभक्ति में लीन रहते हैं और गुणानुरागी हैं। दूसरों के हित (गुणों) में अनुराग व साधुसेवा भी पहले इस प्रदेश में बहुत अधिक थी।

---

१. पाठभेद-चातुर्ये च। (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. पाठभेद-रसस्पृहा:। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-रसप्रिया:। (प्रकाशित प्रति)

हरियानो हरियानो हरियानसमर्थकः।
तत्समीपे प्रदेशे हि केसरीति[१] पुरी स्मृता।।१४।।

हरियान=हरयाणा प्रदेश, हरियान=विष्णु के मार्ग पर चलनेवाला, हरियान=विष्णु के मार्ग का समर्थक है (शुद्ध शाकाहारी है)। उसके समीपवर्ती प्रदेश में केसरी नगरी बताई गई है।

हरि (इन्द्र) का यान (गमन) जिस प्रदेश में होता था अर्थात् प्राचीन समय में यहां पर इन्द्र का खाण्डव वन था। अतः दिल्ली को इन्द्रप्रस्थ भी कहा जाता है। दिल्ली से लेकर रोहतक नगर का प्रदेश हरियान नाम से प्रसिद्ध था। हरि (कृष्णावतार) का यान (गमन) यहां पर हुआ अर्थात् अर्जुन के साथ खाण्डव दहन के समय श्रीकृष्ण का इस प्रदेश में आगमन हुआ था तथा हरि (सिंह) का यान (घूमना) जहां पर था अर्थात् इस प्रदेश में बहुत सारे सिंह विचरण करते थे अथवा हरि (घोड़े) की यान सवारी में यहां के लोग निपुण थे अथवा श्रीकृष्ण ने अपने आगमन से ही इस स्थल को एक प्रदेश का रूप प्रदान किया था। उनके दिशानिर्देश में ही पाण्डवों ने इस प्रदेश को एक खुशहाल नगरी के रूप में परिवर्तित किया था।

सबला सबलेन बलः सबलो विमलोरुगुणामलचित्तबलः।
विलयीकृतदुःखमहासबलो गुरुभक्तिविशेषबलोऽभवत्।।१५।।

इस केसरी[२] नगरी में बलभद्र के समान शक्तिशाली, स्वस्थ, पुष्ट जांघोंवाला (अथवा अनेक निर्मल गुणोंवाला) निर्मल अन्तःकरण की शक्तिवाला, दुःखों के दूर हो जाने से अत्यन्त शक्तिसम्पन्न व गुरुभक्ति में विशेष अनुराग रखनेवाला 'सबला' नामक व्यक्ति रहता था।

रैवारिज्ञातिरैवारिपूर्णसत्कृतयाचकः।
धनसम्पत्तिमुक्तादिकाऽमुक्तमुक्तसुपुत्रः।।१६।।

रैबारी[३] जाति के बान्धवों के धन-जल से परिपूर्ण, याचकों का सत्कार करनेवाला, मुक्तादि धन-सम्पत्ति से सम्पन्न होता हुआ भी वह सबला उत्तम सन्तान से रहित था।

---

१. पाठभेद-ऽप्यनुपेके केसरिहट्ट। (प्रकाशित प्रति)
२. **रोहतक के समीप किसरेहटी गांव है। इसी को १४वें श्लोक में 'केसरीति पुरी स्मृता' लिखा है। 'केसरिहट्ट' पाठभेद इसे स्पष्ट करता है।**
३. मरुभूमि में **'रैबारी'** एक जाति है जो ऊंटों के झुंड लेकर चराती घूमती रहती है। ये लोग ऊंट के पदचिह्न को एक स्थान पर देखने के पश्चात् उसे १०० कोस दूर पर भी पहचान लेते हैं। इन्हें **'खोजी'** कहा जाता है।

भक्तिश्रद्धासुधास्वादपूर्णसर्वमनोरथः।
रक्तिमद्वणिगाधारोऽप्रसन्नोऽपत्यहानितः।।१७।।

भक्ति और श्रद्धारूपी अमृत के आस्वादन से जिसके सब मनोरथ पूर्ण हो गए हैं, ऐसा भक्ति (एवं प्रेम) से युक्त, व्यापारियों का मुखिया वह सबला सन्तान न होने के कारण दु:खी रहता था।

कदाचित् कालिन्दीजलमिलदलिव्रातरववान्
तटस्थाकीर्णान्तप्रचुरसुमगन्धान्धपथिकः।
सुवातो मार्गोऽपि स्वकधनसमर्ज्यासु शकुनः
स गोरक्षोऽवापि प्रथितनिजदैवो मम गुरुः।।१८।।

कभी वह सबला यमुना के किनारे-किनारे जहां पर यमुना के जल में एकत्रित हुए रववान् (आवाज करते हुए) भ्रमरसमूह गुञ्जार कर रहे थे, किनारे पर बिखरे हुए प्रचुर पुष्पों की गन्ध से यात्रियों को अन्धा (तन्मय) करनेवाला सुगन्धित वायु बह रहा था, व्यापार में लाभ होगा; यह सूचना देते हुए पक्षी जहां कलरव कर रहे थे, ऐसे मार्ग से जा रहा था कि अचानक गोरक्षजी मिल गए जिनकी दिव्यता प्रसिद्ध थी और उन्हें उसने पहचान लिया कि यह मेरे गुरुदेव ही हैं।

जटापिशङ्गं धृतवल्लकिं वा सभूतिभूषं धृतकुण्डलश्रुतिम्।
तेजःसमिद्धं जगति प्रसिद्धं गोरक्षनाथं स ददर्श तत्र।।१९।।

उस सबला ने वहां पर जटाओं के कारण पिंगल वर्णवाले अथवा वीणा को धारण किए, भस्म से सुशोभित, कानों में कुण्डल पहने हुए, तेज से दीप्त, ब्रह्माण्ड में विख्यात गोरक्षनाथजी को देखा।

तेजस्तदीयं सबला समीक्ष्य गृणँस्तदादेशपदं[1] स्वतश्चेत्[2]।
फलानि पुष्पाणि निवेद्य नामं नामं सुखं तत्परमं स लेभे।।२०।।

उसके तेज को देखकर सबला के मुख से अनायास ही 'आदेश-आदेश' शब्द निकल पड़ा। तदनन्तर फल और पुष्पों को अर्पण कर बार-बार नमस्कार करते हुए वह अत्यन्त सुखी हुआ।

---

१. पाठभेदे-वदं। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-स्वतोगतम्। (प्रकाशित प्रति)

नत्वा तदङ्घ्रिद्वयकं करौ स्वौ संयोज्य मूर्ध्नात्मविनम्रवादैः[1]।
स्वभाग्यमात्रोदयलब्धदृष्टिं सृष्टिं फलस्याप्य निजामुवाच।।२१।।

सबला ने उनके चरणों में मस्तक रख, हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अपने भाग्योदय से प्राप्त होनेवाले उनके दर्शन कर नम्र वचनों से पुत्र की याचना की।

तदाकर्ण्य वचस्तस्य परया श्रद्धया ततः[2]।
प्रसन्नो भगवानाह वरं ब्रूहि ददामि ते।।२२।।

तब उसके अत्यन्त श्रद्धा से युक्त वचन सुनकर गोरक्ष भगवान् ने प्रसन्न हो कहा कि वर मांगो, वही तुम्हें दूंगा।

भवत्कृपाविश्य धनाश्रितं सुखं समप्रकारैर्वितरत्यभीक्ष्णम्[3]।
धनं गुणं वैभवमादरादिकं न मोददं सौतसुखैर्विहीनतः[4]।।२३।।

आपकी कृपा से (मेरे घर में) धन पर आधारित सब प्रकार के सुख लगातार मौजूद हैं। जैसे धन, गुण, ऐश्वर्य, सम्मान इत्यादि होने पर भी मैं पुत्रसुख से वंचित होने से प्रसन्न नहीं हूं।

अनन्तकल्याणगुणाः शिवस्य यथा दिवि स्वैर्मननैरगण्याः।
तारा रजोंऽशा भुवि किं च कर्तुं भवन्ति तन्मूर्तिधरा भवन्तः।।२४।।

जैसे आकाश में असंख्य तारे हैं वैसे ही शिव (गोरक्ष) के कल्याणकारी गुण भी अनन्त हैं, उनकी गणना रजोगुण से युक्त मर्त्यलोकवासी मनुष्य कैसे कर सकते हैं ? ऐसे गुणविशिष्ट शिव के आप अवतार हैं।

श्रीशंकरनाथ फलेग्रहि की संस्कृत टीका का अर्थ इस प्रकार है-जिस प्रकार धूलि के कण नहीं गिने जा सकते, उसी प्रकार आपके गुण भी अगण्य हैं।

समस्तगुणसम्पन्नः सुतो मे जायतामिति।
भवदर्चाभक्तिफलं भवतः कृपया भवेत्।।२५।।

आपकी पूजा-भक्ति के फलस्वरूप मेरे घर समस्त गुणों से सम्पन्न एक पुत्र आपकी कृपा से उत्पन्न हो जाए, यही मेरी प्रार्थना है।

---

१. पाठभेद-भालेन। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-सह। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-वीरिवर्त्ति सम्प्रति। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-मोमुदा मा तनुते सुतं विना (प्रकाशित प्रति)

भव ! त्रिलोकी कलना परा भवेत् तस्या विनाशो यदि नायुषो भवेत्।
पारे परार्धं कलितं च संभवेत् संख्येयसम्पूर्णगुणो भवान् भवेत्[१]।।२६।।

हे जगत् के स्रोत (मूल) ! हे तीनों लोकों के स्वामी ! ब्रह्मा की सम्पूर्ण गिनती (परार्ध) से परे भी यदि कोई गिनती हो, उसका भी यदि विनाश (अन्त) हो तो भी मेरे पुत्र की आयु का विनाश न होवे क्योंकि ब्रह्मा की सम्पूर्ण संख्या (परार्ध) की गणना सम्भव है परन्तु आपके सम्पूर्ण गुणों की गिनती उससे भी परे है अर्थात् आपके गुणों की गणना कदापि नहीं हो सकती। भाव यह है कि ब्रह्मा की परार्ध नामक गिनती के पार जहां तक जाना संभव है उतनी संख्यावाले समस्त गुणों से सम्पन्न आप हैं अर्थात् मेरी इच्छा पूर्ति आपसे ही संभव है क्योंकि आप भक्तवत्सल हैं। यहां पर अमरपुत्र प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

इत्युक्तवन्तं भगवान् वणिक्सुतं सुतं समभ्यर्थयमानमारात्।
वरं वरं ज्ञानिनमाह पुत्रं ददामि ते शोकभये व्रजेताम्।।२७।।

इस प्रकार कहते हुए पुत्र के लिए प्रार्थना करनेवाले वैश्यपुत्र सबला को भगवान् गोरक्षजी ने कहा कि तुम्हारे श्रेष्ठ एवं ज्ञानी पुत्र होगा; ऐसा वर मैं तुम्हें देता हूं, उस पुत्र को पाने से तुम्हारे समस्त शोक और भय दूर हो जायेंगे।

गुणयशोभिः सुवृद्धिकरः स्वयं स्वधिक[२]धर्ममतप्रचुरप्रभाम्।
सकलदिक्षु तनिष्यति ते सुतः सुतपरम्परया जगदीश्वरः[३]।।२८।।

अपने गुण और यश के कारण स्वयं लब्धप्रतिष्ठ, जगत् का स्वामी तुम्हारा पुत्र सब दिशाओं में धर्ममार्ग के प्रभाव का अत्यधिक विस्तार करेगा।

कमलकान्तकलाकमनीयको धवलधौतधराधरमण्डलः।
निखिलधामधरस्तपसां चयो यमिजनो विजनो जववानयम्।।२९।।

यह बालक कमल के समान कमनीय, योग की कला के कारण मनोहर, धव वृक्ष से धुली हुई पर्वत शृंखलाओं के समान शुभ्र (यशवाला), सम्पूर्ण तेजोराशि को धारण करनेवाला, तपस्याओं का भण्डार, संयमी एकान्त में रहनेवाला एवं सर्वत्र गतिवाला होगा।

परमपुण्यजनैरभिदर्शनो निगमयोगमतिर्गमने गतिः।
विनयशालिविनेयपरिवृतः सघनवान् घनवान् रवितेजसि।।३०।।

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद-प्रवृद्धिकरः स्वयं प्रचुर। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-बुधवरो विवरोज्ज्वलमानसः (प्रकाशित प्रति)

अत्यन्त पुण्यकारी लोगों द्वारा ही जिसके वास्तविक स्वरूप का दर्शन किया जा सकेगा, वह वेद और योगविद्या में रुचि लेनेवाला, आकाश में गतिवाला (गगनविहारी), नम्र शिष्यों से घिरा हुआ, गम्भीर चिन्तनवाला, घने बादल की छाया के समान लोगों को शीतलता प्रदान करनेवाला तथा सूर्य के समान तेजवाला होगा।

कलिजनोद्धृतिकारणकारणः त्रितयकालसमक्षविपत्क्षयः।
रविविधुप्रथितोर्मिमना भवश्चलदृशां विदृशां गतिसाक्षिकः[१]।।३१।।

वह पुत्र कलियुग के लोगों का उद्धार करने मे कारण बने हुओं का भी कारण, तीनों कालों का द्रष्टा, विपत्तियों का नाश (निराकरण) करनेवाला, सूर्य और चन्द्रमा की प्रसिद्ध किरणों के समान चित्तवाला अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा की किरणों के समान धवल (निर्मल) मनवाला, कल्याणकारी (भव), चञ्चल दृष्टिवालों की और दृष्टिहीनों की गति (कार्यों) का साक्षी होगा।

तस्मै श्रीनाथगोरक्षो वरं दत्त्वाऽत्यभीप्सितम्[२]।
अन्तर्दधौ सुवचनं[३] वदतस्तस्य सन्निधौ।।३२।।

उसे अभीष्ट वर देकर श्रीगोरक्षनाथ प्रिय वचन बोलते हुए उसके समीप (सामने) ही तिरोहित हो गए।

हृता मदीया बहुदुःखसंततिः स्वसन्ततिर्या गदिता सुसन्ततिः।
धर्मो मदीयो जनिरप्यकारि साफल्यसद्भाजनमादरेण।।३३।।

उन्हें अन्तर्हित देख हतप्रभ हो सबला कहने लगा कि गुरुदेव ने मुझे जो सुन्दर सन्तान होने का वर दिया है उससे मेरे समस्त दुःख दूर हो गए हैं और मेरा धर्म और जन्म भी सफल हो गया है।

इत्युक्त्वा सबला गेहं सबलो वचनाऽमृतैः।
निवृत्तो मध्यतोऽप्राप्य गन्तव्यं वणिगर्थितम्।।३४।।

इस प्रकार कहकर (गोरक्षजी के) वचनरूप अमृत से पुष्ट हुआ (फूला न समाता हुआ) व्यापार के लिए अन्यत्र अभीष्ट स्थान पर न जाकर बीच में से ही अपने घर लौट आया।

समागत्य गृहे भार्यां निजां वाक्यमुवाच सः।
श्रुत्वा सा मुमुदेऽत्यर्थं निजेहावरलब्धितः।।३५।।

---

१. २९, ३०, ३१ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं। २. पाठभेद-यथारुचि (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-निजं वाक्यं (प्रकाशित प्रति)

घर पर आकर उसने अपनी पत्नी को अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा, जिसे सुनकर वह अपने अभीष्ट वर की प्राप्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुई।

सा मे प्रियेणेह भवेन्नु गर्भो लब्धोऽथवा स्यात् स्वयमेव वेति।
विकल्पमाना श्रुतनाथवृत्ताप्यावर्षकालं सुषुवे न किञ्चित्।।३६।।
न वन्ध्यया दोहदवृत्तचर्या श्रद्धाप्यहायीश्वरवैभवेन।
पत्यौ निजे वा सुतसंजनिर्मे पत्युः स्वयं वेति विकल्पयन्त्या।।३७।।

जब एक वर्ष तक उसके कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, तब वह नारी श्रीनाथवाली घटना का स्मरण कर इस प्रकार वितर्क करने लगी कि ईश्वर के प्रभाव से मेरे प्रिय पति से मुझे गर्भ होगा अथवा स्वतः ही हो जायेगा। इतना होने पर भी उस वन्ध्या स्त्री ने गर्भिणी की इच्छा से प्राप्त आचार को नहीं छोड़ा अर्थात् सन्तानप्राप्ति में सन्देह नहीं किया।

गोरक्षनाथशिवस्य मनः स्वं प्रोचिवानीदृक्।
गर्भो रूपं नास्ते मम कस्मात्तत् करोम्यवैराग्यम्[1]।।३७।।

शिवस्वरूप गोरक्षजी अपने मन ही मन इस प्रकार कहने लगे कि मेरा गर्भ में जाना संभव नहीं है अर्थात् मैं जन्म-मरण के बन्धन से रहित हूं। फिर मैं किस कारण गर्भ में जाने के लिए अनुराग करता हूं।

बन्ध्या भार्या च तस्याऽऽस्ते तस्यामेव सुतो भवेत्।
एषा मूढा मतिर्वैश्ये व्यर्थं स्थैर्यमुपागता।।३८।।

उसकी स्त्री वन्ध्या (बांझ) है और फिर भी उसी में पुत्र उत्पन्न होगा, ऐसी मूढ बुद्धि उस वणिक् में व्यर्थ में ही दृढ़ हो गई है।

सिद्धिमार्गेण दानादिरुपायो नोदितो मया।
सुतो दत्तो न भैषज्यमुपादिष्टं मया तदा।।३९।।

मैंने उसे कोई दानादि उपाय भी नहीं बताया और न ही कोई ओषधि ही बताई अपितु सिद्धिमार्ग से ही मैंने उसको पुत्र दे दिया है। (फिर उस नारी के वन्ध्यापन को हटाकर उसके गर्भ में जाने की क्या आवश्यकता है जब सिद्धि से ही उसे पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी)।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। इसके समान भाववाला निम्न पद्य उपलब्ध होता है :-
अंशाशभावेन च गर्भवासः प्रजापतित्वेन च गर्भवासः।
कामोऽनलं कामयते मदीयो नात्रापि गोरक्षगुरुस्त्वचिन्तत्।।३८।।

दत्त्वा वरं न मिथ्यावाक् कार्या सा मादृशेन सः।
स्वसमापत्यदानार्थमंशं मे वित्तवान् सुतम्।।४०।।

अपने समान पुत्र देने का वर देकर अपने वचन को मिथ्या करना मुझ जैसे को शोभा नहीं देता और उसने मेरे ही अंश को पुत्र मान लिया है।

बालरूपं विधायैव गत्वा रैवारिजः स्वयम्।
तत्र तत्र प्रसिद्धः स्यां समयः पालितो भवेत्।।४१।।

अतः स्वयं बालरूप धारण करके वहां जा रैबारी का पुत्र कहलाऊं और सब जगह उसके पुत्र के रूप में प्रसिद्ध होऊं। ऐसा करने से मेरे सिद्धान्त की भी पालना हो जायेगी अर्थात् मैं झूठा भी नहीं कहलाऊंगा।

इत्येवं मायया तस्य वणिजः सुखहेतवे।
भक्तवत्सलतां तस्य दर्शयन् वाञ्छितार्थदः।।४२।।

इस प्रकार अपनी माया से उस व्यापारी के सुख की खातिर भक्तों के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए गोरक्षजी उसके अभिलषित फल को देनेवाले हुए।

त्रिलोकी वशगा यस्य तदानीं मायया कृता[१]।
मूर्तिर्निजा[२] मात्रया च मात्राभिर्निर्मिता स्वयम्[३]।।४३।।

जिसकी (गोरक्षजी) योगमाया से तीनों लोक वश में हो जाते हैं ऐसे उसने पंचतन्मात्राओं से बनी हुई अपनी मूर्ति मात्रा (माया) के द्वारा धारण की अर्थात् स्वयं को (बालरूप में) अपने ही अंश से बनाया।

तेजस्विनी बालरूपा तद्ग्रामसविधे तदा।
वने वटसमीपस्थाऽकारि मूर्तिर्मनोरमा।।४४।।

तब उन्होंने उस ग्राम के निकट ही वन में वटवृक्ष के समीप मनोरम और तेजस्वी बालक का शरीर बना लिया।

महोत्सवोऽरण्यशिवार्चनादिरासीत्तदा तत्र तदीयपूस्तः।
समीपगस्तेन समागतानां सङ्घोऽजनि स्वैरविहारहेतोः।।४५।।

---

१. पाठभेद-व्यधायि योगमायया।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-तदा।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-निर्मायि मात्रया स्वयम्।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

उसी समय वहां उस ग्राम के समीप ही वन में शिव की पूजादि के निमित्त महोत्सव का आयोजन हो रहा था। इस कारण उसमें स्वच्छन्द घूमने की इच्छा से आए हुए मनुष्यों की भारी भीड़ थी।

समं मिलन्तो बहुधा चलन्तः संगीतमागातुमुदाहरन्तः।
आलापजालानि सरागतालान्यामूर्च्छयन्तोऽप्युपवीणयन्तः।।४६।।
तदैकवर्षीयवयस्कमाराद्बालं निरैक्षन्नपि भीतिमन्तः।
पथि स्वहर्षोद्विकचस्वरेण रुदन्तमीषद्धसिताब्जनेत्रम्।।४७।।

बहुत से एक साथ मिलकर जाते हुए, संगीत को गाने के लिए कहते हुए, राग तालादि के साथ आलापों के समूह को आरोह-अवरोह के क्रम से गाते हुए तथा वीणा बजाते हुए राहगीरों ने रास्ते में पड़े हुए हर्षमिश्रित स्वर से रोते हुए, अर्धविकसित कमल के समान नेत्रवाले लगभग एक वर्ष के बालक को पास जाकर डरते-डरते देखा।

मनोहरं सुन्दरसौमनस्यं[1] सर्वाङ्गसन्दर्शनरोमहर्षणम्।
तन्वानमीशं ददृशुस्तदानीं सुधारसास्वादसहोदरं परम्।।४८।।

तब मनोहारी, सुन्दर प्रसन्न उसके सभी अंगों को देखने से रोमांच होता था, ऐसे शरीरधारी ईश्वर को ही बालरूप में देखा मानो भरपेट अमृत का ही उत्कृष्ट आस्वादन कर लिया हो अर्थात् उस बालक के दर्शन से ऐसे लगता था मानो भगवान् के ही दर्शन कर लिए हों और लोगों की उसी प्रकार तृप्ति हो गई जैसे भरपेट अमृतरस का पान कर लिया हो।

तौ दम्पती प्राप्य मुदा स्वरेण विलोक्य मायां निजनाथजाताम्।
सौभाग्यसाफल्यविभागवेलां तदोचतुः स्त्री[2] जगृहे च बालम्।।४९।।

उन दोनों पति-पत्नी (दम्पती) ने उस बालक को पाकर अपने सौभाग्य के सफल समय को प्राप्त होकर अत्यन्त प्रसन्नता से युक्त स्वर से 'यह मेरे नाथजी की माया से उत्पन्न है' ऐसा कहा और स्त्री ने बालक को तुरन्त उठा लिया।

परं निजश्रीगुरुणा समुक्तं स्वबालसत्वं न पुरा स्वमेवम्।
स्वरूपतो वृत्तत एव वेति व्यस्मारिषाता च निजत्वबुद्धी।।५०।।

परन्तु अपने गुरुदेव ने इस प्रकार अपना बालरूप बनाना पहले उनसे नहीं कहा था इसलिए स्वरूप से अथवा वृत्त (आचार-विचार) से यह बालक मेरा है; इस

---

१. पाठभेद-हरिणमास्यदर्शनं...।।४९।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-सा।।५०।। (प्रकाशित प्रति)

निजत्व के ज्ञान को वे दोनों भूल गए अर्थात् उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं रहा कि यह बालक हमारा है अथवा किसी दूसरे का। उन्होंने अपने बालक के समान स्नेह से उसे गोद में उठा लिया।

सबलास्तु तदा मनसोऽबलतः किल शङ्कितवानिदमाबलिकम्।
किमु काऽप्यबला तृषिता नु गता जलमाविलतां गतया तृषया।।५१।।

तब सबला ने तो मानसिक दुर्बलता के कारण यह दुर्बल (बच्चों जैसी) आशंका की कि क्या कोई स्त्री अत्यन्त प्यास के कारण इसे लिटाकर जल की खोज में गई है?

क्षुधया क्षुधिता फलमुल्लसितं रसितुं लसितं किमु बालया।
वनदेवतया बत केन समागतमत्र रुदद्वनबालतया।।५२।।

क्या कोई नारी भूख से व्याकुल हो इसे छोड़ वन में सुन्दर एवं स्वादिष्ट फल लेने गई है अथवा कोई वनदेवता बालरूप बनाकर हमारे सम्मुख विराजमान है। बड़ा कष्ट है। यह रोता हुआ जंगली बालक कहां से यहां आया है अथवा इसे कौन लाया है?

न मार्गणे मार्गगमार्गलब्धिः कुतो नरस्यापि च तत्र लब्धिः।
न नरवादो बहुधा प्रवादे खभेदिशब्दे समुदीर्यमाणे।।५३।।

खोजने पर भी मार्ग में जानेवाले का नामोनिशान भी किसी तरफ नहीं मिला, मनुष्य का तो कहना ही क्या है? गगनभेदी (बहुत जोर की) आवाज लगाने पर भी किसी ओर से भी आवाज का उत्तर नहीं मिला।

समेतु बालस्य जिघृक्षयाऽत्र को बाललीलो गतबाललीलः।
बालस्य को नाम पिताऽथ माता केत्युक्तवान् व्याप्तगिरा तदानीम्।।५४।।

यह बालक ही जिसकी क्रीडा है अर्थात् इस बालक से लाड़-प्यार करनेवाला (इसका अभिभावक) कौन है जो इसको छोड़कर गया हुआ है, वह इसको ले जाना चाहे तो आ जावे। इसके अतिरिक्त कौन इसके माता-पिता हैं-इस प्रकार उस समय सबला ने चारों तरफ खूब जोर-जोर से आवाज लगाई।

मुहुर्मुहुस्तेन तथाकृतेन कृतेन[1] यातेन सहैव हैवम्।
नायायि मोहाच्च मुधैव जातं[2] जनस्य कस्यापि वचो न लब्धम्[3]।।५५।।

१. पाठभेद-तेनाथ....।।५६।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-बभ्रमे।।५६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-रीयते।।५६।। (प्रकाशित प्रति)

कहीं गए हुए उस बालक के अभिभावक को बुलाने के लिए सबला ने बार-बार वैसा ही किया अर्थात् बार-बार जोर से आवाज लगाई कि जिसका बालक है वह आकर ले जावे परन्तु जब कोई नहीं आया और किसी भी मनुष्य का (किसी ओर से) शब्द भी नहीं सुनाई पड़ा, तब वह व्यर्थ ही मोह से भ्रान्त होगया।

जनं जनं पृच्छत एव मोहात्[१] तवाऽयमास्तेऽर्भकलीलाजिष्णुः।
न चोत्तरं प्राप्नुत एव तत्र गृहे समेतौ नगरे स्वके च[२]।।५६।।

तब वे दोनों मोहपरायण होकर प्रत्येक व्यक्ति से 'बाललीला करनेवाला यह मनोहर बालक तुम्हारा है ?' यह पूछते हुए अपने नगर में आ गए परन्तु किसी से कुछ भी उत्तर नहीं मिला।

तन्मार्गवल्लोकमनीषयापि नाज्ञायि जिज्ञासुतया वचोभिः।
प्रश्नोत्तरैर्नैव च कस्यचित्स बालो नरस्यास्य विबुध्यते स्म।।५७।।

मार्ग में चलते हुए लोगों से पूछने पर भी पता नहीं चल सका कि यह किसका बालक है और प्रश्नोत्तर वचनों से भी मालूम नहीं हो सका कि यह इस (अमुक) व्यक्ति का पुत्र है।

न ग्रामबालो न नरस्य बालो बालं प्रहीत्रोर्भवतोऽथ बालः।
प्राप्तो भवद्भ्यां भवदर्ह एव[३] नाऽन्यस्य कस्यापि स एष बालः।।५८।।

यह बालक न तो गांव का है तथा न ही किसी अन्य व्यक्ति का है अपितु जंगल से उठाकर लानेवाले आपका ही है क्योंकि तुम्हें ही यह मिला है इसीलिए आप ही इसे लेने के अधिकारी है, यह अन्य किसी का नहीं है।

इत्युक्त्वाप्यर्पयामासुः प्रति स्वं पुरवासिनः।
नोरीचक्रुः स्वकीयत्वं तदीयं जगदुस्तदा[४]।।५९।।

ऐसा कहकर सारे नगरवासियों ने वह बालक उन्हीं को दे दिया, स्वयं स्वीकार नहीं किया।

सबला मनसः समुपात्तबलः स च बालसमागमहर्षबलः।
निजसद्गुरुदत्तसबालबलो बलिहारिपदं वदति स्म बलात्।।६०।।

---

१. पाठभेद-मृच्छतः...... ।।५७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-आद्यसाक्षिता क्षितावगातां नगरे नगादौ।।५७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-बालो...... ।।५९।। (प्रकाशित प्रति)
४ प्रकाशित प्रति में यह पद्य ६२वें पद्य के पश्चात् लिखा हुआ है।

बालक के मिल जाने से प्रसन्नता के कारण मानसिक शक्ति को प्राप्त किए हुए व अपने गुरु द्वारा दिए गए बालक की प्राप्ति से जिसका पुत्र बल बढ़ गया है ऐसे उसने (सबला) बड़े जोर से धन्यवाद (मैं तुझ पर बलिहारी जाऊँ) किया तथा स्वयं को भी धन्य समझा।

अबला सबलाश्च समप्रियतारसमुद्गिरत: सरसैर्वचनै:।
कुसतो हृदि पर्चनमास्यमलं मुहुरर्चयत: प्रियचुम्बनकै:[1] ।।६१।।

सबला और उसकी पत्नी (अबला) दोनों ही (उस बालक के प्रति) समान प्रेमरस को सरस वचनों द्वारा प्रकट करने लगे और उस बालक का हृदय से आलिंगन (कुसत:-कुस्) करने लगे तथा बार-बार उसके मुख को चूमने लगे।

सबलाऽबलयेति मनश्च गतं गतवंशसवंशपदं विपदाम्।
परपारपदं किल लब्धमिदं भगवत्कृपया गुरुवाक्यपदै:।। ६२।।

सबला की अबला (नारी) का मन जो वंश उच्छेद के भय रूप विपदा के कारण टूट गया था, वह प्रफुल्लित हो उठा और नष्ट होता हुआ वंश भी फिर से प्रचलित हो गया तथा नि:सन्देह समस्त विपत्तियों से वह पार हो गये। यह सब उन्होंने भगवत्कृपा व गुरुवचनों से ही पा लिया।

दिष्ट्या भाग्यं सुसौभाग्यं[2] परिपूर्णमनोरथा:।
धन्य ईशो धन्यभाग्यं[3] जन्म धन्यमुदाहृतम्।।६३।।

पूर्ण मनोरथ हो उन्होंने यह कहा कि सौभाग्य से हमारा बहुत अच्छा भाग्य है (जो यह बालक हमें मिला) परमात्मा को धन्यवाद है, हमारा जन्म भी धन्य है।

धन्यकर्तर्वंशमेतं कृतवाञ्छुभसन्ततम्[4]।
एवं[5] वदन्ती प्रेमास्यं चुम्बयन्ती[6] मुहुर्मुहु:।।६४।।

हे धन्यकारक बालक! तुमने इस कुल को शुभसन्तति से युक्त बना दिया; इस प्रकार कहती हुई प्रेम से (बालक के) मुख को बार-बार चूमने लगी।

मेने न तन्वा हृषा तृषा च क्षुधा न तस्या न शरीरदृष्टि:।
विवस्त्रता वापि सवस्त्रता वा प्रतीयते बालकतन्मयत्वम्।।६५।।

---

१. पाठभेद-प्रियलालनकै:। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-महद्भाग्यं ...... ।।६४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-देशो ...... ।।६४।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-विधातर्धन्यरूपोऽसि वंशमेतं ततान यत्।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-भवांन् ...... ।।६५।। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-योजयन्ती ...... ।।६५।। (प्रकाशित प्रति)

बच्चे में तन्मय होने के कारण उसने शरीर से प्रसन्नता, प्यास और भूख कुछ भी नहीं माना और न ही उसका अपने शरीर के प्रति कुछ ध्यान रहा कि वह सवस्त्र है अथवा निर्वस्त्र है अर्थात् बालक को पाकर वह सबलास्त्री उसके पालन-पोषण में इतनी लीन हो गई कि उसे न अपनी खुशी, न प्यास और न ही भूख का ख्याल था। यहां तक कि उसे इस बात का भी भान नहीं रहा कि शरीर से वस्त्र खिसक गया अथवा शरीर पर वस्त्र है।

ततः समेत्य गेहे स्वे कुर्वाते जन्म कर्म यत्[१]।
पुत्रजन्मोत्सवानन्दसन्दोहहर्षतत्परौ[२]।।६६।।

फिर अपने घर पहुंचकर पुत्रजन्मोत्सव से उत्पन्न आनन्दराशि की पूर्ति हो जाने से आनन्द में मग्न होकर उन्होंने अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार किया।

गोधनैस्तर्पिता विप्रा भिक्षुका गीतगायकाः[३]।
भण्डाद्याश्च तदा[४] वाद्यैरामोद्यन्ते स्म मोदतः।। ६७।।

तब गौ तथा धन से सन्तुष्ट किए गए ब्राह्मण, भिक्षुक, गीत गानेवाले और भाट-चारणादि सबने बड़ी खुशी से बाजे बजा-बजाकर आनन्द मनाया।

तदैधमानबालस्य समागतजनैः सह।
शनैः शनैः परिचयः सम्बभूव पितुः सुखम्[५]।। ६८।।

तब बढ़ते हुए उस बालक का आनेवाले लोगों के साथ धीरे-धीरे परिचय होने लगा, उससे पिता को बहुत सुख हुआ।

वैक्रमे वेदषट्सप्तभूमिते वत्सरे शुभे।
मस्तनाथावतारोऽभूत्सर्वेषां हितकारकः।।६९।।

१७६४ शुभ विक्रम सम्वत् में इस भूतल पर सभी प्राणियों का हित करनेवाला मस्तनाथ अवतार हुआ अर्थात् गोरक्षजी ने सभी जीवों का कल्याण करने के लिए मस्तनाथजी के रूप में अवतार लिया।

इति श्रीमस्तनाथचरिते श्रीमस्तनाथावतारविषयविशिष्टो नाम द्वितीयः सर्गः[६]।

---

१. पाठभेद-तौ ।।६७।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-निर्भरौ ।।६७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-गायकाः परे ।।६८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-झल्ला मल्ला नटा ।।६८।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-परिचयः पितुः सुखः सम्बभूव शनैः शनैः।।६९।। (प्रकाशित प्रति)
५. **श्रीहरदत्तशास्त्री** द्वारा रचित चरित में यह प्रथम सर्ग है।

तृतीयः सर्गः

बालचरित्रादिप्रकरणम्

गोगोपसद्बालसखं मुरारिं गोरक्षनाथादिविभूतिभूषम्।
शिवं जगच्चित्रपटं परेशं गोरक्षसद्भावकरं च वन्दे।।१।।

गायों के रक्षक, सज्जन, बाल ग्वालों के बालसखा, कृष्णस्वरूप गोरक्षनाथ आदि विभूतियों से सुशोभित, संसाररूपी वस्त्र को चित्र-विचित्र रूप से बुननेवाले, सर्वोत्तम स्वामी, अच्छे भावों को उत्पन्न करनेवाले गोरक्षस्वरूप शिव की वन्दना करता हूं।

'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं :- सूर्य, नारायण, इन्दु (चन्द्रमा), क्षिति (पृथ्वी), क्षितिप (राजा), इन्द्रिय, धेनु, धाम (तेज अथवा स्थान), वाणी, वज्र, रश्मि, रसना (जिह्वा), आकाश, दिशा, इन्द्र इत्यादि। इस प्रकार 'गोरक्ष' शब्द का प्रकरण को देखकर जो उचित हो, वह अर्थ ले लेना चाहिए। किसी एक निराकार शक्ति ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नियन्त्रण में किया हुआ है, उसे ही यहां 'परेश' शब्द से अभिहित किया गया है। वही शिव, गोरक्ष आदि नाना रूपों में जगत् में समय-समय पर प्रकट हुआ है।

त्रिपादं निराकारवैधर्म्यगुण्यं सुनिष्पन्दमाविष्कृतेर्निर्विकल्पम्।
समस्पन्दमीशैकपादं स्वनन्तस्वकल्याणगुण्यं नुमः स्वादिनाथम्।।२।।

तीन पैरवाले, निराकार होते हुए भी परस्पर विपरीत गुणों से युक्त, अच्छी गतिवाले, निर्विकल्प स्वरूप को प्रकट करनेवाले, गतिशील के समान होते हुए भी एकपाद वाले, अपने अनन्त कल्याणमय गुणों से युक्त आदिनाथ (परमेश्वर) को नमस्कार है।

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः।
गोरक्षो गुणमाविश्य कुरुते विविधां विधाम्।।३।।

निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त, प्रकृति से भी परे विद्यमान भगवान् गोरक्ष निःसन्देह सत्त्व आदि गुणों में प्रवेश करके अनेक प्रकार की सृष्टि का विधान करते हैं।

तदा मस्तेति विख्यातः पितृभ्यां ख्यातयाऽख्यया।
तेन बाल्ये कृतां लीलां लोकानन्दकरीं ब्रुवे।।४।।

तब वह बालक माता-पिता के द्वारा कहे गये 'मस्त' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्हीं के द्वारा बचपन में की गई लोगों को आनन्द देनेवाली लीला का मैं वर्णन करता हूं।

पौगण्डतां गते बाले पितृभ्यां सुविचारितम्।
क्रीडनासक्तबुद्ध्याऽयं[1] गृहकार्ये पराङ्मुखः।।५।।

बालक की दस वर्ष की अवस्था हो जाने पर माता-पिता ने विचार किया कि यह बालक खेल में लगा रहता है और घर के कार्यों के प्रति उदासीन है अर्थात् घर के काम-काज में इसकी रुचि बिल्कुल नहीं है।

यदा यत्कर्त्तुमायाति तदा तत्कुरुतेऽर्भकः।
अवधूतपदस्थाता[2] भवेदत्र न संशयः।।६।।

मेरा यह बालक जिस समय जिस कार्य को करने का विचार कर लेता है उसी समय उसे कर डालता है। यह एक दिन संन्यासी के पद पर आसीन होगा, इस विषय में सन्देह नहीं है।

सर्वज्ञसिद्धार्थसमस्य तस्य विज्ञानहानाद् भयमाश्रितौ तौ।
स्वस्यापि वैरित्वविशङ्कनेन नापाठि पुत्रो यदि पालकौ किम्।।७।।

सर्वज्ञ, बुद्ध के समान उसके उन दोनों (माता-पिता) को आशंका रहती थी कि इस बालक के अध्ययन का अभाव है क्योंकि जो बालक को नहीं पढ़ाते वे माता-पिता शत्रु ही होते हैं और पालक कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

न ग्राममात्रे बुधवेदवादः शास्त्रार्थसत्कौशलता कुतोऽस्य।
कलासु कश्चिन्न विचक्षणोऽतः कथं वयो यापयतात्सुखेन।।८।।

सारे गांव में वेदशास्त्र का अध्ययन करनेवाला कोई पंडित (विद्वान्) नहीं है फिर इसमें शास्त्रार्थ की उत्तम कुशलता कहां से आयेगी और न ही कोई कलाओं में प्रवीण व्यक्ति है तो यह अपनी आयु को सुखपूर्वक कैसे व्यतीत करेगा।

---

१. पाठभेद-क्रीडायां प्रसितो बालो ..... ।।५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-अवधूतपदे स्थाता। (प्रकाशित प्रति)

गोपालबालस्य च तस्य युक्त्या गोपालसंघेन च सौरभेय्याः।
चर्या विचार्य्येत्थमनाकुलेन समूहतुः कार्यपदं हि तस्य।।९।।

अतः गोपाल के बालक उसके लिए यह उचित है कि गोपालों के साथ गायों की सेवा किया करे; ऐसा विचार कर उसके माता-पिता ने उसके योग्य काम की खोज कर ली।

क्रीडा सुतानां सहजः स्वभावो मित्रैरमित्रैः शुभमार्गगानाम्।
ततश्चरित्रैरुपदेशनीया बालाः सुयोक्तोच्चपदाभिलाषैः।।१०।।

पुत्रों का मित्र अथवा शत्रुओं के साथ खेलना सहज स्वभाव होता है परन्तु अच्छे मार्ग पर चलनेवाले सज्जनों के उच्च पद पर पहुंचानेवाले चरित्रों से बालकों को उपदेश देना चाहिए।

समाहूय पिता पुत्रमुवाच सान्त्वनेन तम्[1]।
गाश्चारय यदीच्छुस्त्वं कूर्दने गोपकाश्रितः।।११।।

ऐसा विचार कर पिता ने पुत्र को बुलाकर सांत्वना देते हुए कहा कि यदि तू ग्वालों के साथ रहकर ही खेलना चाहता है तो उनके साथ गायों को चराया करो।

सुतो न तातस्य वचोऽप्रमाणो नरो न यः पालयते मुदा गाः।
स्वदुग्धदानाज्जनपालिकातः सुतनिर्विशेषा इति मानयँश्च।।१२।।

वह वस्तुतः पुत्र कहंलाने का अधिकारी नहीं है जो अपने पिता का वचन नहीं मानता, इसी तरह अपने दूध के देने से लोगों का पालन करने के कारण गाएं अपने **पुत्रों के समान ही हैं** (अतः वे संरक्षणीय हैं) इस प्रकार जानता हुआ भी जो प्रसन्नता से गायों की सेवा नहीं करता वह मनुष्य नहीं है। भाव यह है कि गाय अपने दूध से सब मनुष्यों का पोषण करती है। जो व्यक्ति इस बात को जानता है फिर भी उनकी उचित देखभाल नहीं करता और उनसे दूध भी ग्रहण कर लेता है वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी ही नहीं है।

तच्छ्रुत्वा सह गोपेन निजेन निजगोऽनुगः।
प्रातरेव बभूवेशो मस्तो गोपालरूपधृक्।।१३।।

---

१. पाठभेद-सान्त्वयँस्तथा.............।।११।। (प्रकाशित प्रति)

उस बात को सुनकर अगले दिन सवेरे ही ईश मस्त ग्वाले का रूप धारण करके अपनी उमर के ग्वाल बालकों के साथ अपनी गायों के पीछे-पीछे चलने लगा।

स तत्र यान्तीषु सुधावनेहो स्थित: स्थितासूत्पततीषु[1] चुकूर्दे।
प्रसन्नचित्तोऽनुकरोति गा: स्वा वने वने मञ्जुगृणँश्च वाच:[2] ।।१४।।

वह मस्त बालक जंगल में जब गाएं चलतीं तो चलने लग जाता, जब वे बैठ जातीं तो वह बैठ जाता और जब वे आनन्दपूर्वक उछलने लगती तो वह भी कूदने लग जाता था। इस प्रकार वह एक वन से दूसरे वन में मीठी-मीठी किलकारियां मारता हुआ गायों की सेवा करने लगा।

इत्थं दि ा गतरागभागद्वेषस्तदा चारयति स्म नित्यम्।
प्रभुज्य भोज्यं कवलं मुखे स्वे समाददानश्च चचाल पृष्ठे।।१५।।

इस प्रकार राग-द्वेष रहित हुआ वह मस्त नित्य दिन भर गाएं चराता और ग्रासभर भोजन खाकर बाकी अपने मुख में लिए ही गायों के पीछे-पीछे चल पड़ता था अर्थात् जब गाएं घास खाती थीं तो वह भी अपना भोजन कर लेता था परन्तु जब वे चलने लगती थीं तो वह भी खाता-खाता ही उनके पीछे चलने लगता था।

प्रत्यहं सह शिक्येन वेत्रेण च समं मुदा।
ययौ चारयितुं स गा: सायमेव समाययौ।।१६।।

वह प्रतिदिन शिक्य[3] (छींका) और लाठी के साथ प्रसन्नता से गायों को चराने के लिए वन में गया और सायंकाल को लौट आया।

कदाचिदासाद्य वनं स गोपो गाश्चारयन् क्वापि तरो: समीपे।
प्रच्छायरम्यस्य ददर्श भुक्त्वा पीत्वा च चर्वन्ति सुचर्वितं ता:।।१७।।

किसी समय वन में पहुंचकर गाएं चराते हुए उस ग्वाले मस्त ने चरने के बाद और पानी पीकर किसी वृक्ष की गहरी एवं शीतल छाया में जुगाली करती हुई गायों को देखा।

प्रमोदमाना: स्वालोक्य ता बालानाजुहाव स:।
आदिदेशेति गोसेवा रक्षा कार्य्या दिलीपवत्।।१८।।

---

१. पाठभेद-पतित:। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-मञ्जुतया च वाचया (प्रकाशित प्रति)
३. बहंगी के दोनों ओर बंधा हुआ रस्सी का जाल, जिस पर भार रखते हैं।

हर्षित हुई (सुखपूर्वक बैठी हुई) उन गायों को भली प्रकार देखकर उसने बालकों को पुकारा और आदेश दिया कि तुम्हें दिलीप[१] राजा की भांति गायों की सेवा करनी चाहिए।

भाविविद्भिर्जन्मनीह परत्रान्यत्र जन्मनि।
सर्वथा हितकृद् वेदेऽथर्वण्यपि च कीर्तितम्[२] ।।१९।।

त्रिकालों का ज्ञान रखनेवाले विद्वानों (महर्षियों) के द्वारा कहा गया है कि गाय की सेवा इस जन्म तथा इस जन्म के बाद (परलोक) और दूसरे जन्म में भी सब प्रकार से हितकर है और अथर्ववेद में भी गो सेवा का महत्त्व बताया गया है।

दुग्धं दधि च तक्रं च नवनीतं घृतं यतः।
पायसानां पदार्थानां मिष्टानां जननीह गौः।। २०।।

इस संसार में दूध, दही, लस्सी (छाछ), मक्खन, घी तथा दूध से बननेवाले मीठे पदार्थों की जननी गौ है, अतः उसकी सेवा करनी चाहिए।

शरीरपौष्ट्यं मस्तिष्कवर्धनं वीर्यसाधनम्।
सर्वत्र पथ्यं यत्क्षीरं योगिबालसुखप्रदम्।।२१।।

गौ का दूध शरीर को पुष्ट करनेवाला, स्मरणशक्ति बढ़ानेवाला और वीर्य का उत्तम साधन है। विशेषकर योगी और बालकों के लिए तो अत्यन्त सुखदायी होता है तथा प्रत्येक अवस्था में हितकारी एवं सुपाच्य होता है।

पाचनं दीपनं पुष्टं[३] लघु सर्वहितं मधु।
पीयते मरणान्तं यद् धात्री गौर्मातुरुत्तमा।।२२।।

जिसका दूध सुपाच्य, जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, पुष्ट करनेवाला, सबके लिए हितकारी एवं मधुर होता है और जो मृत्युपर्यन्त पीया जाता है; ऐसी सबका भरण-पोषण करनेवाली गाय, माता से भी उत्तम है।

---

१. रघुवंशी राजा दिलीप ने एक बार स्वर्ग से लौटते हुए अपनी ऋतुस्नाता पत्नी के ध्यान में शीघ्रता के कारण कामधेनु को प्रणाम नहीं किया जिस कारण उनके सन्तान नहीं हुई। बाद में कुलगुरु वसिष्ठ ऋषि के आदेशानुसार राजा दिलीप ने सन्तान की कामना से कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा की। जब गाय बैठती थी तो राजा बैठ जाता था, जब वह भोजन करती थी तभी वह भोजन करता था। इस प्रकार राजा ने छाया की भांति उस गाय की सेवा की थी।

२. पाठभेद-भाषिता। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-शुद्धम्। (प्रकाशित प्रति)

सौरभेय्या भारवाहा रथवाहा उदीरिताः।
गोधूमादिपेक्षणे च नियुज्यन्ते कृषौ तथा[१]।।२३।।

गाय की सन्तति भार वहन करनेवाली और रथ वहन करनेवाली कही गई है। गेहू आदि के पीसने में तथा कृषि में लगाये जाते हैं अर्थात् बैल आटा पीसने व खेती के काम आते हैं।

गोपयो यज्ञसिद्ध्यै स्याद् यज्ञाद् धर्मस्य संस्थितिः।
धर्मश्च दर्शनात्तस्या रजसा पातकक्षयः।।२४।।

गौ के दूध से यज्ञ की सिद्धि होती है, यज्ञ से धर्म की संस्थिति है। यहां तक कि गौ के दर्शनमात्र से ही धर्म होता है और उसकी धूलि से सब पापों का नाश हो जाता है।

प्रायश्चित्तेषु दानं[२] सुरभीणां दुरितक्षये।
नियुक्तं शास्त्रकृद्भि[३]श्च पुण्याय यशसे सुखम्[४]।।२५।।

शास्त्रकारों के द्वारा पाप का नाश करने के लिए प्रायश्चित्तों में गायों के दान का विधान किया गया है तथा पुण्य और यश के लिए भी गाय का दान सुखदायक बताया गया है।

माता जन्मप्रदा या सा[५] शिशुस्तन्यादतोऽधिका।
वर्षद्वयं हिता माता[६] सुरभिर्जीवनावधि।।२६।।

जो माता जन्म देनेवाली है वह शिशु को अपना दूध पिलाने के कारण ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानी गई है जबकि गौ माता उससे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि माता तो दो वर्ष दूध पिलाती है और गाय जीवनपर्यन्त दूध पिलाती है अर्थात् माता जन्म देनेवाली है परन्तु गाय अपने दूध से बालक का पोषण करने के कारण माता से अधिक महत्त्वपूर्ण है और वह जीवनपर्यन्त किसी न किसी रूप में मानव की सेवा करती रहती है।

भूम्यादिलोकाः सुतलातलाश्च ते साध्याः प्रसिद्धा महनीयमूर्त्तयः।
विभूतयो भास्करचन्द्रतारका वसन्ति गोऽङ्गेषु समग्रदेवताः।।२७।।

---

१. अनड्वाहो नियुज्यन्ते कृषिकर्मणि शर्मणि। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-'दानं' से पहले 'यद्' शब्द है। (प्रकाशित प्रति)
३. शास्त्रकारैश्च। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-यशः। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-माता जन्मप्रदा प्रोक्ता। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-एषा सर्वसुखा ज्ञेया। (प्रकाशित प्रति)

पृथ्वी आदि लोक, भूमि के नीचे के सात लोक और पाताल, वे जगत्प्रसिद्ध महान् आकारवाले साध्यदेव, सूर्य, चन्द्रमा और तारे आदि विभूतियां (जो विभूतियोग भगवान् ने गीता में दिखाया था) और समग्र देवता गाय के अंगों में निवास करते हैं।

बाल: क्लान्त: सुरो रोगी राजा योगी किमिच्छति।
पय: कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्[1]।।२८।।

बालक, थका हुआ, देवता, रोगी, राजा और योगी क्या चाहता है ? दूध, जल, अमृत, जीवन, ब्रह्माण्ड, वन अर्थात् बालक दूध की कामना करता है, थका हुआ जल (कीलाल), देवता अमृत, रोगी जीवन, राजा ब्रह्माण्ड और योगी वन की कामना करता है।

एवं श्रुत्वा च ते बाला: शशंसुर्मस्तनाथकम्।
ततः प्रभृति धात्रीव गोरक्षेति मतं हि तैः।।२९।।

और इस प्रकार सुनकर उन बालकों ने मस्त की प्रशंसा की और वे उस दिन से माता की तरह गोसेवा को मानने लगे।

कदाचिद् ग्रामबालास्ते सखाय: पूर्वमोदिता:।
समाचख्यु: समागत्य प्रेम्णा ये पूर्वलालिता:।।३०।।

किसी समय ग्राम के वे बालक मित्र जिनको उसने (मस्त) पहले प्रसन्न किया था और जिनके साथ प्रेम से खेले थे; वे समीप आकर प्रेम से कहने लगे।

तात ! त्वं गोपतां यातो वनमालिन् ! वदाम किम् ?।
विस्मृतानि स्वमित्राणि वयं नु भवता कुत: ?।।३१।।

हे तात ! हे वनमाली ! तुम ग्वाल (गायों के स्वामी अथवा रक्षक) बन गए हो। हम आपको क्या कहें ? आपने हम मित्रों को क्यों भुला दिया ?[2]।

---

१. २७ एवं २८ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. यहां पर बालकों ने मस्तनाथजी को साक्षात् गायों का रक्षक श्रीकृष्ण मान लिया है। श्रीकृष्ण ही भगवान् विष्णु के चमत्कारी अवतार हुए हैं। मस्तनाथजी भी बचपन से ही चमत्कार दिखाने लग गए थे। बालकों के कहने का भाव यह है कि ऐसे चमत्कारी अवतरित साक्षात् मूर्तिमान् भगवान् के अतिरिक्त हम और किसकी शरण में जाएं अर्थात् हमारे लिए और कोई शरण्य है ही नहीं। यहां पर इस कथन से बालकों की मस्त बालक के प्रति प्रगाढ़ भक्ति प्रदर्शित होती है।

प्रियप्रलापैर्बहुलालनैः स्वैरालिङ्गनैर्मङ्गलगायनैः स्वैः।
यथोचितैर्बालकचेष्टितैश्च सम्मानिता वीतभयाः स्वलीलाः।।३२।।

आपने निडर होकर अपने मधुर वचनों से, अनेक प्रकार के लाड-प्यार से, आलिंगनों से, मांगलिक गीतों से और बचपन की चेष्टाओं से भय का परित्याग करके अपनी लीलाओं को दिखाया है।

विना तु भवता तात ! शून्यमाभाति खेलनम्।
बुधेन भवता हीना ब्रूहि कुर्मः किमाश्रिताः।। ३३।।

हे मित्र ! आपके बिना तो हमें सब खेल सूने से लगते हैं। अतः आप ही बतलाइए कि बुद्धिमान् के सिवाय हम किसका सहारा लें और क्या करें ?

सम्माननाय सर्वेषां समानद्वयरूपतः।
भेदाऽभेदौ विरुद्धौ न नासौ संश्रितवान् बुधः।।३४।।

सभी को आदर देने के लिए उस ज्ञानी ने परस्पर विपरीत भेद और अभेद रूप से स्वयं दो प्रकार से समान रूप का आश्रय लिया और नहीं भी लिया अर्थात् एक समान दो रूप धारण करके एक से गौ चराने गये और दूसरे उसी तरह के रूप से बालकों के साथ गांव में खेलने लगे। वे ऐसे स्वरूप को भी धारण कर सकते थे क्योंकि वे बालयोगी थे।

कदाचित् गाः समादाय प्रातर्यातो वनं पुनः।
समायाति स्म बालेषु क्रीडनाय मुदान्वितः[१]।।३५।।

तब वह किसी समय गायों को लेकर प्रातः ही वन में गया और फिर खुशी से बच्चों में खेलने के लिए गांव में भी आ गया।

पित्रा[२] दृष्टो मुहु[३]र्बालैः क्रीडँस्तत्र विचारितम्।
नैष गाश्चारयत्येवं क्रीडाप्रियतया सदा[४]।।३६।।

गांव में बालकों के साथ खेलते हुए उसे देखा तो उन्होंने सोचा कि यह क्या गाएं चराता होगा क्योंकि इसे तो हमेशा खेलना ही भाता है।

---

१. पाठभेद-मुदा तदा। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-पिता। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-पुनः। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-अनया। (प्रकाशित प्रति)

अदर्शिषातां किल बालकौ द्वौ नादर्शि भिन्नात्मतया स मस्तः ।
अधारिषातां चरणौ स्वकीये गोरक्षनाथस्य पुरा स्तुतस्य[1] ।।३७।।

उस दम्पती के द्वारा निःसन्देह दो बालक देखे गए परन्तु भिन्न आत्मा के कारण वह मस्त नहीं देखा गया अर्थात् वह मस्त बालक उन दो बालकों से अलग रूप का नहीं था बल्कि उन जैसा ही था। मानो पहले स्तुति किए गए गोरक्षजी के दो चरणों ने ही वे दो रूप धारण किए थे।

परन्तु तात दृष्टोऽपि गोपेनाऽदर्शि तद्वने।
कदाचिद्भिन्नरूपेण ह्येकरूपेण कर्हिचित् ।।३८।।

परन्तु पिता ने उसे कभी एक रूप से और कभी भिन्न रूप से गांव में भी देखा और ग्वालों ने उसे वन में भी देखा।

बालादृष्ट एकरूपो गोपदृष्टो बभूव ह।
गोपदृष्टो न बालैश्च कदाचित्सम्बभूव ह[2] ।।३९।।

लड़कों ने उसका एक रूप नहीं देखा और ग्वालों ने देखा, गोपों ने नहीं भी देखा परन्तु बालकों ने देखा। तात्पर्य यह है कि गांव के बालकों ने अपने में खेलता देखा और ग्वालों ने अपने साथ जंगल में धेनु चराता हुआ देखा। यह उसकी योगलीला थी।

उभयत्राऽनेकरूपः सरूपो ददृशे च सः।
न तन्माया ततोऽज्ञायि पित्रा गोपेन बालकैः ।।४०।।

दोनों जगह (गांव व जंगल में) वह अनेक रूपवाला व समान आकारवाला देखा गया, तब उसकी इस माया को न पिता, न ग्वाले और न ही गांव के बालक जान सके।

सायं कदाचिद् गोपालो बहुवारं सुतेक्षणात्।
क्रीडने पृष्टवाँस्तातः[3] सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ।।४१।।

कभी पिता ने उसे बालकों के साथ खेलते हुए बहुत बार देख सायंकाल जब ग्वाल लौटे तब उनसे पूछा कि मेरे सामने सत्य-सत्य कहो कि इसने आपके साथ जंगल में कितनी देर गायें चराईं।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है .
२. यह पद्य केवल पाण्डुलिपि में है। इसका अनुवाद भी उसी प्रति से संकलित है।
३. पाठभेद-तात ! (प्रकाशित प्रति)

धेनुश्चारयते[1] नायं क्रीडा प्रियतया सदा।
सखिभिर्वा कूर्दयन् स्वैः स्वप्रियं[2] नैव नुञ्चति।।४२।।

यह हर समय अपने मित्रों के साथ धेनु नहीं चराता है अपितु इसे खेल अत्यन्त प्रिय है। अतः यह अपने मित्रों के साथ खेलता-कूदता हुआ उन्हें नहीं छोड़ता अर्थात् उनके साथ सारा दिन खेलता रहता है और उन्हें छोड़कर जंगल में जाने की इसकी इच्छा नहीं होती। अतः तुम सच-सच बताओ कि यह सारा दिन क्या करता रहता है।

अदृष्टतच्छून्यवनस्य तस्य तेनाऽथ गोपस्य मतिर्दृढा या।
तया त्वसत्यं प्रवदन् पितास्य ज्ञातः समूचे निजतथ्यवादम्।।४३।।

गोपाल ने कहा कि यह जंगल को छोड़कर कहीं नहीं जाता; यह हमारा दृढ़ विचार है। उस मस्त के विरुद्ध असत्य बोलते हुए मस्त के पिता से उस ग्वाले ने सारा सच्चा हाल कह सुनाया।

नाऽयं मया विनाऽनेन नाहं प्रायोऽस्मि कुत्रचित्।
गेहे वापि वने वापि सह तिष्ठति यात्ययम्।।४४।।

कि यह मेरे बिना और मैं इसके बिना कहीं भी नहीं जाता हूं। घर में अथवा जंगल में भी यह मेरे साथ ही रहता है और साथ ही जाता है।

शुद्धबुद्धमते[3]र्वार्ता आचक्षाणः प्रतीयते[4]।
निरवच्छिन्नसर्वार्थः स्वार्थहीनः[5] प्रभात्ययम्।।४५।।

यह शुद्ध और ज्ञानयुक्त विचारधारा की बातें करता हुआ प्रतीत होता है, यह सभी विषयों का भली प्रकार ज्ञाता (अथवा सभी कार्यों को अबाध रूप से करनेवाला) तथा स्वार्थरहित प्रतीत होता है।

तेन त्वं चान्वभाविष्ठा नान्वभावित्त्वयाप्यसौ।
अनुभूतो मया चासौ तेन चान्वभविष्यहम्।।४६।।

---

१. पाठभेद-उस्राः। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-स्वैश्च प्रेयासं। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-ज्ञान। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-कथयन् गोप्रियः स्वयम्। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-प्रकारैस्तत्त्वतः स्वयम्। (प्रकाशित प्रति)
(यह शुद्ध (संसार के सब धर्मों से अलग) तथा बुद्ध (प्रकाश रूप) परमात्मसम्बन्धी बातें कहता हुआ तथा स्वयं (अपने आप भी) सब तरह से परमात्मा के वास्तविक भाव को प्राप्त है।)

और उसके द्वारा तुम स्वयं अनुभव कराए जाओगे परन्तु यह तुम्हारे द्वारा पीछा किया जाता हुआ अनुभव नहीं किया जायेगा क्योंकि यह मैंने अनुभव किया है और उसके द्वारा मुझे अनुभव कराया गया है अर्थात् उसके उपर्युक्त गुणों को आप उसकी कृपा से ही जान पाओगे, यदि तुम उसके प्रति श्रद्धा का भाव रखोगे, जासूसी (पीछा करने) का नहीं।

अनवच्छिन्नवैशिष्यो विद्वद्भि: सर्वगो मत:।
ब्रह्मात्मा तेन तुल्योऽसौ मया सम्बुध्यते पृथक्।।४७।।

जो देश-काल-वस्तु इन तीनों से परिमित नहीं है अर्थात् जिसका किसी देश में, किसी काल में तथा किसी वस्तु में अभाव नहीं है और जिसको विद्वान् लोग सर्वत्र व्यापक मानते हैं, ऐसे परब्रह्म के समान यह मस्त है किन्तु हम लोग अपने अज्ञानवश इसको ब्रह्म से अलग मान रहे हैं[१]।

लीलामानुषरूपोऽयं देवता काचिदीक्ष्यताम्।
न मिथ्या[२] वदति ह्येष[३] मया गाश्चारयत्यलम्।।४८।।

कदाचित् इसे अपनी माया से मनुष्य रूप धारण किए देवता समझो और यह झूठ नहीं कहता। यह वस्तुत: मेरे साथ गाएं चराता है।

पिताऽऽह त्वं वृथा[४] भक्तिबालेऽस्मिन् बुद्धि[५]वर्जिते।
मिथ्या[६] त्वं वदसि स्वैर्यद्बालै: क्रीडन् विलोकित:।।४९।।

पिता ने कहा कि इस मूढ़ बालक में तुम्हारी भक्ति व्यर्थ है। तुम अवास्तविक बात कहते हो क्योंकि मैंने इसे अपने उमरवाले बालकों के साथ खेलते हुए देखा है।

पुन: पृष्ट: सुतस्तेन वणिजा क्रोधमुद्रया।
सत्यं ब्रूहि कथङ्कारं किं वा भो विदधासि तत्।।५०।।

तब उस वणिक् (व्यापारी) ने गुस्से से पुत्र से पूछा कि अरे ! सच-सच बताओ कि वह गतिविधि किस प्रकार करते हो अर्थात् एक ही समय में दो जगह-जंगल एवं गांव में रहते हो-इसका रहस्य बताओ।

धेनूर्गोपस्य सङ्गेन[७] यामि चारयितुं मुदा।
नित्यमेव न मिथ्येदं सत्यमाह स पालकम्।।५१।।

---

१. पाण्डुलिपि से संकलित। २. पाठभेद-मृषा। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-चैष। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-मृषा। (प्रकाशित प्रति) ५. पाठभेद-धी। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-अतथ्यं भाषणं। (प्रकाशित प्रति) ७. पाठभेद-संघेन। (प्रकाशित प्रति)

तब उस मस्त ने अपने पिता से कहा कि मैं प्रतिदिन प्रसन्नता से ग्वालों के साथ गाएं चराने जाता हूँ। यह झूठ नहीं है अपितु सत्य है।

विसृष्टस्तद्दिने पित्रा प्रश्नो नासौ पुनः कृतः।
किन्तु बालैः स्वमित्रैः स दरीदृष्टः सकूर्दनः।।५२।।

उस दिन पिता के द्वारा वह छोड़ दिया गया अर्थात् उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की और उससे पिता ने दुबारा प्रश्न भी नहीं किया परन्तु अपने मित्र बालकों के साथ कूदता (खेलता) हुआ वह अनेक बार (बार-बार) देखा गया।

ततः सञ्चिन्तितं तेन गास्त्यक्त्वाऽयं समागतः।
परीक्षाऽस्याद्य कार्य्यैव प्राप्तः[१] सोऽवसरोऽधुना।।५३।।

फिर उसने (पिता ने) सोचा कि यह गायों को छोड़कर आया है। आज इसकी परीक्षा लेनी चाहिए अर्थात् इसकी जांच-पड़ताल की जानी चाहिए। इस समय मौका मिल गया है।

वनं यातोऽप्यनाभाष्य तत्रैक्षत तथैव तम्।
वेत्रवन्तं स्थितं धेनूश्चारयन्तं स्वधेनुकम्।।५४।।

तब पिता बिना किसी को बताए वन में गया और वहां उसी प्रकार से उसे लाठी लिए हुए, खड़े हुए अपनी गायों को चराते हुए देखा।

पुनर्ग्रामे समागत्याऽदर्शि बालैः सखेलनम्।
मुहुर्वने मुहुर्ग्रामे दृष्टवान् मुमुहे तदा।।५५।।

पुनः वह ग्राम में आकर उसे बालकों के साथ खेलता हुआ देखता है। फिर वन में फिर ग्राम में उसे देखा, तब वह पिता किंकर्त्तव्यविमूढ़ होगया।

भ्रमो ममाऽयं द्विविधः समीक्ष्यते स एकबालो मम लालितो यः।
किं वा द्वितारापतिदृष्टितुल्यश्चक्षुः सरोगत्वमथो भ्रमोऽतः।।५६।।

मुझे भ्रम हो रहा है ! क्योंकि जिस अपने बालक को पाला व लाड लडाया है, वही एक लड़का दो तरह से देखने में आरहा है। अथवा क्या मुझे नेत्ररोग होगया है जिस कारण दो चन्द्रमाओं की भांति यह बालक भी भ्रम से दो तरह का दिखाई देता है।

---

५. पाठभेद-लब्धः। (प्रकाशित प्रति)

मत्तः पुराऽयं बहुधा वनेन शीघ्रोऽथ[१] वनं प्रयाति।
एको मया तेन वनेऽत्र ग्रामे[२] द्विधा व्यलोकीति महान् भ्रमो मे।।५७।।

मुझ से पहले ही यह पक्षी की गति से उड़कर तत्काल वन में पहुंच जाता है और क्षणभर में ही वन से ग्राम में आ जाता है। अतः अकेले इसको बार-बार वन में तथा ग्राम में देखकर मुझे बड़ा भ्रम हो रहा है।

किं वा चरित्रं किल सिद्धिभाजां मनोऽनुरूपं प्रतिभाति मेऽयम्।
स्वयं द्विधारूपकृदेष सत्य[३]मायाश्रयः सिद्धशिवोऽयमेकः।।५८।।

अथवा क्या यह वस्तुतः सिद्ध पुरुषों का चरित्र है जो कि भक्तों के मन की कल्पना के अनुकूल रूप धारण कर लेते है; ऐसा मुझे प्रतीत होता है। अतः यह एक सिद्ध शिव ही है जो अपनी माया का आश्रय लेकर दो प्रकार से रूप बनाए हुए है।

एवं विकल्पैर्मुमुहे वणिक् स नान्तं जगामाऽस्य च संशयस्य।
सभ्रान्तिविज्ञोमिति[४] मातृमानेष्वेवं विशेष न समूह एकम्।।५९।।

इस प्रकार की नाना कल्पनाओं से वह व्यापारी घबरा गया और उसके संदेह की किसी प्रकार भी निवृत्ति नहीं हुई और ज्ञान में, जाननेवाले में तथा नेत्र में किसमें क्या विशेषता है, इसका वह निश्चय नहीं कर सका अर्थात् वह सोच में पड़ गया कि यह क्या है ? वह अपनी दृष्टि अथवा ज्ञान; इनमें से किस पर विश्वास करे-ऐसा उसे भ्रम हो गया।

एवं प्रमाणैरपि निश्चयेन भान्तौ तथा संशयसम्प्रयाते।
परस्य वा स्वस्य च संविदानो मिनोति तत्त्वं किल तच्च सत्यम्।।६०।।

इस प्रकार भान्ति होने पर संदेह हो जाने से अपने अथवा दूसरे के प्रमाणों से निश्चय करनेवाला वास्तविकता को जान जाता है।

प्रामाणिकानां किल पण्डितानां[५] शास्त्रेषु पक्वाक्षमशेमुषीणाम्।
विवादबुद्धिर्नहि यत्र यत्र संवादिशब्दादनुबोध्यतेऽक्षैः।।६१।।

---

१. पाठभेद-पतत्रिगत्येव। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-यामे। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-द्विधा विधायात्मबलं बलीयान् (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-सम्भ्रान्तचेतामिति (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-प्रमाणपारीणपियितां (प्रकाशित प्रति)

प्रमाणों को माननेवाले और शास्त्र में परिपक्व बुद्धिवाले पण्डितों की जिस-जिस विषय में विवादबुद्धि नहीं होती अर्थात् जिसमें सबकी एक सम्मति है कि यह प्रमाण है ऐसे सफल शब्दों से और आंखों से तत्त्व का निश्चय किया जाता है।[1]

पुराणवृत्ते समकालभाविमर्षिवाक्यं तत एव मानम्।
ततो विरुद्धं कलिजप्रघुष्टं स्वकल्पितं नैव मतं सुविज्ञैः।।६२।।

पुराण की कथाओं में जो लिखा है वह इसलिए प्रामाणिक माना जाता है क्योंकि उस समय के जो महर्षि थे उन्होंने प्रत्यक्ष करके ही प्राणिमात्र के हित के लिए ही लिखा था। जबकि कलियुग में उत्पन्न लोगों की घोषणा उससे विपरीत है क्योंकि वह स्वकल्पित है जिसे विद्वानों ने मान्यता नहीं दी है।

यतोऽग्रभावो न हि बाधबुद्धिर्न संशयो वा व्यतिरेकहेतुः।
प्रमाणमक्षैर्जनितं प्रवेदनं कथं मम स्याद्बहुबाधबुद्धेः।।६३।।

जिससे आगे बाध का ज्ञान नहीं है और न सन्देह व विपरीत बोध है इसीलिए ज्ञान प्रमाण होता है और मेरा ज्ञान जो कि दृष्टि से हो रहा है, यह कैसे प्रामाणिक हो सकता है क्योंकि इसका बाध ज्ञान बहुत हो रहा है।

ततो मनस्येव विचिंत्य तेन प्रामाणिकाः स्वीयतया मता ये।
विश्वस्तवृद्धाश्च सहैव नीता ग्रामे स खेलन् परिदर्शितश्च।।६४।।

इसके अनन्तर अपने मन में विचार कर सबला ने जिन पर वह विश्वास करता था, उनको तथा जिन्हें अपना समझता था, उन वृद्ध व्यक्तियों को साथ ले आया और गांव में खेलते हुए मस्त को उन्हें दिखाया।

कांँश्चिच्च तत्रैव तदीयसत्तानिर्धारणायाऽथ नियुज्य यातः।
अन्यैर्वनं तत्र ददर्श बालं शयानमाराद् भुजगाऽऽतपत्रम्।।६५।।

गांव में किसी को उसकी उपस्थिति का निर्धारण करने के लिए नियुक्त करके दूसरों के साथ वन में गया तो वहां वन में बालक को सोते हुए देखा जिसके समीप सर्प छाता बनाए हुए है अर्थात् सर्प फण फैलाए बैठा है।

निरीक्ष्य निर्दोषसुनेत्रवद्भिः प्रामाणिकैः स्वैः परमैः प्रियैश्च।
विश्वस्तलोकैः[2] सह निश्चितं च द्विधाऽयमेको न हि सिद्ध एषः[3]।।६६।।

---

१. पाण्डुलिपि से संकलित। २. पाठभेद-विश्वासभग्भिः। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-कोऽन्यः। (प्रकाशित प्रति)

दोषरहित सुन्दर दृष्टिवाले, विश्वसनीय, सत्य बोलनेवाले (प्रामाणिक) अपने अत्यन्त प्रिय मित्रों के साथ उस सबला ने उस बालक को देखकर निश्चय किया कि इस एक ही बालक ने दो रूप धारण कर रखे हैं। वस्तुतः यहां दूसरा कोई सिद्ध नहीं है।

अनन्तशय्याशयनाश्रितोऽपि जागर्ति लोकप्रतिपालनाय।
लीलाविभूतिर्जगदण्डजातं यत्सङ्गतोऽसौ सफलो वटोऽयम्।।६७।।

जब लोगों ने मस्तानें को सोते हुए देखा, जिसके सिर पर सर्प छाया कर रहा था तो सभी ने एक कण्ठ से कहा कि यह तो साक्षात् विष्णु हैं; शेषनाग की शय्या पर निद्रा में लीन भी जो लोकों का पालन करने के लिए जागता है उसके ही ऐश्वर्य की यह विभूति (एक अंश) है जिससे यह जगत् अण्डरूप में उत्पन्न है, जिसकी संगति से आज यह वट वृक्ष भी धन्य होगया है अर्थात् भगवान् के द्वारा आश्रय लेने के कारण यह वट वृक्ष भी धन्य हो गया है। मस्तनाथजी भी भगवान् विष्णु के समान एक शरीर से क्रीडा के माध्यम से मित्रजनों का आनन्द बढ़ा रहे हैं और दूसरे से यहां वन में सो रहे हैं।

समागता[1] येऽपि पुरा नियुक्तास्तत्र स्थितास्ते जगदुर्मिलित्वा।
हरिं सिता हि त्वरितातपत्रमनन्तमायो हरिरेव मस्तः।।६८।।

जिन्हें पहले ~~गांव में~~ मस्त को गांव में देखने के लिए नियुक्त किया था वे भी वहां आ पहुंचे और जो वहां जंगल में मौजूद थे वे सब मिलकर कहने लगे कि यह मस्त सफेद सर्परूप आतपत्रवाला और अनन्त मायावाला विष्णु ही है।

अनन्तमायस्य परा ह्यपारा शक्तिः स्वकाऽज्ञेयतयाऽप्यमाया।
यया तते भान्तिमयं जगच्च भ्रान्ताः समाहुः कतिचिज्जडञ्च।।६९।।

अगणित मायावाले परमेश्वर की अपनी अपार शक्ति है, जिसके न जानने से माया के द्वारा विस्तृत इस संसार में लोग भ्रान्त होकर नाना प्रकार से संसार को जड़ कहने लग जाते हैं और कई भ्रान्तिरूप बतलाते हैं।

सप्तात्मकं भावषडात्मकं वा नैकात्मकोऽनेकमयं विभिन्नम '
मिथ्या विभेदं च विवर्तमात्रमज्ञानतो भेदिमतं तदेतत्।।७०।।

वास्तव में परमेश्वर एकरूप है किन्तु उसका ज्ञान न होने से नैयायिक लोग सात पदार्थ अर्थात् छह भावरूप और एक अभावरूप मानते हैं। इस तरह अनेक

---

१. पाठभेद-समाययुः। (प्रकाशित प्रति)

प्रकार से पदार्थों का भेद मान लिया जाता है परन्तु यह सब कल्पना मात्र है, ईश्वर की माया में फंसकर ईश्वर का भेद समझ बैठते हैं।[१]

तस्मिन् परब्रह्मणि सर्वरूपे[२] सत्ताविभेदेन विभिन्नकार्ये[३]।
स्वांशेऽपि भेदेन विभासमाने प्रभात्मके[४]ऽज्ञा न हि संविदानः[५] ।।७१।।

वह परमात्मा एक है, सर्वस्वरूप है, एक उसी की सत्ता है किन्तु उसके कार्यरूप समस्त संसार तथा प्रकाशस्वरूप जीवात्मा में जो भेद प्रतीत हो रहा है उसको अज्ञानी जन सत्य मानते हैं परन्तु तत्त्ववेत्ता नहीं।

अदाहकस्याप्ययसः कृशानोराश्लेषणाद् दाहकता यथास्ते।
तथैव भोक्तृत्वमचेतनाया बुद्धेरपि स्याच्चिदनुप्रवेशात्।।७२।।

न जलानेवाले लोहे की भी जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क में आने के कारण दाहकता देखी जाती है उसी प्रकार अचेतन बुद्धि का भी संभवतः प्रवेश करने के कारण भोक्तापन-देखा जाता है।

एकस्य सत्यस्य च सत्यवादनिष्ठस्य मोहाच्च हठात्प्रतीपाः।
न हि प्रमाणं बहवोऽपि लोका वयं हठान्नैव भिदैकदृष्टाः[६] ।।७३।।

ईश्वर एक सत्यरूप और सत्य वेद प्रमाण से सिद्ध है, अपनी मूर्खता एवं हठ के कारण बहुत से लोग उसको नाना प्रकार का मान बैठते हैं, अतः ऐसे लोगों की बात को प्रामाणिक नहीं माना जाता। हम हठ से ईश्वर में भेद नहीं मानते अपितु एकदृष्टिवाले हैं अर्थात् ईश्वर एक ही है। यहां भाव यह है कि मस्त एवं विष्णु में कोई भेद नहीं है, वे एक ही हैं।

तथापि माया निजसिद्धमूर्तिर्मस्तोऽयमीदृग् परिदृश्यतेऽतः।
मायी सदंशो निजभक्तिरक्तानात्मानमद्य प्रकटीकरोति।।७४।।

तो भी अपनी माया के कारण सिद्ध मूर्तिवाला, माया को धारण करनेवाला सत्य का अंशस्वरूप (अवतारस्वरूप) यह मस्त इस उपर्युक्त प्रकार का दिखाई दे रहा है जो कि अपनी भक्ति में लीन व्यक्तियों के प्रति स्वयं को इस प्रकार नाना रूपों में प्रकट कर रहा है।

---

१. ६८, ६९ पद्य केवल पाण्डुलिपि में है तथा इनका अनुवाद भी वहीं से संकलित है।
२. पाठभेद-विश्वमात्मनि। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-कार्यता। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-प्रेमात्मके। (प्रकाशित प्रति) ५. पाठभेद-जानते तथा। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-प्रमाणमेवं न वयं प्रतीमो भेदात्मानो बहुधा विभान्ति हि। (प्रकाशित प्रति)

हे नाथ ! तव मायेयमज्ञाता सूरिभिः परैः ।

त्वत्कृपा चेन्न संसारदुःखमत्र[1] प्रशाम्यति ।।७५।।

हे नाथ ! तुम धन्यवाद के योग्य हो, क्योंकि तुमने हम अज्ञानियों को अपनी इस प्रकार की माया से अवगत कराया है। तुम्हारी यह माया श्रेष्ठ तत्त्वदर्शियों के द्वारा भी अज्ञेय है; यदि तुम्हारी कृपा न हो तो संसार के दुःख शान्त न हों।

इमां स्तुतिं तदा श्रावं श्रावं सर्पो गतोऽभवत् ।

अन्तर्धानं मस्तकृत्ये विस्मयो ववृधे ततः ।।७६।।

तब इस प्रकार की स्तुति को बार-बार सुनकर सर्प अन्तर्धान होगया तब मस्त के इस प्रकार के कृत्य के विषय में लोगों का आश्चर्य बढ़ा।

ततः सामीप्यमायाताः सर्वेऽपि पुरवासिनः ।

उत्थितो बालको दृष्टः[2] कुशली निर्विषः स्वयम् ।।७७।।

तत्पश्चात् सभी नगरवासी समीप आगए और उन्होंने देखा कि बालक सोकर उठा हुआ है, वह कुशलपूर्वक है और विष से रहित भी है।

पुनरागत्य च ग्रामे शीघ्रमागत्य बालकम् ।

ददृशुः[3] क्रीडनासक्तं सखिभिर्निजबालकैः ।।७८।।

फिर सब लोग शीघ्र ही गांव में आए और बालक मस्त को वहां अपने बालमित्रों के साथ खेल में लगे हुए देखा।

मुहुर्मस्तस्य संसिद्धिं गीतवन्तः समर्द्धिनीम्[4] ।

ग्रामस्य धनमर्यादा[5]जननीरोगतादिकम् ।।७९।।

तब सब लोग बार-बार मस्त की गांव की धन प्रतिष्ठा एवं लोगों की नीरोगता आदि को देनेवाली तथा समृद्धि प्रदान करनेवाली सिद्धि का गान करने लगे।

सबलामुपदिदिशुः[6] सत्यमेष शिवः स्वयम् ।

तव[6] सर्वार्थसंसिद्धिमृद्धिमेष करोति हि ।।८०।।

तब उन लोगों ने सबला को कहा कि यह निःसंदेह साक्षात् शिव ही हैं और वास्तव में तुम्हारे सभी प्रकार के विषयों में सफलता एवं धन की वृद्धि कर रहा है।

---

१. पाठभेद-दाहः। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-अदर्शि। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-अद्राक्षुः। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-यशःप्रदाम्। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-पशुमर्यादा। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-उपादिशंस्ते। (प्रकाशित प्रति)

अहीन्द्रजुष्टोऽथ हरिर्हरो वाप्यनन्तब्रह्माण्डफलो वटो वा।
विचित्रलीलाचरितैः स चित्रः सिद्धात्सुराद्वान्यनरो न दृष्टः।।८१।।

सर्पराज से सेवित यह विष्णु अथवा शिव अथवा अनन्त ब्रह्माण्ड फलदाता वट है क्योंकि अपनी अद्‌भुत लीलाओं एवं आचरणों के कारण यह सिद्ध अथवा देवता के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता ? क्योंकि मनुष्य का ऐसा विलक्षण चरित्र कहीं नहीं देखा गया अर्थात् मानवमात्र में इस प्रकार की अद्‌भुत लीलाएं दिखाने की क्षमता नहीं होती।

इत्थमेवं समुद्दिश्य सायमेता निजं गृहम्।
बालो मस्तो निजं गेहं पित्रोरन्तिकमागतः।।८२।।

इस प्रकार सभी लोग ऐसा कहकर सायंकाल में अपने-अपने घर चले गए। बालक मस्ताना भी अपने घर पिता के पास आ गया।

तत्रापि मातुः सविधेऽथ तस्य तत्सर्पवृत्तं विदधुश्च पौराः[1]।
मस्तस्य सिद्धत्वमिदं शिवत्वं प्रसिद्धमकारि जनैः समन्तात्[2]।।८३।।

फिर पुरवासियों ने वहां माता के समीप पहुंचने पर उसके उस सर्प विषयक वृत्तान्त को कहा और मस्त की इस सिद्धिरूपता एवं शिवरूपता को चारों ओर प्रसिद्ध कर दिया।

सिद्धा निषिद्धा न हि भूविभागे न भूर्न यत्रापि सुपुण्यभूमिः।
न पुण्यभूमिः किल देवहीना देवाश्च सिद्धाश्च सहाऽऽवसन्ति।।८४।।

वस्तुतः भूखण्ड पर सिद्धों का अभाव नहीं है, न ऐसी पृथ्वी है जहां पुण्यभूमि भी नहीं है, ऐसी पुण्यभूमि भी नहीं है जो वस्तुतः देवताओं से रहित हो अपितु देव और सिद्धगण साथ-साथ ही निवास करते हैं। भाव यह है कि पृथ्वी पर भी सिद्ध अथवा देवता निवास करते हैं। अतः मस्ताना भी मानवरूप में किसी सिद्ध अथवा देवता का अवतार ही है।

इति श्रीसिद्धमस्तनाथबालचरित्रवर्णने ज्ञानप्रक्रिया तत्सिद्धिदर्शनविषयविशिष्टो नाम तृतीयः सर्गः।

---

१. पाठभेद-भवत्। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-आतेनुरिह स्वयं ते।।८०।। (प्रकाशित प्रति)

चतुर्थः सर्गः

दुग्धवर्षासिद्धिप्रकरणम्

दुग्धपूर्णां मेघपूर्णां दैवीं सिद्धिमदर्शयत्।
तच्चरित्रस्य कर्त्तारं मस्तं वन्दे शिवं स्वयम्[1]।।१।।

जिसने दूध से परिपूर्ण एवं मेघ से परिपूर्ण दिव्य सिद्धि को दिखाया, उस (सिद्धि इत्यादि प्रदान करना) चरित्र का विधान करनेवाले स्वयं शिवस्वरूप मस्ताने की वन्दना करता हूं अर्थात् जिन्होंने अपनी योग की शक्ति से दूध से भरी हुई एक तूम्बी से समस्त ग्वाल-बाल एवं बारात को तृप्त कर दिया तथा वर्षा न होने पर वर्षा कराकर दैवी सिद्धि दिखलाई, ऐसे साक्षात् शिवस्वरूप, अलौकिक चरित्रवाले गुरु मस्तनाथजी की मैं निरन्तर वन्दना करता हूं।

क्वचित्पतद्भिः क्वचिदस्खलद्भिः क्वचित्प्रकम्पैः क्वचिदप्रकम्पैः।
मस्तः समस्तैर्ललितैर्विलासैर्द्वयोर्मुदं कन्दलयाञ्चकार।।२।।

कहीं पर चलते समय गिरने से, कहीं पर न गिरने से, कहीं कांपने से, कहीं न कांपने से-इस प्रकार समस्त सुन्दर विलासों से मस्ताने ने दोनों (माता-पिता) के हर्ष को बढ़ाया।

आजन्मनो जन्मजरान्तकस्य तस्यात्मजस्यात्मजितः स वैश्यः।
अहन्यहन्यर्थचयः समन्ताद् वृद्धिं ययौ मस्तसुतं आर्जिहत्[2]।।३।।

जन्म और वृद्धत्व का अन्त करनेवाले उस पुत्र के जन्म से लेकर जितेन्द्रिय उस वैश्य ने प्रतिदिन सब ओर से धन की बढ़ोतरी को पाया और उसने मस्ताने पुत्र की अर्चना की अर्थात् जब से मस्ताने पुत्र की प्राप्ति हुई तभी से उस रैवारि का धन दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था और इसी कारण वह अपने पुत्र को भाग्यशाली भी समझता था।

द्वादशाब्दे व्यतीते स वैराग्येऽपि मनो दधौ।
निर्वेदं गृहसम्पत्तौ दर्शयामास लोकवत्।।४।।

---

१. पाठभेद-शिवात्मकम्। (प्रकाशित प्रति)
२. २, ३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

बारह वर्ष की उम्र हो जाने पर उसने (मस्त) वैराग्य में मन लगाया और लोगों की भांति घर की सम्पत्ति में भी वैराग्य दिखाने लगे अर्थात् उनकी किसी भी प्रकार की भौतिक सम्पत्ति और सुख में आसक्ति नहीं थी।

वनेऽरण्ये गुहामध्ये नदीतीरे सरःसु च।
इच्छाचारी ब्रह्मचारी मन्दिरेष्वटति स्म ह[१]।।५।।

वन में अथवा जंगल में, गुफा के भीतर, नदी के किनारे और तालाबों में इच्छानुसार विचरण करनेवाला वह ब्रह्मचारी मन्दिरों में भी घूमता रहता था।

कदाचिद् गोपबालाश्चाऽऽजग्मुस्तत्राञ्जसा स्वयम्।
बहवः सम्मिलन्तस्ते खेलन्तः स्म वदन्ति तम्[२]।।६।।

किसी समय बहुत से ग्वाल बालक आपस में मिलकर खेलते हुए अपनी इच्छा से वहां आ गए और मस्ताने को कहने लगे।

एह्येहि गोप मस्तैहि[३] दूरं यास्यन्ति धेनवः।
विभागेन मिलित्वाऽतो धेनूः सम्मेल्य खेलय।।७।।

हे मस्ताने गोप ! जल्दी आओ ! गाएं दूर चली जायेंगी इसलिए गायों को एकत्रित करके दो पक्षों में स्वयं को बांटकर मिलकर खेलो अर्थात् गायों को एक जगह इकट्ठी करके दो दल बनाकर खेलें।

तदुक्तिमानमर्यादारक्षणाय कृपाकरः[४]।
भक्तानां मस्त ईशत्वाद् हितकृत् स तथाऽकरोत्[५]।।८।।

उन ग्वालों के वचन की मान-मर्यादा रखने के लिए दयालु, भक्तों का कल्याण करनेवाले उस मस्ताने ने ईश्वर (सब कुछ करने में समर्थ) होते हुए भी उसी प्रकार से किया अर्थात् बालकों के साथ खेलने लगे।

तत्रोवाच यवीयान् यस्तेषु बालो हि दृश्यताम्।
अपि मध्याह्नगो[६] भानुः सर्वांस्तपति मार्गगान्।।९।।

वहां पर उनमें जो सबसे छोटा बालक था उसने कहा कि देखिए ! निःसंदेह सूर्य मध्याह्न (दोपहर) में पहुंच गया है और सभी राहगीरों को भी तपा रहा है।

---

१. पाठभेद-मिताहारी बभूव सः। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-बहुत्वेन मिलन्तस्ते खेलन्तोऽवीवचंस्तदा। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-गच्छागच्छ गोपमस्त। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-दयानिधिः। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-व्यधात्। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-मध्यगतो। (प्रकाशित प्रति)

कुतपत्यनिलस्तप्तोऽनलस्तप्तस्वभाववान्।
अधिकं बाधते नीडे विलीनः शुकशावकः।।१०।।

पृथिवी बहुत अधिक तप रही है, वायु भी गर्म है, उष्ण प्रकृतिवाली अग्नि (सूर्य) भी बहुत गर्म है और घोंसले में छिपा हुआ तोते का बच्चा भी अत्यधिक पीड़ित (परेशान) है। भाव यह है कि अब खेल बन्द किया जाए और पिपासा दूर करने की व्यवस्था की जाए।

गोबालका गोपबाला अवलीढा धरा स्वयम्।
वेदयन्ते नीरसत्वं मुखेऽकाव्ये यथाविदः[१]।।११।।

जैसे विद्वान् को काव्यरहित मुख में रस नहीं मिलता (अथवा नीरसता महसूस होती है) उसी प्रकार गाय के बछड़े तथा ग्वाल बालक जल नहीं पाते और धरती को चाट रहे हैं अर्थात् कठोर धूप के पड़ने से घास के सूख जाने पर भूख और प्यास के मारे पृथ्वी पर छोटे-छोटे तिनकों को भी खा रहे हैं और ग्वाले थोड़ा-सा भी जल कहीं मिल जाए उसकी लालसा में खोज कर रहे हैं।

मृगतृष्णा वर्धमाना तृषया धर्षितेषु तत्[२]।
ग्रामे चलाम[३] सुरसं रसाम मृदु शीतलम्।।१२।।

प्यास से दुःखी हो जाने पर मृगतृष्णा बढ़ रही है। अतः गांव में चलें और स्वादिष्ट मधुर शीतल जल का आस्वादन करें।

मस्तनाथस्तदा प्राह ग्रामे यामो वयं न हि।
धेनवो मे वने वेला पातुं न याम किं वयम्।।१३।।

तब मस्तनाथजी ने कहा कि हम गांव में बिल्कुल नहीं जायेंगे क्योंकि मेरी गाएं जंगल में हैं और उनके जाने का अभी समय भी नहीं हुआ है, फिर हम क्यों जाएं अर्थात् हम नहीं जायेंगे।

वनं वनेन किं प्राप्यं गोवत्सैर्गोप्रिया वयम्।
कुर्मोऽत्र रसनातर्षमर्पयामो जलं जलम्।।१४।।

---

१. पाठभेद-यथाऽविदः। (पाण्डुलिपि)
(जैसे विद्वान् के काव्य रूप मुख में अनभिज्ञ बालक को रस नहीं मिलता अथवा अविद्वान् के काव्यरहित मुख में रस नहीं मिलता।)

२. पाठभेद-यत्। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-व्रजाम (प्रकाशित प्रति)

एक वन से दूसरे वन में ढूंढ़ने पर गाय के बछड़ों के लिए क्या जल नहीं मिल सकता ? अर्थात् मिल सकता है क्योंकि गायों से प्रेम करनेवाले हम यहीं पृथ्वी को जल से भर देंगे और उनकी प्यास दूर कर देंगे।

गोप ऊचे तदा मस्त बालोऽसि मदमत्तवत्।
उन्मत्तवद् रुग्ण एव वनं सुविदितं मम[१]।।१५।।

तब ग्वाला कहने लगा कि हे मस्त ! तुम बालक हो और मदमस्त की भांति बातें करते हो तथा उन्मादी (पागल) रोगी की भांति प्रलाप (व्यर्थ की बातें) करते हो। मुझे जंगल के बारे में अच्छी तरह से मालूम है।

गुहा जलाशयो नद्यः कुनद्यः प्रसमीक्षिताः।
नेक्षितो जलबिन्दुश्च कासारा नीरसा यतः।।१६।।

गुफा, तालाब, नदियाँ, छोटी नदियाँ सब अच्छी तरह से देख ली गई हैं परन्तु कहीं भी जल की बूँद भी दिखाई नहीं दी क्योंकि तालाब भी जल से रहित हैं फिर पानी कहां से उपलब्ध होगा। अतः गांव चलते हैं।

कुनद्यादौ जलाभावः पथि दृष्टस्तरुस्तरुः।
लताप्रतानतर्वाली लीनपत्रा पलाशिनी[२]।।१७।।

छोटी नदियों इत्यादि में जल का अभाव है, मार्ग में सब वृक्षों को देखा है, लताओं में तन्तु तक नहीं है तथा पलाश की बेल के भी पत्ते झड़े हुए हैं।

नीरसं काष्ठमात्रं स मार्त्तण्डो दग्धुमुद्यतः।
अम्बरे शम्बरं नास्ति व्रज सम्प्रति हे सखे।।१८।।

रस से रहित (सूखे) काष्ठमात्र को भी वह भास्कर (सूर्य) जलाने के लिए तत्पर हो रहा है, आकाश में भी मेघ नहीं है इसीलिए हे मित्र ! इस समय घर चलो।

न मतं मस्तबालेन गोपाला वव्रजुर्गृहम्।
पथि किंचिद् गते प्राप्त और्णावीत् खं बलाहकः।।१९।।

---

१. पाठभेद-गोप ऊचे तदा मस्तं बालोऽसि तादृशं वचः।
वनं वनस्य बोद्धारो भ्रमामश्च पदे पदे।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
(ग्वाला कहने लगा कि तुम बालक हो (इसीलिए) उस प्रकार के वचन कहते हो, वन के जाननेवाले हम वन में प्रत्येक स्थान पर घूमते रहते हैं अर्थात् घूम चुके हैं।

२. पाण्डुलिपि का १७ से २२ पद्यवाला पृष्ठ उपलब्ध नहीं है।

मस्त बालक ने नहीं माना अर्थात् अन्य बालकों का घर जाने का विचार स्वीकार नहीं किया। तब ग्वाले घर की ओर चल पड़े परन्तु मार्ग में कुछ दूर जाने पर मेघों ने आकाश को ढांप लिया।

धरारजः किं बहुलीकृतं नु वातोर्मिमाला जलदाकृतिः किम्?
नीलो गिरिः किं तडिदाभवल्लीप्रतानसंदर्शितदर्शनीयम्।।२०।।

क्या पृथिवी की धूलि अधिक परिमाण में कर दी गई थी? वायु की लहरों की मालाएं क्या मेघ के समान आकारवाली हो गई थी? क्या नीले रंग का पर्वत मेघ के समान आकृतिवाला हो गया और क्या विद्युत् लता का प्रतान बन गया था-इस प्रकार इन सभी वस्तुओं ने दर्शनीय को भली प्रकार दिखला दिया अर्थात् वन में जो देखने योग्य वस्तुएं थीं अथवा दृश्य थे, उनको आकाश में उमड़ते हुए बादलों में अच्छी तरह से देखा जा सकता था।

इत्थं वितर्केषु विलग्नचेतसः सौदामिनीं गर्जनमेघशब्दिताम्।
विलोक्य वारिप्रदवारिधारया सस्नानवासोभिरलंचकाश्रिरे।।२१।।

इस प्रकार वितर्कों में आसक्त चित्तवाले ग्वालों ने गर्जना करते हुए मेघ की ध्वनि से युक्त विद्युत् को देखकर जल प्रदान करनेवाले मेघ की जलधारा से नहाए हुए (धूले हुए) वस्त्रों से स्वयं को अलंकृत किया।

तर्पिताश्चातकाः केका विदधुर्नर्तनानि च।
मयूराः सर्वतः पृथ्वी सगन्धा हि बभूव ह।।२२।।

चातक तृप्त हो गए, मोर केका (ध्वनि) एवं नृत्य करने लगे और पृथ्वी सब ओर से वस्तुतः गन्ध से युक्त हो गई। जल बरसाने से उसमें से भींनी-भींनी गन्ध आने लगी।

अल्पेनैव कालेन कुनद्यः पूरितास्ततः।
सरांसि भरितान्यासन् गोपालाः सम्प्रसादिताः।।२३।।

थोड़े ही समय में छोटी-छोटी नदियां जल से भर गईं तदनन्तर तालाब भी भर गए थे, ग्वाले अत्यन्त प्रसन्न कर दिए गए।

धेनवो वत्सका गोपबालाः पानीयमादरात्।
पपुः पुनः पुनः सर्वे जहर्षुगीतमाजगुः।।२४।।

गाएं, बछड़े तथा गोप बालक सभी ने बड़े प्रेम से जल पीया और प्रसन्न होकर गीत गाने लगे।

यदाज्ञया वारिदवर्षणं सखे न नीरदः क्वापि नभस्तलेऽधुना।
बलाहको वर्षति वारि भूरि च घनावलीव्याजमुखेन भूतले[1]।।२५।।

बालक परस्पर कहने लगे कि हे मित्र ! जिसकी आज्ञा से मेघ जल बरसा रहा है परन्तु गगनतल पर कहीं भी बादल नहीं हैं और बादलों के समूह के माध्यम से स्वयं ही मस्तनाथ पृथ्वीतल पर मेघरूप में बहुत जल बरसा रहा है।

ग्रामेऽपि गत्वा नरसंघमध्ये[2] बालाः सुगीतानि जगुस्तथैव।
पिपासया दुःखितबालकानां[3] गवां च पाता किल मस्त दाता।।२६।।

गांव में भी जाकर बालक लोगों के मध्य उसी प्रकार सुन्दर गीत गाने लगे और कहने लगे कि प्यास से दुःखी हुए बालकों और गायों की रक्षा वास्तव में दाता (वृष्टि करानेवाले) मस्तनाथजी ने की।

ग्रामीणाः प्रष्टुमायाता गोपालैः कथितास्तदा।
हठेन[4] मस्तनाथेन जलेनाप्लावितं जगत्।।२७।।

गांव के लोग पूछने आए, तब ग्वालों ने कहा कि मस्तनाथजी ने हठयोग से सारे संसार को जल से भर दिया।

तत्रत्यास्तत्र तद्वृत्तं तदा दृष्ट[5] श्रुतं च यत्।
विसस्मिरे तदा सर्वे शशंसुर्योगमुत्तमम्।।२८।।

तब वहां के सब लोग यह वृत्तान्त (घटना) देखकर और सुनकर बहुत हैरान हुए और मस्तनाथजी के उत्तम योग की प्रशंसा करने लगे।

विदन्तं मस्तयोगीन्द्रं यतिनं[6] निजं गुरुम्।
बालोऽयं जन्मकर्माद्यैरविज्ञेयः शिवो ह्ययम्[7]।।२९।।

---

१. पाठभेद-इसके स्थान पर पाण्डुलिपि में निम्न पद्य है :-

यदाज्ञया नीरदवर्षणं स यन्मातृका योगजवैभवोऽयम्।
यो वा विपत्स्थः शिवसूत्रसूक्तः स मस्तनाथोऽस्ति जलाभिवर्षात्।।२३।।

(जिसकी आज्ञा से यह वर्षा हुई जिनके योग की यह महिमा है वह मस्तनाथजी साक्षात् शिवस्वरूप हैं जो वृष्टि होने से स्वयं सुखी हैं। (पाण्डुलिपि से संकलित)।

२. पाठभेद-नरवारमध्ये। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-व्याकुलबालकानाम्। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-योगेन। (प्रकाशित प्रति) ५. पाठभेद-हृष्टम्। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद-यतिराजम्। (प्रकाशित प्रति) ७. पाठभेद-स्वयम्। (प्रकाशित प्रति)

सबके हृदयस्थ भावों के ज्ञाता, योगियों में श्रेष्ठ संन्यासी व अपने गुरु के रूप में मस्तनाथ को जानते हुए कहने लगे कि यह बालक वस्तुतः अपने जन्म और कर्म आदि से न जानने योग्य स्वयं शिव ही है।

सायमागत्य गाः सर्वाः समानीय स बालकः।
ग्राम्यैर्जगे स सर्वत्र[१] सादरं प्रणतश्च सः।।३०।।

सायंकाल ग्वाल बालकों के साथ सारी गायों को एकत्रित करके वह बालक घर आया। ग्रामीण सब जगह उसके गुणों का बखान करने लगे और आदर के साथ उन्हें प्रणाम करने लगे।

सबलां तस्य रेवारिज्ञातिञ्च ते मुदान्विताः।
शशंसुर्जन्मसाफल्यं[२] सबलापुत्रसम्भवम्।।३१।।

वे लोग प्रसन्न हुए सबला की और उसकी रैबारी जाति की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे कि हे सबला! तुम्हारा जन्म सफल हो गया है क्योंकि तुम्हारे घर ऐसे पुत्र की उत्पत्ति हुई है।

कदाचिन्मस्ततत्त्वं ते निश्चेतुं[३] गोपबालकाः।
संघीभूय विनिश्चिक्युरेकत्रैव च सुस्थितिम्[४]।।३२।।

किसी समय वे गोपबालक मस्त के तत्त्व का विवेचन करने के लिए इकट्ठे होकर एक जगह बैठ गए और विचारविमर्श करने लगे।

प्रातर्मस्तमुपामन्त्र्य गोपाला वनमाश्रिताः।
चिक्रीडुस्ते नर्मवादकन्दुकाक्रीडनादिभिः।।३३।।

अगले दिन सवेरे ग्वाले मस्त को बुलाकर वन में जा पहुंचे और हास-परिहास करते हुए गेंद आदि खिलौनों से खेलने लगे।

प्रहरे ते द्वितीयेऽथ चण्डांशुकिरणैर्भृशम्।
प्रतप्ता मुहुराजुष्टा तृषयेत्यूचुरादरात्[५]।।३४।।

---

१. पाठभेद-जगुस्तं ते। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-जनुषः पुण्यं। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-विवेक्तुं। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-एकीभूय विनिश्चिक्युस्तस्थिवांसस्तदा समे।। (प्रकाशित प्रति)
५. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :-
न वारिधारा धरणीतलेऽनलोऽनिलेन सार्धं महसा प्रबाधते।
घर्मोऽद्य मर्माणि च वर्मणा हतो न धीवरं बाधत आहुरादरात्।।३५।।

तदनन्तर दिन के दूसरे पहर में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से वे बहुत संतप्त हो गए और प्यास से युक्त होकर आदर से कहने लगे।

पानीयमल्पकं नैव घर्मोऽतीव प्रबाधते।
दुग्धमाप्यायनं तेषां तृषाशान्तिकरं हितम्[1]।।३५।।

'थोड़ा-सा भी पानी नहीं है, धूप बहुत सता रही है" उनकी इस बात को सुनकर मस्त बालक सोचने लगा कि इनकी प्यास को दूर करनेवाला हितकारी दूध भी इन्हें पिलाना चाहिए।

इति सञ्चिन्त्य[2] भगवाँस्तृषाचिन्तानाशनम्।
धेनुमेकामाजुहाव ततः क्षीरं दुदोह सः।।३६।।

इस प्रकार विचार करके भगवान् ने एक गाय को पुकारा और उससे उसने प्यास की चिन्ता (परेशानी) को शान्त करनेंवाला दूध निकाला।

स्तोकेनैकेन पात्रेण तृष्णाशान्तिसमम्[3] मुदा।
सर्वानपाययत्तान् स पयः पूर्णमिवाऽमृतम्।।३७।।

तब एक छोटे से पात्र से उसने तृष्णा को शान्त करनेवाला अमृत के समान मधुर दूध प्रसन्नता से उन सबको पिलाया।

का काली का मधुरा का शीतलवाहिनी गङ्गा।
कंसं जघान कृष्णः कं मस्तवन्तं न बाधते दुःखम्[4]।।३८।।

कौन काली है, कौन मधुरा है, कौन शीतल जल को प्रवाहित करनेवाली है! (उत्तर है)-काशीतल में प्रवाहित होनेवाली गंगा शीतलवाहिनी है। कृष्ण ने कंस को मारा था। किस मस्तक (बुद्धि) से युक्त (अथवा मस्ती से युक्त अथवा मस्तनाथ की भक्ति से युक्त) को दुःख पीड़ा नहीं पहुंचाते ? अर्थात् मस्तनाथ जी का कोई भक्त ऐसा नहीं है जिसे दुःख परेशान करते हों। उनका भक्त दुःखों की पीड़ा को आसानी से सहन कर लेता है, उनसे विचलित कदापि नहीं होता।

पायं पायं सहजमधुरं तत्पयः सौरभेयम्,
गायं गायं परममधुरं[5] गोपवृन्दाः स्वगीतम्।

---

१. ३४. ३५ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
२. पाठभेद-इत्थं संश्रुत्य। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-शमं। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
५. पाठभेद-परमरसनं। (प्रकाशित प्रति)

वादं वादं मनसि मुदिता मस्तनाथस्य कीर्तिम्,
शंसं शंसं जहृषुर[1]मितां वीक्ष्य तस्याथ सिद्धिम्।।३९।।

ग्वाले प्रकृति से ही मधुर उस गोदुग्ध को बार-बार पीकर अत्यन्त सरस अपने गीत को बार-बार गाकर मन में मस्तनाथजी की कीर्ति का बार-बार गुणगान करके उनकी अपरिमित योगसिद्धि को देखकर बार-बार प्रशंसा करने लगे।

तदानीमुद्वोढुं स यान्तं सङ्घं ददर्श ह।
मस्तनाथः स्वयं जन्यं पयस्तदप्यपाययत्[2]।।४०।।

उसी समय विवाह करने के लिए जाते हुए संघ (बारात) को देखा; तब मस्तनाथजी ने स्वयं उत्पन्न किए हुए उस दूध को उन्हें पिलाया।

प्रतिस्वन्ते प्रसन्नाश्च पप्रच्छुरिदमादरात्।
का जातिः कस्य बालस्त्वं परमार्थपरायणः।।४१।।

दुग्ध-पान करने के अनन्तर प्रसन्न हुए उन्होंने आदर से यह पूछा कि तुम्हारी कौन जाति है तथा परोपकार में लीन तुम किसके बालक हो?

गोपाः समूचुस्तत्सर्वं शशंसुः सिद्धिमादरात्[3]।
स्तोकपात्रेण[4] चैकेन पायिताः सकलाः पयः[5]।।४२।।

घर जाकर ग्वालों ने उस विषय में कहा और वे आदर से सिद्धि की प्रशंसा करने लगे कि इसने एक छोटे से पात्र से सबको दूध पिला दिया।

अत्यल्पसाधनैरीश ! समं स गोपबालकान्।
सङ्घशोऽथ[6] जनान् सर्वान् व्यदधान्मुदितानिति।।४३।।

हे ईश मस्तनाथ ! अत्यन्त छोटे साधनों से सभी गोप बालकों के साथ-साथ सभी बारातियों को आपने दूध पिलाकर प्रसन्न कर दिया है।

सिद्धस्येतस्य यत्कर्म न चेदमन्यपूरुषे।
ईशो वाऽयं स्वयं सिद्धो नान्यस्ते[7] प्रोचुरादितः[8]।।४४।।

---

१. पाठभेद-जगदुः। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-पाययामास सत्वरम्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-सिद्धिदं पयः। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-लघुपात्रेण। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-वयम्। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-समवेतान्। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद-प्रसिद्धः। (प्रकाशित प्रति) ८. पाठभेद-आदरात्। (प्रकाशित प्रति)

इस सिद्ध का जो यह कर्म है, यह दूसरे पुरुष में संभव नहीं। अतः यह स्वयं ईश्वर है अथवा कोई सिद्ध पुरुष है, दूसरा साधारण पुरुष नहीं-इस प्रकार आरम्भ से लेकर सारा वृत्तान्त कह दिया।

सबलासुततां गत्वा रेवारिज्ञातिवर्धनः।
मस्तनामा केसरिहटे ग्रामे निवसत्ययम्[१]।।४५।।

सबला का पुत्र बनकर रैबारि जाति को बढ़ानेवाला यह मस्त नामक बालक केसरिहट्ट गांव में रहता है।

सिद्धं तं मस्तयोगीन्द्रं नामं नामं मुदान्विताः।
नाम कर्म च तच्छ्रुत्वा[२] गायन्तो वव्रजुः पथः।।४६।।

उनके नाम व कर्म को सुनकर उस सिद्ध योगिराज मस्तनाथजी का बार-बार स्मरण करके (अथवा प्रणाम करके) उनके सुन्दर एवं विस्मयजनक कार्यों का गान करते हुए मार्ग से (अपने घर की तरफ) चले गए।

सायं समेत्य गोपास्ते मस्तनाथो निजाश्च गाः।
स्वं स्वं गेहं समाजग्मुर्मस्तकीर्तिं सुगायिनः।।४७।।

सायंकाल वे ग्वाले एकत्रित होकर मस्तनाथ और अपनी गायों को साथ लेकर मस्तनाथजी की सुन्दर कीर्ति का गान करते हुए अपने-अपने घर चले गए।

स्त्रियो नरा जगुर्बाला गोपाला यत्र तत्र हि।
ग्रामे गेहे हट्टवाट्यां कीर्तिं तामेव निर्मलाम्[३]।।४८।।

स्त्री-पुरुष, बालक एवं गोपाल सबके सब जहां-तहां गांव में, घर में, बाजार में, गली-गली में उनकी निर्मल कीर्ति का गान करने लगे।

गायन्ति[४] स्म च तत्तातसमीपेऽचकथन्मुदा।
परीक्षा[५] मस्तनाथस्य कृता सिद्धेः परं गतः।।४९।।

---

१. पाठभेद-यह पद्य केवल पाण्डुलिपि में हैं, प्रकाशित प्रति में नहीं।
२. पाठभेद-कर्माणि रम्याणि। (प्रकाशित प्रति)
३. ४८, ४९ पद्य केवल पाण्डुलिपि में हैं, प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
४. पाठभेद-ते गायन्ति। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-समीक्षा। (प्रकाशित प्रति)

और गान करते हुए वे उनके पिता के पास जाकर कहने लगे कि मस्तनाथ की परीक्षा कर ली गई है, वे सिद्धि की पराकाष्ठा को प्राप्त हो गए हैं।

स्तोकपात्रेण सोद्वोढ्नी संघशस्तृषितान् पयः।
परिपूर्णपरितृप्तिक्षममेवमपाययत्[१] ।।५०।।

विवाह करने के लिए जाती हुई प्यासी बारात को एक छोटे से पात्र से छका-छका कर दूध पिला दिया।

स्वगेहबालकं ज्ञायं ज्ञायं ते न विशश्वसुः।
विपर्य्येत्य मुहुर्जन्यैर्यदाऽसौ प्रतिबोधितः[२] ।।५१।।

उनके माता-पिता ने अपने घर का बालक समझकर उस बात पर विश्वास नहीं किया परन्तु बारातियों ने वापिस लौटकर ज़ब उनसे कहा तो उन्हें विश्वास होगया।

सबलास्त्वं महाभाग्यो यद्गोहे निवसत्ययम्।
बालरूपः स भगवान् ज्ञातसिद्धिर्जने जने[३] ।।५२।।

हे सबला ! तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो जो यह तुम्हारे घर में निवास करता है। वह बालरूपधारी भगवान् ही है जिसकी सिद्धि जनता में प्रसिद्ध हो गई है।

तेषान्तद्वचनं श्रुत्वा भोज्यचोष्यावलेह्यकैः।
पानीयैश्चासनैः सर्वाञ्ज्ञातीन् सदकरोन्मुदा[४] ।।५३।।

उन बारातियों का वचन सुनकर सबला ने भोज्य (खाने योग्य), चोष्य (चूसने योग्य), लेह्य (चाटने योग्य) आदि पदार्थों से, जल तथा आसनों से उन सब बन्धुओं का बड़ी खुशी से सत्कार किया।

---

१. पाठभेद-यह पद्य केवल पाण्डुलिपि में है।

२. इस पद्य के बाद केवल प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :-
विशश्वास पिता धीमान् कथनोपकथादरः।
अहो लोकस्य वैमत्यं प्रत्यक्षेऽपि क्रियापदे।।४८।। (प्रकाशित प्रति)

३. इस पद्य के पश्चात् पाण्डुलिपि में निम्न पद्य है जिसमें मात्र पुनरुक्ति है :-
अस्मानाहूय स्वज्ञातीन् स्वयं पीत्वा पयोऽल्पकम्।
दभ्रद्यात्रस्थमेवासीत् परि तृप्ताँश्चकार ह।।५०।। (पाण्डुलिपि)

४. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :-
आदयामास चान्नानि विविधानि समैर्जनैः।
सबलापदपूर्णोऽसौ गोपालैः शान्तिमानयम्।।५०।।

तदुक्तं समुपाश्रुत्य सत्कृत्य विससर्ज तान्।
पुनर्बालं परं ज्ञात्वा नाऽसौ सेहेऽवमाननाम्[१]।।५४।।

उनके कथन को सुनकर सत्कार करके उनको विदा कर दिया। फिर अपने बालक को श्रेष्ठ जानकर इस सबला ने किसी के भी द्वारा किए गए इसके तिरस्कार को सहन नहीं किया।

समाहूय जगादेदं गृहकर्म न ते क्षमम्।
न गाश्चारय गेहे स्वे भजनं कुरु साम्प्रतम्[२]।।५५।।

फिर उस बालक मस्त को बुलाकर पिता ने कहा कि तुम्हारे लिए घर का काम करना उचित नहीं है और न ही गायें चराया करो बल्कि अब तुम घर में बैठकर भजन किया करो।

महापुरुषमेवं स मत्वा बालं सिषेव तम्।
मुहुर्मुहुः क्षमां तस्माद् ययाचे पूर्वकष्टतः[३]।।५६।।

इस प्रकार वह सबला उस बालक को महापुरुष मानकर उसकी सेवा करने लगा और पहले दिए गए कष्ट के लिए उससे बार-बार क्षमा याचना की।

अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानाद् विज्ञानाद्वाविशेषतः।
क्षम्यतां मस्तनिष्ठस्त्वमनामा नामवान् प्रभुः[४]।।५७।।

यदि अज्ञान के कारण अथवा जानते हुए अथवा विशेषकर विशेष ज्ञान के कारण (विशेष विवेचन के कारण जो आपके प्रति अपराध किया गया है उसे) हे मस्ती में रहनेवाले प्रभु ! तुम बिना नामवाले (संज्ञाहीन) अथवा नामवाले मुझे क्षमा कर दो।

कृष्णः स्वमातापितरौ ददर्श सुतत्वभावीयवरापराधात्।
यावत् स्वबाल्यीयबुभुक्षितादि तापादरवीन्दुगणान् सुबद्धौ[५]।।५८।।

---

१. पाठभेद-मस्तशंशां समाकर्ण्य सत्कृत्य विससर्ज तान्।
पुनर्बालं परं ज्ञात्वा न सेहे चावमानंनाम्।।५१।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-समाहूय जगादेदं पिता मस्तं स्वबालकम्।
सेव्यन्तां च त्वया गावो गृहकर्म न ते क्षमम्।।५२।।

३. पाठभेद-पूर्वविकृतेः। (प्रकाशित प्रति) ४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

५. कृष्णः स्वमातापितरौ तदानीं निदर्शयामास शिशुत्वलीलाः।
श्रीमस्तनाथोऽपि तथैव नैजाः प्रदर्शयामास रवीन्दुपूगम्।।५९।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने माता-पिता को अपनी बाल्यावस्था सें लेकर बारह वर्ष तक खाना-पीना आदि लीला दिखाई क्योंकि मैं तुम्हारे घर पुत्ररूप से जन्म ग्रहण करूंगा ऐसा वरदान पहले ही दे दिया था, वैसा ही मस्तनाथजी ने किया (पाण्डुलिपि सें संकलित)।

नरकपातभीतोऽसौ सिद्धतापाऽपनोदनम्।
क्षमासंप्रार्थनामेष मेने स्वपितृतर्पणम्[१]।।५९।।

माता-पिता से सेवा करानेवाला नरक में गिरता है, ऐसा विचार कर मस्तनाथजी ने भी परिपक्व पाप को हटानेवाला और माता-पिता को खुश करनेवाला साधन क्षमाप्रार्थना को ही माना।

इति श्रीमस्तनाथचरिते दुग्धवर्षासिद्धिनाम चतुर्थः सर्गः।

उस समय कृष्ण ने अपने माता-पिता को अपने बचपन की लीलाएं दिखाई थीं, उसी प्रकार श्रीमस्तनाथजी ने भी अपनी लीलाएं दिखलाई, वे दोनों (कृष्ण और मस्तनाथ) सूर्य और चन्द्रमा का सामूहिक रूप थे। (प्रकाशित प्रति)

१. प्रकाशित प्रति में यह पद्य नहीं है। पाण्डुलिपि में यह अन्तिम पद्य है। इसका हिन्दी अनुवाद भी यहां पाण्डुलिपि से ही संकलित है।

पञ्चमः सर्गः

सिद्धगोष्ठीस्थमस्तनाथदर्शनप्रकरणम्

चरित्रमेकं परमं पवित्रं प्रत्यूहवारस्य[1] परं ह्यरित्रम्।
सावित्रमेकं सुकृतस्य चित्रं वक्ष्यामि शक्त्याहितमस्तशस्तम्[2] ।।१।।

अद्वितीय चरित्र, अत्यन्त पवित्र, विघ्नों के सागर को पार करनेवाले, नौका के उत्कृष्ट दण्डस्वरूप, सूर्यसम्बन्धी, पुण्य की एकमात्र तस्वीर, शक्ति के द्वारा दृढ़ किये गए (स्थापित) मस्तनाथ की प्रशस्ति का मैं वर्णन करूंगा।

यहां सूर्य तेज का प्रतीक है तथा 'अरित्रम्' शब्द का मस्तनाथजी के पक्ष में दूसरा अर्थ भी लिया जा सकता है। 'अरि' का अर्थ है शत्रु-काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, मद-ये छः शत्रु प्रत्येक प्राणी के भीतर विद्यमान होते हैं, जो प्राणी को कदम-कदम पर भ्रमित करते रहते हैं। 'त्र' का अर्थ है-रक्षा करनेवाला। जो मस्तनाथ अपने भक्त को इन छः शत्रुओं के पाश से मुक्त करता है अथवा संसार सागर से पार उतारने का उत्तम साधन है।

तत्रैव मस्तस्य समीपगेहे संवासमासादितवान् द्विजेशः।
साक्षाद् व्यधाद् यत् प्रतिवेशिताया निवेशितात्मा भगवत्सु भक्तिः[3] ।।२।।

उस ग्राम में मस्त के समीपवर्ती घर में एक ब्राह्मणों का मुखिया रहता था। पड़ोस में रहनेवाले उसका चित्त परमेश्वर में हमेशा लगा रहता था और परमेश्वर में उसकी प्रगाढ़ भक्ति भी थी। उसने अतिथियों के बैठने के लिए एक बैठक बनवा रखी थी।

विषीदता नाथ ! भवानलोपमे विषादभूमौ भवसागरे विभो।
परं प्रतीकारमपश्यताऽधुना मयाऽयमात्मा भवते निवेदितः।।३।।

हे सर्वव्यापक स्वामिन् ! आप अग्नि के समान तेजस्वी हैं अतः चिन्ता के स्थान संसाररूपी सागर में निरन्तर खिन्न होते हुए इस संसार सागर से निकलने का और कोई दूसरा उत्कृष्ट उपाय न देखनेवाले मैंने इस समय स्वयं को आपको

---

१. पाठभेद-संघस्य। (पाण्डुलिपि)
२. पाठभेद-तेजः श्रीमस्तनाथस्य गुणैः समस्तम्। (पाण्डुलिपि)
३. पाठभेद-परमेशचेताः। (प्रकाशित प्रति)

सौंपा है अर्थात् आपके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा इस संसार से पार उतारनेवाला नहीं है अत: मैं पूर्णरूप से आपकी शरण में आगया हूं।

इत्थं प्रतिदिनं धीमान् भगवद्ध्यानतत्पर:।
निगदन् स्वात्मसंलापान् कालचक्रं दधार स:[१]।।४।।

इस प्रकार प्रतिदिन भगवान् के ध्यान में लीन उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने अन्त:करण के संलापों (भावों) का कथन करते हुए कालचक्र को धारण किया अर्थात् वह ब्राह्मण हमेशा भगवान् के ध्यान में लगा रहता था और परमात्मा के विषय में अपने आप से ही बातचीत करता रहता था और परमात्मविषयक अपने विचारों को दूसरों को भी बताया करता था। इसी तरह उसका काफी समय भगवद्चर्चा में गुजर गया।

वेदेषु वेत्ताऽखिलशास्त्रचुञ्चु:[२] पुराणगुण्योविदभूषणोऽपि[३]।
कौलीन्यसौन्दर्यसुशीलाभिरनन्य एको मिसराभिधोऽसौ[४]।।५।।

वह 'मिसर' नामक ब्राह्मण सभी वेदों को जाननेवाला, समस्त शास्त्रों में पारंगत, पुराणों के जाननेवाले धुरंधर विद्वानों में अग्रगण्य, कुलीनता, सुन्दरता एवं सुशीलता आदि गुणों में जिसकी बराबरी दूसरा कोई नहीं कर सकता था।

दिवा स्ववेदार्चनयज्ञजप्यान्याचारनिष्ठ: स चचार नित्यम्।
रात्रौ सुरार्चाजपमात्रनिष्ठां तज्जागरूकस्य हि तस्य कृत्यम्।।६।।

दिन में वह अपने वेदों की पूजा (स्वाध्याय), यज्ञ, जपादि सदाचार में हमेशा लगा रहता था और रात में भी देवताओं का पूजन, जपादि करते हुए जागता रहता था।

यस्यां निशायामथ यत्र यामे सुष्वाप लोक: स जपादिरामे।
रेमे प्रमत्त: प्रकरोति नित्यं जागर्ति पुण्यं बहु सञ्चिनोति।।७।।

रात के जिस पहर में जब लोग सो जाया करते हैं उसमें भी वह सावधान होकर जपादि के द्वारा ईश्वर में रमण किया करता था तथा ईश्वर की भक्ति में मस्त वह नित्य ही इस प्रकार के कर्म करता हुआ जागता रहता था और इस प्रकार उसने बहुत सारा पुण्य अर्जित कर लिया था।

---

१. ३, ४ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद-शासक:। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-पारीणधुरीणभूषण:। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-सुशीलतालयो बभूव साक्षान्मिसराभिधानक:। (प्रकाशित प्रति)

नित्यं यापयता रात्रिं प्रतिवेशगृहे तदा।
ददृशेऽत्यद्भुतामर्त्यलीला शीलाऽनुरागिता।।८।।

तब नित्य अपने अतिथिगृह में रात बिताते हुए उस सदाचारी ने देवताओं की अद्भुत लीला देखी।

सबलाजः स्वयं साक्षान्मस्तनाथोऽवलोक्यते।
युवाऽवधूतः सुजटाधारी[1] भूतिविभूषितः।।९।।

उसने देखा कि सबला का पुत्र मस्त बड़ा सुन्दर युवा अवधूत के रूप में सुन्दर जटाधारी, भस्म से सुशोभित साक्षात् मस्तनाथ दिखलाई पड़ रहा है।

सिद्धासनः पाटितकर्णः शुभ्रसत्कुण्डलो भूतिसुकृष्टियष्टिः।
गले स सेलीति गृहीतलिङ्गैरनेकनाथाऽऽश्रितनाथमूर्तिः[2]।।१०।।

सिद्धासन लगाए हुए कानों में सुन्दर कुण्डल पहने हुए, शरीर पर विभूति रमाये हुए, गले में सेली आदि चिह्नों से भूषित, अनेक नाथों से सेवित वे वस्तुतः गोरक्षजी की मूर्ति को धारण किए हुए प्रतीत होते हैं।

व्यक्तः शिवः कुण्डलिकर्णभूषो मत्स्येन्द्रनाथोऽथ तदा[3] त एते।
नाथा भुजङ्गाभरणं विहाय तदाकृतिं कुण्डलिनीं धरन्ति[4]।।११।।

---

१. पाठभेद-धूताङ्गः (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है और इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न दो पद्य उपलब्ध होते हैं :-

(क) जटाधरः कुण्डलवान् मनोहरो मनोरथानां परिपूरकः शिवः।
गले स सेलीति गृहीतलक्षणैर्विलक्षणैः शोभितवज्रसिद्धिकः।।१०।।

वह मस्त (उस ब्राह्मण को) जटाधारी, कुण्डल पहने हुए, गले में सेली धारण किए हुए, इस प्रकार के अद्भुत चिह्नों से सुशोभित वज्र नामक सिद्धि को देनेवाले एवं मनोरथों को पूर्ण करनेवाले मनोहारी भगवान् शंकर के रूप में दिखाई दिया।

(ख) अदर्शि तेनाथ महर्षिराजितो विराजितो विक्रमविष्णुभूतिमान्।
गोरक्षनाथोऽयमिति ब्रुवाणः पुनान आस्ते किल मस्तनायकः।।११।।

३. पाठभेद-यदा। (पाण्डुलिपि)

४ इसके बाद के १०, ११, १२ पद्यवाला पृष्ठ पाण्डुलिपि में नहा है।

तब ऐसा लगता था कि यह मस्त स्पष्ट ही कानों में कुण्डलों के आभूषण पहने हुए कल्याणकारी रूप (शिव) वाले साक्षात् मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं और दूसरे नाथयोगी सर्पों के आभूषण को छोड़कर कानों में कुण्डल पहने हुए उन्हीं के स्वरूप को धारण किये हुए हैं अर्थात् दूसरे नाथयोगियों के गले में सर्प नहीं हैं जबकि मस्त के गले में सर्पों के आभूषण हैं जो शिव के ही होते हैं। अतः मस्त साक्षात् शिव ही प्रतीत होते थे।

शिवो यथाष्टात्मगणैः परीतो भवादिभिर्जीव इव स्वभूतैः।
अन्तर्मनो बुद्धिरहङ्कृतिं स्वां स देहमाश्रित्य परिस्थितैर्वा।।१२।।

जैसे शिव भव आदि अपने आठ गणों से घिरा रहता है और जैसे जीव अपने पंचमहाभूतों के साथ-साथ अपने भीतर मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त के साथ अपने शरीर का आश्रय लेकर रहता है उसी प्रकार वह मस्त चारों ओर बैठे हुए उन महर्षियों से घिरा हुआ था।

द्वितीययामेऽथ गते त्रियामा सचेतना तेन च तैरलोकि[1]।
नाऽन्येन कौतूहलमेतदीयं संदृश्यते स्माद्रवमाप्तनिद्रैः।[2]।।१३।।

इसके अनन्तर रात्रि के दूसरे पहर के बीत जाने पर उस मस्तनाथजी के संबंध से प्रकाशमान रात्रि को उन लोगों ने देखा और दूसरे ने इस कौतुहल को नहीं देखा क्योंकि वे सो रहे थे।

निद्रामुद्रातिगो विप्रो नित्यमेतद् ददर्श सः।
कस्मैचिन्नोक्तमेतत्स्वजागृतेर्गुप्तिभीरुणा।।१४।।

निद्रा को जीतनेवाले उस ब्राह्मण ने प्रतिदिन ही यह सब कुछ देखा और किसी को भी इसके विषय में नहीं बताया क्योंकि वह अपने इस रात्रि के जागरण को गुप्त रखना चाहता था।

मुहुर्मुहुर्योगिजनस्य तत्र स्वालोकतो भर्जनवह्नितुल्यम्।
चेतस्तदीयं कणवद् बहिस्तच्चकार वृत्तं न ममौ तनौ सः।।१५।।

जैसे भड़भूजे की अग्नि से चिंगारियां निकलती हैं उसी तरह योगिजनों को बार-बार देखने से उसके चित्त ने उस वृत्तान्त को बाहर निकाल दिया। वह उसे अपने मन में पचा नहीं सका।

---

१. पाठभेद-प्रकाशमाना च तदा मुदादृता। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-व्यलोकि लोकैर्द्विजराजशोभितैर्नान्येन कौतूहलमेतदीयम्। (प्रकाशित प्रति)

तदा स सबलागेहं समागत्याऽब्रवीद्[1] वचः।
योगिसंज्ञानाथलोकाः[2] कुतस्ते गृहमागताः।।१६।।

तब वह सबला के घर आकर कहने लगा कि तुम्हारे घर में रात्रि में नाथ योगिजन एकत्रित होकर कहां से आते हैं।

दिवा तैरुष्यते[3] कुत्र नक्षत्रैरिव चन्द्रवत्[4]।
रात्रौ सर्वे भवन्त्यत्र कियत्कालनिवासिनः।।१७।।

नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा की भांति वे दिन में कहां रहते हैं। रात्रि में सभी यहां होते हैं। वे कितने समय आपके घर रहते हैं।

चिन्तितो बहुधा प्रष्टुं भवानागत्य कार्यतः।
नायातमद्य तद्धूमहुतभुग्दर्शनं कुरु।।१८।।

नाना प्रकार से चिन्तित हुआ मैं आपसे पूछना चाहता था परन्तु मैं कार्यवश नहीं आ सका। अतः आज मुझे उस धूने की अग्नि का दर्शन कराओ अथवा आप किसी काम के बहाने मेरे घर आकर वहां से उस धूने की अग्नि का दर्शन करना अर्थात् अपने पुत्र के करिश्मे को स्वयं अपनी आंखों से देखना।

सबला सस्मितं प्रोचे भूदेववचनं तव।
कौतुकैर्भरितं कस्मा[5]न्नमोऽस्तु तिष्ठ सुव्रत।।१९।।

सबला ने मुस्कराकर कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम्हारा यह वचन मज़ाक-सा मालूम पड़ता है फिर भी हे सुव्रती ! आपको नमस्कार ! आप तनिक बैठिए।

इत्युक्त्वाऽऽसनमास्तीर्य नामं नामं पदोः शिरः।
सादरं साञ्जलि प्रोचे सत्यं मे वचनं शृणु।।२०।।

इस प्रकार कहकर आसन बिछाकर बार-बार पैरों में सिर नवाया और हाथ जोड़कर आदर के साथ कहा कि मेरे सत्य वचन को सुनो।

योगी नाथः परिव्राड् वा नात्र कश्चित् समीक्षितः।
न धूमो हुतभुग् क्वापि[6] लोकवाक्यैर्भ्रमस्तव।।२१।।

यहां पर कोई भी नाथयोगी अथवा संन्यासी हमने नहीं देखा है। न धुआँ (धूना) है और न ही कहीं अग्नि है। लोगों के कहने से यह तुम्हारा भ्रममात्र ही है।

---

१. पाठभेद-अवदत्। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-समाख्याताः। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-वर्जितं। (पाण्डुलिपि) ४. पाठभेद-चोरवत्। (पाण्डुलिपि)
५. पाठभेद-कौतुकाकारसम्पन्नम्। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-भाति। (प्रकाशित प्रति)

यैरुक्तमुपहासार्थं मद्गेहं दर्शितं च तैः।
प्रष्टव्यास्ते नरा विप्र ! वृथा[1] हास्यकरास्तव।।२२।।

जिन्होंने हंसी के लिए कहा है कि उन्होंने मेरे घर में देखा है। अतः हे ब्राह्मण ! उन्हीं व्यक्तियों से जाकर पूछो। तुम्हारे वचन व्यर्थ एवं हास्यास्पद हैं।

पुनर्विप्रमुवाचेदं मया दृष्टं[2] स्वचक्षुषा।
जागर्मि रात्रौ देवार्चनावशाज्जप्यं करोम्यहम्।।२३।।

ब्राह्मण ने पुनः यह कहा कि मैंने अपनी आंखों से देखा है। मैं देवपूजा के निमित्त रात में जागता रहता हूं और जप करता रहता हूं।

त्वद्गेहे हुतभुक्तापं भस्माङ्गरागयोगिनः।
विदधत्येव[3] नित्यं ते गेहे मे पश्यतोऽक्षगाः।।२४।।

अंगों में भस्म रमाये हुए योगिजन तुम्हारे घर में नित्य मेरी आंखों के सामने मेरे देखते-देखते धूनी जलाते हैं और वे तुम्हारे घर में रहते हैं।

सादृश्यसंदर्शनमूलभावा हार्दाः सदोषाक्षजनस्य बुद्धिम्।
भ्रमात्मिकां चेद् विदधत्यदुष्टं नेत्रेन्द्रियं मे न तथा प्रविद्धि।।२५।।

दोषयुक्त नेत्रवाले मनुष्य की बुद्धि सादृश्य देखने से झूठी हो जाती है; जैसे पीलिये का रोगी सफेद शंख को भी पीला ही देखता है, जैसे सीपी की चमक को देखने से उसमें चांद का भ्रम होता है परन्तु मेरा नेत्र दोषरहित है। मुझे वैसा मत समझो।

इत्युक्त्वा सबला गूढमन्त्रभेदनलालसः।
गृहं गत्वार्धरात्रौ तल्लोकान् सर्वानदर्शयत्।।२६।।

इस प्रकार कहकर ब्राह्मण ने सबला के घर के उस गूढ़ रहस्य को प्रकाशित करने की इच्छा से घर जाकर आधी रात में उस दृश्य को सब लोगों को दिखलाया।

यद्दृष्टं कौतुकं नित्यं धुनिहुतभुक्प्रतापनाः।
योगिनः सबलागेहे मस्तस्य परितः स्थिताः।।२७।।

ब्राह्मण जो प्रतिदिन देखता था, वही उन लोगों ने भी देखा कि धूने में अग्नि को प्रज्वलित किये हुए धूनी तपनेवाले बहुत से योगिजन सबला के घर में मस्त के चारों ओर बैठे हुए हैं।

---

१. पाठभेद-मृषा। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-अदर्शि। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-कुर्वन्त्येव। (प्रकाशित प्रति)

प्रातर्दृष्ट्वा समीपस्थान्[1] प्रतिवेशनिवासिनः।
अन्यान् सुविदितान् चक्रुः[2] सबलासत्यवाक्यताम्।।२८।।

नजदीक पड़ोस में रहनेवाले लोगों ने उस दृश्य को देखकर सवेरे दूसरे लोगों को सबला के असत्य वचन का ज्ञान कराया।

यत[3]स्ततः स तच्छ्रुत्वा सबला निन्दनं निजम्।
सत्यवाक्यं द्विजस्यापि मत्वा स विस्मयं गतः[4]।।२९।।

सबला ने इधर-उधर से अपनी निन्दा कि मेरी बात झूठी है इस बात को सुनकर और ब्राह्मण की बात सच्ची मानकर वह चकित रह गया।

दुःखितो निन्दया गत्वा विप्रस्य सदनं प्रति।
जगाद दुःखतो वाक्यं त्वद्वाक्यं सुविचारये।।३०।।

अपनी उस निन्दा के कारण दुःखी हुआ सबला ब्राह्मण के घर जाकर बड़े दुःख से कहने लगा कि तुम्हारा कथन भली प्रकार विचार के योग्य है अर्थात् मैं स्वयं इस तथ्य की प्ररीक्षा करना चाहता हूं।

स्वनेत्राभ्यां यदा धूमहुतभुक्तापिनो गृहे।
द्रक्ष्यामि सत्यवाक्यत्वं भवतो मंस्य ईदृशम्[5]।।३१।।

जब मैं अपनी आंखों से धूने की अग्नि से स्वयं को तापनेवाले (योगियों) को अपने घर में देख लूंगा तब मानूंगा कि आपके वचन सत्य है।

इत्युक्त्वा गृहमायातो निशीथे ददृशेऽथ सः।
विप्रेण सुसमाहूय दर्शिता सत्यवादिता।।३२।।

इस प्रकार कहकर सबला अपने घर आ गया। फिर रात्रि में भी उसने वह दृश्य देखा तथा ब्राह्मण ने भी उसे अपने घर बुलाकर अपनी सत्यवादिता को दिखला दिया अर्थात् उसे वह दृश्य दिखाकर अपनी बात को सत्य सिद्ध कर दिया।

पश्य त्वं हृदयानन्दवर्धनं नन्दनं निजम्।
हुतभुग्विश्वतो योगितरुवृन्दाढ्यनन्दनम्[6]।।३३।।

तुम हृदय के आनन्द को बढ़ानेवाले अपने पुत्र को देखो जो कि अग्नि के चारों ओर बैठे हुए योगिजनों के आनन्द को विशेष रूप से बढ़ा रहा है।

---

१. पाठभेद-विलोक्य तद्दृश्यं। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-बोधयामासुः। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-इतः। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-ययौ। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-तदा मंस्ये भवद्वचः। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-जनानन्दप्रवर्धनम्। (प्रकाशित प्रति)

प्रागुक्तं[१] न मतं सत्यं मिथ्या[२] मे वचनं कुतः।
इदानीं[३] सत्यतां यातमज्ञ! माया सुतस्य ते।।३४।।

ब्राह्मण ने कहा कि पहले कहे गए मेरे सत्य वचन को तुमने नहीं माना। मेरा वचन कहां से झूठा था? हे अल्पज्ञ! इस समय तुम सच्चाई को जान गये हो कि यह तुम्हारे पुत्र की करतूत (माया) है।

सिद्धिं सुविपुलां नित्यं बहुधा दर्शयत्ययम्।
न मन्यसे गृही मूढश्चौरसङ्घी किमीदृशः[४]।।३५।।

यह नित्य अपनी अत्यन्त विशाल सिद्धि को अनेक प्रकार से दिखला रहा है परन्तु तू मूर्खता के कारण नहीं मानता। क्या कहीं इस प्रकार की चोरमण्डली होती है?

धनी गुणी सदा मानी पिता पुत्रश्च तादृशः।
ईशवत् सिद्ध सालोक्यं दर्शि[५] पुत्रोऽधिगण्यताम्।।३६।।

जो पिता धनी, गुणी और सदा स्वाभिमानी होता है उसका पुत्र भी उसी प्रकार का होता है परन्तु त्रिलोकदर्शी सिद्ध पुत्र ईश्वर की भांति अधिक शक्तिशाली मानना चाहिए। भाव यह है कि हे सबला! अपने इस पुत्र को औरों के पुत्रों की भांति साधारण मत समझ।

दृष्ट्वा श्रुत्वा विचार्येत्थं सबला गृहमागतः[६]।
गेहखण्डेऽस्मदीये तत्सत्यं तत्कौतुकं त्विति[७]।।३८।।

स्वयं देखकर, सुनकर और इस प्रकार विचार कर सबला अपने घर आगया, तब उसने निश्चय किया कि मेरे ही घर में यह अद्भुत लीला होती है, यह सत्य है।

---

१. पाठभेद-पूर्वोक्तम्। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-मृषा। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-सम्प्रति। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। इसके स्थान पर निम्न पद्य है :-
प्रत्यक्षा दृश्यते सिद्धिर्दर्शिता च मया तव।
पुत्रस्य ब्रह्मरूपस्य सत्यं मे वचनं शिवम्।।३६।।
यह प्रत्यक्ष सिद्धि दिखाई देती है जो कि मैंने तुम्हारे ब्रह्मरूप पुत्र की यह सिद्धि दिखला दी है। अतः मेरा वचन सत्य एवं कल्याणकारी है।

५. पाठभेद-सिद्धि सालोक्यदर्शी। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-अभ्यगात्। (प्रकाशित प्रति)

७. पाठभेद-निश्चिकाय महाप्राज्ञ आद्यरूपं सुतं निजम्। (प्रकाशित प्रति)
अत्यन्त बुद्धिमान् उसने निश्चय किया कि मेरा यह पुत्र प्रारम्भ में होनेवाले (शंकर) का ही स्वरूप है।

दृष्टं सुतस्य तत्तेजः सा मूर्तिरङ्गसौष्ठवम्[1]।
न भ्रमो देवगन्धर्वा योगीन्द्रा निशि वीक्षिताः।।३९।।

पुत्र के उस तेज, उस आकार और अंगों के लावण्य को देखकर सबला को भ्रम नहीं रहा और वह कहने लगा कि उसने रात्रि में देवता, गन्धर्व और श्रेष्ठ योगिजनों को देखा है।

पुरवासिजनाँस्तत्र समाहूय पृथक् पृथक्।
ख्यातं वृत्त न चिह्नं तद् धूमिवह्नेरदर्शि तत्[2]।।४०।।

वहां नगर के सब लोगों को बुलाकर अलग-अलग सब हाल बता दिया परन्तु धूने की अग्नि का कहीं नामोनिशान भी नहीं दीख रहा था[3]।

पिता पुत्रं समाहूय निजाङ्के विनिवेश्य तम्।
स्नेहवाक्यमुवाचेदं स्वाश्चर्यं मम नन्दन।।४१।।

पिता ने पुत्र को बुलाकर उसे अपनी गोद में बिठाकर स्नेहपूर्ण वचन कहा कि हे पुत्र ! यह मेरा अपना आश्चर्य है अर्थात् मैंने उस अद्भुत दृश्य को भी अपनी आंखों से भी देखा है; मुझे इस विषय में बहुत हैरानी हो रही है। तनिक इसके विषय में बताइए कि इसका रहस्य क्या है ?

नित्यमेतच्चरित्रं मे गृहे संदृश्यते जनैः।
मया च चक्षुषा दृष्टं योगिनः के सुरैः समाः।।४२।।

मेरे अपने घर में मैंने अपनी आंखों से और दूसरे लोगों ने भी तुम्हारे इस विचित्र चरित्र को देखा है अतः वे देवों के तुल्य अथवा जिनके साथ देवता भी थे; वे योगिजन कौन थे ?

विविच्य वद पुत्रेति वाच्यं श्रुत्वा जगाद सः।
अज्ञबालस्य किं ज्ञानं ? जानीहि वृत्तमर्थतः।।४३।।

---

१. पाठभेद-मूर्तिश्चाङ्गसौष्ठवम्। (प्रकाशित प्रति)

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
न धूनिचिह्नं न च धूनिधूमो भ्रमो न माया न विपर्ययोऽपि।
सुतस्य तस्याथ निजस्य सिद्धिं विदांचकाराद्यमनीषया ताम्।।४०।।

३. ४०वें पद्य के बाद ४१वें से ४६ पद्यवाला पाण्डुलिपि का पृष्ठ उपलब्ध नहीं है।

हे वत्स ! तनिक विवेचन करके बताओ। पिता के इस वचन को सुनकर वह मस्ताना बोला कि अज्ञानी बालक को कैसा ज्ञान ? स्वयं ही यथार्थरूप से सारे वृत्तान्त को जान लो।

नालोकितानि नाधीतान्यद्यापि संश्रुतानि न।
शास्त्राणि ज्योतिरादीनि कथं वेद्मि त्वदीक्षिताम्।।४४।।

हे पिता ! मेरे द्वारा ज्योतिष आदि शास्त्र नहीं पढ़े गए, न ही देखे गए, न ही सुने गए। तब मैं तुम्हारे द्वारा देखे गए विषय को किस प्रकार जान सकता हूं ?

वेत्तु विद्वानधीशो वा कर्त्ता वा जगतः स्वयम्।
सिद्धो वा त्वं कथं तात ! बालस्य गतिरत्र मे।।४५।।

इस विषय में तो विद्वान् जाने अथवा जगत् का स्वामी परमेश्वर जाने अथवा स्वयं जगत् का सृजनहार जाने अथवा कोई सिद्ध ही जाने। हे तात ! मेरे जैसे बालक की इस विषय में क्या पहुंच हो सकती है अर्थात् मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता।

श्रुत्वा सुतस्य तद्वाक्यं भृशं चिन्तार्तिदुःखितः।
विस्मयं प्राप्तवानाह सुर एष प्रतीयते।।४६।।

पुत्र के उस वचन को सुनकर चिन्ता और परेशानी से अत्यन्त खिन्न हो सबला चकित हुआ और कहने लगा कि यह कोई देवता प्रतीत होता है।

भक्ताः कबीररविनानकरत्ननाथपूर्णादयो
बहुतरा रजसा तनुं स्वाम्।
यस्याङ्घ्रिकञ्जमकरन्दमयेन मोदम्
लिम्पन्ति तस्य सुवहन्ति स बालमस्तः[1]।।४७।।

जिसके भक्त कबीर, रविदास, नानक, रत्ननाथ योगी और पूर्ण इत्यादि बहुत से हो गये हैं और जिसके चरण कमल की धूलि को अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं वही यह बालक मस्त है अर्थात् मस्तनाथजी श्रीगोरक्षनाथजी का अवतार है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते सिद्धगोष्ठीस्थमस्तनाथदर्शनं नाम पञ्चमः सर्गः।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है जबकि पाण्डुलिपि में भी श्री द्रव्येश झा मैथिल ने लिखा है कि "इस पद्य को निकाल देना चाहिए।" मैं इसका कारण नहीं जान सकी। अतः इसे संकलित कर दिया गया है।

षष्ठः सर्गः

शिष्यत्वसम्पादनादिप्रकरणम्

स्वयं स रुद्रः परमेश एकोऽप्यसंख्यदेहाननुनिर्मिमीते।
स एव गोरक्ष इतीह मस्तो गुरूपदेशे निजशासितोऽभूत्।।१।।

सबका ईश वह रुद्र भगवान् स्वयं एक होता हुआ भी अनेक शरीरों का निर्माण करता है अर्थात् अनेक रूप धारण कर लेता है, वही गोरक्ष है और वही यहां मस्तनाथ रूप होकर स्वयं गुरु के उपदेश में दीक्षित होगया (यद्यपि वह स्वयं सिद्ध था परन्तु लोकमर्यादा का ख्याल करते हुए उसने स्वयं गुरु धारण करने की इच्छा की और गुरु के उपदेश के अनुसार रहना स्वीकार किया।)

स्वसम्प्रदायाऽनुचरेण चर्या गुरोस्तदाज्ञा न च लंघितेति।
स्वमार्गगान् बोधयितुं चरित्रं विचित्रमेतद् हृदि सन्निधत्ताम्।।२।।

अपने सम्प्रदाय के अनुसार आचरण करते हुए मस्त ने अपने मत के अनुयायियों को ज्ञान देने के लिए गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया (अपितु गुरु की सेवा भी की।) अतः इस अद्भुत चरित्र को अपने हृदय में धारण करो।

रामेशपूजनाद् रामः कृष्णो विप्रगणार्हणात्।
मस्तो मार्गस्य मर्यादापालनदीशताऽच्युता[1]।।३।।

रामेश्वर महादेव की पूजा करने से राम और ब्राह्मणसमुदाय (सुदामादि) का सत्कार करने के कारण कृष्ण तथा मस्तनाथजी भी सिद्ध मार्ग की मर्यादा का पालन करने से अपने ईश्वरपन से च्युत नहीं हुए अर्थात् शास्त्रानुकूल लोकमर्यादा के अनुसार व्यवहार करने से उनकी सर्वसामर्थ्यता में कोई फर्क नहीं पड़ा यद्यपि उन्होंने गुरु धारण भी किया परन्तु इतना होने पर भी सभी उनके विचित्र चरित्र को ध्यान में रखते हुए उनकी प्रभुता को स्वीकार करते हैं।

सबला ग्राम्यमनुजान्[2] समाहूयैकदाऽब्रवीत्।
बालस्य द्वादशाब्दा मे प्राप्तस्य गुर्वनुज्ञया[3]।।४।।

---

१. पाठभेद-अक्षता। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-ग्राममनुजान्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-नाथवाक्यतः। (प्रकाशित प्रति)

सबला ने एक बार गांव के लोगों को बुलाकर कहा कि गुरु गोरक्षनाथजी की कृपा से इस बालक को पाए हुए मुझे बारह वर्ष हो गए हैं।

समाज्ञायि चरित्रञ्च पवित्रं निखिलैर्जनैः।
जलदाह्वानसिद्धिर्या[1] जाता दृष्टाऽथ धेनुपैः।।५।।

सभी लोगों के द्वारा इसका पावन चरित्र जान ही लिया गया है और वह मेघ बरसाने की इसके द्वारा उत्पन्न हुई सिद्धि तो ग्वालों के द्वारा भी देख ही ली गई है।

क्रीडतो वनचारित्रं पयः पात्रेण तर्पणम्।
स्तोकेन संघशो दृष्टं[2] सिद्धगोष्ठीसुसेवनम्[3]।।६।।

गोपों के साथ खेलते हुए इस का वन का चरित्र जैसे-छोटे से दूध के पात्र से समस्त बारात को तृप्त करना तथा सिद्धों की गोष्ठियां करना इत्यादि तो तुम लोगों ने देख ही लिया है।

यद्दिनाद्विप्रवचनादालोकि लोककौतुकम्।
अदभ्राऽभ्रकृतो हर्षो भीतिरूपमुपागमत्।।७।।

जिस दिन से मैंने ब्राह्मण के कहने से इसकी लोकक्रीडा देखी है, उसी दिन से पुत्रप्रात्रि की जो मुझे बहुत प्रसन्नता थी वह अब भयरूप में परिणत हो गई है क्योंकि इसके इस प्रकार के अनोखे आचरणों को देखकर मुझे डर लगने लगा है कि यह घर में नहीं रहेगा और एक दिन यह हमें छोड़कर चला जायेगा।

वने वने भिक्षुकवद् भ्रमन्तमुन्मत्तवद्वस्त्रविवेकहीनम्।
संमोहयन्तं चरितैर्विचित्रैर्दृष्ट्वाति[4]शोचामि किमत्र कार्यम्।।८।।

एक जंगल से दूसरे जंगल में पागल की भांति वस्त्र और विवेक से रहित घूमते हुए तथा अपने अद्भुत आचरणों से लोगों को मुग्ध करते हुए इसे देखकर मैं बहुत चिन्ता करता हूं कि इस विषय में क्या करना चाहिए।

कार्यो मयैकोऽस्य सुखाय नैजनिश्चिन्ततायैकतमः प्रकारः।
असारसंसारपदत्वदर्शी प्रतीयतेऽयं सुरसिद्धकल्पः[5]।।९।।

---

१. पाठभेद-सा मेघाकर्षणासिद्धिर्जाता। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-अदर्शि। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-सिद्धगोष्ठीषु सेवनम्। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-विलोक्य। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-तेजः। (प्रकाशित प्रति)

मुझे इसके सुख के लिए एवं अपनी निश्चिन्तता के लिए कोई एक उपाय करना चाहिए क्योंकि संसार को सारहीन समझनेवाला यह देवता एवं सिद्धों के समान तेजस्वी प्रतीत होता है।

विमृश्यैवमसारत्वं संसारस्य सुपश्यतः।
परिव्राजा प्रदत्तस्य तदर्पणमथो मतम्।।१०।।

इस प्रकार विचार कर सबला ने निश्चय किया कि संन्यासी (गोरक्षजी) द्वारा दिए गए इसको जो कि यह संसार को तुच्छ समझता है; इसे उन्हीं (योगियों) को सौंप देना उचित है।

ग्राम्यैः पित्रा महात्मानोऽन्विष्टा मात्राऽथ सादरम्।
मार्ग[1]णान्मार्गगाः सर्वे गुरुत्वात्प्रपलायिरे[2]।।११।।

इसके अनन्तर गांव के लोगों ने तथा उसके माता-पिता ने बड़े आदर के साथ महात्माओं को ढूंढ़ा परन्तु नाथसम्प्रदाय के सभी अनुयायी सन्त उनका गुरु होने से भाग खड़े हुए अर्थात् उस बालक मस्त की अद्भुत बातें सुनकर उसका गुरु बनने को कोई तैयार नहीं होता था।

मुहुर्निजं गृहं प्राप्य प्रापुर्योगेश्वरं तदा।
आईपथगुरुं पुण्यं नरमाईपदाह्वयम्[3]।।१२।।

जब कोई गुरु नहीं मिला, तब वे लौटकर अपने घर आ गए, तब फिर किसी समय उन्हें पवित्र आचरणवाले आईपथ के आचार्य योगिराज नरमाईनाथजी मिल गए अर्थात् जब वे गुरु ढूढ़कर निराश हो वापिस घर आ रहे थे, तब उन्हें आईपथ का श्रेष्ठ योगी मिला।

ब्रह्मज्ञं तं यतीशानं निष्कामं शीलवत्तमम्।
निगमागमविज्ञानं ज्ञातयोगार्थदेशनम्।।१३।।

ब्रह्म के ज्ञाता, यतियों में श्रेष्ठ, कामनारहित, सदाचारी (राग-द्वेष से रहित), वेद एवं शास्त्रों के तत्त्व को जाननेवाले तथा योग के तत्त्व के वेत्ता एवं उपदेष्टा उसको देखकर........(क्रियापद आगे है)।

परिव्राजं यशोव्रातभास्करांशुप्रभाचयैः।
निरस्तजगदान्ध्यं स्वतेजो[4]ज्वलितपावकम्।।१४।।

---

१. पाठभेद-योगीश्वरा। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-तद्गुरुत्वं न स्वीकृतम्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-नरमाईपदाञ्चितम्। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-स्वबोधोज्ज्वलित। (प्रकाशित प्रति)

सर्वस्व का त्याग करनेवाले (संन्यासी), कीर्तिसमूहरूप सूर्य की किरणों की कान्तिसंचय से जगत् के अन्धेपन (अज्ञान) को दूर करनेवाले, अपने तेज से अग्नि के समान देदीप्यमान, उसको...... ।

जटाभस्मधरं कर्णकुण्डलाङ्गप्रभाच्छुरम्[1] ।
सेलीशृङ्गीवर्णिलिङ्गं[2] प्राप्य नत्वा समूचिरे।। १५ ।।

जटाओं एवं भस्म को धारण करनेवाले, कानों में कुण्डलों से सुशोभित, सेली, सींगी धारण किए हुए, ब्रह्मचारी की वेशभूषावाले (उस सन्त को) पाकर नमस्कार करके कहने लगे।

पितृभ्यां चार्पितः पुत्रः पादयोः स महात्मनः।
स्वयं संलालितः प्रेम्णा शिष्यत्वाय गुरोस्तदा।। १६ ।।

और तब उसके माता-पिता ने प्रेम से पाले हुए उस बालक मस्त को शिष्य बनाने के लिए उस महात्मा के चरणों में अर्पित कर दिया।

स उवाच यतीनां स्युः सङ्गात्कामादयस्ततः।
बुद्धिनाशो न मे बुद्ध्यै सङ्गोऽतोऽन्यस्य रोचते।। १७ ।।

उस महात्मा ने कहा कि यतियों को साथ रहने से कामादि विकार हो जाते हैं, अतः मेरी बुद्धि का नाश न हो इसीलिए मुझे ज्ञान के लिए किसी दूसरे को साथ रखना पसंद नहीं है।

एकाकिनो यथा सौख्यं योगाङ्गासक्तचेतसः।
अन्यपथे[3] शिष्यशतैर्न तथा मे प्रतीयते।। १८ ।।

योग के अंग–यम-नियमादि में आसक्त मनवाले अकेले (व्यक्ति) को जिस प्रकार सुख मिलता है वैसे सैकड़ों शिष्यों के साथ दूसरे मार्ग पर (पंथों में) चलनेवाले को नहीं मिलता; ऐसा मुझे प्रतीत होता है अर्थात् ऐसा मेरा विचार है।

बद्धाञ्जलिरुवाचेदं नामं नामं स बालकः।
अलकाऽसितकान्त्याऽङ्घ्री रञ्जयन्नखरागिणौ।।१९ ।।

काले घुंघराले बालों की कान्ति से पैरों के नाखूनों की लालिमा को रंगता हुआ वह बालक हाथ जोड़े बार-बार प्रणाम कर यह कहने लगा।

---

१. पाठभेद-प्रभाभरम्। (प्रकाशित प्रति) २ पाठभेद-लक्ष्म्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-अन्यमार्गे। (प्रकाशित प्रति)

कुरु शिष्ये प्रसादं श्रीनाथसेवां त्वदाज्ञया।
विधास्यामि परप्रीत्या मा हासीः कृपया प्रभो।।२०।।

हे प्रभो ! मुझ शिष्य पर कृपा कीजिए। मैं आपकी आज्ञा से बड़े प्रेम से श्रीनाथों की सेवा करूंगा। कृपा करके मेरा परित्याग मत करो अर्थात् मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर लो।

शरणं ते प्रपन्नोऽस्मि शरणागतवत्सल:।
दीनकष्टप्रतीकारं त्वदन्यं कं श्रये विभो।।२१।।

हे शरणागत से प्रेम करनेवाले ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। हे विभु ! (सर्वत्र व्यापक परमेश्वर) दीनों के कष्ट को दूर करनेवाले तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसका सहारा लूं।

भवसागरनौकर्णधारं सारं गुरोः पदम्।
संसारबन्धर्निमोकं शोकहँस्त्वामितोऽस्म्यहम्[1]।।२२।।

संसार सागर से पार उतारनेवाला गुरु का चरण-कमल ही सार वस्तु है, अत: मैं संसाररूप बन्धन से मुक्ति दिलानेवाले और शोक को नष्ट करनेवाले आपके पास आया हूं।

भ्रमच्छिदं व्यवच्छेदं नित्याऽनित्यविवेचकम्।
परमार्थपदप्राप्तेरूपायं सद्गुरुं नुमः।।२३।।

संदेह का निवारण करनेवाले, नित्य और अनित्य का विवेचन करनेवाले, परमार्थपद की प्राप्ति के उपायस्वरूप सद्गुरु का हम गुणगान करते हैं।

इत्येवं प्रार्थितोऽभीक्ष्णं दीन[2]वाचाभिनन्दित:।
प्रससादाशिषो दत्त्वा विरक्तपथदोऽभवत्।।२४।।

इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करने पर दीन वचनों से प्रसन्न हुए नरमाईनाथजी उसे आशीर्वाद देकर संन्यासमार्ग का उपदेश देने लगे।

जगाद मानवं[3] जन्म प्राप्य भजनमाश्रित:।
एतादृशो नरो य: स्याद् धिक्कृतं तस्य जीवनम्[4]।।२५।।

---

१. पाठभेद-शोकहन्तारमागत:। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-भूयो भाव। (प्रकाशितं प्रति)
३. पाठभेद-नृजनु:। (पाण्डुलिपि)
४. पाठभेद-न नरो योऽस्तु धिक् तं योऽन्वपप्तन्निविड़ा वटे। (पाण्डुलिपि)

वह कहने लगे कि जो मनुष्य जन्म पाकर प्रभु भजन का आश्रय (नहीं) लेता, उस व्यक्ति का जीवन धिक्कार (बिकार) है अर्थात् मनुष्य योनि सबसे श्रेष्ठ मानी गई है, उसमें आकर भी जो व्यक्ति भगवान् का भजन नहीं करता उसका जन्म लेना या न लेना बराबर है, अतः मानव जीवन की सार्थकता प्रभुभक्ति में ही समाहित है।

नृजन्म शोभते भक्त्या भक्तिस्तेन विरागतः।
विरक्तिर्विषयासक्तिहानेनैव विराजते।।२६।।

मानवजन्म भक्ति से शोभित होता है, भक्ति मनुष्य के द्वारा वैराग्य करने से तथा वैराग्य विषयों के प्रति आसक्ति के परित्याग करने से ही सुशोभित होता है।

सर्वज्ञो योऽज्ञतां प्राप्तो नात्मानमुद्धरेन्निजम्।
संकोचादसमर्थत्वादज्ञत्वादात्महा हि सः।।२७।।

जो मनुष्य सब कुछ जानता हुआ भी अज्ञानतावश संकोच के कारण, असामर्थ्य के कारण तथा मूर्खता के कारण अपनी अन्तरात्मा का प्रभुभक्ति द्वारा उद्धार नहीं करता, वह निश्चय ही आत्मा का हनन करनेवाला है।

नात्महत्या[1] समं पापं रौरवान्धतमोऽज्ञता।
बन्धनं न तदुत्कृष्टं मुक्तिस्तद् हानितः सुखम्।।२८।।

आत्महत्या के समान कोई पाप नहीं है, अज्ञानतारौरव नामक नरक के समान अन्धकारमय है, उससे अधिक कोई बन्धन नहीं है, उस अज्ञान के दूर होने से ही सुख (मोक्ष) मिलता है।

तज्ज्ञानं प्राप्यते संगात् श्रीनाथपदसेवनात्।
स्वमार्गनियमाचारपालनादेव सुव्रत !।।२९।।

हे उत्तम आचरणवाले (मस्तनाथ) ! वह ज्ञान श्रीनाथ के चरणों की सेवा करने, उनका संग करने तथा अपने मार्ग (सम्प्रदाय) के नियम एवं आचार के पालन करने से ही मिलता है।

निर्वेदीयाः स इत्युक्त्वा वार्ता अन्याश्च बालकम्।
स्वीकृत्य निजसेवायां पितरौ विससर्ज ह।।३०।।

श्रीनाथ ने उस बालक को और दूसरी बहुत-सी मोक्ष-सम्बन्धी बातें कहकर अपनी सेवा में स्वीकार करके उसके माता-पिता को विदा कर दिया।

---

१ पाठभेद-हानेः। (प्रकाशित प्रति)

शुभे मासे शुक्लपक्षे शुभवारे शुभैः खगैः।
अन्विते शुभलग्नेऽसौ मुण्डितः[१] सुतिथौ ततः।।३१।।

तदनन्तर शुभ मास, शुभ पक्ष, शुभ तिथि व शुभ वार देखकर अच्छे ग्रहों से युक्त शुभ लग्न में इसका मुण्डन (संस्कार) किया गया।

स शिखं मुण्डयित्वाऽथ मन्त्र दीक्षा विधानतः[२]।
अगागमुनिचन्द्रे[३]ऽब्दे मस्तं शिष्यं चकार ह।।३२।।

शिखासहित मुण्डन करके और अपने पंथ के नियमों के अनुसार मन्त्रदीक्षा देकर विक्रम संवत् १७८८ (1788) {१७३१ ई०} में मस्त को शिष्य बनाया।

गुरुनाथ आईमार्गे तेन तन्नाम कर्मतः।
मस्तनाथोऽपि मस्ताईसंज्ञस्तत्र बभूव ह।।३३।।

गुरुनाथ आईमार्ग में दीक्षित थे, अतः उन्होंने उसी के नाम पर उस मस्तनाथ बालक का नाम भी 'मस्ताई' रखा।

प्रतिज्ञामकृताऽऽसाद्य नरमाईं पुरा स्वयम्।
सेवाप्रकारानादर्शमादर्शं तामपूरयत्।।३४।।

पहले स्वयं ही नरमाई जी के पास जाकर मस्त ने जो प्रतिज्ञा की थी, उसको उसने अनेक प्रकार की सेवाविधि को बार-बार दिखाकर पूरा कर दिया।

न दण्डनैः शिक्षणमर्हणस्य न रासभा धेनुकतां प्रयाति।
मृताः सुखं नैव हि ते नयन्ति स्वभावतोऽसौ स्वगुरुं सिषेवे[४]।। ३५।।

पूजा की शिक्षा दण्ड के द्वारा नहीं दी जाती, जैसे गधा गौ नहीं बन सकता, जैसे मरा हुआ शरीर स्वयं नहीं चल सकता, अतः इसने अपने स्वभाव से ही अपने गुरु की सेवा की अर्थात् गुरु की सेवा करना उसका स्वभाव था, उसने कभी भी डर या दण्ड के भय अथवा सिद्धि की लालसा से गुरु की सेवा नहीं की।

प्रातः समुत्थाय पुर स्वदैशिकात्तदुत्थितेरुर्ध्वगकार्यकालिकम्।
तन्नाम मन्त्रं प्रजपन् समर्हणं समाबभाराभरणीयमात्मनः।।३६।।

---

१. पाठभेद-दीक्षितः। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-दीक्षाशिक्षासमीक्षाद्यैः कर्मभिर्धर्मयोगतः। (प्रकाशित प्रति)

३. अगाग (अग+अग)-आठ। श्री शंकरनाथ फलेग्रहि को यहां 'अग' से 'आठ' संख्या अभिप्रेत है। दो आठ, मुनि-सात, चन्द्र-एक। इस प्रकार १७८८ संवत् अर्थ निकलता है।

४. ३३, ३४, ३५ पद्य प्रकाशितं प्रति में नहीं है।

जितना कार्यकलाप; जैसे पूजन, गुरुमन्त्र का जाप आदि जो गुरु के उठने के बाद करने योग्य होता था उसे सवेरे अपने गुरु से पहले ही उठकर कर लेते थे।

शय्योत्थितेरासनपादुकादि कौपं पयः पात्रचयं नृपादिः।
द्रव्येश्वरो दैवतसद्गुरूणां सेवार्थमासाधयतेऽश्रमेण।।३७।।

धन के स्वामी राजा इत्यादि देवता एवं सद्गुरु की सेवा के लिए आसन, खड़ाऊँ, धन-दौलत, जल (अथवा दूध) पात्र प्रातः शय्या से उठने के बाद बिना परिश्रम के ही तैयार कर लेते हैं क्योंकि उनके पास नौकर-चाकर बहुत होते हैं तथा धन की भी कोई कमी नहीं होती।

धनैर्विहीना गतचीवरांशा[1] दिनाष्टमेंऽशे कणलाभतुष्टाः।
स्वदेहसंसाधितराधनानि निजाङ्गपोषेण विना श्रयन्ते।। ३८।।

परन्तु धनहीन, वस्त्र से रहित श्रद्धालु व्यक्ति दिन के आठवें पहर (दिन के अन्त) में थोड़े से अन्न से संतुष्ट हुए अपने शरीर के स्वास्थ्य की भी परवाह न करते हुए अपने ही शरीर से धनों को सम्पादित करते हैं अर्थात् जो रुपया-पैसे से गुरु की सेवा की जाती है, उसे अपने शरीर के दुःख-दर्द की भी परवाह किये बिना अपने शरीर से सेवा करके पूरा करते हैं[2]।

न चोत्थितं संस्पृशताद्रजोंऽशस्ततो भुवं सम्यगसौ ममार्ज।
स्वयं पयः पूतशरीर एव करैर्निजैः कूपत आजहार[3]।। ३९।।

और धूलि के कण उड़कर गुरु के शरीर को स्पर्श न करें इसीलिए वे पृथ्वी (गुरु के निवासस्थान) को अच्छी तरह साफ कर देते थे और अपने शरीर को स्वच्छ करने के लिए अपने हाथों से खींचकर कुएं से स्वयं जल लाते थे।

मस्तस्तु तुम्बीलघुपात्रजातैर्दभ्रं प्रदभ्रं गुरुपात्रगं कम्।
सञ्चित्य सञ्चित्य महाश्रमेण सम्पादयामास शिशुस्तथैकः।।४०।।

---

१. पाठभेद-गत धीवराणाम्। (प्रकाशित प्रति)
२. मेरे विचार में अपने शरीर से सेवा करना सबसे उत्तम सेवा है।
३. इस पद्य के पश्चात् पाण्डुलिपि में निम्न पद्य है जिसे भाष्यकार ने अनावश्यक कहा है–
नियुज्य पुम्भिर्भृतकैश्च नीरं सम्पादयन्त्यर्हणामीश्वराणाम्।
प्रभुप्रसादाश्रितदेवतानामीहाविशेषाप्तधनाधनाढ्याः।।४०।।
(देवताओं की कृपा से जो धनाढ्य हैं वह नौकरों द्वारा देवताओं की पूजा करवाते हैं (संकलित)।

परन्तु मस्त ने तो एक बालक की भांति बड़े परिश्रम से अपनी छोटी-सी तुम्बी से थोड़ा-थोड़ा जल ला-लाकर गुरु के जल के पात्र को भर दिया।

कदाचिदुत्थाय गुरुः समेने रात्रौ सुपीतस्य सुवर्णभूतम्।
जलस्य पात्रं निजपादुके च चामीकरे तेन कृते भ्रमं स्वम्।।४१।।

कभी शयन से उठकर गुरु ने देखा कि उनका रात में जल पीने का पात्र और दोनों खड़ाऊं मस्तनाथ ने अपनी सिद्धि से सोने के बना दिए हैं परन्तु उन्होंने उसे भ्रम समझा (पाण्डुलिपि से संकलित)।

समुत्थितस्याऽथ गुरोस्तदङ्घ्री स्पृष्ट्वा धरित्र्यां प्रणिपत्य[1]।
विधाय[2] देहं समदण्डवच्च चक्रे नमो वाचि पवित्रतायै।।४२।।

इसके अनन्तर सवेरे गुरु के उठने पर उनके चरणों को स्पर्श करके वाणी को पवित्र करने के लिए नमस्कार के वचन कहता हुआ मस्ताना साष्टाङ्ग प्रणाम करता था।

आदेशं प्रजगाद तस्य भवताद् येन श्रमो नो विभो-
र्नीरं तत्कथनात्पुराऽऽहरादिदं तद्धर्मकाम्यादिवत्।
याते निर्जनशौचदेशमभितो वीक्ष्याथ शय्यां स्वयम्
संहृत्य स्वकदेवमन्त्रजपनं प्राप्तेः पुरा पूरयत्।।४३।।

गुरु को आदेश-आदेश ऐसा शब्द कहते थे और उनको परिश्रम न करना पड़े, अतः उनके कहने से पहले ही गुरुधर्म एवं काम्यादि कर्मों को जाननेवाला वह मस्त शिष्य जलादि लाता था और उनके शौचदि के लिए चले जाने पर स्वयं ही उनकी शय्या को उठाकर रख देता था और उनके आने से पहले ही अपने देवमन्त्रों का जप पूर्ण कर लेता था।

आयातस्य करादिशौचविधिना स्नान्तसेवां तदा
चक्रे धौतबन्धनिपीडनञ्च समये धौतबन्धनान्तरं सञ्चितम्।
दत्वा सम्भरणीयमर्हणविधौ बभ्रे प्रसन्नाननः
आज्ञातः प्रथमं व्यधायि निखिलं तेनेत्थमिष्टं विदा[3]।।४४।।

---

१. पाठभेद-संस्पृश्य भूमौ प्रणिपत्य धीरः (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-कृत्वा (प्रकाशित प्रति) ३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

शौचक्रिया के उपरान्त आए हुए गुरु के हाथ आदि धुलाकर तदनन्तर उन्हें स्नान कराया, फिर धोती और कौपीन आदि निचोड़कर दूसरी धोती और कौपीन (बन्ध) दिया; फिर जितनी पूजा की सामग्री थी उसको देकर प्रसन्नता से पूजा की। इस प्रकार गुरु के इष्ट को जाननेवाले मस्त ने स्नान से लेकर पूजाविधिपर्यन्त समस्त कार्य गुरु की आज्ञा से पहले ही पूर्ण कर दिए।

धनिनां रौप्यसौवर्णपात्राणि न गुरोरिति।
विलोक्य हेममाणिक्यमणिजानि व्यधान्मुदा।।४५।।

धनिकों के पास पूजा करने के पात्र चांदी और सोने के बने होते हैं परन्तु हमारे गुरु के पास नहीं हैं; इस प्रकार विचार करके मस्त ने प्रसन्नता से सब पात्र मणियों से जड़े हुए सोने-चांदी के बना दिए।

भ्रान्तिस्तेन मता मन्ये सिद्ध्या सत्यं[१] कृतं भवेत्।
तत्सिद्धिवेदिनां सर्वं साध्यमेषा हि तर्कणा[२]।।४६।।

गुरु ने भ्रान्ति मानी परन्तु मैं ऐसा मानता हूं कि सिद्धि के द्वारा सत्य कर दिया होगा क्योंकि सिद्धि को जाननेवाले व्यक्तियों को सब साध्य हैं, ऐसी तर्कना (अन्दाजा) उचित है।

भोजनार्थं समाहर्तुमादेशेन पुरा ययौ।
काष्ठानि साधनं चाऽन्यद् भिक्षां कर्तुं प्रचारतः[३]।।४७।।

मस्त गुरु के आज्ञा देने से पहले ही खाद्यसामग्री तथा होम के लिए लकड़ी इत्यादि अन्य भिक्षा लाने के लिए चले गए।

यत्प्राप्तं कुहचित्कणादि सुरभिः प्राज्यं विगन्ध्यादिकम्[४]
सम्यङ्मानितमाहृतञ्च सकलं यद् यद् वितीर्णं नरैः।
दारिद्र्याभिभवेन[५] शक्यमथवाऽशक्यं गृहस्थैर्नृपैः
कुप्याढ्यै[६]रथ भूमिपैर्बहुधनं हेयं कृतं शोभनम्।।४८।।

---

१. पाठभेद-योगशक्त्या। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-कल्पना। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-कामधेनुं समाहर्त्तुमादेशेन पुरा ययौ।
एधांसि साधनं चान्यद् ऋद्धिं कर्त्तुं प्रचारतः।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-सुगन्ध्यादिकम्। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-रिक्थाभावभवेन। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-स्वर्णाढ्यैः। (प्रकाशित प्रति)

जो कुछ सुगन्धियुक्त चावल, घी इत्यादि गृहस्थियों के घर से मिले, उस सबको आदरपूर्वक ले आया और भिक्षा के अतिरिक्त धनादि जिसको गरीब नहीं दे सकते और धनी दे सकते हैं, उस धन को मस्तनाथजी ने ग्रहण नहीं किया, यह उन्होंने अच्छा ही किया क्योंकि विरक्तों की भोजनातिरिक्त पदार्थों में स्पृहा नहीं होती है[१]।

स्वादु स्वसिद्ध्या[२] बहुमूल्यदिव्यशाकादिरस्यान्नसिताज्यजातम्।
सचन्दनं क्षीरविशेषसिद्धहैयङ्गवीनं समकारि सर्वम्।।४९।।

इसके अतिरिक्त बहुमूल्य शाक, अन्न, चीनी, घृत, सुगन्ध से युक्त विशेष दूध से बना हुआ मक्खन इत्यादि सब स्वादिष्ट वस्तुएँ उसने अपनी सिद्धि से तैयार कर ली (जो कि भिक्षा में मिलने योग्य नहीं थी)।

आदाय हस्तेन स शुद्धिमृष्ट[३] स्वपाकशालागतमाद्यजातम्।
व्यधायि शिष्टं[४] विनिधाय गोप्यं भाण्डारगं तन्निरमास्त भोज्यम्।।५०।।

अपनी साफ-सुथरी पवित्र पाकशाला में रखे हुए पदार्थों से अपने खाने योग्य (भात-रोटी) इत्यादि बनाकर शेष घी, चीनी इत्यादि पदार्थों को किसी पात्र में ढककर रख दिया।

पात्राणि पात्राणि विधाय सर्वाण्येकीकृतानि स्वगुरुं प्रभोज्य।
चामीकरीयाणि च कोशगानि चक्रे गुरोर्नो विदितानि तानि।।५१।।

एकत्रित किए गए पत्तों के पात्रों को सुवर्ण के पात्र बनाकर उनमें अपने गुरु को भोजन कराकर सब पात्रों को भण्डार में रख देता था परन्तु यह बात गुरु को मालूम नहीं होने देता था (कि उसने पत्तों के दोने अपनी सिद्धि से सोने के बना दिये हैं। गुरुजी सोचते थे कि कहीं किसी धनिक से भिक्षा में मिल गए होंगे)।

सुभोज्य हेवेन शिवं[५] प्रसुप्ते समं तदा पादसपीडनादि[६]।
विधाय तत्स्थान[७] समीप एव समापिपद् राजतहैमजातम्।।५२।।

शिवरूप अपने गुरु को भोजन कराकर और उसके सो जाने पर पैर आदि को दबाकर उस स्थान के समीप ही स्वयं बनाए गए चांदी व सोने के पात्रों को अपनी माया से स्वयं ही लुप्त भी कर देता था।

---

१. पाठभेद-पाण्डुलिपि से संकलित।
२. पाठभेद-स्वयोगेन। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-शुद्धिमृष्टि। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-शिष्टें। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-तं भोजयित्वा स्वगुरुं। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-निपीड़नादि। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद-संधाय। (प्रकाशित प्रति)

अदायि केनापि समेत्य भक्तेनेत्थं गुरुः कल्पितवांस्तदानीम्।
समुत्थितस्याऽथ ददर्श लोकान्मस्तेच्छयाऽनल्पविकल्पसिद्धम्[१]।।५३।।

सवेरे गुरुदेव के उठते ही सब पात्र फिर सोने के बने हुए मिलते, तब वे कल्पना करते थे कि किसी भक्त ने दिए होंगे। ऐसी कल्पना करते ही मस्त के संकल्पमात्र से ही भक्तजन स्वयं आकर उपस्थित हो जाते थे।

प्रदोषान्तं ययौ कश्चिदाययौ नमसा सह।
उपहारं निवेद्याऽसौ सान्ध्यं दीपमदीपयत्।।५४।।

रात्रि होने तक नमस्कार करता हुआ कोई आता था और फिर चला जाता था। फिर यह मस्त भी सभी उपहारों को गुरु को अर्पित करके (सौंपकर) दीपक जला देते थे।

सायंतनं स्वादु विधाय खाद्यं शय्यासने संस्तरणोपधानम्।
सर्वं सुसम्पाद्य तदङ्घ्रिमर्दं सुष्वाप यावत् स हि सञ्चकार[२]।।५५।।

शाम के समय अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन बनाकर शय्या पर बिस्तर व तकिया लगाकर गुरुदेव के सोने तक वह पैर दबाता रहता था।

कदाचित्तैलदीपस्य मणिभाभिः समेधनात्।
महान् प्रकाशोऽभूत्तत्र मस्तसंकल्पनादपि।।५६।।

एक बार वहां पर मस्ताने के संकल्पमात्र से ही तेल के दीपक का प्रकाश मणि की कान्ति बढ़ जाने के कारण बहुत अधिक प्रकाश हो गया।

रविर्नु मे गेहमितः कृशानुर्दग्धुं गृहं वा समवर्धतैवम्।
न भूतपूर्वं मम वेष्टदेवः कथं प्रकाशोऽस्ति गुरुः शशङ्के।।५७।।

दीपक के अत्यधिक प्रकाश को देखकर गुरुदेव ने आशंका की कि क्या मेरे घर की तरफ सूर्यदेव उतर आया है अथवा घर को जलाने के लिए स्वयं अग्निदेव इस प्रकार प्रज्वलित हो उठा है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ अथवा यह मेरा इष्टदेवता ही प्रसन्न होकर आ गया है; नहीं तो कैसे इतना प्रकाश होता ?

शिष्यन्तु बहुकालं स प्रकाशो यावदीक्षितः।
अपृच्छद् वत्स ! किमिदं तेजसो वर्धनं वद।।५८।।

---

१. पाठभेद-तदेव मस्तनाथे हयेयाय च साधकौधः।।५४।। (पाण्डुलिपि)
२. पाठभेद-यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

जब वह प्रकाश बहुत समय तक वैसा ही देखने में आया तो गुरुदेव ने शिष्य से पूछा कि हे पुत्र ! बताओ कि यह दीपक का प्रकाश इतना क्यों बढ़ गया है ?

जगाद मस्तो निजकोशजातं पश्य प्रभो ! अर्जितमाहृतं यत्[1]।
कृपा त्वदीया न धनं मदीयं सिद्ध्यैव[2] सर्वं समपादि कार्यम्[3] ।।५९।।

तब मस्ताना कहने लगा कि हे स्वामिन् ! इस अपनी द्रव्यराशि को देखिए जो मैंने लाकर एकत्रित की है। यह धन मेरा नहीं है, यह तुम्हारी ही कृपा है जो कि सब कार्य आपकी सिद्धि के द्वारा ही पूर्ण होगए हैं।

विभ्रान्तिमात्रं हि मतं पुरा यत् तद्वाक्यतो[4] निश्चितमेव सर्वम्।
करोम्यदायीशसमो भवान् मे मतं स्वनाथं प्रविधास्यतीति[5] ।।६०।।

वस्तुतः गुरु ने पहले जिसको भ्रममात्र समझा था, अब वह सब उसके वाक्य से निश्चित हो गया और प्रसन्न हो वर भी दिया कि आप ईश्वर के समान होकर मेरे मत (सम्प्रदाय) व लोक में अपना स्वामित्व स्थापित करोगे।

ये मस्तनाथसदृशाऽऽचरणेन सेवां जानन्ति नैव कपटस्वनिगूढभावाः।
किञ्चिद् गुरोरुपकृतं बहुमन्यमाना वाचापि मार्दवविपर्य्ययमादधानाः ।।६१।।

जो मस्तनाथजी के समान सदाचारपूर्वक गुरुसेवाविधि को नहीं जानते और जिनके आन्तरिक भाव कपटपूर्ण हैं तथा गुरु का कुछ (थोड़ा) उपकार करके उसे बहुत माननेवाले और वाणी से भी मधुरता के विपरीत (कठोर) भाषण करनेवाले····।

सेवाऽथवा वचनतः स्तुतिरूपिणी यैः सा साम्मुखीनकथना खलु मन्यते वा।
पृष्ठे तु निन्दनपरायणता नितान्तं स्वान्तेऽपकाररचनापि गुणैः परार्था ।।६२।।

जो बुरे लोग होते हैं, वे सामने अपनी वाणी से गुरु की प्रशंसा करते हैं, परन्तु पीठ पीछे उनकी निन्दा करते हैं ऐसे व्यक्ति गुणों से बहुत दूर रहते हैं अर्थात् उनमें गुण होते ही नहीं।

येषामनादरभयाद् दविता[6] स्वभक्ति-
र्येषां गुरौ न मनसाऽनुमतिर्मतेऽपि।

---

१. पाठभेद-योगधनं त्वदीयम्। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-शक्त्यैव। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-आर्य ! (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-त्वद्। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-भवेद् भवेभवोद्धारकरो मतेशः।।५५।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-लघुता। (प्रकाशित प्रति)

ये भूमिभागपरिलाञ्छकपक्षहीनाः
शिष्या न भारपदतामनुयन्ति काकाः[१]।।६३।।

गुरुसेवा से मेरा अनादर होगा, इसीलिए जिनकी अपनी भक्ति संकीर्ण हो गई है और जिनके अन्तःकरण के भाव व विचारधारा गुरु से नहीं मेल खाती वे पृथ्वी को कलंकित करनेवाले छिंन्नपक्ष (जिनके पंख कटे हुए हैं) कौवे हैं, वे शिष्य की पदवी पाने योग्य नहीं हैं तथा पृथ्वी पर भारस्वरूप हैं।

दितिजारिगुरूणां या सेवा सर्वं ततोऽश्नुते।
सुखं यशोऽथ विज्ञानं शास्त्रयोगसमुद्भवम्।।६४।।

देवताओं की जो सेवा की जाती है, उससे व्यक्ति सुख, कीर्ति और यहां तक कि शास्त्र एवं योगसाधना से उत्पन्न आत्मसाक्षात्कार; इन सबको पा लेता है।[२]

आत्मोन्नतिवर्धनं पुंसां प्राप्यं यत् सेवया हि तत्।
लिप्सूनां समवाप्येत शिशिक्षे मस्त ईश्वरः।।६५।।

अपनी उन्नति (आत्मोद्धार) और धन इत्यादि प्राप्त करने योग्य पदार्थों की आकांक्षा करनेवाले मनुष्यों को सब कुछ गुरुसेवा से ही प्राप्त हो जाता है; इस प्रकार की शिक्षा सर्वसामर्थ्यवान् मस्त ने सर्वसाधारण को दी।

गोसेवा धीरता वीर्यं भक्तिर्गौरवचिन्तनम्।
कर्मप्रवीणता यत्र न मरुर्देश ईक्ष्यताम्।।६६।।

जहां पर गायों की सेवा, धीरता, सामर्थ्य (अथवा चरित्रवान् होना), भक्ति, गौरव की चिन्तनशीलता (अपने बड़प्पन का ध्यान) व कर्मों में चतुरता नहीं है, उसे मरुस्थल ही समझना चाहिए अर्थात् जिस प्रकार मरुस्थल में पहुंचकर व्यक्ति को किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिलती और वह तृष्णा शान्त करने के लिए निरन्तर जल खोजता रहता है परन्तु उसे वहां जल मिल नहीं पाता, उसी प्रकार जिस स्थान पर व्यक्तियों के अन्दर गायों की सेवा की भावना नहीं है, जो विकार के मौजूद होने पर भी अपने मन को विकृत होने से नहीं रोक पाते हैं; चरित्रवान् नहीं हैं। अपनी मान-मर्यादा का ख्याल नहीं है, वहां पर व्यक्तियों के मन में किसी प्रकार की शान्ति

---

१. पाठभेद-गणनागणपुण्यहीना दीनाश्च शिष्यपदतां न हि यान्त्यदीनाः।।५८।। (प्रकाशित प्रति)

२. मेरे विचार में विज्ञान-विशेष ज्ञान यानी कि भौतिक उन्नति परन्तु यहां विज्ञान से आत्मज्ञान ही अभिप्रेत है क्योंकि भौतिक उन्नति प्राप्त हो जाने पर भी प्राणी को शान्ति नहीं मिलती जबकि आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् प्राणी स्वतः ही शान्त हो जाता है।

नहीं होती। उन व्यक्तियों की भौतिक तृष्णा कभी शान्त नहीं होती और वे शान्ति के अभाव में निरन्तर राग-द्वेष से युक्त हुए कलह में ही जीवन व्यतीत करते हुए नाना प्रकार के कष्ट भोगते हुए संसार से चले जाते हैं।

द्वादशाब्दव्रते तस्य संज्ञाऽऽसीत्दौघड़ेति[१]।
वस्वष्टनगभूवर्षे कुण्डली स बभूव ह[२]।।६७।।

उसके गुरुसेवा करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उसकी औघड़ संज्ञा थी परन्तु विक्रमसंवत् १७८८ (1788) १७३१ ई० (1731 ई०) में वह कुण्डली हो गए अर्थात् बारह वर्ष गुरु की सेवा करने के उपरान्त उसका कणविध संस्कार करके उसके कानों में कुण्डल पहनाए गए, तब वह दर्शनी साधु के नाम से जाना जाने लगा। नाथसम्प्रदाय में ऐसी परम्परा है कि जब तक कणविध संस्कार न हो, तब तक वह साधु औघड़ कहलाता है। औघड़ का अर्थ है-नाथसम्प्रदाय के संस्कार से रहित।

पित्रोस्तु सविधे यद्वद्वादित्यवर्षलालितः।
न्यवसद्गुरुपार्श्वेऽसौ मुमुदे तत्त्ववार्षिकः।।६८।।

जैसे माता-पिता के पास बारह वर्ष तक उनका पालन-पोषण हुआ उतने ही समय तत्त्व का निरीक्षण करनेवाला वह गुरु के पास रहा और प्रसन्न हुआ।

सेवाभिर्वत्सराः सिद्धा भास्करास्तेन मेनिरे।
पित्रोर्भाग्यं निजं स्वस्मिन् उपकारस्तयोर्मतः।।६९।।

गुरु की सेवा बारह वर्ष तक करने से उनके बारह वर्ष सिद्ध होगए और इसको उसने अपने माता-पिता का व अपना भाग्य समझा तथा अपने ऊपर उनका अनन्त उपकार माना अर्थात् बारह वर्ष की उनकी सेवा सफल हो गई क्योंकि गुरु ने उनका कणविध संस्कार करके उन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया था, इस कारण उन्होंने इस विषय में अपने माता-पिता का ही ऐहसान माना क्योंकि उन्होंने उसे योग्य गुरु को ही सौंपा था। सदाचारी माता-पिता व गुरु बड़ी किस्मत से विरले जनों को ही मिलते हैं।

इति श्रीमस्तनाथचरिते तस्य शिष्यत्वसम्पादनगुरुसेवावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः।

---

१. पाठभेद-पूर्वनामतः। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-दर्शनी कुण्डली बभौ।।६२।। (प्रकाशित प्रति)

सप्तमः सर्गः

आईमार्गे पुनर्नाथसंज्ञावतारादिप्रकरणम्

आईपथगुरुर्जातो मस्ताईसंज्ञकस्ततः ।
मस्तनाथः पुनर्जातः सर्वनाथप्रपूजकः[1] ।।१।।

आईपथ में पहले जिनका नाम मस्ताई था, वही सभी नाथों के पूजनीय मस्तनाथ नाम से जाने गए और सभी के आचार्य (गुरु) कहलाए।[2]

योगिद्वादशमार्गेषु गोरक्षो भास्करः स्वयम् ।
तत्स्वरूपो मस्तनाथस्तच्चरित्रं निशम्यताम् ।।२।।

योगियों के बारह पथों में गोरक्ष स्वयं सूर्य समान हैं और सबके प्रवर्तक हैं। उन्हीं का स्वरूप (अवतार) मस्तनाथ जी हैं। उनके चरित्र के विषय में सुनिये।

अनल्पमायागुणवैभवो भवो भवेऽयमास्ते गुणसन्निधौ निधिः ।
जगज्जयी जिष्णुजनार्दनोऽर्दनः श्रीमस्तनाथः प्रमथाधिपः पविः[3] ।।३।।

श्रीमस्तनाथजी माया के अत्यधिक गुणरूप वैभव (कला), सांसारिक जीवन (भौतिक अस्तित्व) में मूलस्रोत (भवः), गुणों का अतुलित भण्डार, संसार को जीतनेवाला अर्थात् सांसारिक विषय-वासनाओं पर विजय पानेवाला, विजय का इच्छुक, विष्णुस्वरूप (पराक्रमी), वज्रस्वरूप (अथवा वज्र के समान) दुष्ट लोगों को दण्ड देकर परलोक पहुंचानेवाला, प्रमथ नामक गणों का स्वामी है।

पृथूदकं पहेवेति नाम्नाख्यातं जनेषु च।
तीर्थं पुरातनं यत्र स्थिता देवी सरस्वती।।४।।

---

१. पाठभेद-प्रपूजितः। (प्रकाशित प्रति)

२. श्री शंकरनाथ फलेग्रहि ने संस्कृत टीका में आईपथ के विषय में लिखा है कि आकार आदिनाथ का और ईकार शक्ति का वाचक है। इस शिव और शक्ति के समायोग से विमला नाम की शक्ति उत्पन्न हुई जो आदि महामाया के नाम से भी जानी जाती है। उसी आईमार्ग की जननी सोमाशक्ति कही जाती है। उसी आईपथ के गुरु के रूप में मस्तनाथजी विख्यात हुए।

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

प्राचीन तीर्थस्थल पृथूदक जो आजकल लोगों में 'पहेवा' इस नाम से प्रसिद्ध है, जहां कभी सरस्वती[1] नदी बहती थी।

नदी या वर्णिता वेदे ऋगाख्येऽष्टमकेऽध्याये[2]।
पितॄणामक्षया तृप्तिः पिण्डदानाद् यदाश्रया।।५।।

ऋग्वेद के आठवें मण्डल में जिस नदी का वर्णन आता है, उसके किनारे पर पिण्डदान और श्राद्ध करने से पितरों की अक्षय तृप्ति हो जाती है।

चैत्रेऽमायां वत्सरान्ते संघो विज्ञमहात्मनाम्।
नानादिगन्तविश्रान्तजनानां यत्र जायते।।६।।

जहां पर वर्ष के अन्त में चैत्र मास की अमावस्या तिथि में बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें विद्वान्, महात्मा और अनेक लोगों का समुदाय नाना दिशाओं से आता है।

स्वशिष्यसंघैश्च विरक्तवृन्दा वृन्दारकानीव व्रजन्ति[3] तत्र।
योगाश्रिताः कुण्डलिनो विभूतिलिप्ताः समेता निजशिष्यवर्गैः।।७।।

कुण्डल धारण किए हुए, विभूति से लिप्त, योगमार्ग का अवलम्बन किए हुए विरक्तजन अपने शिष्यों के समूह के साथ देवों के समान वहां पर जाते हैं।

तत्रैव मस्तनाथोऽपि शिष्यमण्डलमण्डनः।
समागाद् धैर्यसम्पन्नो विस्मयं जनयन्निव[4]।।८।।

वहीं पर एक बार अपने शिष्यमण्डल को शोभित करते हुए धीर मस्तनाथजी भी आश्चर्य उत्पन्न करते हुए से जा पहुंचे।

सरित्पथं ते हुतभुक्सुधूमसंधूसरं चक्रुरभिप्रकीर्णम्।
तां मण्डलीं योगिजनस्य सर्वे द्रष्टुं समायान्ति नदीतटस्थाम्[5]।।९।।

---

१. ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में सरस्वती नदी का उल्लेख आता है, जो कालान्तर में लुप्त हो गई। कहा जाता है कि यह कुरुक्षेत्र में से होकर प्रवाहित होती थी परन्तु अब इसका नामोनिशान भी नहीं है। केवल प्राचीन ग्रन्थों में ही इसका उल्लेख है।

२. पाण्डुलिपि में अष्टमके शब्द के बाद अवग्रह (ऽ) का चिह्न लगा हुआ है और उसके आगे पृष्ठ खण्डित है अतः मैंने प्रसंग को देखते हुए वहां पर 'अध्याये' पद लिख दिया है जबकि प्रकाशित प्रति में केवल 'अष्टके' शब्द है।

३. पाठभेद-रफन्ति। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

५. पाठभेद-विस्तीर्ण सच्छ्रेणिश ईड्यमाना अन्वब्धिजायं नृभिरीक्षणैः........।।
इसके आगे का शब्द पाण्डुलिपि में खण्डित है।

उन योगिजनों ने नदी के विस्तृत मार्ग को अग्नि के धुएँ से धूसरित कर दिया और (तदनन्तर) सभी लोग नदी तट पर बैठी हुई योगिजनों की उस मण्डली को देखने के लिए आने लगे।

तातप्यमानास्तपना दिशोऽर्चिष्केशं भृशं जञ्जपनप्रवीणाः।
वीणानुरावप्ररुतात्महंसजाया निरैक्षन्त सहस्रशस्ते[1]।।१०।।

उन लोगों ने सूर्यादि तेज का आश्रय लेकर तपते हुए और सब तेजों के आधार ईश्वर को बार-बार जपते हुए हजारों तपस्वियों तथा वीणादि शब्दों की ध्वनि के पीछे मधुर स्वर से बोलते हुए अनेक हंसों को देखा।[2]

निमन्त्रणं क्वापि[3] तदा प्रभूतं सर्वस्ववर्गीयमहात्मनां यत्।
ततः समेता बहवोऽथ मस्ताईनाथनं नेतुमभिप्रवृत्ताः।।११।।

तब एक दिन वहां पर बारह पंथों का समस्त महात्माओं का सामूहिक भण्डारा हुआ; तब अनेक सन्त मिलकर मस्ताईनाथजी को बुलाने के लिए आए।

समूचुरात्मप्रभया यशस्ते अनुरागमाज्जनरञ्जनेन।
कान्तो दिगन्ते निजशिष्यवर्गैर्भोक्तुं पदे संचलतां महात्मन्[4]।।१२।।

वे कहने लगे कि हे योगिन्! आपके प्रेम में अनुरक्त शिष्यों ने आपके तेज (प्रताप) की कीर्ति को सभी दिशाओं में प्रख्यात कर दिया है अतः हे महात्मन्! इस समय भोजन करने के लिए आप हमारे निवास-स्थान पर चलिए।

तदाह मस्तः किल पारदर्शी मान्यः स्वमार्गस्य समागतोऽहम्।
गाः कम्बलानीह दिनेशसंख्यान्यानाय्य मां नेतुमलं भवन्तः।।१३।।

तब पारदर्शी मस्तजी कहने लगे कि मैं अपने पंथ के आचार्य के रूप में यहां आया हूं, अतः आप पहले मुझे यहीं पर बारह गाएं व कम्बल भेंट में देवें; तत्पश्चात् मुझे निमन्त्रण में (भोजन हेतु) ले जा सकते हैं।

रुषा समूचुर्यत मस्तनाथास्ते भो वयं नाथपदाधिरूढाः।
त्वं बालिशो ह्यौघड़मार्गगोऽसि[5] कथं न चोन्मत्तसमं वचस्ते।।१४।।

---

१. पाठभेद-वंशस्थजायां च निभालयन्तः। (प्रकाशित प्रति) २. पाण्डुलिपि से संकलित।
३. पाठभेद-ततः समेता बहवोऽथ। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-.............................. प्रख्यापितं शिष्यचयेन योगिनः।
कान्तादिशस्ते निजशिष्यवर्गैभोक्तुं पदे त्वं व्रज साम्प्रतं भोः।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-अस्मद्विधानां समता कथं ते........ ।। (प्रकाशित प्रति)

उन अहंकारी नाथों ने क्रोधित हो कहा कि हम नाथपदवी से अलंकृत दर्शनी साधु हैं और तू मूर्ख औघड़ होकर हमसे भेंट मांगता है। अत: किस प्रकार तुम्हारा कथन पागल जैसा नहीं है अर्थात् तुम्हारी बात पागलों जैसी है।

त्वं सेवक: सेव्यपदप्रतिष्ठा वयं गरिष्ठा: कथमर्हणीय:।
अस्मत्समर्हां कुरु नार्हणायामर्होऽसि भानोरिव यत्पतङ्ग:।।१५।।

तू सेवक है और हम सेव्य हैं, हम तुमसे श्रेष्ठ हैं, फिर तुम हमसे कैसे पूजा ले सकते हो। अत: तुम ही हमारी पूजा करो क्योंकि तुम पूजनीयों में पूज्य नहीं हो। जैसे पतंगा सूर्य का पूजनीय नहीं होता, उसी तरह तुम हमारे पूजा करने लायक नहीं हो।

सिद्धिं निजां दर्शयसीह नस्त्वं गुरुत्वयोग्योऽसि परीक्षयैव।
त्वमेकदापीह न चोत्तरेश्चेत्त्वं दण्डयोग्य: प्रभविष्यसीति।।१६।।

तुम यहां पर पहले अपनी सिद्धि दिखाओ क्योंकि परीक्षा देने के उपरान्त ही तुम हमसे बड़े हो सकते हो अन्यथा कभी नहीं और यदि तुम एक भी सिद्धि नहीं दिखा सके तो तुम्हें सजा दी जायेगी।

श्रीमस्तनाथ आहाथ निशामयत मद्वच:।
सिद्धिं कां ब्रूथ मां विद्धि ह्यनादिं रुद्ररूपिणम्।।१७।।

तब श्रीमस्तनाथजी बोले तो मेरे वचन सुनो ! तुम किस सिद्धि की बात करते हो; मुझे तो तुम निश्चित रूप से रुद्ररूपधारी अनादि भगवान् शंकर ही समझो।

मत्तत्वं वेत्ति को वेत्ता म्रियन्तेऽगुरवस्तथा।
गुरुनाथमनादृत्य मां यूयं जीवथाऽपि किम्।।१८।।

कौन ऐसा विद्वान् है जो मेरे तत्त्व को जानता है ? निगुरे (तुच्छ) लोग वैसे ही सिर पटक-पटक कर मर जाते हैं परन्तु मेरा तत्त्व नहीं जान पाते। अत: सब गुरुओं के स्वामी मेरा अनादर करके तो तुम सब जीवित भी नहीं रह सकते।

चतुर्युगीव लिङ्गानि वर्णिनां स्वस्वरूपिणाम्।
विरक्तानां सरक्तानां मस्तेन दर्शितानि च।।१९।।

तब मस्तजी ने चारों युगों में होनेवाले अपने ही स्वरूप को धारण करनेवाले ब्रह्मचारियों के, विरक्तों के और संसार में लीन रहनेवाले प्राणियों के चिह्नों को दिखला दिया।

मायीव दुरदृष्टानि दुरदृष्टानि यानि वा।
प्रादर्शयन्नमान्यस्त्वमित्थं ते जगदुर्मुहुः।।२०।।

कोई जादूगर जैसे नई-नई चीजें बना-बनाकर दिखा देता है, उसी प्रकार तुमने भी दिखा दी है। इतने से तुम पूजनीय नहीं हो सकते-इस प्रकार वे साधु बार-बार कहने लगे।

निशम्येत्थं वचस्तेषां दिव्यं योगमदर्शयत्।
कृष्णोऽर्जुनं यशोदानञ्च यथापूर्वं स्ववैभवम्।।२१।।

उनके इस प्रकार के वचनों को सुनकर मस्तजी ने दिव्ययोग को दिखलाया, जिस प्रकार प्राचीनकाल में श्रीकृष्ण ने अर्जुन और यशोदा को अपना विभतियोग दिखलाया था। (अपने पूर्ववैभव से संभवतः यहां मस्तनाथजी का कृष्णराजा के रूप में होना अभिप्रेत हो सकता है)।

चराऽचरात्मा सरितः समुद्रान् खं भूमिमन्तर्गतसर्वलोकम्।
रवीनुडून् देवगणान् ग्रहाँश्च शक्रान् मनूँस्तानुदरे स्थितान् स्वे।।२२।।

जड़ और चेतनस्वरूप मस्तनाथजी ने विराट् रूप धारण करके अपने भीतर नदी, समुद्र, आकाश, पृथ्वी तथा भूलोक के सभी लोकों को और सूर्य, तारे, देवता, ग्रह, इन्द्र, मनु इत्यादि तथा उन सब सन्तों को अपने उदर में स्थित दिखला दिया।

दृष्ट्वा तदाऽत्यद्भुतविश्वरूपं[1] तपस्विवर्गः सकलः प्रणम्य।
निवृत्य स स्वे सकले मतौघे शशंस तद्दृष्टमपूर्वकर्म।। २३।।

तब उस अद्भुत विराट् रूप को देखकर समस्त तपस्विवर्ग प्रणाम करके अपने निवासस्थल पर लौटकर उस देखे गए अपूर्व कर्म की प्रशंसा करने लगे।

अत्यद्भुतो योगपदाधिरूढो मस्ताईसंज्ञोऽप्यनवोऽद्य दृष्टः।
नर्माईशिष्यो जगदीशतुल्यश्चराचरात्मात्मनि दर्शकोऽसौ।।२४।।

आज हमने अत्यन्त निराला, सम्पूर्ण योग का ज्ञाता, प्राचीन सिद्ध, ईश्वरतुल्य, जड़-चेतनस्वरूप, समस्त ब्रह्माण्ड को आत्मा में देखनेवाला वह नरमाईनाथ का शिष्य मस्ताई देखा।

सर्वे गाः कम्बलान्यत्रानयन्त्विति वदत्यपि।
आईपथं निजं वक्ति गुरुं सर्वतपस्विनाम्।।२५।।

---

१ पाठभेद-विलोक्य लोकानथ। (प्रकाशित प्रति)

वह कहता है कि सभी पंथों के साधु गाएं और कम्बल भेंट लेकर यहां आएं तथा स्वयं को समस्त तपस्वियों में श्रेष्ठ आईपथ का गुरु बताता है।

श्रुत्वा रुषा समूचुस्ते नैवं भवितुमर्हति।
द्वादशस्वीयमार्गेशो नान्यो गोरक्षतो यत:।।२६।।

सुनकर वे लोग क्रोध से कहने लगे कि ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि श्रीगोरक्षजी के अतिरिक्त अपने बारहपंथों का आचार्य दूसरा कोई हो ही नहीं सकता।

वयं सनाथास्तेनैव नाथा: पूज्या वयं तत:।
औघड़ो न तु पूज्य: स्यात्तद्दण्ड्योऽसौ न चार्ह्यताम्[1]।।२७।।

हमारे गोरक्षजी ही स्वामी हैं क्योंकि उन्हीं से हमारे पंथ चले हुए हैं, उनके बाद हम नाथ पूजनीय हैं क्योंकि सिद्धमार्ग में औघड़ कभी भी पूजा के योग्य नहीं होता। अत: वह पूज्य नहीं है अपितु दण्डनीय है।

विना नादगलो मध्ये कर्णविधो न दृश्यते[2]।
अधस्तात् कुण्डले श्रुत्यो: कथं नाथै: स चार्च्यताम्।। २८।।

उसके गले में नाद नहीं है और न ही कर्णविध संस्कार हुआ है, नीचे कानों में कुण्डल भी नहीं है तो फिर वह नाथों का पूज्य कैसे हो सकता है?

कलौ पाखण्डिनां मुद्रा बहुधा दृश्यते भुवि।
धूर्तवन्मायिनां यद्वज्जगद्वञ्चक एव स:[3]।।२९।।

कलियुग में पृथ्वी पर पाखण्डियों का अनेक प्रकार का छल-कपट देखने को मिलता है। अत: धूर्त बाजीगर की भांति वह भी जगत् को ठगनेवाला है।

मस्तनाथ: समाकर्ण्य तदा वाक्यं तपस्विनाम्।
नमामीदृक् पथं सर्वे पूजयन्तीति वित्तवान्।[4]।।३०।।

तब तपस्वियों के वचन सुनकर मस्तनाथजी बोले कि नमस्कार है ऐसे पथ को जो लोगों से पूजा भेंट लेकर धनवान है गुणकारी नहीं।

---

१. पाठभेद-अवघट्टो न पूजार्ह: सिद्धमार्गे कदाचन।।२५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-गले नादविहीनोऽयं कर्णविधो न मध्यम:। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद-एतेषां दण्डबोधाभ्यां योगवज्रं ससर्ज स:। (प्रकाशित प्रति)

मात्राभि: रेचकं कृत्वा सबलं विससर्ज स:।
गुरुनीत्याज्ञया वातोऽवर्द्धताथ स सर्वत:[१]।।३१।।

तदनन्तर उसने मात्राओं से बलपूर्वक रेचक करके छोड़ दिया। अत: गुरु की उस नीतियुक्त आज्ञा से वह वायु सब ओर से बढ़ने लगा अर्थात् वायु का बड़ा भारी तूफान आ गया।

अवश्यायरज: पूरतुल्य: खं छादयन्नसौ।
अन्धीकुर्वन् लिलिम्पाथ दिशोऽङ्गानि समन्तत:[२]।।३२।।

धूलि के समूह की भांति धूंध ने आकाश को ढांप लिया और अन्धेरा हो गया उस अन्धकार ने दिशाओं के भागों को चारों ओर से मानो लीप-सा दिया।

दिवा न ददृशे किंचित् तमिस्रेवाऽभवन्नभ:।
अञ्जनाद्रिरिवाऽदर्शि नरास्ते मुमुहुर्दिश:।।३३।।

उस समय दिन में भी कुछ नहीं दीखता था। आकाश में अंधेरा ही अंधेरा मालूम पड़ता था मानो काजल का पर्वत खड़ा हो। वहां मौजूद वे मनुष्य दिशाओं को भूल गए थे अर्थात् उन्हें यह भी पता नहीं चलता था कि किस ओर जाएं और किस ओर न जाएं। सब जगह घोर अंधेरा छा गया था।

मुहु: स वातस्तरुजालमालामामूलतस्तां च चखान तेने।
स नीरदालिर्दलयन् यथाद्रीन् सं वर्तवातस्तुमुलस्वनेन।।३४।।

उस वायु ने अनेक वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया जैसे पर्वतों को चक्रवात (तूफान) छिन्न-भिन्न कर देता है, तब मेघों की पंक्तियां भी बड़े जोर से गर्जना करने लगीं और आकाश में सब ओर फैल गईं।

कुम्भकेन पुनर्वातमसौ लीनं व्यधाद् यदा।
भानुना भानुमात्राणामेधनं स चकार ह।।३५।।

फिर मस्तजी ने कुम्भक के द्वारा वायु को रोक दिया और सूर्यनाड़ी (इडा) से सूर्य के अंशों को बढ़ा दिया, जिस कारण बहुत तेज धूप पड़ने लगी।

---

१. पाठभेद-ववौ वेगेन सर्वत:। (प्रकाशित प्रति)

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-

अन्धीचकार विदिशो विदिशो दिश: स मिश्री भवन्नथ पलं पलमाश्वसन् यत्।
खं छादयन् खचितरेणुपय:प्रपूरै: क्रूरैर्जनैर्जवजनैरजनि स्वभाव:।।३१।।

द्राघीयसी तदंशूनां ज्वालामालाप्यदृश्यत।
अङ्गारवर्षां[१] चण्डांशुस्तदा चक्रेऽभितो यदा।।३६।।

उस समय उस सूर्य के अंशों का बड़ा भारी ज्वालासमूह दिखाई देने लगा तथा प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य चारों ओर अंगारों की वर्षा करने लगा।

घर्मतप्ता ज्वलत्स्वाङ्गा दृश्यन्ते स्म नरास्तदा।
व्याकुलाः सकला मस्तमस्तुवन् नम्रया गिरा।।३७।।

तब लोग धूप से संतप्त हो गए और उनके अंग जलते हुए दिखाई देने लगे, तब व्याकुल हुए सब लोग विनम्र वाणी में मस्तजी की स्तुति करने लगे।

चन्द्रनाड्या चन्द्रमात्रामाकृष्य तपनांशुजाम्।
तप्तिं निवार्य शान्त्या[२] स मुदितां व्यदधात् प्रजाम्।।३८।।

फिर उन्होंने चन्द्रनाड़ी (पिंगला) द्वारा चन्द्रमा के अंशों को खींचकर तपनशील किरणों से उत्पन्न गर्मी को शान्त करके सभी प्राणियों को प्रसन्न कर दिया।

निर्दोषां सुखितां कृत्वा सरक्तां स प्रजान्तदा।
विरक्तानां[३] दमञ्चक्रे मनसा मातृलीलया।।३९।।

मानसिक प्रकृति की लीला से उसने अपने में अनुराग रखनेवाली निर्दोष प्रजा को खुश करके विरक्त संन्यासियों के अहंकार का भी दमन कर दिया।

नैतावता दर्पमुक्तिं विलोक्य भगवान् प्रभुः।
अन्यथाकारमाश्रित्य प्रैरिरत् तान् पृथक् पृथक्[४]।।४०।।

सबके स्वामी भगवान् ने जब देखा कि इतने से भी इनका अहंकार दूर नहीं हुआ है, तब उन्होंने दूसरे प्रकार से स्वरूप को धारण करके उन सबको अलग-अलग प्रेरित किया।

तदान्तर्विकृतेर्वृद्ध्या[५] दिशो युक्तौ तपस्विनौ।
समाधिं स्वं जीवनेन चक्रतुस्तौ पृथक् पृथक्।।४१।।

---

१. पाठभेद-अंगारवृष्टिं.........। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-अपाकृत्य तदा तापं। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-तापसानां। (प्रकाशित प्रति) ४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
५. पाठभेद-तदान्तर्विकृतिं कृत्वा। (प्रकाशित प्रति)

तब उनके अन्त:करण में विकार के बढ़ जाने के कारण दो-दो तपस्वी एक ही विचारधारा से युक्त हुए अर्थात् उनके मन में एक साथ विचार उत्पन्न हुआ और वे दोनों आपस में मिलकर जीते जी ही समाधि लेने लगे।

इत्थं संजीवतां तेषां समाधिमधिनेत्रगम्।
वीक्ष्य बालो मुधा[१] धावत् समाधातुं निजेच्छया।।४२।।

इस प्रकार जीवित महात्माओं को आंखों के सामने समाधि लेते देखकर एक बालक साधु मुग्ध हुआ अपनी इच्छा से समाधि लेने के लिए दौड़ा।

तद्गुरुस्तं समानीय[२] प्राह बालं स्वशासनम्।
मा गमो बाल ! मार्गं स्वपथो मा कुचितो भवेत्[३]।।४३।।

तब गुरु ने उस बालक को बुलाकर समझाया कि हे बालक ! तू उन महात्माओं का अनुसरण मत कर। ऐसा करने से हमारे अपने पंथ का सिर नीचा हो जायेगा।

बाल: प्राह न ते मार्गो मद्गुरोर्य[४]त्समीहया।
भवितव्यं तथेत्युक्त्वा[५] मस्तनाथान्तिके ययौ।।४४।।

तब बालक कहने लगा कि मेरे गुरु (मस्तनाथजी) के सामने तुम्हारा पंथ कुछ नहीं है, जो उनकी इच्छा है वही होगा; ऐसा कहकर वह मस्तनाथजी के पास चला गया।

पादयो: पातिते[६]ऽस्मिन् प्रससादेश्वरो गुरु:[७]।
प्राह बालं प्रियोऽसि त्वं क्षान्तो ज्ञानी भवाऽधुना।।४५।।

उस बालक के पैरों में गिराने पर सामर्थ्यवान् गुरु प्रसन्न हो गए और बालक को कहने लगे कि तुम मेरे प्रिय हो, मैंने तुम्हें क्षमा किया, अब तुम ज्ञानी हो जाओगे।

---

१. पाठभेद-तदा। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-समाकर्ण्य। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-मार्गन्तं मार्गस्य ध्वंसनम् भवेत्। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-मस्तनाथ। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-तदेव स्यात्। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-पतिते। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद-प्रसन्नो भगवान् भव। (प्रकाशित प्रति)

श्रुतं[1] तद्वचनं चित्ते ज्ञानं जज्ञे स्वतःप्रभम्।
निवृत्तो मरणान्तेन सर्वैस्तच्च निरीक्षितम्।।४६।।

उनके वचन सुनते ही उस बालक के मन में अपने आप ही ज्ञान उत्पन्न हो गया तथा मरने से उसका मन भी हट गया और इस विचित्र बात को सभी ने देखा।

एधिता स्फूर्तिमात्रा सा सर्वत्रेत्थं विचारणा।
उदिता प्रार्थ्यतां मस्तनाथो हीश्वरसम्मितः।।४७।।

इस चरित्र को देखने से सभी साधुओं के मन में रोमांच उत्पन्न हो गया और यह बात सब जगह फैल गई कि निःसंदेह मस्तनाथजी ईश्वरतुल्य हैं, अतः उनसे प्रार्थना करो और क्षमा मांगो।

तस्य प्रसादे सर्वेषां प्रसादो भवितामतम्[2]।
स्थास्नुस्तेनैव नाऽन्योऽस्ति मार्गोतः संप्रसाद्यताम्[3]।।४८।।

उसके प्रसन्न हो जाने पर अब सब जगह आनन्द हो जायेगा उनका पंथ ही चिरस्थायी है अतः उन्हें सब मिलकर प्रसन्न करो।

द्वादशानां नाथमार्गगानामाप्ता समर्हणाम्[4]।
सोपहारां साञ्जलिं स्वां स्वां तदा विदधुः पृथक्।।४९।।

तब बारह पंथों के अनुयायी बड़े-बड़े ऋषियों (महन्तों) ने हाथ जोड़कर अपनी-अपनी अलग भेंट चढ़ाई।

अनाद्यनन्तं स्वपदाधिरूढमूलं न तर्के निगमागमेषु।
व्यूढं जगत्या न समूहितुं तं शक्यं नमामो गुरुमस्तनाथम्।। ५०।।

जिनका आदि और अन्त नहीं है, जो अपनी महिमा से स्थित है, श्रुति (विद) स्मृति भी जिनके वास्तविक स्वरूप का वर्णन करने में असमर्थ हैं, सर्वत्र व्याप्त उनके विषय में तर्क भी नहीं किया जा सकता; ऐसे अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करनेवाले गुरु मस्तनाथजी को हम नमस्कार करते हैं।

---

१. पाठभेद-श्रुत्वा। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-अधुना। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-सिद्धस्यातुष्टिकारो हि न कस्य संमते यतः(प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-द्वादशाध्वप्रसिद्धा ये मस्तनाथाय निष्ठया। (प्रकाशित प्रति)

एवं ते बहुधा स्तुत्वा स्वापराधक्षमापनम्[१]।
विदधुस्तेन सुप्रीतस्तेभ्यो ज्ञानं ददौ गुरुः[२]।।५१।।

इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रकार से स्तुति करके अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की और उस गुरु (शिवस्वरूप मस्तनाथजी) ने भी प्रसन्न होकर उन्हें ज्ञान दिया।

अद्वैतं परमार्थे मे स्वरूपं व्यवहरगा।
भिन्नता मे[३] सदा भेदो भेदाभेदान्तगोऽस्म्यहम्[४]।।५२।।

मेरा वास्तविक स्वरूप अद्वैत है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से हमेशा ही मेरे स्वरूप में भिन्नता व भेद है। इस प्रकार मैं भेद और अभेद दोनों स्वरूपवाला हूं!

नित्योऽद्वैतात्मसत्त्वेन भेदोऽनित्यो विविच्यताम्।
अज्ञानान्मोहिता योगमात्रयाऽतत्त्वदर्शिनः।।५३।।

मेरा अद्वैत स्वरूप आत्मरूप से नित्य है, भेद अनित्य है अर्थात् देह के सम्बन्ध के कारण भेद है, शरीर जब अनित्य है तो उसके सम्बन्ध से होनेवाला भेद भी निश्चित रूप से अनित्य है। जो तत्त्ववेत्ता नहीं हैं वे योगमाया के द्वारा अज्ञान के कारण सांसारिक पदार्थों के प्रति मोहित हो जाते हैं।

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्।।५४।।

कोई अद्वैत की इच्छा करते हैं कोई दूसरे द्वैत की इच्छा करते हैं परन्तु वे द्वैत और अद्वैत से अतिरिक्त एक समान तत्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते।

नश्यति चेत् कथं सत्यं दृश्यते चेत् कथं वृथा।
सिद्धानामेष सिद्धान्तः सत्यमिथ्याविवर्जितः।।५५।।

यदि नष्ट होता है तो सत्य कैसे दीखता है और यदि सत्य है तो वृथा (मिथ्या-नाशवान्) कैसे है ? सिद्धों का यही सिद्धान्त है जो सत्य और मिथ्या से रहित है।

---

१ इससे पहले प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलता है :-
न वेदते कोऽपि समीहितं प्रभो किं वाऽप्रियं ते प्रियतामुपैति यत्।
का पद्धती रोचत इत्यवेत्य ते कुर्मश्च संदिग्धतया तवार्चनम्।।५०।।

२ पाठभेद-शिवः। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-भिन्नतायै। (प्रकाशित प्रति)

४ पाठभेद-परः। (प्रकाशित प्रति)

द्वादशसम्प्रदायानां न भेदोऽस्ति कथंचन।
एक एव हि सर्वेषां ध्येयो नान्यस्तु विद्यते।।५६।।

बारह पंथों का भेद किसी प्रकार से नहीं है क्योंकि वस्तुतः सभी का लक्ष्य एक ही है, दूसरा नहीं है।

अतो नैव विधातव्यस्त्वन्योऽन्य कलहः सदा[1]।
स्ववर्गीयविरोधो हि ध्रुवं धक्ष्यति स्वकुलम्[2]।।५७।।

अतः आपस में कलह नहीं करना चाहिए क्योंकि परस्पर का विरोध अपने कुल का अवश्य विनाश कर देगा।

इत्येवं ज्ञानविज्ञानतत्त्वादेशोपदेशनात्।
आईपथे नाथसंज्ञा मस्तनाथात्समागता[3]।।५८।।

इस प्रकार ज्ञान और विज्ञान के तत्त्व के विषय में आदेश एवं उपदेश देने के कारण आईपथ में 'नाथ' की पदवी मस्तनाथजी से ही आई अर्थात् श्रीमस्तनाथजी से ही इस पंथ में नाम के पीछे 'नाथ' शब्द लगाने की परिपाटी शुरू हुई, उससे पहले इस सम्प्रदाय के योगियों के नाम के पीछे 'आई' शब्द लगाया जाता था।

इति श्रीमस्तनाथचरिते आईमार्गे पुनर्नाथसंज्ञावतारेशसिद्धिदर्शनो नाम सप्तमः सर्गः।

---

१. पाठभेद-विधातव्या भिदा द्वाभ्यां द्वयोरपि। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-सार्धं प्रेमाणमाधाय धीरो भवति नान्यथा।।५८।। (प्रकाशित प्रति)

३. प्रकाशित प्रति में यह पद्य ५६ पद्य से पहले है जबकि पाण्डुलिपि में अन्त में है। मेरे विचार में प्रसंग को देखते हुए इसका अन्त में होना ही उचित है।

अष्टमः सर्गः

प्रजादुःखहरणादिप्रकरणम्

अदक्षिणं दक्षिणमार्गवृत्तिं तेने मनोमोदयुक्तम् ।
विनास्तिकं नास्तिकलोकमित्रं तं दक्षिणेशं भज मस्तनाथम्[१] ।।१।।

मन को खुश करनेवाले अलौकिक चरित्र को जिन्होंने विस्तार से सुन लिया है तथा सरल मार्ग में रहनेवाले उनके दर्शन से हट गई है नास्तिकता जिनकी इसीलिए नास्तिकों के भी प्यारे ऐसे शिवस्वरूप बाबा मस्तनाथजी की आराधना करो।

दुष्टेषु कालं तपसा विशालं शान्त्येकशालं भवजालकालम् ।
चैतन्यमायाकलने मरालं श्रीमस्तनाथं सततं नमामि[२] ।।२।।

दुष्टों के कालस्वरूप, तपस्या के कारण विशाल, शान्ति के एकमात्र आधार, संसाररूपी जाल (बन्धन) का काल (विनाशक, छुटकारा दिलानेवाले), चैतन्य और माया की गणना में मृदु (सौम्य) श्रीमस्तनाथजी को मैं निरन्तर नमन करता हूं अर्थात् उनका चैतन्य एवं मायावी रूप; दोनों ही सौम्य हैं और वे प्रत्येक रूप में भक्तों को सौम्य ही दिखाई देते हैं।

बोहरग्रामसविधे पुराऽभूदटवी यथा ।
गौरीगुरूपत्यकासु गहना वनजन्तुभिः ।।३।।

जैसे हिमालय की उपत्यकाओं में जंगली जन्तु होते हैं, वैसे ही बोहर ग्राम के समीप प्राचीन समय में वन के जन्तुओं से खचाखच भरा हुआ एक जंगल था।

भाङ्कारैः केसरीन्द्राणां शुशुभे व्याघ्रवाशितैः ।
मिलितानां रवैर्दीर्घैरागुहं प्रतिराविणाम् ।।४।।

उसमें श्रेष्ठ सिंहों (सिंहराज) की गर्जनाओं से, बाघों की दहाड़ से तथा एक साथ मिले हुए पशुओं-गीदड़ों इत्यादि की ऊंची आवाज से गुफाएं तक गूंज उठती थीं।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है और 'मनोमोद' शब्द के बाद का शब्द पाण्डुलिपि में खण्डित है। अतः मैंने प्रसंग को देखते हुए 'युक्तम्' पद जोड़ दिया है। इसका अनुवाद पाण्डुलिपि से संकलित है।

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

वल्लीतरुमहास्तम्भान् क्वचिद् व्याप्य स्थिता यथा।
हरितान् घनसंघातान् पीतिमा स्तनयित्नुजा[1] ।।५।।

कहीं-कहीं पर पीली-पीली लताएं हरे वृक्षों के विशाल तनों को लपेटे हुए मौजूद थीं जैसे कि हरे (काले) मेघमंडलों को गर्जना करनेवाले मेघों से उत्पन्न पीले रंग की विद्युत् व्याप्त किए रहती है।

स्थलीषु वल्लीषु मतल्लिकासु स्थिता हरीन्द्रा निजवक्त्रगर्तान्।
व्यादाय कालोऽपि पलायमानो भेजे दिशो लोचनमाकलय्य[2] ।।६।।

सिंहराज अपने मुखरूप गर्त में जन्तुओं को लेकर चमेली की बेलों से युक्त प्राकृतिक स्थलों में बैठे हुए हैं जिन्हें देखकर यमराज भी अपने नेत्रों को हाथ से ढककर भागता हुआ दिशाओं का सेवन करता है अर्थात् दुबककर दृष्टि बचाकर एक कोने में जा बैठता है।

अकृत्रिमाः पवित्रमकन्दवृन्दाः सरांसि कूपास्तरुयूपवाप्यः[3]।
सत्कोकिलाकृष्टमनांसि यत्र चञ्चूर्यमाणा सघना खगालिः[4] ।।७।।

जहां पर स्वयं उत्पन्न हुए नाना प्रकार के कन्द-मूल, तालाब, कुएँ, वृक्ष, यज्ञ के स्तम्भ (यूप), बावड़ियाँ, सुन्दर कोयलों की आवाज से मन आकृष्ट होते हैं एवं चूरा करती हुई (दानों को कुतरती हुई) पक्षियों की सघन पंक्ति दिखलाई पड़ती हैं।

अजर्यं हरितैः सिंहैर्मित्रतां कर्त्तुमागतः[5]।
मनोऽधात् सिद्धचौरङ्गी काकतालीयवत् स्थितः।।८।।

जहां हरिण सिंहों के साथ तथा सिंह हरिणों के साथ स्थायी मित्रता करने के लिए आते हैं, ऐसे उस वन में तप करने के लिए मन में ठानकर सिद्ध चौरङ्गीनाथ काकतालीयन्याय[6] (अचानक) के समान आकर ठहरे।

---

१. पाठभेद-घनजा प्रभा। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-मानं विहायाथ विलोक्य धीरः। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-तूपाः। (पाण्डुलिपि)

४. पाठभेद-सत्कैरवीकृष्टमनांसि यत्र स्वयं प्रभानीशकृति प्रजानि। (पाण्डुलिपि)

५. पाठभेद-व्याधातु तप्तुमागतः। (पाण्डुलिपि)

६. एक वृक्ष के नीचे एक बटोही बैठा था। उसी वृक्ष के ऊपर एक काक भी बैठा था। काक वृक्ष छोड़कर ज्यों ही उड़ा त्यों ही ताड़ का फल नीचे गिरा। यद्यपि फल पककर आपसे आप गिरा था, पर पथिक दोनों बातों को साथ होते देख यही समझ गया कि कौवे के

अविघ्नमजनं वीक्ष्य वनं सगिरिकन्दरम्।
बहुकन्दफलैर्मूलैरूपेतत्वात्सुखावहम् ।।९।।

अनेक प्रकार के कन्द, फल, मूल से युक्त होने के कारण सुखदायी, विघ्नों से रहित, निर्जन, पर्वत और गुफाओं से युक्त उस वन को देखकर (योगी ने मन को ब्रह्म में लगाया)।

द्वादशाब्दं तपस्तप्तुं ध्यातुं ब्रह्मसनातनम्।
चौरङ्गीनाथयोगीन्द्रः कठिनं मन आदधौ ।।१०।।

योगिराज चौरङ्गीनाथ ने बारह वर्ष तक तप करने के लिए तथा सनातन ब्रह्म का ध्यान करने के लिए अपने मन को दृढ़ किया।

तत्तपो वीक्ष्य दैत्येन्द्राः ससुराऽसुरमानुषाः।
मुमुहुर्यत्प्रसादेन परां सिद्धिमवाप सः ।।११।।

जिस तपोबल के प्रभाव से उस सिद्ध चौरंगी ने सिद्धि को प्राप्त किया था उस घोर तप को देखकर बड़े-बड़े दैत्य, देवता, राक्षस यहां तक कि मनुष्य भी मुग्ध हो गये थे।

मस्तनाथो निजेच्छातो रममाण इतस्ततः।
सप्तद्वीपां वसुमतीमवगाह्याप तत्र ह[१] ।।१२।।

मस्तनाथजी अपनी इच्छा से इधर-उधर रमण करते हुए सात द्वीपोंवाली वसुन्धरा को आलोडित करके (घूमकर) एक बार वहाँ आ पहुंचे।

चौरङ्गी चतुरङ्गी स पद्धतिं कर्त्तुमाश्रिताम्।
रम्यावनिमरण्यानीं पञ्चाङ्गीं विदधौ तदा ।।१३।।

उड़ने ही से तालफल गिरा। अतः जहां दो बातें संयोग से इस प्रकार एक साथ हो जाती हैं वहां उनमें परस्पर कोई संबंध न होते हुए भी, लोग जब सम्बन्ध लगा बैठते हैं, तब यह कहावत कही जाती है।

यहां कवि का सिद्धचौरङ्गीनाथ का वहां इस प्रकार बैठा होना इस बात की ओर संकेत करता है कि हरिण और शेर भी अपनी स्वाभाविक शत्रुता का परित्याग करके उनको सहयोग देने हेतु उपस्थित रहते थे। जिसने भगवद्भक्ति में मन लगा लिया है, समस्त प्रकृति उसकी अपने आप सहयोगी हो जाती है।

१. पाठभेद-बहुलोकान् विगाह्यथ भ्रमंस्तत्रसमागतः। (प्रकाशित प्रति)

उस चौरङ्गीजी ने चार अंगोंवाली योगिजनों की परिपाटी के अनुसार जिस सुन्दर भूमि का तपहेतु आश्रय लिया था उस भूमि को मस्तनाथजी ने पाँच अंगों[१] वाला बना दिया अर्थात् वहां पर वे पंचाग्नि तप करने लगे।

पंचाग्नि तप में योगी अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके निर्मिमेष दृष्टि से सूर्य की ओर देखा करता है परन्तु ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार योगी शंकरनाथ फलेग्रहिजी ने पंचांगी से तप, बहुत अधिक यश, शान्ति, श्री तथा सौख्य (सुख का भाव) अभिप्राय लिया है।

पञ्चाग्नितापमातप्तुं धूमाग्निर्धुक्षितस्तथा।
तपसा दभ्रकालेन तेने दिक्षु यशोऽमलम्।।१४।।

तब वें वहां पर पञ्चाग्नि तप करने के लिए धूने की अग्नि प्रज्वलित करके उसी प्रकार से (नाथसम्प्रदाय के अनुसार) तप करने लगे और थोड़े ही समय में उन्होंने तप से अपने निर्मल यश को सभी दिशाओं में फैला दिया।

न स्वासनं त्यक्तुमरं[२] रुचिस्तन्निजासनं सिद्धमलंचकार।
सिद्धिस्तदा दानदयालुतायाः पूर्णं गरीयो भुवनं व्यधत्त।।१५।।

(तप करते हुए) अपने आसन को छोड़ने की उनकी जरा भी रुचि नहीं होती थी उन्होंने अपने आसन को सिद्ध कर लिया, तब उस सिद्धि ने दान एवं दयालुता से परिपूर्ण सम्पूर्ण विशाल ब्रह्माण्ड को और भी गौरवपूर्ण बना दिया।

ग्रामीणलोकैः[३] सितकीर्तिलिप्तैः[३] सृप्तिं समीपेऽनुविधातुमीहाम्।
श्रीमस्तनाथस्य समीपमेतुं चक्रुश्च ते हिंस्रजनाकुलं तत्[४]।।१६।।

श्रीमस्तनाथजी की निर्मल कीर्ति से आकृष्ट होकर गांव के लोगों ने उनके समीप हिंस्र जन्तुओं से भरे हुए उस वन में जाने की इच्छा की।

पुरापि लोकैर्निजदुःखहारी महर्षिलोकोऽनुसृतोऽघहारी।
तपः प्रभान्यक्कृतदैत्यमारी भक्तैरनन्यैः[५] क्षणलोकचारी।।१७।।

---

१. नित्य का विवेक, यहां से स्वर्गादि लोकों के पदार्थों में वैराग्य, यम-नियमादि साधन, मोक्ष की इच्छा इन चार अंगोंवाले चौरंगीनाथ ने योगिजनों की परिपाटी के अनुसार पत्र, पुष्प, फल, एकान्त, जल इन पञ्च से युक्त जिस सुन्दर जंगल में पहले तप किया था वही तपोभूमि मस्तनाथजी ने की। (पाण्डुलिपि)

२. पाठभेद-हातुमलं। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-लोका लिप्ताः। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-चक्रे कथंकार मतो प्रगम्यं तद्हिंस्रवन्यैश्च वनं परीतम्।। (पाण्डुलिपि)

५. पाठभेद-स्वरक्षणोक्षः। (पाण्डुलिपि)

क्योंकि पहले भी अनन्य भक्तजनों द्वारा पापों का विनाश करनेवाले, उनके निजी दुःखों का हरण करनेवाले, अपने ब्रह्मतेज से तिरस्कृत दैत्यों का संहार करनेवाले, कुछ समय के लिए संसार में विचरण करनेवाले महर्षियों का अनुसरण किया जाता रहा है।

इति कृत्वा मतिं सर्वे गिरिधारिपुरःसराः।
मस्तनाथं दरीद्रष्टुमेताः मनसि शंकिताः[1]।।१८।।

ऐसा निश्चय करके गिरिधारी आदि सब लोग तब मस्तनाथजी को देखने के लिए शंका करते हुए वन में गए अर्थात् हिंस्र जन्तुओं से डरते-डरते वन में जा पहुंचे।

दृष्टाः केसरिणो व्याघ्रा जागरूका गजा इव।
सोहंकारजपासक्ताः कपोताद्याः पतत्रिणः।।१९।।

वहां पर शेर, बाघ, हाथी आदि हिंसक जन्तुओं को तथा कबूतर इत्यादि पक्षियों को 'सोऽहम्' जप में लगे हुए देखा अर्थात् ये जन्तु वहां पर 'सोऽहम्' (वही मैं हूं) की ध्वनि निकाल रहे थे।

तानालोक्य भयोद्विग्ना विघ्नान्युच्चरवा मुहुः।
नतमस्ताः[2] समूचुस्ते मायामेतां परां कुरु।।२०।।

उन जन्तुओं को विघ्नों के समान देखकर भय से व्याकुल हो वे लोग सिर झुकाए हुए ऊँचे स्वर से बार-बार कहने लगे कि (भगवान्!) इस माया को हटा लो।

अष्टसिद्धिसमायुक्ते योगपारंगमे गुरौ[3]।
किमर्थमेषा माया नो भयादाकुलयत्यहो।।२१।।

अष्टसिद्धि से युक्त, योग के मर्म को जाननेवाले गुरु मस्तनाथजी के रहते हुए, अहो! यह माया हमें भय से किसलिए व्याकुल कर रही है?

शान्तस्वापदहिंस्त्रौघं वनं तन्निश्चलीकृतम्।
वीतभीतिमनः स्वास्थ्यं ययुस्ते ग्रामवासिनः।।२२।।

(उन लोगों के इस प्रकार प्रार्थना करने पर बाबा की कृपा से) शेर आदि सब हिंस्र वन्यजीव शान्त हो गये, तब वह वन भी शान्त हो गया। तदनन्तर वे ग्रामीण निडर हो, प्रसन्न मन से उनके पास गए।

---

१. पाठभेद-तदा द्रष्टुं शङ्कमानास्तदा गताः। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-बद्धाञ्जलीन्। (पाण्डुलिपि) ३. पाठभेद-विद्यमाने गुरौ प्रभौ। (प्रकाशित प्रति)

मुहुः स्तवान् विधायैवाऽब्रुवन् स्वामिन् कृपां कुरु[१]।
दुःखार्तानां शरण्यस्त्वं शिष्याणां गुरुराश्रयः।।२३।।

उन लोगों ने बार-बार प्रार्थना करके कहा कि हे स्वामिन्! हमारे ऊपर दया करो क्योंकि आप दुःख से पीड़ित प्राणियों का दुःख दूर करनेवाले एवं अपने शिष्यों का एकमात्र सहारा हो।

अपरा नाथ लीला ते पारं ज्ञातुं न शक्यते।
पठ्यन्तां कोटिशास्त्राणि लिख्यन्तां पुस्तकाः सदा[२]।।२४।।

हे नाथ! यदि करोड़ों शास्त्र पढ़े जायें व निरन्तर पुस्तकें लिखी जाएं तो भी तुम्हारी अद्भुत लीला का पार नहीं जाना जा सकता अर्थात् तुम्हारी माया वस्तुतः क्या है? इस विषय में कोई नहीं जान सकता।

अपारलीला ते नाथ क्व वयं ग्राम्यवर्णकाः।
दीनबन्धो दयासिन्धो दुःखं नो हर दुःखीनाम्[३]।।२५।।

आपकी लीला अपार है। हम गांव के रहनेवाले आपका वर्णन कहा तक कर सकते हैं। हे दीनों के पालक! हे दया के सागर! हम दुःखियों का दुःख दूर करो।

न शक्रकोपस्य निदानमीश प्रतीयतेऽज्ञातमतिः स देवः।
न नीरदा नीरददा भवन्ति क्षेत्रं न नीरैः परिपूरयन्ति।।२६।।

हे ईश! इन्द्र देवता के क्रोध का हल (निदान) हम नहीं जानते क्योंकि वह अज्ञातमति[४] देवता है। क्या कारण है कि मेघ जल नहीं बरसाते और खेतों को जल से नहीं भरते?

न नीरहीने शुभसस्यवृद्धिः सिद्धिस्ततो नो नरतृप्तिऋद्धिः[५]।
सरांसि नद्यो वनहीनवन्यप्रतप्तभूमित्वमुपागतानि[६]।।२७।।

जल की कमी होने से फसल भी अच्छी तरह से नहीं बढ़ पा रही है और अच्छी फसल न होने से हम लोग संतुष्ट नहीं हैं और न ही धन इत्यादि आ सकता है। तालाब, नदियाँ जल से रहित हैं तथा निर्जल (वनहीन) होने से जंगल की भूमि भी तप रही है।

---

१. पाठभेद-जगदुस्ते तदा पुनः। (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है तथा इसका **अनुवाद** भी पाण्डुलिपि से संकलित है।
४. जिसके विचार के विषय में पता न हो। ५. पाठभेद-रूपा। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-शुष्काणि वनं च शुष्कं नद्यश्च शुष्कास्तृणमेव शुष्कम्। (प्रकाशित प्रति)

भवत्कृपातो[1] जलदागमश्चे[2]त्सर्वत्र वर्षापरिषिञ्चितानि[3]।
सस्यानि सर्वाणि समेधितानि मनांसि हर्षोद्गमफुल्लितानि।।२८।।

आपकी कृपा से यदि मेघ का आगमन हो जाए तो सब जगह वर्षा से सींची गई सारी फसल अच्छी तरह बढ़ जाए जिससे सबके मन खुशियों से खिल उठें।

संकष्टखण्डनं नाम भवतोऽखण्डमण्डले।
प्रजासु सुखिता नाथ संस्तवस्त्वद्गणाश्रयः[4] ।।२९।।

इन तमाम मण्डल के लोगों के बीच आपके गुणों की महिमा का संकष्ट खण्डन नाम का स्तोत्र चिरस्थायी रहेगा और हे नाथ ! सब लोग बड़े सुखी हो जायेंगे।[5]

एवमुक्त्वाथ विरता प्रजोचे ध्यानतः श्रिता[6]।
अधर्मबहुले देशे न वर्षाः सुरकोपतः।।३०।।

इसके अनन्तर ऐसा कहकर सब लोग चुप हो गए, तब नाथजी ने ध्यान लगाकर कहा कि जिस देश में अधर्म अधिक होता है वहां देवताओं के क्रोध के कारण वर्षा नहीं होती।

अमेध्यैर्मांससंपृक्तैर्निन्दकैर्भेदकैस्तथा।
अर्च्यते देवता येन न वर्षाः सुरकोपतः।।३१।।

जहां यज्ञ न करनेवाले (अथवा अपवित्र-चरित्रहीन्), मांस खानेवाले, निन्दा करनेवाले तथा चोरी करनेवाले व्यक्तियों द्वारा देवता पूजा जाता है वहां देवता के नाराज होने के कारण वर्षा नहीं होती।

सहस्रवर्षाणि च देवनाम्ना यज्ञस्य नाम्ना दशलक्षवर्षान्।
मांसस्य भोक्ता नरकं प्रयाति शतं समाः श्राद्धविधिक्रियायै[7]।।३२।।

देवता का नाम लेने से मनुष्य सहस्रों वर्षों तक, यज्ञ करते रहने से दस लाख वर्षों तक जीवित रहता है परन्तु मांस को खानेवाला व्यक्ति नरक में जाता है जबकि श्राद्धविधि की क्रियाओं के लिए तर्पण करता हुआ सौ वर्ष जीवित रहता है।

---

१. पाठभेद-दयातो। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-भवेत्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-परिपूतानि। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
५. पाण्डुलिपि से संकलित।
६. पाठभेद-शिवः। (प्रकाशित प्रति)
७. २९, ३० पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

यज्ञं विना यदा देशो गोविप्रसुरपीडनम्।
ततः सुरप्रकोपः स्यात् सुकृतं नैव किंचन।।३३।।

जहां पर यज्ञ के बिना गाय, ब्राह्मण व देवता (सज्जन व्यक्ति) को पीडा पहुंचाई जाए, वहां देवता नाराज हो जाते हैं तथा कुछ भी पुण्य बाकी नहीं बचा होता। (अतः देवता के प्रकोप के कारण अकाल व बाढ़ की स्थिति का सारी जनता को सामना करना पड़ता है।

यत्राददात्यातुरं लोकं नीरवर्षेण नीरदाः।
सस्यान्यतर्पिताः पापशापैः सन्तापयन्ति ते[१]।।३४।।

जहां दान नहीं दिया जाता, गरीबों की रक्षा नहीं की जाती, वहां मेघ पाप-शाप के द्वारा लोगों को कष्ट देते हैं और वर्षा के द्वारा खेतियों को नहीं बढ़ाते

उदरे भरिते येषां देवास्तृप्ता भवन्ति किम्।
उदराभरणे देवास्तेषां यत्नं श्रयन्तु न[३]।।३५।।

जिनके अपना उदरमात्र भर लेने से क्या देवता संतुष्ट होते हैं? (अपितु यज्ञादि से दवता प्रसन्न होते हैं) अतः उन लोगों के पेट भरने (पालन-पोषण) के विषय में देव भी यत्न नहीं करते।

का पूजा का मतिर्नाथ कामिज्यां प्रचराम वा।
ब्रूहि संपूजितो देवः कस्को नो दुःखनाशकः[४]।।३६।।

कौन-सी पूजा, उपासना व यज्ञ करें अथवा कौन-सा उपाय करें अथवा किंस देव की पूजा करने से हमारा दुःख दूर होगा। हे नाथ! बताइए।

इत्युक्तं तद्वचस्तेषामाकर्ण्य प्राह सत्वरम्।
यथाशक्ति सुरार्हातो[५] हिंसां त्यजत धार्मिकाः।।३७।।

उनकी इस प्रकार की कही हुई बातें सुनकर नाथजी ने तुरन्त कहा कि हे धार्मिक लोगो! अपने सामर्थ्य के अनुसार देवताओं की पूजा करो और हिंसा को बिल्कुल छोड़ दो।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है तथा इसका प्रथम शब्द खण्डित है, मैंने प्रसंग को देखते हुए 'यत्र' पाठ रख दिया है।

२. पाण्डुलिपि से संकलित। ३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. पाठभेद-हृन्मतः। (पाण्डुलिपि) ५. पाठभेद-अर्चातो। (प्रकाशित प्रति)

गृहे गृहे दैवतपूजनानि स्वेष्टानि पुण्यानि चरन्तु लोकाः।
सतां समर्चा भवताद्गृहस्था विप्रार्चनं देववचः प्रवाहाः[१] ।।३८।।

घर-घर में देवताओं की पूजा हो, लोग सदाचार का पालन करें, सज्जनों का आदर हो, ब्राह्मण की पूजा हो और यज्ञ-धर्म का विस्तार हो तब वर्षा होगी।

श्रौतेज्यया होमजपादिकाः स्युस्सुरालयेष्वर्चत दैवतानि।
विद्यान्नदानालयनिर्मितिस्स्यात्सदाचुरादम्भछलादिकानि[२] ।।३९।।

श्रौत यज्ञ के द्वारा होम मन्त्रजपादि होवें, देवमन्दिरों में जाकर देवताओं की पूजा की जाए, पाठशाला (विद्यामन्दिर), अन्नभण्डार, धर्मशाला आदि का निर्माण किया जाए और लोग हमेशा के लिए चोरी, झूठा अहंकार, छलकपट आदि को बिल्कुल छोड़ दें, तब वर्षा होगी।

विपत्सु धैर्यं[३] प्रजहाति सर्वो वृद्धानथाढ्यान्[४] विदुषः परैति।
यो नास्तिकोऽप्याश्रयते स देवान् मुनींश्च सिद्धान् विकले स्वकाले[५] ।।४०।।

मुसीबतों में सब धैर्य छोड़ देते हैं, वृद्ध, समृद्ध तथा विद्वान् आदि को भी छोड़ देते हैं, नास्तिक होता हुआ भी जो व्यक्ति अपनी विपत्ति के समय में भी देवता, मुनियों और सिद्धों की सेवा करता है; वह सिद्धि को पा लेता है।

न देवसिद्धनिन्दा चेद् विप्राणामवहेलना।
नापदो विपदस्तत्र सिद्धा यत्र प्रसाधिताः ।।४१।।

यदि जहां पर देव एवं सिद्धों की निन्दा (आलोचना) नहीं होती, ब्राह्मणों का अनादर नहीं किया जाता और सिद्धजन जहां निर्विघ्न साधना करते हों, वहां पर न कष्ट आते हैं और न ही कोई विपत्ति आती है।

यस्य यस्याश्रितो देवः सम्प्रदायो निजोऽपि यः।
तदबाधेन देवानां प्रसादः सम्प्रवर्तते[६] ।।४२।।

---

१. पाठभेद-.............................सुरे सुरे भक्तियुता भवेयुः।
पुरे पुरे ब्राह्मणवेदचर्चाः साधोर्जनस्यापि समर्चनं च।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ३. पाठभेद-धर्मं। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-परार्थान्। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद-तमीश्वरं सिद्धिं समानां श्रयते स्वसेवया। (प्रकाशित प्रति)

६. यह पद्य प्रकाशित प्रति में ४२ पद्य के बाद है परन्तु वहां पर इसे रखना असंगत है।

जिस-जिस का जो सम्प्रदाय व इष्ट देवता है, उस-उस की निर्विघ्न सेवा (उपासना) करने से देवता की कृपा होने लगती है।

सर्वाऽविरोधिवाक्यो न प्रसन्नाऽतस्तदा प्रजा।
यथाशक्ति परित्यज्य हिंसां पुण्ये मतिं व्यधात्।।४३।।

तब नाथजी के सर्वथा शास्त्रसम्मत वचन से समस्त प्रजाजन प्रसन्न हो गए और उन्होंने हिंसा का परित्याग करके यथाशक्ति पुण्य के कार्यों में अपने मन को लगाया।

कृतप्रतिज्ञा समनुज्ञया यत् प्रजास्ततोऽसौ मुमुदे समूचे।
प्रातः समर्हा समयात् पुरैव वर्षिष्यतीष्टाम्बु स नीरदाता।।४४।।

तब नाथजी की आज्ञा से सारी प्रजा ने प्रतिज्ञा कर ली, तब उन्होंने कहा कि सवेरे ही देवपूजन के समय से पहले ही वह नीरदाता मेघ यथेष्ट वर्षा करेगा।

गङ्गाया न च भेदोऽस्ति घट्टभेदेन भेदतः।
सम्प्रदायप्रभेदेन परेशो भिद्यते न च।।४५।।

घाट के भेद से गंगा का भेद नहीं होता और इसी प्रकार सम्प्रदाय के भेद से परमात्मा का (भी) भेद नहीं होता।

शारदाकोटिचातुर्यं रामार्बुदबलं स्मृतम्।
कृष्णकोटिनयो यस्मिन् बुद्धकोटिदया स्मृता।।४६।।

जिसमें सरस्वती के समान चतुरता, राम के समान असंख्य (अपरिमित) शक्ति कही गई है, श्रीकृष्ण के समान नीति और बुद्ध के समान दया कही गई है।

स एव दुर्गा स च कृष्णरामौ स एव गङ्गागणनीयमूर्त्तिः।
सोऽयं हनूमान् भगवान् विवस्वान् सोऽयं गणेशो गुरुरादिनाथः।।४७।।

वही दुर्गा है और वह ही राम और कृष्ण है, वही गणनीय आकारवाली गंगा है, वही यह हनूमान है, वही भगवान् सूर्य है और वही यह गणेश हैं तथा सबके उपदेष्टा आदिनाथ (भगवान् शंकर) हैं।

निराकारोऽपि साकारः सर्वाकारो महेश्वरः।
अनन्ताकारमाश्रित्य विकारो विद्यते न च[1]।।४८।।

---

१. ४३, ४४, ४५, ४६ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

निराकार होता हुआ भी वह साकार है, सर्वाकार होता हुआ भी महेश्वर है, अनन्त आकारों का आश्रय लेकर भी जिसमें विकार नहीं है अर्थात् आत्मा के रूप में अनेक जीवों का रूप धारण करते हुए भी परमात्मा में प्राणी की भांति जरा-मरण इत्यादि विकार नहीं होते। यहां मस्तनाथजी को निर्विकारी परब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है जिनसे जगत् का साकार रूप उद्भासित होता है।

न विप्रवाक्यं न च सिद्धवाक्यमपार्थकं सत् प्रचरन्ति देवा:।
हरिर्विरञ्चिर्हरदेवतेन्द्रा गायन्ति सत्यं युगधर्मतृप्ता:।।४९।।

देवता ब्राह्मण और सिद्ध के वचन को झूठा नहीं करते अपितु युगधर्म से संतुष्ट होकर ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तथा देवेन्द्र सब सत्य का ही गान करते हैं।

एवमाकर्ण्य नाथस्य वचनं शान्तमानसा:।
समागत्य प्रतीक्षां ते चक्रिरे घनमीशत:।।५०।।

इस प्रकार नाथजी के वचन सुनकर शान्तचित्त हुए वे प्रजाजन अपने घर आकर ईश्वर से मेघ की प्रतीक्षा करने लगे।

तूर्येऽथ यामे सघनं घनं ते नभो विलिम्पं मसृणान्धाकारै:।
समुत्थितं नीलगिरिं विभूमि व्यलोकि लोकैर्नगरालयैरपि[१]।।५१।।

इसके अनन्तर रात्रि के चौथे पहर में उन्होंने बहुत अधिक गहरे अन्धकार से लिपटे हुए आकाश को तथा उमड़ते हुए बादल को नीलगिरि के समान देखा तथा नगर में रहनेवाले अन्य लोगों ने भी देखा।

रवेरुदयत:[२] पूर्वं संचितं नीरदाश्रितम्।
अधश्चकार नीरं स्वं भूमिमाप्लावयन्निव।।५२।।

सूर्य उदय से पहले ही मेघों ने एकत्रित किए हुए अपने जल को नीचे बरसा दिया जिससे मानो पृथिवी सब ओर से जलमय हो गई।

सिद्धिमम्भ: समीहानां परिपूर्णमनोरथाम्।
ददृशुर्बोहरग्रामवास्तव्या जगदु: स्तवान्।।५३।।

जल की अभिलाषा रखनेवालों की मनोकामना को पूर्ण करनेवाली उस वर्षा की सिद्धि को बोहर गांव में रहनेवाले लोगों ने देखा और तब वे उनकी स्तुति करने लगे।

---

१. पाठभेद-लुलोकिरे बुद्धमतिं बहिर्वा।।४३।। (पाण्डुलिपि)

१. पाठभेद-आदित्यादुदयात्। (प्रकाशित प्रति)

प्रसेदुराशाः परिपूरिताशा जगुर्नरा वीतभयाः सदाराः।
आरात्समाजग्मुरभीप्सितान् स्वान् स्वान्निन्युरापूर्णसुखोपहारान्। ।५४ । ।

मनोवांछित वर्षा हो जाने से समस्त दिशाएं निर्मल हो गईं, तब लोग स्त्री-बाल-बच्चों सहित निर्भय होकर खुशी से गीत गाने लगे। सबकी मनोकामनाएं पूर्ण हो गईं और वे अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुरूप भेंट लेकर नाथजी के समीप आने लगे।

समर्हमर्हं स्वगुरुं समर्हैः सगन्धधूपालिबालिप्रदीपैः।
द्रव्योपहारैर्विविधैः सवस्त्रैस्तं[२] मस्तनाथं जगुराप्तगीतैः। ।५५ । ।

अत्यन्त पूजनीय अपने गुरु मस्तनाथजी की चन्दनादि, पुष्पमाला व पूजा के दीपक, नैवेद्य वस्त्रादि सहित अनेक प्रकार के बहुमूल्य उपहारों से पूजा की और स्तोत्रपाठ करने लगे।

वेदेषु शास्त्रेषु पुरातनेषु पुराणतन्त्रांखिलपुस्तकेषु।
गीतो हि गोरक्षगुरुः स साक्षात् श्रीमस्तनाथः पुरतो व्यलोकि। ।५६ । ।

वेदों में, प्राचीन शास्त्रों में, पुराण एवं तन्त्र आदि समस्त ग्रन्थों में वस्तुतः गोरक्षगुरुजी की महिमा का गान किया गया है; वह गोरक्ष ही प्रत्यक्षरूप में सामने श्रीमस्तनाथ जी के रूप में दिखाई दिए।

इत्थं तैर्बहुधा स्तोत्रैरन्तर्य्यामी महेश्वरः।
व्यापको मोहयँल्लोकं मस्तनाथः स श्रद्दधे। ।५७ । ।

इस प्रकार उन-उन स्तोत्रों से बहुत बार लोगों को मुग्ध करता हुआ वह अन्तर्यामी, व्यापक महेश्वर मस्तनाथरूप में माना गया।

इति श्रीमस्तनाथचरिते वृष्टिसिद्ध्या प्रजादुःखहरणं सनातनधर्मस्थापनं सान्त्वनं नामाष्टमः सर्गः।

---

२. पाठभेद-सहारैः। (प्रकाशित प्रति)

नवमः सर्गः

विभूतिप्रदर्शनादिप्रकरणम्

तद्देशवास्तव्यजनौघबुद्धौ श्रद्धासमुत्कर्षविधानदीक्षाम्।
दिव्यं चरित्रं कृतवान् पुरा यत्तं मस्तनाथं प्रणमन्ति युक्ताः।।१।।

जिसने पहले उस प्रान्त में रहनेवाले लोगों को श्रद्धा, भक्ति एवं अपने कर्त्तव्यपालन की दीक्षा दी थी और अपना अलौकिक चरित्र दिखाया था, उस मस्तनाथजी को योगसाधना में लगे हुए योगिजन प्रणाम करते हैं।

कदाचिदटवीं शुभ्रभाग्यभोगां विधाय सः।
चरन् गतौ मस्तनाथः स्वेष्टं देशान्तरं प्रति।।२।।

किसी समय वह मस्तनाथ जी उस जंगल को पुण्यात्माओं द्वारा भोगने योग्य सुन्दर भोग्य पदार्थों से परिपूर्ण करके विचरण करते हुए योगसाधना हेतु अपने अभीष्ट दूसरे स्थान की ओर चले गये।

अदूरात्तस्य तीर्थं स सरितो कैरवाकुलम्[1]।
ददर्श मुमुदे तत्र निवासाय मतिं व्यधात्।।३।।

उस जंगल से थोड़ी दूर पर हंसों से शोभायमान नदीवाला एक तीर्थस्थल देखा, उसे देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और वहां रहने का विचार बनाया।

सर्वत्र तद्यशः स्फीतं पुरैवाऽभूद् विजानताम्।
कर्णाकर्णिकया सर्वैः कथनाद् योगवैभवात्[2]।।४।।

उनका यश विद्वानों के हृदय में पहले ही फैल चुका था, फिर सब लोगों के द्वारा एक कान से दूसरे कान में कहने से तथा उनकी योगसिद्धि को देखने से सब जगह फैल गया।

तदागममात्रेण दूतीभूतं समाह्वये।
तदाकृष्टाः सुकृतय स्वयमाजग्मुरादरात्[3]।।५।।

---

१. पाठभेद-हंससंकुलम्। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-दृष्टगीतैरति सुरमतिशक्तीव कर्णगम्।। (पाण्डुलिपि)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। इसका अनुवाद पाण्डुलिपि से संकलित है और इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में छठा पद्य मिलता है।

उनके आगमनमात्र से ही उनके मन में संकल्प हुआ कि मैं किसी जन्तु को बुलाऊँ, उस संकल्प से आकृष्ट होकर समस्त सुकृतियाँ आदरपूर्वक आ गईं और उनकी सेवा में प्रवृत्त हो गईं।

संकल्पमात्रसंसिद्धा बहवः सेवकास्तदा।
आयाता नाथसेवार्थं योगेन किं न सिध्यति।।६।।

तब संकल्पमात्र से ही सिद्ध किए हुए बहुत से सेवक नाथ की सेवा के लिए आ गए; वस्तुतः योग से क्या सिद्ध नहीं होता ? अर्थात् योग से सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

आयातनिश्चितैस्तैस्तैस्तथान्ये प्रतिबोधिताः।
तत्तत्सिद्धि श्रुतिसृणिकृष्टा आययुरन्तिकम्[1]।।७।।

जिन-जिन लोगों ने बाबा के पास आकर यह निश्चय किया कि यह वास्तव में सिद्ध है, उन लोगों ने औरों से भी जाकर कह दिया। इस प्रकार बाबा की नाना प्रकार की सिद्धियों से आकृष्ट होकर सब लोग उनके पास आने लगे।

एका दरिद्रा पङ्गूश्च नारी पादद्वयार्थिनी।
प्रकृतिः पुरुषं यद्वल्लीलागादैश्वरी यथा।।[2]।।८।।

उन्हें सिद्ध तपस्वी समझकर एक गरीब व लंगड़ी नारी अपने दोनों पैरों से चल पड़ूं; इस अभिलाषा से नाथजी के समीप आई। जैसे प्रकृति पुरुष परमात्मा की सहायता के लिए जाती है और जैसे लीला परमेश्वर की सहायता लेती है।

मार्गे मार्गे बाललीला यथा भूत्यादैर्हीना सा चचालाथ यावत्।
धूलिक्षुण्णा हास्यकृद्बालकेलीं रुद्ध्वा तावत्तच्छिरांस्युत्प्लुतेव[3]।।९।।

जिस समय वह लंगड़ी स्त्री रास्ते में चली जा रही थी उस समय उसकी सब चेष्टा बालक जैसी होती थी, धूलि से उसका शरीर लिपटा हुआ था मानो हंसी करनेवाले बालकों की क्रीड़ा रोक कर ही जब वह चलती थी तो धूलि उड़कर उन सबके शिरों पर गिरती थी[4]।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलता है :-
एकेन कथितः सिद्धश्चान्येन कथितस्तदा। अपरेण परश्चापि सङ्घीभूता जनास्तदा।।
तब एक ने कहा कि (यह कोई) सिद्ध है और तब दूसरे ने भी कहा, फिर दूसरे ने किसी दूसरे को कहा, (इस प्रकार सुनकर) तब सब लोग एकत्रित हो गए।

२. पाठभेद-आगता नाथपार्श्वे सा मत्वा सिद्धं तपस्विनम्। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ४. पाण्डुलिपि से संकलित।

अङ्गहीनं निरीक्ष्यैवं[1] कुरुध्वमाधिसाहसम्।
हसन्तं पातकं वित्त ! श्रुत्वैवं जहसुश्च ते।।१०।।

अङ्गहीन को देखकर नाथजी कहने लगे कि हिम्मत करो और हंसी उड़ानेवाले को पापी समझो नाथजी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर वे पापी लोग और ज्यादा हंसने लगे कि क्या कभी लंगड़ी भी ठीक हो सकती है ?

अर्थिनां ह्रीणता का[2] वा क्षीणानां काऽवमानना।
अज्ञानां ज्ञानचर्चा का बालानां का सहिष्णुता।।११।।

याचकों को लज्जा कैसी ? दीन-हीनों का अपमान क्या ? अज्ञानियों को ज्ञान की बातें कहाँ ? तथा बालकों को सहनशीलता कहां से हो सकती है ?

मत्तानामुन्मत्तानां शिशुनामु[3]पहासिनाम्।
मौनिनां सद्यतीतानां का परस्वो विचारणा[4]।।१२।।

नशे में चूर का, पागलों का, बालकों का, हंसी उड़ानेवालों का, चुप रहनेवालों का तथा श्रेष्ठ यतियों का न कोई आत्मीय होता है और न ही पराया होता है इसीलिए इनकी बातों का बुरा भी नहीं मानना चाहिए।

मूर्खेषु[5] हठिलोकेषु बालेषूत्पथगामिषु।
मत्तेषु परविज्ञेषु मौनं सर्वार्थसाधकम्।।१३।।

मूर्खों में, हठी लोगों में, बालकों में, कुमार्गगामियों में, नशे में चूर व्यक्तियों में, ब्रह्मविद्या के ज्ञाता विद्वानों में मौन रहना ही सब काम सिद्ध करनेवाला होता है अर्थात् इन आदमियों से अधिक नहीं बोलना चाहिए नहीं तो ये काम बिगाड़ देंगे। अतः वह अपंग नारी इन उपहास करनेवाले मूर्खों की हंसी की परवाह न करके श्रीनाथ के पास चली गई।

एवं विदित्वा नाभाष्य सर्पन्ती[6] सा कथंचन।
समागता मस्तनाथसविधेऽङ्घ्री अयाचत[7]।।१४।।

इस प्रकार जानकर बिना कुछ बोले किसी प्रकार कठिनाई से सरकती हुई वह मस्तनाथजी के पास आ गई और अपने दोनों पैरों की याचना करने लगी।

---

१. पाठभेद-विलोक्यैव (प्रकाशित प्रति)   २. पाठभेद-लज्जनं किं। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-बालानाम्। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-शुद्धचित्तानां न परश्चापि नापरः। (प्र०प्रति)
५. पाठभेद-अज्ञेषु। (प्रकाशित प्रति)   ६. पाठभेद-गच्छन्ती। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद-आगता नाथनेदिष्ठं पादद्वयमयाचत।। (प्रकाशित प्रति)

मधुभरेण नतेन तदाञ्जलिं विनिबबन्ध वचोऽमृतवारिणा।
स्तुतिजलानि ववर्ष च साऽश्रुतः परिणतानि निपातितमस्तक[1]।।१५।।

तब वह हाथ जोड़कर स्तुतिमय मधुर नम्र वचनरूप अमृत की वर्षा करने लगी और शिर झुकाकर रोने लगी।

सत्यात्मने स्थिरस्थेम्ने निश्चन्द्रचन्द्रिकात्मने।
अनाम्ने चित्कलाधाम्ने नाथ ! तुभ्यं नमो नमः।।१६।।

सत्यस्वरूप शुभ्र आचरण में दृढ़, रात्रिकालीन चन्द्रमा की चाँदनी के समान स्निग्ध कान्ति वाले, संज्ञारहित (नाम से रहित), ब्रह्म की समस्त कलाओं के धाम (आश्रयस्थल) हे नाथ ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है।

रुरोद नतमस्ता सा मस्तनाथं नमाम ह।
कष्टानि पश्य मे नाथ ! स त्राता त्वं भवार्णवात्[2]।।१७।।

नीचे शिर झुकाए वह रो पड़ी और फिर उसने मस्तनाथजी को प्रणाम किया और कहा कि हे नाथ ! तनिक मेरे कष्टों पर दृष्टिपात कीजिए। वह आप ही संसार रूपी सागर से पार करानेवाले हो।

स्वान्ताऽन्तर्हितं[3] कष्टं भाति तस्यैव यस्य तत्।
गुर्वीक्लेशं[4] न वन्ध्या हि विजानाति गर्भकृतश्रमा[5]।।१८।।

जिसके शरीर के भीतर में जो कष्ट होता है वही उसको जानता है दूसरा नहीं। जैसे बच्चे के उत्पन्न होने में जो भारी कष्ट होता है उसको बांझ नारी नहीं जानती।

न मुक्तिं नापि भुक्तिं सा न भक्तिं न शुभां मतिम्।
मायाविमोहिता वव्रे पादौ वव्रे निजार्थतः।।१९।।

उस नारी ने न मोक्ष, न भोग, न भक्ति और न ही अच्छी (कल्याण करनेवाली) बुद्धि इनमें से कुछ भी नहीं मांगा अपितु माया के वशीभूत हो उसने चलने में समर्थ अपने दो पैरों की याचना की।

स्वदुःखं विनिवेद्याऽसौ ततो मुक्तिं ववार यत्।
मुक्तिं हित्वा दीर्घदर्शी कौटुम्बं याचते सुखम्।।२०।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. १६-१७ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. पाठभेद-स्वान्ते। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-न हि। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-गर्भस्थां वेदनां निजाम्। (प्रकाशित प्रति)

उस नारी ने अपने दु:ख के विषय में निवेदन करके उस दु:ख से छुटकारा चाहा क्योंकि दूरदर्शी व्यक्ति मोक्ष को छोड़कर पारिवारिक सुख की याचना करता है।

स्वपार्श्वनाथमादिश्य प्राह पादप्रहारत:।
कटावस्य देहि पादौ मस्तनाथ: स्वलीलया।।२१।।

तब मस्तनाथजी ने अपनी लीला (माया) से अपने पास में बैठे हुए एक नाथ को आज्ञा देकर कहा कि इसकी कमर में अपनी लात (पैर के प्रहार से) मार कर इसको पैर दे दो।

कुब्जिका कुब्जता यद्वद् गोपालेन निजेहया[1]।
विहिता पादयुक्ताऽसौ मस्तनाथेन मायया।।२२।।

जिस प्रकार गोपाल श्रीकृष्ण के द्वारा अपनी इच्छा से कुबड़ के कारण कुबड़ी को सीधा कर दिया गया था उसी प्रकार मस्तनाथजी ने अपनी माया से उस नारी को पैरों से युक्त कर दिया।

गिरिं लङ्घयते पङ्गुमज्ञं विज्ञं तनोति य:।
कृपादृष्ट्यैव स गुरुस्तया प्राप्त: स्वपुण्यत:।।२३।।

जो अपनी कृपादृष्टि से लंगड़े को पर्वत पार करा दे और मूर्ख को पंडित बना दे, ऐसे उस गुरु मस्तनाथजी को उस नारी ने अपने पुण्य के कारण पा ही लिया।

ततो निवृत्ता स्वगृहं यावत्तावदुपस्थिता:।
वह्यो यतस्ततो ग्रामात् प्रजा कौतुकलोलुपा[2]।।२४।।

तदनन्तर जब वह नारी शान्त हुई अपने घर लौटकर आई तो उसको देखने के लिए आस-पास के गांव से बहुत से लोग आये।

पङ्गुपादौ तदा दृष्ट्वा[3] विश्वस्ता: कर्णगा: कथा:।
सम्वादयामासुरथो विस्मिता: सस्मिता मुहु:।।२५।।

लंगड़ी के पैरों को देखकर उन सब लोगों को विश्वास हो गया और सुनी हुई सारी कथाओं को वे मुस्कराते हुए हैरान होकर बारम्बार आपस में कहने लगे।

---

१. पाठभेद-निजेच्छया। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-लोका इतस्ततो ग्रामान्नाथकौतुकमानसा:।।२१।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-विलोक्याथ। (प्रकाशित प्रति)

तदाकर्ण्य तदा विप्रसुतोऽन्धः समुपाययौ।
पतन् व्रजन्[1] मुहुर्धावन् स्खलन्[2]नुत्पथगः पुनः।।२६।।

इस वृत्तान्त को सुनकर ब्राह्मण का अन्धा पुत्र कुमार्ग से (भूला भटकता हुआ) बर-बार चलता हुआ, गिरता हुआ, दौड़ता हुआ एवं लड़खड़ाता हुआ उस स्त्री के पास पहुंचा।

संस्पृश्य पादौ तस्याः स मस्तनाथान्तिके गतः।
भृशं मार्गं समापृच्छन् प्रापैवार्थी स्वचक्षुषी।।२७।।

उस नारी के पैरों का स्पर्श करके अर्थात् इसके पैर ठीक हो गए ऐसा निश्चय करके बहुत से लोगों से मार्ग पूछता हूआ वह मस्तनाथजी के समीप गया और उस याचक ने अपने दोनों नेत्रों को प्राप्त कर ही लिया।

असन्तं को न कुरुते कोऽतीर्थं नाऽनुसेवते।
कोऽपथः का पथो वार्थी नाढ्यं सेवेत कुप्रभुम्।।२८।।

कौन दुष्ट की संगति नहीं करता, कौन जो तीर्थस्थत नहीं है ऐसे स्थल का सेवन नहीं करता, कौन गलतमार्ग है, कौन-सा (उत्तम) मार्ग है अथवा याचक समृद्ध बुरे स्वामी की सेवा नहीं करता ? अर्थात् सभी अपनी आवश्यकतानुसार सर्वत्र गमन करते हैं तो ऐसे उच्चकोटि के महात्मा के पास क्यों नहीं जायेंगे ?

सर्वव्यापिनमीशानं[3] दिगन्तश्रान्ततद्यशाः।
चक्षुरर्थी न किं यायात्सद्गुरुं तादृशो नरः।। २९।।

नेत्रों का याचक अथवा उस प्रकार का व्यक्ति कौन होगा जो सर्वव्यापी, नियन्ता और सब दिशाओं में फैली हुई कीर्ति वाले सद्गुरु के पास क्या नहीं जायेगा ? अर्थात् अवश्य जायेगा।

कथंचित् प्राप्तवान् वल्लीकण्टकाचितदेहतः।
श्रवदस्रः स्रवद्रक्तलिप्तः सद्गुरुमीडयन्[4]।। ३०।।

---

१. पाठभेद-चलन्। (पाण्डुलिपि) २. पाठभेद-पतन्। (पाण्डुलिपि)
३. पाठभेद-एतादृशं महायोगं। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद- कश्चित् कथंचित् विप्रस्य बालः कण्टकदुःखितः।
समागाद् रक्तलिप्ताङ्गः सद्गुरुं मीडयन् पुनः।।२७।। (प्रकाशित प्रति)

ब्राह्मण का कोई लड़का कांटों से दुःखी हुआ, जिसके अंग खून से सने हुए थे, बार-बार स्तुति करता हुआ किसी प्रकार से अर्थात् बड़ी कठिनाई से सद्गुरु मस्तनाथजी के पास पहुंचा।

जिसका शरीर बेलों के कांटों से छिला हुआ था, जिसके शरीर से खून बह रहा था और आँखों से आँसू बह रहे थे, वह स्तुति करता हुआ बड़ी कठिनाई से सद्गुरु मस्तनाथजी के पास पहुंचा।

प्राहासौ सद्गुरोः कर्णमात्रसंश्रुतसद्यशाः।
सम्वादार्थं नेत्रनेत्राऽभिलाषयेह चागतः[१]।।३१।।

वह कहने लगा कि मैंने सद्गुरु आपके यश को सुन रखा है अतः नेत्रों की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

तच्छ्रुत्वा वचनं[२] तस्य नाथुपुत्रस्य सन्मतेः।
बोहरग्रामवास्तव्यनिर्भयस्याभयस्य हि।।३२।।

बोहर गांव में रहने वाले, निर्भय एवं भय से रहित उत्तम विचार वाले उस नाथु के अन्धे पुत्र का वह वचन सुनकर.........।

मस्तनाथो दयादृष्टिर्दृष्टिदानाय याचितः।
द्विजोत्तमाय स ददौ द्वे दृष्टिमुत्तमाम्।।३३।।

दयालु उस मस्तनाथजी ने दृष्टि के लिए याचना करने पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को दोनों नेत्र तथा उत्तम दृष्टि प्रदान कर दी।

पात्रे विप्रे[३]ऽर्पितं दानमेधते पुण्यवर्धनम्।
अर्थाद् धर्मार्थकामाश्च धर्मात् कामार्थबर्हणम्।।३४।।

योग्य ब्राह्मण को दिया हुआ दान कई गुणा हो जाता है तथा पुण्य को बढ़ाने वाला होता है क्योंकि धन से धर्म, अर्थ और काम की वृद्धि होती है तथा धर्म से काम और अर्थ की वृद्धि होती है अर्थात् व्यक्ति के सब प्रकार के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

धर्मार्थकामवर्गस्य मुक्तिसंचयशालिनाम्।
परस्परं सहायाः स्युरन्योऽन्यस्य समे धनाः।।३५।।

मोक्ष के इच्छुक व्यक्तियों के धर्म, अर्थ, काम ये सब आपस में एक-दूसरे के सहायक होकर परस्पर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं।

विप्रः प्राप्य निजे नेत्रे विद्याभ्यासरतः सदा।
धर्मप्रचारप्रचुरं नरं कुर्याद् विचक्षणः।।३६।।

---

१. पाठभेद-दीनबन्धो दयासिन्धो चक्षुषी प्रयच्छ मे।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-तदाकर्ण्य वचः। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-पात्रभूते। (प्रकाशित प्रति)

यह बुद्धिमान् ब्राह्मण अपने दोनों नेत्र पाकर हमेशा विद्याभ्यास करेगा और लोगों को अत्यन्त धार्मिक बनावेगा।

इति मत्वा मस्तनाथो विभूतिं स्वामदाद् यदा।
भस्मनेत्राधिरूढं तत्पापं भस्म तदा व्यधात्।।३७।।

ऐसा मानकर मस्तनाथजी ने जब अपने धूने से विभूति (भभूति=बभूत) लेकर उस ब्राह्मण के नेत्रों पर फेंकी तो तत्क्षण ही उस भस्म ने उसके सब पापों को भस्म कर डाला।

निर्मले चक्षुषी जाते ज्योतिरार्जवतां गतम्।
समैधताऽत्यन्तदृढा श्रद्धा तस्याऽभ्यपद्यत[1]।।३८।।

नेत्रों के निर्मल हो जाने पर उसकी नेत्रों की ज्योति स्पष्ट हो गई अर्थात् उसे साफ-साथ दिखाई देने लगा। तभी से उसकी नाथजी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा हो गई।

विप्रस्तुष्टाव कृपया मस्तनाथस्य लीलया।
तृतीयां[2] दृष्टिमासाद्य गोरक्षो मिलितः स्वयम्।। ३९।।

मस्तनाथजी की कृपादृष्टि के कारण उनकी लीला से तीसरी दृष्टि (ज्ञान) पाकर वह ब्राह्मण प्रसन्न (संतुष्ट) हुआ और कहने लगा कि आज मुझे (मस्तनाथ के रूप में) गोरक्षजी स्वयं ही मिल गए हैं।

एष सिद्धार्थिनां सिद्धो योगमायामुपाश्रितः।
बाल्येऽजन्मा मस्तनामा मस्तनाथोऽवलोकितः।।४०।।

यह गोरक्षजी सिद्धों में भी सिद्ध अपनी योगमाया के कारण जन्मरहित हैं और बाल्यावस्था में मस्त नामवाला होकर अब यह मस्तनाथजी के नाम से जाना जाता है।

बहुधा नीरवर्षां[3] यश्चकाराल्पं पयो बहु।
पङ्गुं सपादं चक्रे अन्धम्मामदर्शयदीप्सितम्[4] ।। ४१।।

जिन मस्तनाथजी ने जल की बहुत वर्षा करवा दी और थोड़े दूध को बहुत बना दिया, पंगु को पैरों से युक्त किया तथा मुझ अन्धे को इच्छित दृष्टि प्रदान की।

---

१. ३६, ३७, ३८ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

२. पाठभेद-ज्ञान। (प्रकाशित प्रति)   ३. पाठभेद-वृष्टि। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-यो नाथोऽन्धं दर्शयन् सृतिम्।। (प्रकाशित प्रति)

एवं स्तुत्वा गतो ग्रामे जनानूचे स्वमादरात्।
उदन्तं तेन ते सर्वे नामं नामं जगुर्गुरुम्।।४२।।

इस प्रकार स्तुति करके वह चला गया और गांव में अपने इस वृत्तान्त को बड़े आदर के साथ लोगों को बताया उससे उस वृत्तान्त को सुनकर वे सब लोग भी बार-बार प्रणाम कर गुरु की महिमा का बखान करने लगे।

यत्र तत्र तदा लोका गुरु[1]माहात्म्यमुत्तमम्।
जगिरे वेदशास्त्रादौ सत्यं सत्यमुदाहृतम्।।४३।।

तब लोग जहां तहां गुरु मस्तनाथजी की उत्तम महिमा का गान करने लगे और कहने लगे कि वेदशास्त्र आदि ग्रन्थों में सब बिल्कुल सत्य-सत्य ही कहा है।

सिद्धानां सत्यसिद्धान्ते बाधबाधाविवर्जिते।
कृतवन्तोऽथ विश्वासं कामधेनुसमाश्रये[2]।।४४।।

अतः भयंकर बाधाओं से बचाने वाले और कामधेनु के समान इच्छाओं की पूर्ति करने वाले सिद्धों के सत्य सिद्धान्त पर लोगों ने विश्वास किया।

अपान्नसाङ्ख्ये प्रकृतिर्नरोऽपि नान्धस्ततोऽन्धं व्यदधादनन्धम्।
गृणाति तत्त्वं प्रकृतिं सपादं तन्नाटकं सिद्धकृतिर्बभाषे।।४५।।

साङ्ख्यदर्शन में प्रकृति को पैरों वाली कहा गया है क्योंकि उसमें क्रियाशक्ति निहित होती है और पुरुष को दृष्टिवाला कहा गया है क्योंकि उसमें चेतनशक्ति विद्यमान होती है, उसी प्रकृति और पुरुष के नाटक का अभिनय मस्तनाथजी ने नारी को पैर और पुरुष को दृष्टि प्रदान करके कर दिखाया।

आत्मा सुखात्मा न च सांख्यशास्त्रे न गौतमे तेन विवेकहीनाः।
ते दुःखहानं च विविक्तहानस्याऽकर्तृशक्तेः सुखिनो गदन्ति।।४६।।

सांख्यशास्त्र और गौतमऋषिप्रणीत न्यायशास्त्र में आत्मा सुखस्वरूप नहीं बताया गया। अतः विवेकरहित वे लोग विवेक (प्रकृति और पुरुष का ज्ञान) के द्वारा जगत् से मुक्त कर्तृत्वशक्ति से रहित पुरुष के दुःखों के अभाव को ही मोक्ष कहते हैं, उसको नित्यसुखस्वरूप नहीं मानते।

सुखात्मता सत्यपदं समीहा प्रेमा रसे स्वात्मनि सर्वजन्तोः।
अनात्मता दुःखपदेति मस्तः पङ्गुं तथान्धं निरुजं व्यधत्त।।४७।।

---

१. पाठभेद-च सर्वत्र गुरोः। (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

सच्चाई तो वस्तुत: यह है कि आत्मा सुखस्वरूप है क्योंकि सभी जन्तुओं का अपनी आत्मा में प्रेम होता है और अनात्मता दु:खों का स्थान है अत: मस्तनाथजी ने पङ्गु नारी व अन्धे को रोगरहित कर दिया।

गुरु: परा पूर्वतमैव वाणी शक्ति: परस्याद्यजनेर्विधात्री।
सा दैशिके प्राप्य सुखाश्रितेति करोति सर्वं जगुरेव शाक्ता: ।।४८।।

जो सबसे बड़ी वाणीरूप आद्याशक्ति है वहीं श्रेष्ठ आदि पुरुष का निर्माण करने वाली है। वही पुरुष स्थान का आश्रय पाकर सभी को सुखों से युक्त बनाती है अर्थात् सारे प्रपंच का निर्माण करती है, ऐसा शाक्तलोग मानते हैं।

पूर्णापूर्णपदात्मता कृतिकृता मस्तेन सा भारती
गुर्वी स्वीयमुखेन सार्थपदका[1] नूनं व्यधायीह या।
अज्ञस्यान्धतनोर्नरस्य जनता संघस्य साक्ष्येऽज्ञता
या कारीवतुनाटकं बहुविधं सिद्धेश्च तथ्यं कृतम् ।।४९।।

जिस समय वह पङ्गु नारी नाथजी के समीप स्वपदप्राप्ति हेतु गई उस समय मस्तनाथजी ने यह वचन दिया कि तू पूर्ण पद वाली हो जा, यह कहने के साथ ही साथ उस वाणी (शब्द) को सार्थक भी कर दिया और अज्ञानी अन्धे को नेत्र देकर उसे समस्त पदार्थों का द्रष्टा बना दिया। इस प्रकार शिल्पकार और नाटक की भांति अनेक प्रकार के कार्यों को अपनी अणिमादि सिद्धि के माध्यम से सत्य कर दिखाया।

पङ्गुर्नेत्रविहीनरूढवपुषा कर्त्तुं क्षम: सर्वथा
दृष्टान्तं ह्युररीचकार कपिल: पातञ्जलो वा क्वचित्।
रोगी वा मनुते तदास्तिकजनं दु:खाकुलं सर्वदा
तत्सर्वं प्रकृतेर्विचेष्टितमिदं न स्यान्मतं तादृशम् ।।५०।।

पादरहित नेत्रयुक्त पंगु पुरुष नेत्रविहीन पादसहित अन्धे पर आरूढ़ होकर सर्वथा कार्य करने में समर्थ हो जाता है। इस दृष्टान्त को कपिल और महर्षि पतञ्जलि ने स्वकीय शास्त्र में स्वीकार किया है। लोक में रोगी निजानुभव के अनुसार सारे आस्तिक जनों को दु:खाकुल मानता है। यह सब प्रकृति का ही खेल है किन्तु सिद्ध पुरुषों का कार्य उससे विलक्षण होता है।[2]

---

१. पाठभेद-गा……। (प्रकाशित प्रति)   २. पाण्डुलिपि से संकलित।

भ्रमं[1] भ्रान्ताः केचिन्नटनमिदमज्ञानगहनाः
स्वशीलाकापट्यान्तरमिमबोधं छलयता।
जगुर्योगे मन्त्रादिषु विहितमज्ञेन बहुलम्
समालोच्येशो वा नहि भवति तादृक् न च गुरुः।।५१।।

कुछ अज्ञानी लोग स्वयं भ्रान्त होकर कहा करते हैं कि योगशास्त्र में और मंत्र आदि में जो सिद्धियाँ कही गई हैं वे सब असत्य हैं, ऐसी बातें किसी ठग के द्वारा लिख दी गई हैं। ऐसी भ्रान्त बातों को असत्य करने के लिए ही नाथजी ने सिद्धिप्रदर्शन किया। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि ईश्वर अथवा गुरु योगशास्त्रों में बताए गए गुणों वाला नहीं है अपितु ये दोनों योगशास्त्र में बताये गये गुणों वाले अवश्य होते हैं।

सुखात्मा भिन्नेन प्रतिफलति दुःखं च दुरितात्
विकारात्तं राजा विकृतिमयमादर्श इव हि।
नरं कीनाशस्तत् फुटयति सुसिद्ध्या च हरति[2]
नितान्तं सन्मायी हरिरिव तु मस्तोऽथ दयते।।५२।।

जैसे सुखस्वरूप होता हुआ भी विष्णु (हरि) अपनी माया से प्राणियों के पाप से अपने से भिन्न दुःखस्वरूप में दिखाई देता है और जैसे राजा प्रजा के अपराध के कारण क्रुद्ध होता है, जैसे मैले दर्पण में मुख मलिन दिखलाई पड़ता है, जैसे यमराज लोगों का नाश करता है वैसे ही मस्तनाथजी अपनी कल्याणकर सिद्धि से सबके दुःखों का हरण करते हैं और उन पर दयादृष्टि रखते हैं।

न गौरवं पूजनमात्र[3]लभ्यं न भारतो वा जनसङ्घतो वा।
किं मर्कटैः शीलकृते[4]ऽथ गुञ्जाचयोऽप्यसेवीति निरुच्यतेऽग्निः।।५३।।

गुरुत्व केवल भेंट व पूजनमात्र से नहीं मिलता है, न ही भारी होने से अथवा न ही जनसमूह से अर्थात् लोगों की भीड़ इकट्ठी करने से। बन्दरों ने शीत दूर करने के लिए जो गुञ्जा के फलों का चयन किया, क्या उससे अग्नि हो सकता है ? अर्थात् उनसे गर्मी नहीं आ सकती इसी प्रकार जिस गुरु के पास बहुत-सी भेंटे लेकर बहुत

---

१. पाठभेद-मृषा। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-यमयति स राजानमतिगं। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-किं पूजनं गौरवमात्र। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-शीतहृते। (प्रकाशित प्रति)

सारे लोग आते हैं, इनसे उनका गुरुत्व नहीं आंका जा सकता अपितु गुरु वह है जो प्राणियों के कष्टों का हरण कर उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त करे।

विज्ञानभाषार्थचयस्य सिद्धेर्धर्मस्य तथ्यस्य दयालुरीशः।
शिक्षां गृणातीश्वरदेवभक्तिं दुःखेऽवलम्बः स गुरुर्मतो मे।।५४।।

जो विज्ञानभाषा व अर्थसमुदाय की सिद्धि से सच्चे धर्म की शिक्षा देता है, ईश्वर व देव में भक्ति रखना सिखाता है और जो दुःख में सहारा बनता है वही दयालु व सामर्थ्यवान् गुरु मुझे मान्य है अर्थात् वही गुरु कहलाने योग्य है।

यद् गौरवं लक्षणमस्ति मस्ते यस्माद् हितं नाहितमस्ति किंचित्।
त्रिवर्गसंसाधनपूर्वकेशो मोक्षोपदेशेन गुरौ तदिष्टम्।।५५।।

जो गुरुत्व और लक्षण मस्तजी में हैं जिसके कारण उनका न कोई मित्र है और न ही शत्रु। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को वश में रखते हुए व मोक्षदायी उपदेश देने से गुरु (मस्तनाथजी) में गुरुत्व प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वे गुरु के समस्त गुणों से परिपूर्ण थे। इसी कारण सब लोग उन्हें गुरु मानने लगे।

इति श्रीमस्तनाथचरिते विभूतिप्रदर्शनदार्शनिकतत्त्वाख्यान-
विषयविशिष्टो नाम नवमः सर्गः।

१. पाठभेद-ददाति। (प्रकाशित प्रति)

दशमः सर्गः

त्रिकालवार्ताज्ञानप्रकरणम्

कदाचिदाश्रित्य निजाश्रितानां मनांसि योगाप्त तदीह याज्ञः।
परः शतं स्वप्रकटप्रतापो ययौ निकेतात्सह शिष्यवर्गः।।१।।

कुछ दिन उस स्थान पर रहकर अपने भक्तों के हृदयों को योग की शिक्षा से यज्ञ की अभिलाषा से युक्त करते हुए और सैकड़ों बार अपने भक्तों के सम्मुख अपनी योगशक्ति के प्रभाव को प्रकट करते हुए मस्तनाथजी अपनी शिष्यमण्डली के साथ अपने निवास स्थान से दूसरे स्थान की ओर चले गए।

योगाश्रितानां न समाधिवृत्तिप्रयोजनं तीर्थनिषेवणेन।
तीर्थी प्रकुर्वन्ति तदङ्घ्रिसेवा प्रसाधितार्थाः किमुते सुसिद्धाः[1]।।२।।

योगसाधना में लगे हुए व्यक्तियों का न तो समाधि की वृत्ति से और न ही तीर्थों का सेवन करने से कोई प्रयोजन रहता है। क्योंकि तीर्थसेवन का फल चित्त की एकाग्रता है, वह उनकी हो चुकी। जिनकी चरणसेवा से अन्य लोग मनोवांछित फल पाते हैं, ऐसे सिद्धों को तीर्थसेवन से क्या प्रयोजन ? क्योंकि वह स्वयं ही तीर्थस्वरूप हैं।

नाराधनं वा न तपो जपो वाऽवशिष्यते साध्यमवाप्तसाध्यैः।
सम्पाद्य लोकानुकृतिं चरित्रे स्वस्योत्तमां साधायितुं समर्थाः[2]।।३।।

जिन महापुरुषों ने साध्य को सिद्ध कर लिया है उनके लिए उपासना अथवा जप अथवा तप कुछ भी कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है तो भी वे लोगों को उत्तम कर्मों में लगाने के लिए ही स्वयं सत्कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

अतोऽटवीषु प्रथितेषु तीर्थेष्वाप्ता ययुः केवलिनोऽपि[3] सिद्धा।
असिद्धसिद्धीन्नु विधातुकामा न कामकामा इव जीवलोका:।।४।।

---

१. पाठभेद-तीर्थानि सर्वाणि च सार्थकानि तीर्थो भवन्ति विचारयामः।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-सम्पाद्यते लोककृतानुकारस्तथापि तेषां न विरुद्धता स्यात्।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-व्रतिनोऽथ। (प्रकाशित प्रति)

इसीलिए केवल मोक्षार्थी आप्त (जिनकी इच्छाएँ पूर्ण हैं अर्थात् जिन्होंने अपनी सांसारिक इच्छाओं का परित्याग कर दिया) वे सिद्ध अपनी असिद्ध सिद्धियों को पूर्ण करने के लिए जंगलों में तथा प्रसिद्ध तीर्थस्थलों पर जाया करते हैं न कि साधारण व्यक्तियों की भांति भौतिक मनोकामना सिद्धि की इच्छा से।

समाधिवृत्तीर्मुदिताद्यवस्थास्ते दर्शयन्ति स्म समीहयैव[१]।
परत्रदेहेषु निवेशनानि योगस्य साङ्गस्य समर्थकानि।।५।।

वे सिद्ध पुरुष अपनी इच्छामात्र से ही समाधि लगाने से मुदिता आदि अवस्था को दिखला देते हैं तथा अंगों सहित योग की सामर्थ्य जैसे परकायाप्रवेश आदि को भी प्रत्यक्ष दिखला देते हैं।

भिक्षाटनं सर्वकरस्य शम्भोर्विडम्बनं किं किमपार्थकं वा।
रामादिगा रामसमानवन्यस्थलीषु[२] सीता सुगवेषणा का।।६।।

जड़-चेतन के कर्त्ता शिव का भिक्षा मांगना क्या खिलवाड़ अथवा क्या निरर्थक है? मर्यादापुरुषोत्तम राम का उद्यानों के तुल्य वन्यस्थलियों में सीता की खोज करना क्या व्यर्थ है? अर्थात् नहीं **'यद्यदाचरति श्रेष्ठः'** इस गीता के वचन से सिद्ध होता है कि जो श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते हैं वह लोक मर्यादा के लिए ही होता है क्योंकि साधारण पुरुष श्रेष्ठ पुरुषों के कार्यों का अनुसरण करते हैं। अतः बाबा भी तीर्थाटन करते थे और तपस्या हेतु जंगलों में निवास करते थे। यद्यपि इन सबकी इन्हें बिल्कुल आवश्यकता नहीं थी फिर भी लोकमर्यादा के लिए एक संसारी सिद्ध की भांति आचरण करते थे।

न जानकीजानिरपि प्रचर्य्यादाचार्यचर्यां शिवपूजनादौ[३]।
तपो न रामो जमदग्निजो वा तीर्थाटनं सर्वजगद्विधाता[४]।।७।।

श्रीरामचन्द्रजी ने अवतार होते हुए भी आचार्य की सेवा तथा रामेश्वर महादेव का पूजन नहीं किया? और सम्पूर्ण जगत् के विधाता (सर्वसामर्थ्यवान्) जमदग्निपुत्र परशुराम ने तप अथवा तीर्थाटन नहीं किया? अर्थात् अवश्य किया क्योंकि श्रेष्ठ लोग मर्यादापालन के लिए ही सब कुछ करते हैं।

---

१. पाठभेद-समिच्छयैव। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-रामस्य रामोपमरामसेवा वनेषु .... ।।७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-स्वकर्माण्याचार्यचर्या शिवपूजनं किम्।।७।। (प्रकाशित प्रति)
४ यह पंक्ति प्रकाशित प्रति में नहीं है।

विभूतिभूषेऽपि जगद्विभूतिप्रदानसामर्थ्यमिदं महेशे।
तथैव गोरक्ष उमेशरूपे श्रीमस्तनाथात्मकतां गते वा।।८।।

जैसे भस्ममात्र आभूषणवाले भी महेश में संसार को ऐश्वर्य देने की सामर्थ्य है वैसे ही उमापति शंकर रूप में गोरक्षजी हैं अथवा उसी तरह गोरक्षावतार मस्तनाथजी में भी वही सामर्थ्य विद्यमान है।

लीलावतार: शिष्यै: स्वैरात्मारामो ययौ रमम्[१]।
आरामै: प्राकृतैर्रामाहीनां रामं तप: क्षमम्[२]।।९।।

अपनी आत्मा में रमण करनेवाले लीला अवतार श्रीनाथजी अपने शिष्यों के साथ प्राकृतिक उद्यानों से युक्त स्त्री आदि विघ्नों से रहित तप के योग्य मनोहारी वन में चले गए।

मस्तनाथ: स योगीन्द्रो ददृशे गिरिगह्वरम्।
नानाद्रुमलताजालैर्वेष्टितं व्याघ्रसेवितम्[३]।।१०।।

वहाँ उस योगिराज मस्तनाथजी ने अनेक प्रकार के वृक्षों एवं लतासमूह से घिरी हुई तथा बाघों से सेवित पर्वत की गुफा देखी।

तरव: सलतागुच्छप्रफुल्लकुसुमा यथा[४]।
शुशुभे मस्तनाथोऽपि तद्वद्भस्मजटाधर:[५]।।११।।

जिस प्रकार वृक्ष लतासमूह एवं खिले हुए पुष्पों से शोभित थे, उसी प्रकार मस्तनाथ जी भी भस्म एवं जटाओं से सुशोभित हुए।

चरन्नद्भुतवृत्तान्तं हृदि सस्मार योगिराट्।
जहास स खं तस्य राव: स तुमुलोऽभवत्[६]।।१२।।

उस जंगल में विचरण करते हुए एक बार योगिराज को हृदय में एक अद्‌भुत घटना याद आ गई, उसके याद आते ही वे बड़े जोर-जोर से हंसने लगे। वह ध्वनि द्विगुणित हो गई अर्थात् उस ध्वनि से सारा जंगल गूंज उठा।

---

१. आरामै:-बगीचे, उद्यान, रामाहीनाम्-सुन्दर स्त्रियों से रहित, रामम्-मनोहारी, रमम्-रमण करने योग्य (वन में)। २ पाठभेद-दिव्यैरामारामविवर्जितम्।।९।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-हरिभिर्हरिणैर्हरिभीतिकृदत परिवनाम्।।१०।। (पाण्डुलिपि)
४. पाठभेद-स्वच्छच्छायाविराजिता:। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-शिष्यसंघेन सेवित:। (प्रकाशित प्रति)
६. यह पद्य प्रकाशित प्रति में २२वाँ है तथा पाण्डुलिपि में १२वाँ है।

अट्टहासः स नाथस्य कुतोऽ[1]काले श्रुतिश्रुतः।
पारिते श्रुतिजालेऽपि सङ्घभूत इवाबभौ[2] ।। १३ ।।

नाथजी का वह अट्टहास (जोर की हंसी) असमय में कहां से सुनाई पड़ा जो कि श्रुतिजाल के पार होने पर भी मिले हुए की भाँति शोभित हुआ अर्थात् ऐसा लगा जैसे मिलकर बहुत से व्यक्ति जोर-जोर से हंस रहे हैं।

न नर्तकी नर्तकगात्रभंगी बिलासहासोऽयमपूर्वः।
न वाऽद्भुतालोकनकौतुकेन न वाऽद्भुतोऽलोकि सलीलः[3] ।। १४ ।।

न कोई नृत्य करनेवाली, न नाचनेवाले की नृत्यक्रीड़ा, न कोई अद्भुत वस्तु देखने में आती है और न ही कोई कौतुक (तमाशा) दिखलाई दे रहा है, फिर यह अपूर्व हास क्यों ?

मदेन चोन्मादपदे गुरुर्न सदोन्मदानां निजगौरवेण।
कुतो मदावस्थिततुल्यवृत्तिप्रभावलोको हसिते विशिष्टे।।१५।।

तब कोई शिष्य कहने लगा कि मद से हंसे हैं, वह भी ठीक नहीं क्योंकि गुरु उन्मादी नहीं है और यदि मद से भी हंसे तो उन्मत्त पुरुषों की गौरवपूर्ण विशिष्ट हास्य में प्रवृत्ति कहाँ से हो सकती है ?

न वन्यजन्तून् प्रसमीक्ष्य हास ईदृग्विधस्तर्कणगोचरोऽपि।
न वा शितेष्वस्ति विकारचित्तिर्वित्तार्थ सर्वस्य कुतोऽन्यः[4] ।।१६।।

किसी वन्यप्राणी को देखकर हंसे; इस प्रकार की बात मेरी कल्पना से बाहर है क्योंकि निर्मल व्यक्ति में रागद्वेषरूप विकार की संभावना नहीं हो सकती और जिनको सब पदार्थों का ज्ञान है, उनको अज्ञान कहाँ से हो सकता है ?

सर्वान्तर्यामिणोऽस्माकं हृत्स्थस्य का विशङ्कना[5]।
नाऽस्माभिः स्वलितं किञ्चिन्मनसा जातु चिन्तितम्।। १७ ।।

---

१. पाठभेद-कृतो। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-श्रुतिं निर्भिद्य यातेऽपि दिद्युते संघसङ्कुलः।।१३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-न नर्तकी नर्तकगात्रभङ्गी सङ्गीतलास्याभिनयादिमेषु।
न वाऽद्भुतालोकनलोकलीला शीलानुरागस्मितमादरेण।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-न राग राग उपरज्यते जने विकरवैकरिकभावना कुतः।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-शङ्कातङ्कविकल्पना। (प्रकाशित प्रति)

हमारे हृदय में विद्यमान सर्वन्तर्यामी को क्या संदेह हो सकता है ? और हमने भी कभी भी मन से गलती भी नहीं की जो उसे ही देखकर हंसे हों।

कस्याप्यन्यस्य वन्यस्य जन्तोरन्तर्विचिन्तितम्।
हासोऽयं प्रसमीक्ष्यैव नायं स्यादप्यहेतुकः।।१८।।

अथवा किसी वन्य जन्तु की मानसिक चिन्ता को देखकर ही यह हास हुआ हो, क्योंकि बिना कारण के हास नहीं हो सकता।

इति संचिन्त्य सच्छिष्यैरामन्त्र्य च परस्परम्।
अदृष्टपूर्वहासस्याऽप्रच्छि[1]हेतुरलौकिकः।।१९।।

इस प्रकार विचार कर आपस में सलाह करके सत् शिष्यों ने उस जिसे पहले कभी नहीं देखा था, ऐसी अलौकिक हंसी का कारण पूछा।

गुरो ! सङ्गेन भवतो महान् कालः प्रयापितः।
अट्टहासस्य रौद्रस्य कारणं वद साम्प्रतम्।।२०।।

हे गुरुदेव ! आपके साथ रहते हुए हमने बहुत समय बिताया है कृपया इस समय हमें इस भयंकर अट्टहास का कारण बताइए।

हासोऽन्तः पण्डितेष्वेव[2] स्मितं नर्तकगोचरम्।
अधरेषूत्तमं हास्यं दक्षेषु परिगीयते[3]।।२१।।

पंडित लोगों की हंसी मुख के भीतर रहती है, नाचनेवालों की हंसी मन्द-मन्द होती है तथा चतुर व्यक्तियों की हंसी होठों में ही रहती है, इन्हें ही उत्तम हास्य कहा गया है।

विकसद्रसनादर्शि मुखं मध्यमगोचरम्।
हसितं रावसहितमहितं हीनगं[4] मतम्।।२२।।

जिस हंसी में जिह्वा स्पष्ट दिखाई दे वह मध्यम कोटि का हास होता है और जिसमें हंसते समय बड़े जोर का शब्द हो वह निकृष्ट कोटि का हास होता है और वह अहितकर (कल्याण न करनेवाला) माना गया है।

दितिजान् क्षपयद् देवो रुद्रो ह्यट्टाऽट्टहासवान्[5]।
प्रलयाऽनेहसीशो वा तथा चरति नान्यथा।।२३।।

---

१. पाठभेद-पृष्टो। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-पण्डितानां च। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-स्मृतमुत्तमम्। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-गर्जनामुक्तमहितं हीनकृन्। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-..................दर्पसंघट्टघटासंट्टनाटितम्।
विकटाटोपसंकूटान् अट्टहासेन शङ्करः।।२३।। (प्रकाशित प्रति)

रुद्रदेव जिस समय दिति के पुत्रों (दैत्यों) का विनाश करते हैं और जिस समय प्रलय करते हैं, उसी समय अट्टहास करते हैं अन्यथा नहीं।

नाऽकस्माद् गुरुसिद्धीनां[१] सिद्धानां च भवादृशाम्।
अट्टाट्टहासो भविता पृच्छामस्तेन कारणम्।।२४।।

और विशिष्ट सिद्धिवाले आप जैसे गुरुओं व साधारण सिद्धों का अकस्मात् हंसना नहीं हुआ करता; अत: इस हास्य का कारण हम पूछते हैं।

एवं संवदतां तेषां निदानं प्राह सस्मितम्।
स्मरणा[२]त्पूर्ववृत्तस्य मस्तनाथः कृपाभरात्।।२५।।

इस प्रकार बोलते हुए उन शिष्यों को मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मस्तनाथजी ने कृपापूर्वक कारण बताया कि पूर्ववृत्तान्त के याद आ जाने से हमें हंसी आ गई थी।

अनादृताः सद्गुरवो विप्रा यैर्वाऽवमानिताः।
सन्तोऽप्यसत्कृता यैर्वा तद्गतिर्हास्यकारणम्[३]।।२६।।

जिसके द्वारा सद्गुरुओं का अनादर किया गया अथवा जिनके द्वारा ब्राह्मण अपमानित किए गए अथवा जिनके द्वारा साधुजन भी असाधु बना दिए गए, उनकी जो गति हुई, वही हास्य का कारण है।

पुरा कदाचिद् धर्मेऽपि पथि संतिष्ठतां नृणाम्।
सतामनादरोऽत्राभूत् सविधग्रामवासिभिः।। २७।।

पहले कभी यहाँ समीपवर्ती गाँव में रहनेवाले लोगों द्वारा धर्म के मार्ग पर चलनेवाले सज्जन व्यक्तियों का अपमान हुआ था।

देवालयाः कूपरवातास्तड़ागा देवतासमाः।
विप्रा वेदरवैः पूताः पाविता द्विजजातयः।। २८।।

इस गांव में कभी मन्दिर, कुएँ, गड्ढे, तालाब थे और वेदवाणी द्वारा स्वयं पवित्र और दूसरों को भी पवित्र करनेवाले देवतुल्य ब्राह्मण रहते थे।

ज्योतिस्तान्त्रपुराणादिशास्त्रचर्यापरायणाः।
धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञाऽन्वीक्षाध्यात्मेक्षणक्षणाः[४]।। २९।।

---

१. पाठभेद-सिद्धानां। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-संज्ञानात्। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ४ पाठभेद-अन्वीक्षाध्यात्मेक्षण क्षणाः।।२९।। (पाण्डुलिपि)

वे ज्योतिष, तन्त्र, पुराणादि शास्त्रों के अनुसार जीविका में लगे हुए थे तथा धर्मशास्त्र व अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे और निरन्तर शास्त्रचिन्तन में लीन रहते थे।

इष्टापूर्तैरिन्दुभानुलोके विजयकारिण:।
विमत्सरा: सदा सङ्गा गृहस्थोचितकर्मठा:।।३०।।

श्रौत-स्मार्त कर्म करने से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है तथा उपासना सहित कर्म करने से सूर्यलोक की उपलब्धि होती है, इन दोनों प्रकार के कर्म करनेवाले, राग-द्वेष से रहित, सत्संगति करनेवाले व गृहस्थियों के उचित कर्मों में रत रहनेवाले उद्यमी विजयाकांक्षी महापुरुष यहाँ हमेशा से ही रहते थे।

निन्दापरस्य विफला स्तुतिर्यैर्न समीहिता।
द्विजा: समासरन् बहुला नीत्यारूढा अनीतय:[1]।।३१।।

परनिन्दा व व्यर्थ प्रशंसा (चाटुकारिता) जिन्हें पसंद नहीं थी ऐसे नीतिज्ञ दैवी विघ्न-बाधाओं से रहित बहुत से ब्राह्मण इस गाँव में रहते थे।

अध्यवात्सु: पुरा तत्र ग्रामेऽस्मिन् पुण्यशालिनी।
ईतिरीति कुरीतिभ्यो भयं नासीत्प्रजासु यत्[2]।।३२।।

जहाँ इस गाँव में पहले पुण्यशाली आत्माओं ने निवास किया था, उस समय लोगों में दैवी आपदा व कुरीतियों से किसी प्रकार का भय नहीं था।

काले वर्षति पर्जन्यो यज्ञे धूमध्वजादय:।
प्रजा मुमुदिरे सर्वप्राप्तार्हितमनोरथा:।।३३।।

मेघ समय पर बरसता था, यज्ञ में निरन्तर धुआँ उठता रहता था अर्थात् निरन्तर यज्ञ होते रहते थे तथा सारी प्रजा पूर्ण शुभमनोरथा हुई प्रसन्न रहती थी।

कुलालोऽवसदत्रैक: पलाल इव सस्यग:।
दयिता निर्दया तस्य कर्कशा कष्टदायिनी।।३४।।

यहाँ एक कुम्हार उसी तरह रहता था जैसे धान्य के साथ पलाल (भूसी, तूस, चोकर) रहता है। उसकी पत्नी दयारहित, कठोर वचन बोलनेवाली व कष्ट देनेवाली थी।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

क्षालितुं वसनान्यस्याः मन आसीत् सुखप्रियम्।
जज्वाल नीरं सन्तप्तुं दहनं वहनं यथा[1]।।३५।।

आरामपसन्द उसकी वस्त्र धोने की इच्छा हुई इसीलिए उसने पानी गर्म करने के लिए अग्नि जलाई और उस पर घड़ा रख दिया।

न यज्ञचर्या न च दैवपैतृकं दानं हुतं नैव हि यैर्नरैश्च ते।
स्वपाप[2]मात्रां बहुशो विचिन्वते शिशिक्ष एतद् दहनश्च तानि नु।।३६।।

जिन व्यक्तियों के द्वारा यज्ञ, देवता व पितरों से सम्बन्धित दान व हवन इत्यादि शुभ कर्म नहीं किए गए हैं, वे केवलमात्र पाप का ही संग्रह करते हैं, यह शिक्षा उनको वस्तुतः उस अग्नि ने दी।

हुतभुग्[3]योगिवेशेन   कर्कशत्वप्रदर्शनः।
तस्याः[4] गृहे समायातो घटीकामनया तदा।।३७।।

तब उस नारी के कठोरपन की परीक्षा करने के लिए अग्निदेव योगी के वेश में उसके घर घड़ा मांगने की इच्छा से आया।

ययाचे कलशीं मातर्घटिकां देहि मे शुभाम्।
योगी विरक्तो जगतीरामोऽकिञ्चन याचकः।।३८।।

समस्त भूमण्डल पर विचरण करनेवाले, किसी भी वस्तु की याचना न करनेवाले उस विरक्त योगी ने उससे एक छोटे-से घड़े की याचना की और कहा कि हे माता! मुझे एक अच्छी-सी घड़िया दे दो।

भोजने साधनं स्थालीकारकं सम्प्रदीयताम्।
सम्प्रदानं[5] विनाऽसाध्यं पाचनं तेन दीयताम्।।३९।।

भोजन बनाने के लिए एक स्थाली का काम देनेवाला पात्र दे दीजिए क्योंकि पात्र दिए बिना भोजन नहीं पक सकता, इसीलिए अवश्य दे दो।

उदारप्रकृतिर्दानदयाधर्मपरायणा।
महीयसी श्रेयसी ते सिता कीर्तिर्मया श्रुता[6]।।४०।।

---

१. पाठभेद-ज्वलन्तं घटमादधौ।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-स्वस्याघ।।३४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-कृशानुः।।३५।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-कुलाल्या।।३५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-सम्प्रदायं।।३७।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद उदारप्रकृतिर्दानं दयां धर्मपरायणः।
कर्तुं शक्नोति हार्देन नान्यस्य कस्यचिद् गतिः।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

तुम्हारे उदार स्वभाव, दान, दया व धर्मपरायणता की प्रसिद्धि है और मैंने तुम्हारी अत्यन्त कल्याणकारी निर्मल कीर्ति को सुन रखा है।

दया त्यक्ता न शिविना दानं न हरिणा किल।
बहवो दानयोगेन वराकत्वमुपागताः।।४१।।

राजा शिवि के द्वारा दया का परित्याग नहीं किया गया और निःसंदेह हरि के द्वारा भी दान देना नहीं छोड़ा गया। इस प्रकार बहुत से लोग दानयोग से निर्दोषत्व को प्राप्त हुए हैं अर्थात् दान देने से उनके सब पाप नष्ट हो गए हैं।

वयं किं दानिनो ज्ञेया दानी तु भगवान् स्वयम्।
श्रीनाथदत्तमादाय ख्यापिता दानिता निजा।।४२।।

हम दानी के विषय में क्या जानें (अथवा हम क्या दानी समझे जाते हैं ?) दानी तो स्वयं भगवान् हैं, श्रीनाथ द्वारा दिए गए (पदार्थ) को लेकर अपनी प्रसिद्धि प्राप्त की गई तथा दान दिया गया अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ है वह सब ईश्वर के द्वारा हमें दिया हुआ है, अतः वही दानी है, हम तो उनके दिए हुए पदार्थों को दूसरों को दे देते हैं और दानी के रूप में अपनी प्रसिद्धि करा लेते हैं।

अतश्च वेदवाक्यं हि मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।।४३।।

और इसीलिए यह निःसन्देह वेदवचन है कि किसी के भी धन का लालच नहीं करना चाहिए, जो दान उपकार न करनेवाले को दिया जाता है वही वास्तव में दान होता है।

भोजनाच्छादेन दत्त्वा परीक्षा ग्रहीतुर्मता।
उदरं क्रूरजन्तूनां बिभर्ति भगवान्नपि।।४४।।

भोजन व वस्त्र देकर ग्रहण करनेवाले की परीक्षा लेनी चाहिए; ऐसा माना गया है क्योंकि स्वयं भगवान् क्रूर जन्तुओं के भी पेट को भरता है।

उदरस्य कर्त्तनं हि कर्त्तव्यं नैव कस्यचित्।
शिक्षैषा चेश्वरान्नेया दानस्यापि मुहुर्मुहुः।।४५।।

(उदारस्वभाव होना, दान, दया, धर्मपरायणता-यह व्यक्ति हृदय से ही कर सकता है। इस विषय में किसी दूसरे का कोई बस नहीं चलता।)

वस्तुतः किसी के भी पेट को नहीं काटना चाहिए अर्थात् किसी के भी पेट पर लात नहीं मारनी चाहिए और दान की यह शिक्षा बार-बार परमेश्वर से ले लेनी चाहिए।

अहं भो दूरदेशाच्च भवद्ग्रामे समागतः।
महीयसी श्रेयसी ते सिता कीर्तिर्मया श्रुता[1]।।४६।।

अरे ! मैं बड़ी दूर से आपके गांव में आया हूं और तुम्हारी बहुत अधिक कल्याण करनेवाली धवल कीर्ति (निर्मल यश) को मैंने सुना है।

मुहुर्मुहुर्याच्यमाना मौनीभूता रुषान्विता।
रक्तेक्षणा विडालीव मूषकाणां जिघांसया।।४७।।

बार-बार याचना करने पर भी वह कुछ न बोली अपितु क्रुद्ध हो गई जैसे चूहे मारने की इच्छा से बिल्ली की आँखें लाल हो जाती हैं वैसे ही उस स्त्री की आँखें भी क्रोध के कारण लाल हो गई।

भृशं सा भिक्षिता तेन भिक्षां देहि कुलालिके।
ईशस्येव निजा सूतिर्घटी कस्ते परिश्रमः।।४८।।

हे कुम्हारिन् ! जैसे ईश्वर की अपनी सृष्टि अनायास ही हो जाती है वैसे ही घड़ों को बनाने में तुम्हारी कितनी मेहनत होती होगी ? अर्थात् तुम आसानी से घड़े बना लोगे, अतः मुझे एक घड़े की भिक्षा दे दो, इस प्रकार योगी ने बहुत देर तक याचना की।

श्रुत्वेदं कर्कशा कुम्भकारस्य दयिताऽदया।
तप्तां नीरघटीं योगिमुखं चिक्षेप सा रुषा।।४९।।

यह सुनकर कुम्हार की दया से रहित उस कठोर पत्नी ने क्रोध से गर्म जल से भरी हुई घड़िया को योगी के मुख पर फैंक दिया।

सा शक्तिरिव कर्णे न विकर्णान् पाण्डवान् प्रति।
गृहाण वचनेनैव क्षिप्ताकीर्णा सहस्रशः।।५०।।

जैसे कर्ण ने अपने विरुद्ध पाण्डवों के ऊपर अपनी शक्तियों को फेंका था उसी तरह 'ले' यह कहकर उसने वह गर्म जल की घड़िया साधु के ऊपर फेंक दी जिससे उसके हजारों टुकड़े हो गए।

---

१. ४२ से ४७ तक के पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है और ४७वें पद्य की अन्तिम पंक्ति पाण्डुलिपि के ३९वें पद्य (इस पुस्तक में ४१वें) की अन्तिम पंक्ति है।

निस्त्रपा याचका मूर्खा: कुजातीया दिगम्बरा:।
प्रात: समागता दुष्टा दरिद्रा दुर्भगा: कुत:[१]।।५१।।

निर्लज्ज, मूर्ख, कुजात, नंगे, दुष्ट, बद्किस्मत दरिद्र भिखमंगे सुबह-सुबह ही न जाने कहाँ से आ जाते हैं ?

दुर्वासा इव चित्तेन वह्निना वाक्यदारुणा[२]।
सुसमिद्धो भीषणात्मा[३] शशाप सकलं पुरम्।।५२।।

वह योगी उस कठोर वाक्यरूप अग्नि से अत्यन्त प्रज्वलित हो गया और उसने भीषणरूप धारण करके दुर्वासा ऋषि के समान सारे गांव को शाप दे दिया।

कुलाली पतिता भूमौ मूर्च्छिता वेपथुस्थिता।
यतिदर्शनमात्रेण दण्डस्य तत्र का कथा[४]।।५३।।

यति के देखने मात्र से ही कुम्हारी कांपती हुई मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ी, दण्ड का तो क्या कहना ? अर्थात् यदि योगी उसे कोई दण्ड दे देता तो उसकी क्या दुर्दशा होती, यह इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह उसके देखने मात्र से ही बेहोश हो गई थी।

तेन भूमि: प्रतप्तेयं सिंहव्याघ्रभयावृता।
नरा: पतत्रिणो जाता: क्रोशन्ति दुष्टसंगतिम्।।५४।।

---

१. ५१, ५२ पद्य के स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :–

(क) बले बलवतां धीरो ह्यर्जुनादपि यो बली।
कर्णतुल्या कुलाली सा जगर्ज घनसन्निभा।।४८।।

जो धैर्यशाली बलवानों की शक्ति में वस्तुत: अर्जुन से भी अधिक शक्तिशाली था (उस अंगराज) कर्ण की भांति वह कुम्हारी मेघ के समान गरजी अर्थात उस शक्तिशाली योगी पर गुस्से से बरस पड़ी।

(ख) तत् क्षिप्ता: खर्परा खण्डा: शतशोऽथ सहस्रश:।
योगिपार्श्वमुपागत्य पतिता भुवि खण्डिता:।।४९।।

फेंकी गई वह हंडिया सैकड़ों से भी अधिक टुकड़ों में टूटी हुई योगी के समीप भूमि पर जा गिरी।

२. पाठभेद-योगी दोषस्य कारणात्........।।५०।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-भीषणं रूपमाधाय........।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
(दुर्वासा की भाँति योगी ने इस दोष के कारण भयंकर स्वरूप धारण करके सम्पूर्ण नगर को शाप दे दिया।)

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

उस शाप से यह सारा गांव भस्म हो गया और यहां भयंकर सिंह, व्याघ्र आदि जन्तु रहने लगे और मनुष्य मरकर पक्षी होकर कूज रहे हैं कि दुष्टों की संगति ऐसी ही होती है।

क्व पुरी सर्वसुभगा सकलर्तुसुखावहा।
क्वेदं बिभीषणाऽख्यमगाराय भयं नृणाम्[१]।।५५।।

कहां तो यह नगरी सब प्रकार से रमणीय एवं सब ऋतुओं में सुख देनेवाली थी और कहां अब यह मनुष्यों के निवास करने में भयप्रद भीषण जंगल के रूप में परिवर्तित हो गई है।

अब ग्रन्थकार अन्य ग्रन्थों से उदाहरण देता है :-

असतां सङ्गदोषेण साधको यति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः।।५६।।

दुष्टों की संगति के दोष के कारण साधक विकार (बुराई) को प्राप्त हो जाता है, जैसे कि दुर्योधन की विशेष संगति के कारण भीष्म विराट् की गायों को हरण करने के लिए गये। ~~कहने का~~ भाव यह है कि दुष्टा कुम्हारी के दुष्कर्मों का परिणाम सम्पूर्ण नगरी को भुगतना पड़ा और वह नगरी आज केवलमात्र जंगल ही रह गई है।

बिन्दुराम्लः पयः पूरं विकारयति सर्वशः।
मलिनं कुरुते मत्सी विकृतैका सरोवरम्।।५७।।

जैसे खटाई की एक बूंद सारे दूध को विकृत कर देती है और जैसे एक सड़ी हुई मछली सारे तालाब को मलिन कर देती है; उसी तरह उस दुष्ट स्त्री ने सारे गांव को अपने अनुचित आचरण से विकृत कर दिया, ऐसा ही होता है कुसंगति का फल।

सङ्गेन भङ्गः सतताऽघसङ्घस्यामोददो जह्नुजनेरिवाम्भः।
सङ्गः सतामेकपदेन तीर्थे तीर्थी करोत्येव जनिं भिनत्ति।। ५८।।

जह्नुतनया गङ्गा के जल के समान सज्जनों की संगति सब पापों का नाश करके लगातार सुख देनेवाली है और एक बार किया हुआ भी सज्जनों का संग पवित्र कर देता है और जन्मबन्धन से भी मुक्त करा देता है।

---

१. पाठभेद-बभूव कालवेगतः।।५३।। (प्रकाशित प्रति)

सद्भिः शिवार्चार्थसुमैश्चितैव मुदैव या कैरविणीशिरस्था।
शिवस्य मन्त्रैरथ तत्प्रसङ्गात् पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्।।५९।।

सज्जनों के द्वारा शिवपूजन हेतु चुने गए पुष्पों के साथ कमल के अग्रभाग पर बैठी हुई चींटी मन्त्रों द्वारा शिवपूजन के समय पुष्पों के सङ्ग से शिव के मस्तक पर विराजमान चन्द्रबिम्ब को चूमती है अर्थात् अच्छी संगति से क्षुद्र प्राणी भी उच्च पद को प्राप्त कर लेता है।

सिता सुकीर्त्याऽथ वनेन हैमा नाऽनीलिमानं प्रदधाति सङ्गात्।
कालिन्दिकाया अपि जह्नुकन्या तमिस्त्रयेवाथ दिनेशभासा।।६०।।

निर्मल जलवाली गङ्गा जैसे यमुना के संग से नीलेपन को धारण कर लेती है और सूर्य के प्रकाश से अन्धकार स्वच्छ हो जाता है, इसी तरह से अच्छी संगति से स्वभाव में अवश्य परिवर्तन होता है।

समारोहः सतां सङ्गादसतां सम्प्रजायते।
असतां सङ्गतेः पातोऽप्युच्चैस्थानां ध्वजादिवत्।।६१।।

दुर्जन भी सज्जनों की संगति से उन्नति को प्राप्त कर लेते हैं और उच्च पद पर विराजमान सज्जनों का भी दुष्टों के संग से ध्वज आदि की तरह पतन हो जाता है।

गरिष्ठानां न पातोऽस्ति न पातः पतनादपि।
नासद्भिः सह पातोऽस्ति गङ्गाचन्द्राग्निसूर्यवत्।।६२।।

परन्तु श्रेष्ठ व्यक्तियों का दुर्जनों के सङ्ग से भी गङ्गा, चन्द्र, अग्नि और सूर्य की भांति पतन होने पर भी पतन नहीं होता।

अपक्वानामियं वार्ता पक्वः कुत्रापि खेलतु।
दृढबोधप्रभावेण न बाधो विद्यते क्वचित्[१]।।६३।।

जो पक्व नहीं हैं (अभी अबोध बालक-अज्ञानी हैं) उनकी यह बात है, पक्व तो कहीं भी खेलें। दृढ़ज्ञान के प्रभाव से कहीं भी बाधा नहीं रहती। अपक्वों को ही दुष्टों की संगति से अनिष्ट होने की आशंका रहती है परन्तु जो परिपक्व ज्ञानी, दृढ़चरित्र हैं उन पर दुष्टसंगति का भी कोई दूषित प्रभाव नहीं पड़ता और ऐसे दृढ़

---

१. ६२, ६३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

आचरण वाले लोगों को किसी भी परिस्थिति में रुकावट नहीं आती अर्थात् बाधा उन्हें परेशान नहीं करती हैं।

नीरवातभूविभागा दोषकोपाद्विकारतः।
कीटाऽणवः स्वसङ्गेन महामारी विधायकाः।।६४।।

दोषों के प्रकोप से जल, वायु, पृथ्वी आदि के परमाणु विकृत होकर कीटाणु बनकर महामारी (हैजा, प्लेग, एड्स आदि) उत्पन्न कर देते हैं।

एवं श्रुत्वा गुरोर्वाचं समूचुः सकला अपि।
योगिनोऽन्ययुगे जातमप्येतद् गुरुणा स्मृतम्।।६५।।

इस प्रकार गुरुदेव के वचन को सुनकर सब शिष्य कहने लगे कि योगिजन अन्य युग में घटी हुई घटना को भी जान लेते हैं, जैसे कि गुरुजी को याद आ गई है।

कलौ कुतो वेदवार्ता श्रद्धा दानं दया दमः।
सत्यं सुशीलताऽऽर्य्याऽर्य्या सतां सङ्गोऽपि दुर्लभः[१]।।६६।।

कलियुग में वेदचर्चा कहां और श्रद्धा, दान, दया, संयम (इन्द्रियनिग्रह), सत्यभाषण, सुशीलता, श्रेष्ठपुरुषों की प्राप्ति व सज्जनों का सङ्ग आदि सब सर्वथा दुर्लभ हैं।

युगान्तरेऽस्ति गोरक्षो देवानामपि देवता।
शिवाद् गुरोऽन्यलोके कुतो वित्तिस्त्रिकालगा।।६७।।

अब दूसरे युग अर्थात् कलियुग में भी देवताओं के भी देवता गोरक्षजी विद्यमान हैं अन्यथा गुरु शिव के अतिरिक्त अन्य पुरुष को तीनों कालों का ज्ञान कैसे हो सकता है अर्थात् केवल शिव को ही तीनों कालों का ज्ञान हो सकता है, उन्हीं के अवतार गोरक्षजी थे और अब वही हमारे गुरु मस्तनाथजी के रूप में विद्यमान हैं। तीनों कालों का ज्ञान होने से सूचित होता है कि मस्तनाथजी गोरक्षजी के ही अवतार थे।

इति श्रीमस्तनाथचरिते त्रिकालवार्ताज्ञानवर्णनं नाम दशमः सर्गः।

---

१. ६४, ६६ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

एकादशः सर्गः

शीलकोद्धारप्रकरणम्

प्रशान्तदान्तान् नियमैर्यमैः स्वैरुपेततत्त्वान् निजशिष्यवर्गान्।
ज्ञानं तपोयोगसमाधिगम्यं रम्यं वचः श्रावयितुं स जज्ञे।।१।।

जिन्होंने यम-नियमादि योग के अंगों से तत्त्व को जान लिया था, अन्तरिन्द्रिय एवं बाह्य इन्द्रियों को वश में कर लिया था, ऐसे अपने शिष्यसमूह को तप, योग, समाधि के द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञान तथा सुन्दर वचन (उपदेश) सुनाने के लिए ही वह प्रादुर्भूत हुये थे अर्थात् मस्तनाथजी प्रकट हुए थे।

तदर्थनाभिर्गतशोकमोहान् निर्द्वन्द्वनिस्तन्द्रमनोऽनुकूलान्।
शीतोष्णवर्षासहनद्रढीयश्चित्तान् विधातुं विपिनं जगाम[1]।।२।।

उन शिष्यों की प्रार्थना से उनको शोक मोह रहित, द्वन्द्वों से रहित, आलस्य रहित, अपने अनुकूल, सर्दी-गर्मी तथा वर्षा को सहन करने में दृढ़ चित्तवाले बनाने के लिए मस्तनाथजी वन में चले गये।

वनं जगामाथ जगज्जनार्दनः प्रतर्दनो मानभृतां चितांचयः।
विलोक्य सामान्यविशेषसम्भृतं स मस्तनाथस्तपसे यशोऽधिगम्[2]।।३।।

संसार के प्राणियों के कष्टों को दूर करनेवाले, दुष्टों का संहार करनेवाले, मनस्वीजनों की चिन्ताओं का चयन (दूर) करनेवाले वह मस्तनाथजी साधारण एवं विशिष्टजनों से एकत्रित की गई अपनी यशप्राप्ति को देखकर तपस्या हेतु वन में चले गए।

---

१. पाठभेद- तदर्थनाभ्यो गतशोकमोहान् शीतादियुग्मादिनिरस्तचित्तान्।
„जातसंजातविजातिकादेरादेरनादेरपि दूरमास्त।।२।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है और इसके पश्चात् निम्न पद्य है प्रस्तुत ग्रन्थ में जो दूसरा पद्य भी है :-
रसाभिदूरान् गतशोकमोहान् निर्द्वन्द्वनिस्तन्द्रमनोऽनुकूलान्।
शीतोष्णवर्षासहनप्रबद्धान् शिष्यान् विधातुं विपिनं जगाम।।४।। (प्रकाशित प्रति)

न यावदास्ते मनसो विशुद्धिर्न निर्विकल्पस्फुरणं विभाति।
न निर्विकल्पेन विनैक्यवित्तिर्न वित्तितो[१]ऽन्यैरिह भुक्तिमुक्ती[२]।।४।।

जब तक मन की शुद्धि नहीं होती तब तक यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता और यथार्थ ज्ञान के बिना ऐक्य (केवल आत्मा) का ज्ञान संभव नहीं तथा जब तक आत्मज्ञान न हो तब तक ऐहलौकिक भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। (अतः मन की शुद्धि ही योगसाधना का प्रथम सोपान है।)

मनोविशुद्धिर्जगतो विरक्तेर्विरक्तिर्गुरुवाक्यश्रद्धासक्तेः।
सक्तेरुपायोऽस्ति तदुक्तिभक्त्याचारः सुमार्गानुसृतेः प्रसक्त्या।।५।।

जगत् से वैराग्य होने से मन की शुद्धि होती है, गुरु के वचन में श्रद्धा आसक्ति होने से वैराग्य में प्रेम होता है और गुरुवचन में आसक्ति का उपाय गुरुभक्ति, सदाचार, सन्मार्ग का अनुसरण करना आदि हैं। (अतः गुरुभक्ति भी योग मार्ग का मुख्य साधन है। मेरे विचार में गुरुभक्ति ही सबका मुख्य साधन है।)

योगिनां वीतरागाणां यतिनां ब्रह्मचारिता।
सम्प्रदायानुसारेण येषु ते सुसमाहिताः[३]।।६।।

वीतराग योगियों में ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक होता है उनमें भी जो अपने सम्प्रदाय के अनुसार योगसाधना करते हैं वे ही प्रशान्तचित्त यतिजन कहलाते हैं।

कर्त्तव्यबोधनिपुणा जनानां हितचिन्तकाः।
आर्त्तानां दुःखहर्त्तारो निगमागमसंमताः।।७।।

वे कर्त्तव्य ज्ञान में निपुण, लोगों के शुभचिन्तक, पीड़ितों के कष्ट को हरण करनेवाले तथा वेद एवं शास्त्रों से प्रमाणित मार्ग पर चलनेवाले होते हैं।

शिष्या सर्वजनोपेताः शिष्टग्राह्यमताग्रहाः।
दम्भाहङ्कारहुङ्काररागद्वेषविवर्जिताः[४]।।८।।

---

१. पाठभेद-बोधो न बोधतो।।५।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-भुक्तिमुक्तिः (पाण्डुलिपिः) यहाँ समास होने से यह पाठ उचित नहीं है अपितु इसके स्थान पर प्रकाशित प्रतिवाला भुक्तिमुक्ती पाठ ही शुद्ध है।

३. पाठभेद-यतयो वीतरागाश्च योगाभ्यासपरायणाः।
सिद्धाचरणमर्यादाज्ञानगौरवशालिनः।। (प्रकाशित प्रति)

४. ७, ८ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

उनके शिष्य श्रद्धालु लोगों से घिरे रहते हैं और शिष्टसम्मत मतों को ग्रहण करते हैं। झूठे अहंकार की सेखी न बघारनेवाले तथा रागद्वेष से रहित होते हैं।

प्राणाभ्यासो विरक्तिश्चाशासन[१]ध्यानधारणाः।
निर्वेदाद् द्वन्द्वसहनाद्[२] हठयोगाद् भवन्ति हि।।९।।

प्राणायाम का अभ्यास, वैराग्य, आसन, ध्यान, धारणा (एकालम्बन में चित्त को स्थिर करना); ये निर्वेद=उदासीनता, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों की सहनशीलता, (पंचमुद्रा, पंचबन्धादि) और हठयोग से ही होते हैं।

प्राणायामप्रक्रियायामुपायो गुरुरेव यत्।
तेन तत्र वनं पुण्यं गुरुणा संप्रधारितम्।।१०।।

प्राणायाम प्रक्रिया में गुरु ही एकमात्र साधन है, इसीलिए गुरु ने उस पवित्र वन में रहने का निश्चय किया, क्योंकि योगसाधना एकान्त, शान्त एवं पवित्र स्थल पर ही संभव हो सकती है।

वनस्य सविधे तस्य 'भालोठा' पूर्विभासते।
दयाश्रद्धासुसद्भक्तिरक्ता[३] यत्र नरा विदः।।११।।

उस वन के समीप भालोठ नाम का नगर है, जिसमें दया, श्रद्धा, उत्तम भक्ति से युक्त विद्वान् लोग रहते थे।

भक्तः सतां द्विजेन्द्राणां श्रद्धालुः सुकृतिर्भृशम्।
आर्यजातिः शीलकाख्यो[४] मस्तनाथं स वित्तवान्।।१२।।

वहीं पर सच्चरित्र ब्राह्मणों का भक्त, श्रद्धालु, अत्यधिक शुभ कर्म करनेवाला जाति का हिन्दू शीलका नाम का एक भक्त रहता था। वह मस्तनाथ जी के विषय में जानता था।

नानादिगन्तविश्रान्तकीर्तिमेतं वने यदा।
दिदृक्षुर्हर्षतः प्राप वनं यत्र गुरुस्तदा।।१३।।

जिनकी कीर्ति सब जगह फैल चुकी थी, ऐसे गुरु को देखने का इच्छुक वह शीलका बड़ी खुशी से उस वन में गया, जहां पर गुरुदेव विराजमान थे।

---

१. पाठभेद-आसन।।९।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-युग्मसहनाद्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-दयादाक्षिण्यभक्त्यादिरक्त।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-भक्तो योगीन्द्रवृन्दानां श्रद्धास्वादपरायणः।
आर्यनार्यस्तुतः सभ्यो .... ।।१३।। (प्रकाशित प्रति)

दुर्लभो देवताभक्तो हरिभक्तस्तु दुर्लभः।
शिवभक्तोऽलभ्यतरो योगिभक्तस्सुदुर्लभः[१]।।१४।।

संसार में देवताओं का भक्त मिलना दुर्लभ है, उनमें भी विष्णु का भक्त अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु शिव का भक्त तो उनसे भी दुर्लभ है। इसी प्रकार योगी का भक्त भी अत्यन्त दुर्लभ है। यहां यह भाव भी अभिप्रेत हो सकता है कि योगिजन भी दुर्लभ हैं।

विरला भक्तिरक्तिश्च रीतिस्तत्र सुदुर्लभा।
कृपैव गुरुभक्तिञ्च गुरूणां कुरुते ततः[२]।।१५।।

भक्ति में अनुराग विरले ही पाया जाता है, उसमें भी रीति की मर्यादा अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि गुरुकृपा ही गुरुभक्ति की विधि सिखाती है।

करे पयःपात्रपवित्रचेताश्चरित्रवित् सद्गुरुपूतभूमेः।
चिन्वन् वनं[३] फुल्लतरोस्स मूले सिद्धासनस्थं स्वगुरुं ददर्श।।१६।।

हाथ में दूध का पात्र लिए हुए, पवित्र चित्तवाला वह सदाचारी शीलका, गुरु के पवित्र स्थान को खोजता हुआ वन में पहुंच गया और उसने वहां पुष्प व पत्तों से प्रफुल्ल वृक्ष के नीचे सिद्धासन में बैठे हुए अपने गुरु को देखा।

नतो नुतो गुरुस्तेन सर्वविल्लोकसंग्रहम्।
दर्शयन् कुशलं पृष्ट्वा प्राह केनात्र प्रापितः।।१७।।

उसने समीप जाकर प्रणाम किया और स्तुति की। तब सर्वज्ञ गुरुदेव ने भी लोकमर्यादा का पालन करते हुए उससे कुशल-क्षेम पूछा और कहा कि तुम्हें यहां तक कौन लाया है ?

विपिनं गहनं हिंस्रैराकीर्णं तपसः क्षमम्।
अदर्शनीयं पौराणां कुतो ह्यत्र समागमः।।१८।।

हिंस्र जन्तुओं से भरे हुए, तप करने योग्य दुर्गम एवं भयंकर यह वन नागरिकों को तो देखने में आता नहीं, फिर तुम यहाँ तक कैसे आये ? अर्थात् इस वन को तो इस गाँव के लोगों ने भी नहीं देखा है, फिर तुम यहाँ तक कैसे पहुंचे ?

---

१. पाठभेद-दुर्लभः शिवभक्तोऽपि योगभक्तोऽपि दुर्लभः।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ३. पाठभेद-गवेषमाणोऽथ। (प्रकाशित प्रति)

आकर्ण्योवाच भालोठाग्रामे जात्याऽन्तिमो मतः[१]।
शीलकाख्यो वनस्याऽस्याऽदूर एव वसाम्यहम्।।१९।।

उनका वचन सुनकर वह कहने लगा कि मैं शीलका नाम का जाति से जाट हूँ और इसी वन के समीप भालोठ नाम के गाँव में रहता हूँ।

क्व ग्राम्या देवताऽलभ्यदर्शनाः क्व भवादृशाः।
परोपकारदेहानां भवतां दर्शनं कुतः।।२०।।

हम ग्रामीण लोग कहाँ और कहाँ देवताओं को भी जिनके दर्शन नहीं होते ऐसे आप जैसे महात्मा ? परोपकार के लिए शरीर धारण करनेवाले आपका दर्शन कहाँ से सम्भव हो सकता है ? अर्थात् मेरा यह अहोभाग्य है कि मुझे आप जैसे परोपकारी के दर्शन हुए और ऐसी पुण्यात्माओं के दर्शन ऐसे ही बीहड़ जंगलों में विरले ही मनुष्यों को हुआ करते हैं।

सुराऽसुरैर्गीतकीर्ती रुद्रो यः सङ्कटेषु सः।
गोरक्षोऽभूत्तदीयास्ति[२] मूर्तिः कुण्डलधारिणी।।२१।।

विपत्ति पड़ने पर देव एवं दानव जिनकी कीर्ति का गान करते हैं, ऐसे जो वह रुद्रदेव हैं उन्हीं का अवतार कुण्डलधारी गोरक्षजी हुए हैं।

यो विपस्थोज्ञहेतुश्च शिवसूत्रमिदं स्मृतम्।
वीतरागो मस्तनाथो दक्षिणेशो भवानिति[३]।।२२।।

शिवसूत्र में ऐसा उल्लेख है कि जो सदा आनन्द ज्ञान का हेतु तथा दक्षिणाचार का आचार्य है वही आसक्ति (मोह) से रहित आप मस्तनाथजी हैं।

अवतीर्णो यतिपतिर्गोरक्षश्चिन्तितो मया।
शिवाऽवतारा वेदेषु यतोऽसङ्ख्याः प्रकीर्तिताः[४]।।२३।।

वही गोरक्षजी यतिराज मस्तनाथ रूप से अवतरित हुए हैं ऐसा मुझे निश्चय होगया है क्योंकि वेदों में शिव के असंख्य अवतारों का उल्लेख हुआ है।

---

१. पाठभेद-ग्रामः पुण्यात्मदर्शनः।।१९।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-महेशोऽयं।।२१।। (प्रकाशित प्रति) ३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. पाठभेद-अवतीर्णो गोगणाध्यक्षो गोरक्षो भगवान् स्वयम्।
श्रीमन्मस्तरूपेण दिव्यरूपेण दर्शनी।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
गोगणों के स्वामी भगवान् गोरक्ष स्वयं दिव्यरूपवाले दर्शनी साधु श्री मस्त के रूप में अवतरित हुए।

आईपथे न व्यसनानुषक्तिर्न वा रसास्वादनमित्यवेक्ष्य[1]।
आनायि पेयादिकभक्ष्यचोष्यल्लेह्यानि हित्वा पय एतदल्पम्।।२४।।

आईपथ में कोई व्यसन नहीं है अथवा न ही कुछ खाने की लालसा है। अत: मैं पीने योग्य पदार्थ आदि, खाने योग्य, चूसने योग्य व चाटने योग्य स्वादिष्ट व्यंजनों को छोड़कर यह थोड़ा-सा दूध लाया हूँ।

न दित्सितं नो रमणीयवाचा ग्रामीणलोकस्य न भक्तिरीतिः।
न दृश्यजातं किमु लोकनीयं क्षमामतो नाथ! जने विधेहि।।२५।।

जिसे हम देना चाहते हैं ऐसी वस्तु हमारे पास नहीं है, न हम सुन्दर वचनों से सत्कार कर सकते और हम ग्रामीण भक्ति की विधि भी नहीं जानते, न कोई दर्शनीय वस्तु ही हमारे पास है। अत: हे नाथ! हम दीनों के प्रति क्षमाभाव रखो।

इत्यादिदीनवचनैः स्वागमे दर्शनं गुरोः।
निवेदयामास[2] हेतुं केवलं स्वामिदर्शनम्।।२६।।

इस प्रकार के नम्र वचनों से अपने आने का कारण, मात्र गुरुदर्शन ही बताया।

एवं, स प्रत्यहं क्षीरमनीरमतिशौचतः।
आनिन्ये प्रेमपूर्वं तद्दर्शनानुज्ञया जगे[3]।।२७।।

इस प्रकार वह प्रतिदिन बिना पानी का दूध बड़ी पवित्रता से प्रेमपूर्वक लाता था और उनके दर्शन करके उनकी आज्ञा लेकर चला जाता था।

एकदा सद्गुरुः प्राह त्वं मैवं कुरु साध्वसम्।
पयो नित्यं समानीय देहे सन्देहमिच्छसि।।२८।।

एक बार सद्गुरु ने कहा कि तुम इस प्रकार भय का काम मत करो। प्रतिदिन दूध लाकर अपने शरीर को खतरे में डालना चाहते हो? अर्थात् इस भयंकर जंगल में तुम प्रतिदिन अकेले दूध लेकर आते हो। इस प्रकार करके अपने जीवन को तुम क्यों खतरे में डाल रहे हो। कोई जंगली जानवर तुम्हें खा लेगा।

---

१. पाठभेद-शुद्धातिशुद्धं परमं हितावहं वहंलिहानां गृहवर्धितानाम्।।२३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-कथयामास……।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-स तदाज्ञावशतोऽगमत्……।।२६।। (प्रकाशित प्रति)

सिंहव्याघ्राकुलं चोरभीतियुक्तं वनं महत्।
प्रत्यहं न समायानमशस्त्रस्याऽत्र युज्यते।।२९।।

सिंह-व्याघ्रों से भरे हुए चोर आदि से भयानक इस विशाल जंगल में बिना हथियार के प्रतिदिन आना उचित नहीं है।

हिंस्रैर्हता नीरमृता विषैश्च स्वात्माहनो रौरवभोगभाजः।
चौरैः सशस्त्रैरथ मारितानामसद्गतिः स्मार्तपथे प्रदिष्टा[1]।।३०।।

हिंसक जन्तुओं द्वारा मरे हुए, जल में डूबकर, विष से मरे हुए तथा आत्मघाती रौरव नामक नरक में गिरते हैं और इसी प्रकार चोरों द्वारा शस्त्रों से मारे हुए पुरुषों को भी सद्गति नहीं मिलती, ऐसा धर्मशास्त्र में कहा गया है।

जीवन्नरो भागसहस्रभाजां सुखास्पदानां गणनासु चाङ्क्यः[2]।
कुर्वन् शुभानि स्वकमार्गगानि सुराङ्गनाप्रीतिपदं च मुक्तः[3]।।३१।।

जीवित रहता हुआ मानव हजारों सुखों का उपभोग करता है और अनेक यज्ञादि शुभकर्मों को करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है तथा तत्त्वज्ञान को पाकर मोक्ष का भी भागी हो सकता है।

अनेकजीवाः सुततातमातरो भ्रात्रादयो मित्रगणाः सुखाय च।
सम्प्रापणीया इह साधुवृत्ते[4]र्नासौ स्वजीवं[5] विजहातु जन्तुः[6]।।३२।।

और पुत्र, माता-पिता, भाई मित्रगण इत्यादि अनेक प्राणी सुख के लिए होते हैं। इनके साथ सद्व्यवहार करना चाहिए न कि अपने जीवन का परित्याग कर दे।

सुमैः फलैः पत्रकुशासनाद्यैर्नीरैः समीरैरथ वन्यजन्यैः।
सेवा मदीया न पयःप्रवाहैस्तथा यथा दर्शनवन्दनाद्यैः[7]।।३३।।

वन में उत्पन्न फूल, फल, पत्र, कुशासन, जल, वायु से जैसी मेरी सेवा हो रही है वैसी दूध के प्रवाह, प्रतिदिन आकर दर्शन करने तथा वन्दनादि से नहीं हो सकती।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद-सुखमातनोति। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-कुर्वन् सदा कर्म बलाबलं बली सुराङ्गनाप्राङ्गणमाजुहोति।।२९।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-सन्तते।।३०।। (प्रकाशित प्रति) ५. पाठभेद-सन्तुः।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-जीवनम्।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
७. प्रकाशित प्रति में दूसरा पद प्रथम पद के स्थान पर है और प्रथम पद द्वितीय पद के स्थान पर है। (।।३२।।)

त्वदागमे न: प्रशमस्य दिव्यदृशा समाधे: क्षणभङ्गिभङ्ग: ।
तव प्रसङ्गे वनजस्य हिंस्रैस्तनोर्निजायाश्च समानभङ्ग:[1] ।।३४।।

मुझे दिव्य दृष्टि से मालूम होता है कि तुम्हारे आने से मेरी शान्ति एवं समाधि में भङ्ग पड़ता है और तुम्हारे साथ संगति होने से वन में रहनेवाले हरिण आदि के साथ हिंसक जन्तुओं का विरोध बढ़ जाता है, जबकि हमारे समाधिस्थ रहने से सब जन्तु शान्त रहते हैं।

बलावलेपसंदृप्तं वचनं प्राह कर्कशम्[2] ।
चौरस्य साहस: क्वाऽस्ति द्विशो मे पञ्चशो मुखे ।।३५।।

नाथजी के वचन सुनकर शीलका ने अभिमानपूर्वक कठोर वचन कहा कि चोर की क्या हिम्मत है ? दो-दो या पाँच-पाँच आदमियों की भी मेरे सामने क्या मजाल ?

दिदृक्षुणा मया नित्यं भवतो नियम: कृत: ।
स्वपू:समीपे वसतो दर्शनं मे भवेदिति ।। ३६ ।।

आपके दर्शन के अभिलाषी मैंने अपने गाँव के समीप रहनेवाले आपके नित्य दर्शन करने का नियम बना लिया है।

परीक्षार्थं मनश्चक्रे ज्ञातवान्नपि तन्मन: ।
द्रढयन् मदमात्सर्य्यत्यागार्थं भाविदर्शनात् ।।३७।।

नाथजी उसके मन के भाव को जानते भी थे फिर भी उसको और अधिक दृढ़ बनाने के लिए तथा उसे मद, मात्सर्य आदि दोषों से मुक्त करने की इच्छा से उन्होंने उसकी परीक्षा की इच्छा की।

मायारूपं समास्थाय मध्ये मार्गं स शस्त्रवान् ।
गच्छन्तं प्राह यत्तेऽस्ति हित्वा हि न यास्यसि[3] ।। ३८ ।।

नाथजी ने अपनी माया से शस्त्रधारी चोर का रूप धारण करके मार्ग के मध्य में जाते हुए उससे कहा कि जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे यहीं रखकर जा सकते हो, अन्यथा नहीं।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद-गर्वितम्।।३२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-त्यक्त्वा यास्यसि केवलम्।। (प्रकाशित प्रति)

सहसा जीवनं वित्त्वा[1] स्वगुरुं न विवेद सः।
प्राणसंशयमापन्नो वसनान्यत्यजद् भयात्।।३९।।

शीलका ने मायारूपधारी अपने गुरु को नहीं पहचाना और प्राणों को संकट में पड़ा हुआ जानकर अपना जीवन बचाने के लिए भय के कारण उसने अपने वस्त्रों को उतार दिया।

सर्वं तदीयं सञ्चित्य दिगम्बरतनुं गुरुः।
तदीयमूर्त्या तद्गेहं गत्वाऽदाज्जननीं प्रति।।४०।।

नग्न शरीरवाले उस शीलका का सब कुछ (वस्त्र इत्यादि) एकत्रित करके उसी का रूप धारण कर उसके घर जाकर वह सब वस्त्रादि उसकी माता को दे दिए।

अनेकरूपरूपस्य भवस्य मायया जगत्।
मोहितं सकलं तत्र शीलकाऽऽर्य्यस्य का कथा।।४१।।

अनेक रूप धारण करनेवाले शिव की माया से सम्पूर्ण जगत् मोहित हो जाता है तो फिर शीलका आर्य का क्या कहना?

येन केनाप्युपायेन मृत्युं च परमेश्वरम्।
विस्मारयति या माया मायिनामपि मोहिनी[2]।।४२।।

माया को धारण करनेवालों को भी मुग्ध करनेवाली जो माया है, वह जिस किसी भी तरीके से मृत्यु और परमेश्वर तक को भी विस्मृत करा देती है।

पुरा सुरपतिर्यागे मखं भञ्जयितुं पृथोः।
शिव[3]मायामुपास्थाय यागाश्वं हृतवाञ्छ्रुतः[4]।।४३।।

प्राचीन समय में देवराज इन्द्र ने पृथु राजा के यज्ञ को भङ्ग करने के लिए शिव की माया का आश्रय लेकर अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का हरण कर लिया था–ऐसी कथा पुराणों में आती है।

विरक्तरूपधरणं स्पश[5]कार्यस्य स ऋभुः।
पौलस्त्याद् यतिचर्याभिः शिशिक्षे मायिकं नृपः।।४४।।

---

१. पाठभेद-बिभयाञ्चकार मार्गे……।। (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. पाठभेद-नाथ। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-पुरा।४०।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-शिवरूपधरां मूर्त्तिं कृत्वा……………………।
रावणाद्……………………………तदा नृपः।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

राजा ऋभु ने गुप्तचर के कार्य को जानने के लिए विरक्त संन्यासी का रूप धारण करना आदि माया संबंधी शिक्षा पुलस्त्य ऋषि की सन्तति रावण से, उसके यतिवेश से सीखी।

गोरक्षो गोप यदुवदेकदाऽनेकरूपधृक्।
तल्लीला मस्तनाथस्य माया केनोपवर्ण्यताम्[१]।।४५।।

गोरक्षजी ने यदुवंशी कृष्ण की भाँति अनेक रूप धारण किये। उन्हीं की लीला मस्तनाथजी ने दिखाई। उनकी उस माया का कौन वर्णन कर सकता है ?

सुतं विदित्वा जननी निजं तं तदाहृतं चीरधनादिकं च।
जग्राह सर्वं निजवेद्यवित्त्या[२] बलीयसी सा ममता जनानाम्।।४६।।

माता ने उसको अपना पुत्र समझकर उसके द्वारा लाए हुए वस्त्र, धनादि को अपना ग्राह्य जानकर ले लिया। अहो ! मनुष्यों में बड़ी जबर्दस्त ममता होती है।

शीलक: शङ्कितो लोकोपहासात्तु दिगम्बर:।
पतत्रिपोतवत् पत्रेष्वालिल्ये तरुदो:श्रित:[३]।।४७।।

नंगा हो जाने से लोग हँसेंगे इस प्रकार आशंकित हुआ शीलका पक्षी के शिशु की भाँति वृक्षों की टहनियों एवं पत्तों की आड़ में छिप गया।

दिनं क्षपयतो[४] दीर्घीभूतं चिन्तावृतस्य तत्।
चण्डांशुर्भानुजालानि संचिक्ये स्वगृहैषणाम्।।४८।।

चिन्ता से व्याकुल दिन को बिताते हुए शीलका का वह दिन एक वर्ष के समान दीर्घ हो गया, तदनन्तर जब प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य ने अपने रश्मिसमूह को संचित किया, तब उसने अपने घर जाने की इच्छा की।

कपोतपोता नीडं स्वं शुका: काका: समागता:।
सोऽपि यातो वनाद् गेहं[५] निलीन इव हास्यत:।।४९।।

जब सायंकाल हुआ और कबूतरों के बच्चे, तोते, कौवे सब पक्षी अपने-अपने घोंसलों में आगये, तब वह शीलका भी हँसी के डर से छिपता हुआ अपने घर की ओर चला।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद-नेयबुद्ध्या।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-स्वं च गोपयन्।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-यापयतो········।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-गृहं हित्वा·····।।४५।। (प्रकाशित प्रति)

तथापि दृष्टो यैर्मित्रैर्ह्रीणतायाः पलायितः।
दुःखितो मातरं गत्वा ययाचे वसनान्यसौ[1]।।५०।।

जिन मित्रों ने उसे देखा उनसे भी लज्जित होकर भाग गया। आखिरकार दुःखी हुए इसने माता के पास जाकर वस्त्र माँगे।

वसनानि प्रतिगृह्य मात्रे मार्गविचेष्टितम्।
चौरैर्वस्त्रापहरणं[2] श्रावयामास सर्वशः।।५१।।

माता से वस्त्र लेकर चोरों द्वारा वस्त्रों का अपहरण आदि रास्ते का सारा वृत्तान्त सबको सुनाने लगा।

आकर्ण्य हसतः श्रोतॄन् दृष्ट्वा माताऽऽह सत्वरम्।
नाथप्रसादभङ्गाया इदं सर्वं विचेष्टितम्[3]।।५२।।

उस वृत्तान्त को सुनकर श्रोताओं को हँसते देख उसकी माता तुरन्त कहने लगी कि नाथजी की प्रसाद रूप भांग की ही यह सब करतूत है।

भङ्गा तरङ्गिणीश्रोतो मदोन्मत्त समर्प्य माम्[4]।
कथां[5] कथयसे वत्स वचो मे मोहनं कुतः।।५३।।

भांग रूप नदी के प्रवाह से मदोन्मत्त हुआ तू मुझे वस्त्र सौंपकर चला गया और अब ये बातें बना रहा है। हे पुत्र ! मेरे वचन भ्रमयुक्त कहाँ से हैं ? अर्थात् अब मेरी बात को तू झूठी बता रहा है, यह कहकर कि मैं यहाँ आया ही नहीं और रास्ते में चोर ने मेरे वस्त्र छीन लिए थे।

सुरा बुद्ध्या यादवेन्द्रैर्राज्यनाशो व्यधायि तत्।
भङ्गां पीत्वा मदोन्मत्तैस्त्यक्तमज्ञैर्नृपैर्भुवि[6]।।५०।।

सुरा पीने से बुद्धि के विकृत हो जाने से यदुवंशी राजाओं के द्वारा अपने राज्य का विनाश कर लिया गया था और इसी प्रकार भांग पीकर मदोन्मत्त हुए बहुत से राजाओं ने भी पृथ्वी पर अपने राज्य नष्ट कर दिए।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद-ऐकागारिकं वृत्तं...... ।।४६।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद-रङ्गणोत्सुकमानसः...... ।।४७।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-कथं। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद-यादवानां सर्वनाशः सुरया साधितो ध्रुवम्।
तवापि भङ्गया जाता प्रज्ञा भ्रान्तिस्तथाधुना।।५४।। (प्रकाशित प्रति)

विरक्तानां निर्धनानां भंगाऽरोगकरी मता।
भंगासंगाद् गृहस्थानामामयः सम्प्रवर्द्धते।।५५।।

विरक्तों एवं निर्धनों के लिए भांग हानिकारक नहीं मानी गई है परन्तु गृहस्थों में भांग के संग से अनेक रोग बढ़ जाते हैं।

गङ्गा शिवाऽऽसंङ्गसुमङ्गलात्मा भंगा च भंगीव तरङ्गिणी या।
शिवेतरा शैवविरक्तगापि भङ्गं गृहस्थस्य तनोति सैव[1]।।५६।।

वक्र लहरोंवाली जो गंगा है वह शिव के संग के कारण कल्याणमय स्वरूपवाली मानी जाती है, ऐसे ही भांग भी शिव के संग से शैव विरक्तों में भी अच्छी मानी गई है परन्तु गृहस्थों के लिए वही भांग अनिष्ट करनेवाली होती है।

अग्रे न विद्यते कोऽपि न पृष्ठे विद्यते क्वचित्।
यथाकालं प्रवर्तेत तुभ्यं न शोभते तथा[2]।।५७।।

सामने भी कोई नहीं है और पीछे भी कहीं पर कोई नहीं है। मनुष्य को समय के अनुकूल चलना चाहिए, किन्तु यह बात तुम्हें अच्छी नहीं लगती है।

जङ्घाबलं हन्ति नरस्य तस्य शिरस्य मोघां कुरुते स्वजङ्घाम्[3]।।
महीयसां बुद्धिमतां नराणां श्रेयांसि हर्तुं त्वरितैव भंगा[4]।।५८।।

भांग व्यक्ति की जंघा की शक्ति को नष्ट कर देती है और शिर की शक्ति (बुद्धि) को भी बेकार कर देती है। यहां तक कि यह बड़े-बड़े बुद्धिमान् पुरुषों के कल्याणों को शीघ्र ही नष्ट कर देती है।

आईपथीयतत्त्वस्याऽनभिज्ञाऽज्ञाऽबलाबलात्।
निन्दयन्ती नाथमार्गं शिशिक्षे स्वसुतं तदा।।५९।।

स्त्री होने के कारण आईपथ के मर्म से अनभिज्ञ मूर्ख वह शीलका की माता तब नाथमार्ग की निन्दा करती हुई अपने पुत्र को समझाने लगी।

नाथमायाऽज्ञानमूला तया तेऽज्ञा विमोहिताः।
जीवोऽज्ञः सर्वविद्देवस्तद्रूपी स्वगुरुर्यतः[5]।।६०।।

---

१. ५४, ५५ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. पाठभेद-मेधाबलं तस्य हरेत्कथं न ? (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-वेधाः स्वयं तां हि निषेधतेऽद्धा क्रोधाकुलः पानरतो भवेन्नरः।।४९।। (प्रकाशित प्रति)
५. ५८, ५९ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

नाथ की माया अज्ञान का कारण है, उससे वे अज्ञानी जन मोहित हो जाते हैं क्योंकि जीव अल्पज्ञ है और परमेश्वर सर्वज्ञ है। अतः जीव का मुग्ध होना स्वाभाविक है और ईश्वर रूप अपना गुरु भी सर्वज्ञ ही होता है।

लिङ्गानि[1] यानि वस्त्रेषु तद्वेलाधारितेषु सः।
समीक्ष्य तानि नाथस्य मायां तामाह सत्वरम्।।६१।।

उस समय के पहने हुए वस्त्रों में जो निशान थे उनको देखकर वह शीलका तुरन्त बोला कि यह सब नाथजी की ही माया है।

मातस्त्वमनभिज्ञासि नाहमत्रागतः पुरा।
त्वया मयाऽथ न ज्ञाता नाथस्य पुरुरूपिता[2]।।६२।।

हे माता! तुम तो भोली-भाली हो, मैं पहले यहां नहीं आया था क्योंकि तुमने और मैंने नाथजी की बहुरूपिता नहीं जानी।

प्रातः समुत्फुल्लमनाः समेतो दिदृक्षुरीशं स्वगुरुं समाह।
वृत्तं गताहस्य स बालिवत्स्वं मदंगतो रामगुरोः प्रसादात्[3]।। ६३।।

अगले दिन सवेरे-सवेरे प्रसन्न हुआ शीलका अपने गुरुदेव के दर्शन हेतु गया तब पहले दिन का सारा वृत्तान्त उनको बताने लगा कि रामस्वरूप आप मेरे गुरु ने मेरे साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसे राम ने बालि के साथ किया था। अर्थात् राम ने छिपकर जैसे बालि के प्राण हर लिये थे वैसे ही अपनी माया से अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर गुरुदेव ने मेरे वस्त्र हर लिये।

सद्यो बलं पीतमुदाचरद् यत्पयः पुरा पूर्णतपस्विनां तत्।
महर्षिवृत्तस्य विपर्ययो यत्तत्सेवकैकान्तगतोऽवलोक्यः[4]।। ६४।।

---

१. पाठभेद-चिन्हानि.......... ।।५०।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-त्वया न ज्ञायते मातर्नाहमत्रागतः पुरा।
आवाभ्यां नाध्यगायि सा नाथलीलात्वगोचरी।।५१।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. पाठभेद-सद्यो बलं वर्धयते रुजायुजां बलीयसां तत्र कथैव का यतः।
दुग्धं प्रदिग्धं किल दीर्घदर्शिनो वदन्ति वैद्या अपि पानतो ध्रुवम्।।५२।।
(प्रकाशित प्रति)

वस्तुतः दूरदर्शी आचार्य कहते हैं कि उबले हुए दूध का पान करने से निःसन्देह रोगी की भी शक्ति तुरन्त बढ़ जाती है, फिर उस विषय में शक्तिशालियों का क्या कहना अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति भी दूध पीएगा तो उसकी भी शक्ति और अधिक बढ़ जायेगी।

क्योंकि दूध पीने से तुरन्त बल बढ़ता है और शक्ति के बढ़ जाने से प्राचीन पूर्णसिद्ध तपस्वी महर्षियों का आचरण भी विपरीत हो जाता है अतः हम सेवकों को एकान्त में रहनेवाले नाथजी की परीक्षा करनी चाहिए।

न कामिनी क्वापि तपस्विनी च न लोक्यते रात्रिषु ढौकते किम्।
स्वयं महात्मा यमितोऽथ याति दिदृक्षयाऽऽशङ्कि मुहुस्तदैवम्[१] ।।६५।।

वहां कोई स्त्री और न ही कोई तपस्विनी दिखाई देती है, क्या कोई स्त्री रात्रि में उनके समीप जाती है अथवा स्वयं महात्मा ही छिपकर कहीं जाते हैं, इस प्रकार वह बार-बार अनेक प्रकार की आशंकाएँ करने लगा।

इत्याशङ्कापरीतात्मा प्रत्याक्षेपेण दर्शनम्।
मदभंगाय[२] नाथस्य रात्रौ लोचन[३]मैहत।।६६।।

इस प्रकार आशंका से युक्त हुआ वह नाथजी को कुटिल भाव से देखने एवं उनका मदभंग करने के लिए रात्रि में दर्शन करने की इच्छा करने लगा।

अन्येद्युरादाय निपेयनीरविहीनसुक्षीरमुदाहरत्तत्[४]।
सर्वं दिनं नाथपदाम्बुजस्य संसेवनेनैव तदेतमस्य[५] ।।६७।।

अगले दिन सुन्दर पीने योग्य बिना पानी का दूध लेकर नाथजी के पास गया और सारा दिन नाथजी के चरणकमल की सेवा में ही बिताया।

भृशं सम्बोधितः सायं गेहं गन्तुं प्रचालितः।
प्रत्यावृत्तः कियद्दूरं लिल्ये यात्वा तरौ क्वचित्।।६८।।

---

१. पाठभेद-न कामिनी क्वापि विलोक्यते तथा तपस्विनी चापि विलोक्यते न च।
प्रयाति रात्रौ क्व च दृश्यतामयं परीक्षया चास्य विनिश्चयो भवेत्।।५३।।
(प्रकाशित प्रति)
(उस महात्मा के पास) कहीं भी नारी नहीं दिखाई देती है तथा वैसे ही न कोई तपस्विनी देखने में आई और इसको देखा जाए कि यह रात में कहां जाता है अतः परीक्षा से ही इस सबका निश्चय होगा अर्थात् इस सन्त के पास कोई स्त्री रहती है अथवा यह रात में किसी स्त्री के पास जाता है, इन दोनों बातों का पता इसकी परीक्षा करके ही चल सकता है।

२. पाठभेद-परीक्षाय। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद-दर्शनम्।।५४।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-उन्मना दुग्धं च वारिविनिवर्तितं तत्। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद-ज्याय कालम्।। (प्रकाशित प्रति)

नाथजी ने उसे बहुत समझाकर घर की ओर भेज दिया परन्तु कुछ दूर जाकर वह लौट आया और कहीं एक वृक्ष की आड़ में छिपकर खड़ा हो गया।

निशीथे स ददर्शाथ मस्तनाथः स प्रस्थितः।
यायात् पश्चात्तरौ लीनो लुलोके तद्विचेष्टितम्।।६९।।

इसके अनन्तर रात्रि में उसने देखा कि वह मस्तनाथजी वहां से चल पड़े। उनके पीछे-पीछे वह भी चलने लगा और आगे जाकर वृक्षों की आड़ में छिपकर उनकी गतिविधि को देखने लगा।

करीरतरुशाखास्थः स्वान्ते नाथाऽज्ञतां विदन्।
शक्रादिसुरसभास्थं गुरुं स्वं संददर्श ह[1]।।७०।।

कैर के वृक्ष की टहनियों में बैठकर अपने मन में नाथजी की अज्ञानता समझते हुए उसने अपने गुरु को इन्द्रादि देवताओं की सभा में विराजमान देखा।

स्वामी[2] लीलयाऽनेकदेवतारूपधृक् तदा।
तेन बुद्धो न तस्यैव मायया मोहितो हि सः।।७१।।

तब नाथजी ने अपनी लीला से अनेक देवताओं के रूप धारण किये परन्तु वह उनकी ही माया से मोहित (भ्रमित) होकर वस्तुतः कुछ नहीं जान सका।

नाऽद्वैतवित् सिद्धिविदो मन्त्रदेवमतिः कुतः।
शास्त्रहीनजडो योगहीनतार्य्यपदस्थितिः[3]।।७२।।

वह न अद्वैत के विषय में जानता था, न सिद्धि को जानता था, न मन्त्र व देवता को। शास्त्रज्ञान से रहित होने से वह मूढ था एवं योगज्ञान से भी रहित था, वह तो केवल आर्य (हिन्दूमात्र) था, इसी कारण नाथजी में उसकी श्रद्धा थी परन्तु वह उनकी महिमा के विषय में नहीं जानता था।

तत्राऽपश्यद् देवतेन्द्रं शचीवज्रसमाश्रयम्।
हिंडोलरागश्रीरागमेघरागप्रगायकैः।।७३।।

वहां उसने हिंडोलराग, श्रीराग व मेघराग के उत्तम गायकों के बीच में इन्द्राणी (शची) सहित वज्रधारी देवताओं के राजा इन्द्र को देखा।

---

१. पाठभेद-सभासंस्थं सुरेन्द्राणां ददर्श मस्तनाथकम्।।५८।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-श्रीनाथ। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

भैरवी भैरवालापैः प्राप्तदीपकसुस्वरैः।
मालवादिकौशिकाप्तरागरत्नपदस्वरैः।।७४।।

उस सभा में भैरवी भैरवराग के आलाप से, दीपक राग के सुन्दर स्वर से तथा मालव, कौशिक आदि रागों के मधुर स्वरों से गान हो रहा था।

ध्रुवं पदालीं छन्दोगवेदं गायद्भिरुत्तमैः।
पुराणकवितानाट्यरचनाकुशलैः परैः[१]।।७५।।

सामवेद के उत्तम गायकों, पुराण, कविता, अभिनय करने में प्रवीण अनेक पुरुषों से वह सभा भरी हुई थी।

देशभाषावेशदक्षैः शब्दार्थाभिनयप्रथैः।
पताकासूचिकातत्त्वनिष्णातैरङ्गपूर्वकम्[२]।।७६।।

देशभाषा व वेश में दक्ष शब्द और अर्थ के अभिनय में प्रसिद्ध एवं पताका-बन्ध सूचिकाबन्ध तत्त्व में प्रवीण व्यक्ति जहाँ पर नृत्य कर रहे हैं, ऐसी वह सभा थी।

गायद्भिः सिद्धगन्धर्वनटैर्मोदकरं सुखम्[३]।
उच्चाधरभिदा न्यस्तहस्तपादतलादिभिः।।७७।।

सुखपूर्वक तथा मनोहर गान करनेवाले सिद्ध, गन्धर्व व नट जिस सभा में ऊपर-नीचे रखे हुए हाथ-पैर एवं तालों के साथ गा रहे हैं।

अप्सरोभिर्मृदुपदैर्नृत्यन्तीभिश्च सादरम्।
शिवनारदकृष्णोक्तमतमाश्रित्य माल्लवम्[४]।।७८।।

शिव, नारद, कृष्ण के मत को लेकर कोमल पदों से सादर भावभंगिमाओं को प्रकट करनेवाली अप्सराओं से वह सभा शोभायमान थी।

आचार्यचरणार्चाभिः शिक्षिताभिश्च भारतम्।
आर्षं दैवं मानुषं च मतमन्यत् स्वकल्पितम्।।७९।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :-
स घृताच्युर्वशीरम्भामेनकाऽप्सरसां गणैः।
गायद्भिः कृष्णशम्भूक्तं नारदाश्रितगायनम्।।६३।।

३. पाठभेद-विद्याधरमनोरमाम्। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

आचार्य के चरणों की पूजा करनेवाली नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के रहस्य को जाननेवाली, आर्ष, दैव और मनुष्य सम्बन्धी इन तीन प्रकार के रागों को गानेवाली अप्सराओं से वह सभा भरी हुई थी क्योंकि दूसरे सब रागसम्बन्धी मत स्वकल्पित हैं।

मोहयन्तीभि[१]रत्यर्थं कामिनीभिः सभावृतैः।
यथाधिकारं तिष्ठद्भिर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः।।८०।।

अत्यधिक मुग्ध करनेवाली स्त्रियों एवं सभा में स्वोचित आसनों पर बैठे हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर आदि देवों से वह सभा परिपूर्ण थी।

ईश्वरैर्विभुरूपैश्च विद्येशैर्भूषितं गणैः।
अवालोक्यामृतं[२] स्वर्गं प्राप्तं मेने तदा स्वकम्।।८१।।

व्यापक परमेश्वर के नाना प्रकार के रूपों तथा विद्येश गणों से विभूषित उस सभा को शीलका ने देखा तब उसने समझा कि मैंने कभी नष्ट न होनेवाले स्वर्ग को पा लिया है।

सम्प्रति कवि दूसरे ग्रन्थ से उदाहरण देता है :-

सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणा सुवर्चसः।
प्रवालवैडूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः[३]।।८२।।

वहां पर सभी अत्यन्त तेजस्वी, चार भुजाओं वाले देवता विद्यमान थे, जिन्होंने चमकती हुई मणियों वाले सर्वोत्कृष्ट सोने से बने हार व आभूषण पहने हुए थे और मूंगा, वैडूर्य व कमलनालों की कान्ति से युक्त हिलते हुए कुण्डल, मुकुट एवं मालाओं को धारण किया हुआ था।

सुराऽसुरासादितसिद्धसङ्घगन्धर्वविद्याधरचारणानाम्।
स्वचीरकालग्नमणि[४]प्रभाभिः संघर्षणाद्वै तमसो विलीनम्।।८३।।

उस समय देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, भाट-चारण आदि सभासदों के वस्त्रों में गूंथी हुई मणियों की प्रभा के परस्पर संघर्षण से जो तेज उत्पन्न हुआ, उससे समस्त अन्धकार नष्ट हो गया।

---

१. पाठभेद-मुग्धयन्तीभिः.......... ।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-स विलोक्यामृतं। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
४. पाठभेद-शची.......... ।।६८।। (प्रकाशित प्रति)

अभूत्तदा न गेहादिचिन्ता तत्र गुरुं निजम्।
नमितं योगिवृन्दैश्च पश्यतस्तं कुतूहलम्[१]।।८४।।

तब योगिवृन्दों से नमस्कार किये जाते हुए अपने गुरु को और उन-उन आश्चर्यों को देखते हुए शीलका को घर आदि की चिन्ता नहीं रही।

जटास्थमुकुटं श्वेतरक्तचन्दनलेपनम्।
दृष्ट्वा विरक्तसद्वस्त्रं मुहूर्तान्नैव किञ्चन।।८५।।

जटाओं पर मुकुट धारण किये हुये, सफेद तथा लाल चन्दन का लेप लगाए हुए, विरक्तों के सभ्य वस्त्र धारण किये हुए गुरु को देखकर क्षणभर के बाद वहां कुछ भी नहीं दिखाई दिया अर्थात् वह देवसभा एकदम अदृश्य हो गई।

तरोः समुत्तीर्य गुरोः पुरैव यियासुरैत्तत्र पलायनेन।
हताऽभिमानः[२] स कृतस्तपस्विवेशेन पूर्वस्थितगौरवेण।।८६।।

वह शीलका वृक्ष से उतरकर गुरु से पहले जाने की इच्छा से भागता हुआ गुरु के स्थान पर पहुंचा तो उसने देखा कि गुरुजी पहले की भाँति उसी वेश में धूने पर विरांजमान हैं, तब उसका सारा अहंकार चूर हो गया।

स लम्पटो वाऽथ गृहस्थभेदः स दैवकान्तानुगरागरक्तः।
इत्यादि सर्वोऽस्य विकल्पजातो व्यनाशि देवत्वतदेककोट्या[३]।।८७।।

वह साधु लम्पट है अथवा किसी प्रकार का गृहस्थी है, या अप्सराओं के प्रेम में अनुरक्त है, इत्यादि जो शीलका के मन में संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो रहे थे, वे नष्ट होगए और यह निश्चय होगया कि यह देव है।

अस्तव्यस्तार्थार्य्यपदयोग्यशक्तिबलोचिताम्।
स्तुतिं श्रुत्वा तदोचे स तद्गुरुर्भक्त ! संशृणु[४]।।८८।।

---

१. पाठभेद-.............................सन्तानकल्मषम्।
शीलका स्वगुरुं तत्र लुलोके देववन्दितम्।।६९।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-गताभिमानः.........।।७।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद है :-
अस्त्यभ्यस्तसमस्तसूक्तिनिश्चयः स शीलकाख्योऽभवन्
मस्तस्याऽथ विलोक्य योगनिलयं शङ्कालयं कालयम्।
विद्वद्वृन्दमिलिन्दनिन्दनपरा संभारतो भारतो
याता तस्य समस्तमस्तविभवात् कैनाशिकी नाशिकी।।७३।।

अस्त-व्यस्त अर्थवाली (टूटे-फूटे अर्थवाली) परन्तु आर्यपदवाली (आदरसूचक शब्दों से युक्त) योग्य शक्ति बलवाली स्तुति को सुनकर गुरुजी बोले कि हे भक्त ! ध्यानपूर्वक सुनो–

कर्णेजपत्वं स्पशतां विप्राणां नाचरेज्जनः।
न सतां न सतां मार्गो योऽयमाचरितस्त्वया[1]।।८९।।

व्यक्ति को सज्जनों तथा ब्राह्मणों की चुगली नहीं करनी चाहिए और जिस रास्ते को तुमने अपनाया है, वह मार्ग वस्तुतः सज्जनों का नहीं है।

स्वाभिप्रायस्य विज्ञत्वमपि तेन ततो मितम्।
असद्धे[2]तुर्न तस्यासीदज्ञानं तस्य केवलम्।।९०।।

तब गुरुदेव ने शीलका के मन के भाव को भी कह दिया इससे उसे निश्चय हो गया कि नाथजी मनोगत भावों को भी जान लेते हैं परन्तु पहले उसे ऐसा ज्ञान नहीं था।

गृहं गत्वा ततः प्रोक्तं सर्वं यत्तद्विलोकितम्।
इन्द्रादिदर्शनाश्चर्यं स्वामि[3]मायाकृतं हि तत्।।९१।।

नाथजी माया से उत्पन्न इन्द्रादि देवताओं का आश्चर्य दर्शन जो उसने देखा था, घर जाकर उस सारे वृत्तान्त को सबको बता दिया।

न पूर्णकलशात्पातश्चलतो नु विलोक्यते।
उच्छलत्येव नीरं स्वं न्यूनाम्भःपात्रमीदृशम्[4]।।९२।।

जल से भरे हुए कलश से जल छलकता नहीं देखा जाता अपितु कम जलवाले पात्र का ही जल उछलता है। इसी दृष्टान्त के अनुसार शीलका ने नाथजी की परीक्षा ली।

परन्तु स्वगुरोः कीर्तिरिति मत्वाऽज्ञसम्मुखे।
वदन्ति स्वामिभक्ता ये धूर्ता मिथ्या गदन्ति तम्।।९३।।

जो स्वामिभक्त व्यक्ति हैं वे हमारे गुरु की कीर्ति होगी ऐसा मानकर मूर्खों के सम्मुख (गुरुमहिमा के विषय में) कहते हैं परन्तु वे धूर्त उस बात को झूठ बताया करते हैं।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद-हेत्वाभासो ......।।७३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-श्रीमन्महेन्द्रदेवस्य नाथ ....।।७४।। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

असम्भवत्वं मन्यमाना आर्य्या[1]स्तत्र विसस्मिरे।
श्रुततत्कीर्तयोऽन्ये तु सत्यं श्रद्दधिरे मुदा।।९४।।

वहां शीलका की बात को असम्भव मानते हुए बहुत से सज्जन तो हैरान हो गए और जिन्होंने नाथजी की कीर्ति सुन रखी थी, उन्होंने उस बात को सत्य मानकर प्रसन्नता से बाबा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की।

मत्वा गृहस्थस्य भरेण दुःखं सिद्धिञ्च नाथीयपथेऽथ दिव्यम्[2]।
स्वभूहिरण्यादिसुकुप्यजातं[3] समर्प्य पित्रोः स्वगृहाज्जगेऽङ्घ्रयोः[4]।।९५।।

गृहस्थ के भार को दुःखस्वरूप मानकर और नाथ मार्ग में दिव्य सिद्धि को देखकर अपनी भूमि, सोनादि तथा चाँदी आदि समस्त धन को माता-पिता के चरणों में अर्पित करके अपने घर से चला गया।

कुटुम्बमाश्रित्य न केवलस्य यियासयेहाथ परत्रभीतिः।
स जानकीजानिरिव स्वकान्ता सुतान् समादाय ययौ त्वरेद्ध[5]।।९६।।

अपने परिवार का परित्याग करके जाने से इस लोक और परलोक में भय होगा इसीलिए जानकी के पति रामचन्द्रजी की भाँति अपनी स्त्री तथा पुत्र को लेकर शीघ्रता से नाथजी की शरण में चला गया।

वैराग्यं बहुतपसां फलं मत्वाऽथ शीलकः।
वरां विरक्तिं[6] मेनेऽसौ तावत्तद्बुद्धिवैभवम्।।९७।।

वैराग्य होना बड़ी भारी तपस्या का परिणाम है, ऐसा मानकर शीलका ने विरक्ति को श्रेष्ठ समझा।

चित्ताद् विरक्तता यस्य स विरक्त इति श्रुतम्[7]।
मायामोहाल्लोभवृत्त्या विरक्तिरधमा हि सा।।९८।।

जिसे चित्त से वैराग्यभाव है, यह यथार्थ विरक्त कहा जाता है और माया, मोह तथा लोभवृत्ति से जो वैराग्य होता है वह निकृष्ट माना गया है।

दुःखात् संसारजाद् यस्य दरिद्रत्वादिमूलकात्।
निर्वेदः क्षणनिर्वेदो वेशमात्रां हि तत्समम्[8]।।९९।।

---

१. पाठभेद-लोकाः…… ।।७५।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-दिव्याम्…… ।।७६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-समस्तभारं।।७६।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-जगाम।।७६।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-त्वरावान्।।७७।।(प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद-वरं योगाश्रमं……।।७८।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद-गण्यते……।।७९।। ८. पाठभेद-वेषमात्रास्य सूचकम्।।८०।। (प्रकाशित प्रति)

निर्धनतादि के कारण मिले हुए सांसारिक दुःख से जिन्हें वैराग्य होता है, वह क्षणिक है, केवल मात्र आवेश है। अतः वह वैराग्य, वैराग्य के समान है वास्तविक विरक्ति नहीं है।

स्वधर्मविच्योतनमेति न स्यात्कृपापरा गौरवगौरवस्य।
विरागता साधनसिद्धिभूतिप्रभूतता मोचनकृत्कृपा सा।। १००।।

यदि गुरु महिमा की बड़ी कृपा नहीं होगी तो स्वधर्म का नाश हो जायेगा और वह गुरुकृपा वैराग्य, साधन की सिद्धि, ऐश्वर्य तथा संसार से मुक्त करनेवाली है।

मस्तनाथस्य तत्स्थाने धर्मोऽयं हि सदातनः।
कलञ्जाद्भङ्गाद्धूमस्य पानं नैव समाचरेत्।। १०१।।

मस्तनाथजी के उस स्थान में यह सनातन धर्म था कि तमाखु, भांग तथा धूम्रपान नहीं करना।

सुरामांसे न सेवेत दयितां दूरस्त्यजेत्।
गोपालयदुचारित्र्यादन्यगोपालमूर्तिना।। १०२।।

सुरा व मांस का सेवन न करे, नारी का तो दूर से ही परित्याग कर दे–यह आचरण यदुवंशी ग्वाल श्रीकृष्ण के चरित्र के समान मस्तनाथजी से प्रमाणित होता है।

निर्विण्णेषु विरक्तिः सा तत्पथे बोधिता यतः।
लोभाद्विरक्ता दुःखाद्वा नैतत्पालयितुं क्षमाः[1]।।१०३।।

क्योंकि नाथसम्प्रदाय में सिद्ध अवस्था में भी विरक्ति बताई गई है। उस विरक्ति का पालन लोभ के कारण अथवा दुःख के कारण विरक्त हुए व्यक्ति नहीं कर सकते।

---

१. ९९, १००, १०१, १०२ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं। इनके स्थान पर निम्न पद्य हैं :-

(क) भगवानेव गुरौ स्थित्वा सर्वमानवजन्तुषु।
स्वातन्त्र्येणापि तत्सर्वं कुरुते कार्यदर्शनम्।।८१।।

(ख) सिद्धावस्थासु वैराग्यं साध्यावस्थासु किं भवेत्।
गृहादेव बुभुक्षोश्च वैराग्यं जायते क्वचित्।।८२।।

(ग) तपस्यया राज्यमवाप्य भूपतिः पुनश्च राज्यं लभते स्वपुण्यतः।
भूत्वापि राजा कुरुते न यः शुभं स याति भूयो नरकं भवान्तरे।।८३।।

(घ) वैराग्यवार्तां कुरु मात्र भोः शृणु दुःखं च किं गेहगते त्वयि स्थिते।
अनेकसौख्यानि भवन्ति देहिनां गृहस्थितानां स्थिरता कथं ते।।८४।।

गुरुः शिशिक्षे परिगधर्मस्याऽऽलोच्य स्वयं दुःखपथप्रवृत्तौ[1]।
का ते स्पृहास्ते गृहिसर्वसौख्ययुतस्य किं स्पर्धस ईदृशान्नः।।१०४।।

गुरुदेव ने उसे स्वयं कष्टों से भरे हुए मार्ग में प्रवृत्त होने पर उसकी धर्मपूर्ण वासना को देखकर समझाया कि जब घर में रहते हुए तुम्हें सब सुख मिल रहे हैं तो अब तुम्हारी कौन-सी अभिलाषा है जिसके कारण हम जैसों की स्पर्धा कर रहा है ?

काठिन्यं तपसां पृच्छ शिष्याञ्छीतोष्णवर्षणम्।
सहमानान् वृथा कायक्लेशं केन विधास्यसि[2]।।१०५।।

तपस्या की कठोरता के विषय में मेरे इन शीत, गर्मी और वर्षा के प्रकोप को सहने वाले शिष्यों से पूछ लो। फिर तू किस कारण से व्यर्थ में शरीर को कष्ट देना चाहता है ?

दुःखं हातुं प्रवृत्तस्त्वं दुःखं केन प्रयास्यसि[3]।
गृहस्थसुखतुल्यं किं सुखं दुःखं चिकीर्षसि।।१०६।।

दुःख को छोड़ने के लिए तुम इधर (संन्यास मार्ग में) प्रवृत्त हुए हो, फिर किस कारण दुःख की ओर जा रहे हो। गृहस्थ सुख के समान कौन-सा सुख है अतः संन्यासी होकर क्यों दुःख उठाना चाहते हो।

तत्र चेत्पतनं ते स्यान्मम वर्त्मानुवर्तिनः।
मातातातदेवगुरुकुलश्च्योतं विधित्ससि[4]।।१०७।।

यदि मेरे मार्ग में चलते-चलते कभी तेरा पतन होगया तो तेरे माता-पिता, गुरु, देवता और सम्पूर्ण कुल का पतन हो जायेगा इसीलिए संन्यास मार्ग का अनुसरण मत करो।

अथोवाच तदा शिष्यः शीलका शीलवानयम्।
शीलनाथस्य वैराग्यं स्मृत्वा शीलवतां दृढ़म्।।१०८।।

चरित्रवानों में दृढ़ शीलनाथ के वैराग्य को याद करके तब शिष्य ने कहा कि यह शीलका शीलवान् है अर्थात् यहाँ वह शीलका अपने गुरु के सम्मुख अपने अन्तर्मन से अपने चरित्र (शील) की दृढ़ता का प्रमाण दे रहा है।

कथा शंभोः सतां सङ्गो दुर्लभः प्रोच्यते बुधैः।
सुता दाराश्च लक्ष्मीश्च पापिष्ठेनापि लभ्यते।।१०९।।

---

१. पाठभेद-भिक्षाचयं दुःखमयं विलोक्य······।।८५।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-काठिन्यं तपसा पृच्छ विनेयान् कियदत्र भोः।
वर्षातपहिमाच्छन्नशीतवाताहताकृतिः।।८५।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-प्रशाम्यति······।।८६।। (प्रकाशित प्रति) ४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

शंकर के विषय में प्रवचन और सज्जनों की संगति मिलनी विद्वानों के द्वारा दुर्लभ कहे गये हैं, जबकि पुत्र और पत्नी तथा ऐश्वर्य तो पापी के द्वारा भी पा लिये जाते हैं।

पूर्णस्य पूर्णतां स्मृत्वा गोपीचन्द्रस्य भूपतेः।
हरेर्भर्तृहरेश्चैव किं मया नाप्यते प्रभो![१]।।११०।।

हे प्रभो ! पूर्ण की, राजा गोपीचन्द्र की और हरि भर्तृहरि की पूर्णता को स्मरण करके क्या मेरे द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् यदि मैं श्रद्धापूर्वक उपर्युक्त सन्तों की सिद्धियों को स्मरण करके यदि वैसी भवना अपने मन में लाऊँ तो मेरे योगमार्ग में रुकावट नहीं आनी चाहिए।

नोवाच स्वाशयं किञ्चिल्लोभाकृष्टमतिर्हि सः[२]।
विरक्त्या योगिवेषेण सामर्थ्यं तस्य वाञ्छितम्।।१११।।

शीलका ने योगमार्ग में प्रवृत्त होने का अपना कुछ भी अभिप्राय नहीं बताया क्योंकि योगमार्ग के प्रति उसका मन आकृष्ट हो चुका था, विरक्ति के कारण योगिवेष के द्वारा उसको योगशक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा थी।

हठं तं बहु मत्वाऽस्य न प्राप्यं किञ्चनेति च।
विदित्वापि[३] गुरुस्तं स्वं शिष्यं चक्रे विधानतः।।११२।।

उसके अति हठ को देखकर गुरु ने जान लिया कि इसे कुछ भी सांसारिक अभिलाषा नहीं है अतः उसे विधिपूर्वक अपना शिष्य बना लिया।

शीलाई कृतवान् नाम्ना बहुकालं प्रतीक्ष्य च।
ईर्ष्यावादान्नाथ-नाम्ना शीलनाथं व्यधत्त तम्।।११३।।

पहले उसका नाम शीलाई रखा। फिर बहुत दिन परीक्षा लेकर ईर्ष्यावाद के कारण नाथ पदवी से युक्त उसका शीलनाथ नाम रख दिया। क्योंकि बारह पंथों से नाराज होकर नाम के साथ 'आई' पद को हटाकर 'नाथ' पदवी लगाने की प्रथा मस्तनाथजी ने ही चलाई थी।

दयालुता गुरोः सा तु क्व सार्य्यः क्व च योगिराट्।
ईर्ष्या तस्य स्वीयबुद्धिप्रभावादनपायिनी।।११४।।

कहाँ तो वह सज्जन और कहाँ वह योगिराज ! वह गुरु की दयालुता ही थी, नहीं तो उसकी ईर्ष्या अपनी बुद्धि के प्रभाव से उसे कभी न पानेवाली थी अर्थात् उसे जो वैराग्य हुआ वह सब गुरु की कृपा के कारण ही था।

---

१. १०७, १०८, १०९ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद-मोहमाकृष्टमानसः। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-दृढं वैराग्यमास्तां ते मा वृथा गम्यतां त्वया।
स उक्त्वाथ .... ।।९१।। (प्रकाशित प्रति)

सन्तोषस्तस्य तच्छब्दं विना यो न प्रजायते।
गुणपं कर्तुमिष्टे किं कविनाऽस्यास्ति तोषणम्।।११५।।

उसका सन्तोष जो गुरुमंत्र के बिना संभव नहीं था, नहीं तो किसी कवि के उपदेश से वैसा संतोष होना असंभव था अर्थात् शीलका को संसार से जो वैराग्य हुआ वह गुरुमन्त्र का ही प्रभाव था अन्यथा किसी कवि के उपदेश से वैसा होना असम्भव था।

परन्तु शब्दमाहात्म्यं कृपा च स्वगुरोर्दृढा।
नाम-माहात्म्यमात्रेण जनोऽज्ञेषु प्रपूज्यते[1]।।११६।।

परन्तु गुरु की महती कृपा और मंत्र इन दोनों के बलबूते पर ही वह साधारण लोगों में पूजित होगया।

तस्य जाया योगिनी च सुतो मिर्चादिनाथकः[2]।
तैस्ततः गुरुकीर्त्यैव वनिनो[3] बहवः कृताः।।११७।।

उसकी स्त्री योगिनी हो गई और उसका पुत्र मिर्चनाथ[4] नाम से प्रसिद्ध हुआ। तदनन्तर उनके द्वारा गुरु की कीर्ति का बखान करने के कारण बहुत से लोग योगी बनाये गए।

काष्ठेन सह पाषाणं स्रोतस्तरति वेगवत्।
शृगालगलबन्धेऽपि नृपचिह्नाऽवमाननम्[5]।।११८।।

काष्ठ के साथ पाषाण भी नदी के अत्यन्त वेगवान् प्रवाह में तैर जाते हैं परन्तु गीदड़ के गले में राजा का भूषण बांध दिया जाए तो वह उस चिह्न का अपमान करना है।

---

१. ११३ से ११६ तक के पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद-नाथान्तमिर्चकः…… ।।९२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-योगिनो…… ।।९२।। (प्रकाशित प्रति)
४. मिर्चनाथ ने ग्राम बालन्द (रोहतक) में रावली सरोवर पर अपना धूना लगाया था। आज वहां नाथ सम्प्रदाय का एक विशाल मठ है। शीलका के पुत्र मिर्चनाथ का शरीर भालोठ का था, बालन्दनिवासी उन्हें अपना गुरु मानते हैं. अतः अभी तक भालोठ और बालन्द के विवाह सम्बन्ध नहीं होते हैं। सिद्ध महात्मा मिर्चनाथ के आशीर्वाद से बीकानेर राजा को सन्तानप्राप्ति हुई। उनका दिया ताम्रपत्र ग्राममठ में सुरक्षित है। (बालन्दनिवासी डॉ० सुदर्शनदेव आचार्य द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार)।
५. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

साक्षाच्छिवस्य संसर्गात् तन्नामकरणादपि।
गोरक्षस्य चिह्नवेशैरर्चितो जगतीतले[1] ।।११९।।

साक्षात् शिवस्वरूप गोरक्षनाथजी के अवतार मस्तनाथजी के सम्पर्क से और उनके द्वारा नाम दिए जाने से तथा उनके चिह्न व वेशभूषा धारण करने से वह शीलका भी भूमण्डल पर पूजित हुआ।

नारायणेति नाम्नैव सुतस्याऽजामिलः पुरा।
ख्यातो वैकुण्ठगः सौख्यभाजनो वीतभीर्यमात् ।।१२०।।

प्राचीन समय में अजामिल ने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा था और यम के भय के कारण मृत्यु समय उसका नाम लेने से उस शब्द के प्रभाव से वह वैकुण्ठ में चला गया और परमानन्द को प्राप्त होगया (यह कथा श्रीमद्भागवतपुराण में आती है)।

समासङ्गात् क्षुद्रा जडचरगणा उच्चपदवीम्
गतास्तेजःपुञ्जैर्धवलतरकीर्तिप्रवलिताः।
तदा[2] विद्यासिद्धिद्रविणबहुलानां हि महसाम्
गुरोः पादाऽऽसङ्गादगमदथ शीलो निजमते ।।१२१।।

धुरंधर विद्वानों, सिद्ध व तेजस्वी धनिक पुरुषों के सङ्ग से क्षुद्र जड़ भी उच्चपदवी को प्राप्त कर लेते हैं और अपने तेज के द्वारा समस्त संसार में निर्मल कीर्ति को प्राप्त कर लेते हैं, जैसे शीलका ने गुरु के चरणों की संगति से अपने आप ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर लिया था।

तदा दीक्षामीक्षामुपनतजने योगपदवीम्
विरक्त्यासक्त्यादीन् सृतिहरणशीलानपि गुरुः।
समादेश्यार्य्यं तं परहितसमाचारकरुणे
नदीव पूतात्मा भवति चलनैस्तत्प्रचलितः ।।१२२।।

शीलका को दीक्षा मिल जाने पर उसको योगमार्ग तथा आवागमन के बन्धन से मुक्त करानेवाली वैराग्यासक्ति का उपदेश देकर परोपकारपरायण दयालु मस्तनाथजी वहां से चले गये क्योंकि बहती हुई नदी पवित्र मानी जाती है वैसे ही योगी भी चलता-फिरता ही पवित्र रहता है और पूजित होता है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते शीलकोद्धारो नामैकादशः सर्गः।

---

१. पाठभेद-गोरक्षनाथमर्यादाभूषितः सर्वतो यथा।।९३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-महाविद्या······ ।।९५।। (प्रकाशित प्रति)

द्वादशः सर्गः

आत्मपरिचयादिप्रकरणम्

योऽज्ञातोऽनर्थसार्थाय ज्ञातो मोक्षाय भास्करः।
स ईशः सर्वथा सम्यग् जिज्ञास्योऽस्ति सनातनः।।१।।

जो अनर्थसमुदाय (अनर्थकारी मानवों) के लिए अज्ञात है और मोक्ष के लिए ज्ञात है और दीप्ति करनेवाले सूर्य के रूप में जाना गया है ऐसा वह सनातन ईश्वर सब प्रकार से अच्छी तरह से जानने योग्य है अर्थात् लगातार अनर्थ करनेवाले पापी के लिए वह अज्ञात है परन्तु पुण्यात्मा के लिए ज्ञात है, वह उसे जान सकता है।

प्रमाता च प्रमाणञ्च प्रमेयं प्रमितिस्तथा।
यः साक्षी सोऽयमेतेषां गोरक्षः केन लक्ष्यते।।२।।

प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय तथा प्रमिति[१] जो इन सबका साक्षी है ऐसा यह गोरक्ष किसके द्वारा देखा जाता है ? अर्थात् ऐसे गोरक्षजी के स्वरूप का सही निर्धारण करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है।

योगीन्द्रवृन्दपरिपूजितपादपद्मं सद्याखिलस्य नरलोकचराचरस्य।
दाध्मायमानयशसा महसा चकास्ति तं मस्तनाथगुरुराजमहं व्रजामि[२]।।३।।

योगिराजवृन्द से भली प्रकार पूजित चरणकमलवाले, तुरन्त ही सम्पूर्ण जड़ एवं चेतन मर्त्यलोक में प्रकाशित प्रचण्ड यश से अत्यन्त देदीप्यमान हैं ऐसे उन गुरुराज मस्तनाथजी की शरण में मैं जाता हूँ।

खोखरे विपिने लोकखोखरे तपसोऽर्हणे।
किंचित् कालं निवासेन शुद्धभावो दृढ़व्रतः[३]।।४।।

जिसमें किसी का निवास नहीं है, ऐसे तप के योग्य, लोगों में खोखर नाम से प्रसिद्ध जंगल में शुद्धभाववाले एवं दृढ़व्रतवाले मस्तनाथजी ने कुछ समय बिताया।

---

१. प्रमाता–यथार्थ ज्ञानी, प्रमाण–पैमाना, यथार्थ ज्ञानप्राप्ति का साधन, प्रमेयम्–जो यथार्थ ज्ञान का विषय हो, जिसका निर्धारण किया जा सके, प्रमितिः–यथार्थ या सत्यज्ञान।

२. १, २, ३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

३. पाठभेद–कर्कोटककोटरे लोकखोखरे तपसोऽर्हणे।
किंचित् कालं निवासेन निनाय शुद्धसिद्धिदः।।१।। (प्रकाशित प्रति)

योगराजः शिष्य एको गुरुभक्तिरतोऽभवत्[1]।
न नाथपदमात्सर्यं न व्यधत्त स्पृहां तथा।।५।।

गुरुभक्ति में लीन योगराज नाम का एक शिष्य नाथ जी की सेवा किया करता था। उसके मन में नाथसम्प्रदाय में उच्चपद की और अन्य किसी प्रकार की अभिलाषा नहीं थी।

केवलं गुरुसेवैव मतं तस्य मतं शुभम्।
देवताऽन्या मता नैव मृतको नाप्युपासितः।।६।।

केवलमात्र गुरुसेवा ही उसका सात्त्विक उद्देश्य था। वह गुरु को ही सर्वस्व मानता था और वह अन्य देवताओं एवं भूत-प्रेतों को नहीं मानता था।

जीवतः सद्गुरोः सत्वे सर्वदिष्टरि स्वामिनि[2]।
साक्षाच्छिवावतारस्य[3] गोरक्षस्य परांशके।।७।।

सदा अमर साक्षात् शिव के अवतार सद्गुरु गोरक्षनाथजी के दूसरे अंशावतार सबको सदुपदेश देनेवाले स्वामी..........।

मस्तनाथे विद्यमानेऽन्यत्र श्रद्धा कथं भवेत्।
किं फलं वा सर्वकर्तृचारित्रलोकलोचने[4]।।८।।

मस्तनाथजी के विद्यमान होते हुए अन्यत्र श्रद्धा कैसे हो सकती है अथवा सारी सृष्टि करनेवाले परमेश्वर की सृष्टि रूप में अनेक चरित्रों के देखने में क्या लाभ ?

वीक्ष्यावकाशमेकान्तभक्त्याचर्यापरायणः।
बद्धाञ्जलिः पादनत्या समीहां स्वां न्यवेदयत्।।९।।

शुद्ध सिद्धियों को प्रदान करनेवाले (मस्तनाथजी ने) कर्कोटक नामक सर्पविशेष के कोटरों से युक्त परन्तु लोगों में खोखर नाम से प्रसिद्ध, तपस्या के योग्य स्थान पर रहते हुएं कुछ समय व्यतीत किया।

विशेष–दो प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं। एक तो शुद्धभक्ति से प्राप्त सिद्धि और दूसरी किसी अन्य का अनिष्ट करके प्राप्त सिद्धि।

१. पाठभेद–गुरुभक्तिपरायणः.....।।२।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद–शास्तरि (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–साक्षान्महेशरूपस्य.....।।४।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–..........का सावन्यागवेषणा।
गुरुरूपेण चेशोऽपि गुरोर्मध्ये विराजते।।५।। (प्रकाशित प्रति)

निरन्तर भक्ति और सेवा में लीन रहनेवाले उस योगराज शिष्य ने एक बार अवसर पाकर हाथ जोड़कर पैरों में प्रणाम कर अपनी अभिलाषा नाथजी से निवेदन की।

त्वं नो गुरुर्मोचनेच्छुर्विरक्तानामभीप्सितम्।
अनन्यगतिकाऽज्ञानां मुक्तिं वितरसीश्वरः।।१०।।

तुम हमारे सामर्थ्यवान् गुरु हो। मुक्ति के अभिलाषी विरक्तों और जिनकी अन्य शरण नहीं है ऐसे अज्ञानियों के मुक्तिदाता हो।

शरणागतलोकानां शोकसन्तापहारकः।
यथापात्रं दया ज्ञानं धनं चापि प्रयच्छसि[1]।।११।।

हे गुरुदेव! शरण में आए हुए लोगों के शोक एवं सन्ताप को हरनेवाले आप पात्र के अनुसार उन्हें दया, ज्ञान और धन भी प्रदान करते हो।

काक्षानाञ्च निरक्षाणां कुष्ठिनां रोगनाशकः।
सदङ्घ्रिणीः स्वक्षदायी सुवपूंषि वितीर्णवान्[2]।।१२।।

कांणे, अन्धे, कोढ़ी, लंगड़े-लूले-इन सबको आँख, चलने योग्य पैर और सुन्दर शरीर देनेवाले हो।

पयो गोभ्यः सुतान्नृभ्यो धनेच्छुभ्योऽप्यभीप्सितम्।
मणिमुक्ताप्रवालानि वज्रवैदूर्यनीलकम्।।१३।।

आपने ही गायों को दूध, मनुष्यों को पुत्र और धन के अभिलाषियों को मनोवाञ्छित मणि, मूंगा, मोती, नीलम आदि बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान की हैं।

श्यामाश्महेमरजतं यद्यस्याऽयाचितं स्फुटम्।
अदाद् दृष्टं तदस्माभिः सिद्धयो वर्षणादयः[3]।।१४।।

---

१. इसके स्थान पर पाण्डुलिपि में निम्न पद्य है–
शरणागतवाञ्छानां पूरको निखिलार्थदः
अपादानामेकपदां मूकगद्गद्यद्गिराम्।।८।।
आप शरणागत भक्तों के सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हो। बिना पैरों वाले, एक पैर वाले, गूंगे व तोतले–इन सबकी मनोकामना को पूरा कर देते हो।

२. पाठभेद–अपदां पाददाता त्वं विपदां च निवारकः।।९।। (प्रकाशित प्रति)
तुम जिनके पैर नहीं हैं उनको पैर देनेवाले और विपत्तियों को दूर करनेवाले हो।

३. १३, १४ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

नीलम, सोना-चाँदी और जो-जो जिसने स्पष्ट रूप से नहीं मांगा था उसको भी आपने दे दिया और वर्षा करवाना आदि सिद्धि तो हमारे द्वारा देख ही ली गई हैं।

मृतकोत्थापनं देवदर्शनं निजमायया।
कृतान्यमानवान्येव कृत्यानि सुबहून्यपि।।१५।।

आपने अपनी माया से मरे हुओं को जीवित करना, भक्तों को देवताओं का दर्शन कराना और बहुत से अलौकिक कार्य किए।

अपूर्वचारित्रपवित्रितास्ता आशाः समस्ताः सफला जनानाम्।
आशासु सर्वाचरणैश्च चीर्णाः समीप्सितम् पूर्य्यत एव पूर्णैः।।१६।।

आपके अद्‌भुत चरित्रों से समस्त दिशाएँ पवित्र होगईं, सभी लोगों की सब आशाएँ सफल होगईं और आपके आचरणों से सब शिक्षित एवं पूर्णमनोरथ होगए।

स्तुत्वा स्वमत्याः प्रभवैः सशब्दैरब्दैः कृतं सेवनमात्मना च।
स्मरन्नवोच[1]द्वचनं स्वकञ्चापराधजातं क्षमयाम्बभूव।।१७।।

अपनी बुद्धि से रचित शब्दों से वन्दना करके बहुत वर्षों से निरन्तर की हुई अपनी सेवा को स्मरण करते हुए उस योगराज नामक शिष्य ने गुरु से नम्र निवेदन किया और अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना भी की।

न लोकसौख्यं न च सौभगत्वं[2] न देवतासाम्यपदं बभाषे।
तन्वोस्तदा[3] भर्तृहरीशगोपीचन्दीययोर्दृष्टिसुखं ययाचे।।१८।।

उस शिष्य ने लौकिक सुख, सौन्दर्य और देवताओं के निवासस्थल स्वर्ग की याचना नहीं की, अपितु योगिराज भर्तृहरि और गोपीचन्द–इन दोनों के दर्शनों की प्रार्थना की।

विरक्त्या कर्मवशतः कार्यमात्रं विषीकृतम्।
राष्ट्रस्य सौख्ये निर्वेदस्तयोरासीद् वृहत्तमः[4]।।१९।।

---

१. पाठभेद–मोचद्.......... ।।१३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–पारलौकिकं (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–न नाकलोकं च.......... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–..........द्वाभ्यामाभ्यां विचारतः।
राष्ट्रसौख्येऽपि न्निर्वेदः सर्वं व्यक्तं ततो गतौ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
राष्ट्रसुख में भी वैराग्य था जिस कारण सब कुछ त्यागकर चले गए।

उन दोनों योगियों ने सांसारिक कर्मों में वैराग्य होने से कार्यमात्र को विष तुल्य समझा था और राज्यसुख में भी उन दोनों का परम वैराग्य था।

तद्दर्शानाभिलाषा मे न मृता अजरा[1] यदि।
कथं न लोक्यते लोकं विना श्रद्धा न लौकिकी[2] ।।२०।।

उनके दर्शन की मेरी अभिलाषा है। यदि वे मरे नहीं और अजर-अमर हैं तो दीखते क्यों नहीं, क्योंकि बिना दीखे लौकिक श्रद्धा नहीं हो सकती।

केचिच्छ्रद्धाविहीनत्वान्मिथ्याहुस्तच्चरित्रकम्।
दीर्घजीवा भवन्त्येव बहुमाया समृद्धयः[3] ।।२१।।

कुछ लोग श्रद्धाविहीन होने के कारण उनके चरित्र को असत्य कहते हैं परन्तु उनका ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि बहुमायासम्पन्न व्यक्ति निश्चित ही दीर्घजीवी होते हैं।

अजराऽमरौ तावपि सत्यं चेत्तद्विभूतयः।
विरक्तपथरक्षार्था इति व्यासविदो विदुः।।२२।।

वे दोनों अजर-अमर हैं, यदि यह सत्य है तो उनकी विभूति विरक्त मार्ग की रक्षा के लिए हैं–ऐसा पुराणवेत्ता जानते हैं।

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च बिभीषणः।
भार्गवश्च कृपाचार्यः सप्तैव चिरजीविनः।।२३।।

अश्वत्थामा, बलि, व्यास और हनुमान्, बिभीषण और भार्गव तथा कृपाचार्य–ये सात चिरकाल तक जीवित रहनेवाले कहे गए हैं।

रामकृष्णादिका देवाऽवताराः[4] स्वं पदं गताः।
मृता[5] केचित् कालतोऽथ भर्तृजीवः कथं नहि।।२४।।

राम, कृष्ण इत्यादि देवों के अवतार भी अपने-अपने धाम चले गए अथवा उन्होंने भी अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया था और कुछ कालवश मृत्यु को प्राप्त हुए, फिर भर्तृहरि जी जीव होते हुए भी क्यों नहीं मरे।

---

१. पाठभेद–मृतावमरौ (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–लोकैः कथं न लोक्यते श्रद्धालोकं विना न च।।१६।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद–पूज्यावताराः।
५. पाठभेद–गताः········ ।।१९।। (प्रकाशित प्रति)

प्रतिक्रिया न यस्येह कथंचित् कर्हिचित् प्रभो।
स एष भगवान् कालः सर्वेषां न उपस्थितः।।२५।।

हे स्वामी ! इस संसार में जिसका कहीं भी किसी भी प्रकार से निराकरण नहीं किया जा सकता, वह यह भगवान् कालदेव (मृत्यु) हम सभी का उपस्थित हुआ है।

कालेन हन्यते लोको लोकेन हन्यते जनः।
जनेन हन्यते चान्यः सोऽपि कालेन हन्यते।।२६।।

यह लोक काल के द्वारा मारा जाता है और लोक के द्वारा व्यक्ति मारा जाता है व्यक्ति के द्वारा दूसरा व्यक्ति मारा जाता है, वह मारनेवाला व्यक्ति भी काल के द्वारा मारा जाता है।

देशकालावन्नतोये श्वासाः प्रारब्ध-कर्म च।
आगामिदेहसम्बन्धो निमित्तं मृत्युहेतवः।।२७।।

देश और काल, अन्न और जल, श्वास और प्रारब्ध कर्म, आगामीदेह का सम्बन्ध, ये सब मृत्यु का निमित्त कारण होते हैं। इन्हीं के अनुसार हमारा जन्म-मरण होता है।

नाकाले म्रियते जन्तुः प्राप्ते काले न जीवति।
अकाले मरणं नास्ति प्रारब्धावधि जीवनम्।।२८।।

काल न आने पर प्राणी नहीं मरता और मृत्यु का समय आजाने पर जीवित नहीं रहता। असमय में मृत्यु नहीं होती तथा प्रारब्ध की सीमा तक जीवन होता है अर्थात् भाग्य में जितना जीवन लिखा होता है, व्यक्ति उतना ही जीता है।

मेघमध्ये यथा विद्युद् दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
काष्ठमध्ये यथा वह्निस्तथा देहेषु तं विदुः।।२९।।

जिस प्रकार मेघ के मध्य विद्युत् होती है, जिस प्रकार दूध में घी होता है, जिस प्रकार लकड़ी के मध्य अग्नि होती है, उसी प्रकार शरीरों के भीतर उस जीवात्मा को जानो।

युवापि म्रियते लोको म्रियन्ते बालकास्तथा।
वृद्धास्तत्र हि तिष्ठन्ति प्रारब्धावधि जीवनम्।।३०।।

युवक व्यक्ति भी मर जाता है, वैसे ही बालक भी मर जाते हैं तथा वहाँ (इस संसार में) वस्तुतः वृद्धजन जीवित रह जाते हैं क्योंकि जीवन प्रारब्ध की अवधि तक होता है।

चिकित्सायां च साफल्यं शिष्टजीवस्य जायते।
केषांचिज्जायते नैव चिकित्सा विविधा भवेत्[1]।।३१।।

किसी विशिष्ट प्राणी की चिकित्सा में सफलता मिल जाती है और कुछ प्राणियों को विविध प्रकार की चिकित्सा करने पर भी सफलता नहीं मिलती।

एवं पृष्टे समाहेत्थं गुरुस्तद्वच्चिरस्थितिः।
गोपी भर्तृहरिश्चोक्तो योगमाया बलीयसी[2]।।३२।।

योगराज शिष्य के इस प्रकार पूछने पर गुरु मस्तनाथजी ने कहा कि उन्हीं सप्त चिरंजीवियों की तरह गोपीचन्द और भर्तृहरिजी भी थे क्योंकि योगमाया बड़ी प्रबल है, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कहावत भी है– "जब तक धरतरी तब तक गोपीचन्द भर्तरि"।

प्राक्तना योगसामर्थ्यादन्येऽपि भवितुं क्षमाः।
चिरस्य तारतम्येन हरिः स च कपीयते[3]।।३३।।

योग के सामर्थ्य से प्राचीन लोग अजर-अमर होगए, अन्य आधुनिक भी हो सकते हैं और चिरकाल के तारतम्य से गोपीचन्द और भर्तृहरि भी हनुमान् की भांति चिरंजीवी कहे जा सकते हैं।

योगराजातिरिक्तानां शिष्याणां संघ ऊचिवान्।
मस्तनाथं समासीनं कल्याणाय प्रभुद्रुहाम्[4]।।३४।।

---

१. २५ से ३१ तक के पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. एवं पृष्टे समाहेत्थं मस्तनाथः प्रभाववान्।
सन्देहो न च कर्त्तव्यो योगमाया बलीयसी।।३२।।
इस प्रकार पूछने पर प्रभावशाली मस्तनाथजी ने इस प्रकार कहा कि संशय नहीं करना चाहिए, क्योंकि योग की माया बलवती होती है।

३. पाठभेद–अन्यथाशास्त्रसंभाषा प्रशंसारूपतां व्रजेत्।।२८।। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

योगराज के अलावा अन्य शिष्यों ने नास्तिकों के कल्याण के लिए बैठे हुए मस्तनाथजी से पूछा–

गुरो ! मनुष्या निजकार्यहेतोः सच्चारप्रत्यूहचये निमग्नाः।
भक्त्या विहीनाः कथमुद्धृताः स्युरित्याहुरीशं सदयाः स्वशिष्याः।।३५।।

हे गुरुवर ! मानव अपने कार्य के निमित्त बार-बार विघ्नों के द्वारा सच्चरित्रों से वञ्चित होकर भक्तिविहीन हुए भी किस प्रकार अपना उद्धार करेंगे–इस प्रकार के लोगों के प्रति दया-भावना रखते हुए शिष्यों ने कहा।

कुलोद्धृतिस्तर्पणतीर्थयात्राश्राद्धैर्गयादौ धृतिसत्यवाक्यैः।
सत्संगतः साधुपथप्रवृत्ता वा देशतः श्रौतकथाश्रयेण।।३६।।

गया आदि तीर्थस्थलों में देव, ऋषि और पितृजनों के तर्पण से, श्राद्धों से तथा तीर्थयात्रा करने से, धैर्य रखने, सत्य बोलने, सत्संग अथवा साधुओं के अनुकूल उपेदश और वेदादि की कथा सुनने से अपना तथा अपने कुल का उद्धार होता है।

पश्चात्तापः पूर्वपापाभिशापादग्रे सत्यस्याथ दीक्षाविधानैः।
शिष्टाचारस्यात्मसद्भावहेतोरासेवेन स्याच्छुभं प्राह मस्तः।।३७।।

पहले किए गए पापों के सम्बन्ध से पीछे संताप होता है, इसीलिए सत्यजनों के आचार का उपदेश देने से, आत्मा का परिचय कराने से, योग एवं वेदान्त आदि शास्त्रों के सेवन से लोगों का कल्याण होगा–ऐसा मस्तनाथजी ने कहा।

विद्वद्युक्तसमाहितात्मभजनव्यासक्तचित्तात्मनां
साधूनां महतां समाश्रयणसत्कारादि[1]सेवादरात्।
तेषां पादरजोग्रहच्छुरणसद्वे[2]दोदिताचारतो
नित्यं पावयते[3] गृही गृहजनस्थानं निजं सात्विकः[4]।।३८।।

सात्त्विक गृहस्थीजन विद्वान्, सिद्धयोगी, भजननिष्ठ सन्तों के संग से, उनकी शुश्रूषा एवं सत्कार करने से तथा उनकी चरणधूलि शरीर पर लगाने से और वैदिक आचार व्यवहार से नित्य अपने शरीर, परिवार एवं घर को पवित्र किया करते हैं।

---

१. पाठभेद–यमिजनयतिस्वाचार······ ।।३३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–पादरजोभिराहुरनिशं······ ।।३३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–द्रव्येशो भवताद्········· ।।३३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–सात्विके:·················· ।।३३।। (प्रकाशित प्रति)

मैत्र्यं सतामात्मजनाऽनुरक्तिः शुभाश्रयः सौरकथाजपादिः।
दानं यथाशक्तिः दया च दीने स्वाभाविकी सात्विककृत्यचर्या।।३९।।

सज्जनों से मैत्री, अपने कुटुम्बियों में अनुराग, सन्तों की संगति, सूर्यादि देवों की कथा एवं जपादि, अपने सामर्थ्य के अनुसार दान देना, दीनों पर दया करना–ये सात्विक पुरुषों के स्वाभाविक कार्य होते हैं।

शंका कालाच्च कस्यास्ते कर्मणाशां जिहासतः।
रजस्तमोविहीनस्य नाथं ध्यायन् परात्परम्।।४०।।

उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट अर्थात् सर्वोत्कृष्ट परमात्मस्वरूप नाथजी का चिन्तन करते हुए रजस् और तमस् से रहित (पवित्र) कर्म के कारण आशा का परित्याग करने की इच्छा करते हुए किसको काल से भय है ? अर्थात् जो व्यक्ति सदैव प्रभुचिन्तन में लीन रहता है और पवित्र कर्म करते हुए भी फल की आशा नहीं करता (निष्काम कर्म करता है) उसे मृत्यु का भय नहीं रहता।

ईशात्मतुल्यदृष्टिश्च समेषु प्राणिषु यदा।
तदा प्रभुकृपापात्रं जायते मानवः स्वयम्।।४१।।

और जब मनुष्य समस्त प्राणियों में, ईश्वर तथा आत्मा में समान दृष्टि वाला हो जाता है, तब वह स्वयं ही प्रभु की कृपा का पात्र हो जाता है।

यथा चाशनेच्छा मदीया भवेद्धि तथा भोजनेच्छा समेषां भवेद्धि।
यथा मानदुःखे मदीये भवेतां तथा हानिमानौ समेषां भवेताम्।।४२।।

जैसे मेरी खाने की इच्छा हो, वैसे ही इनकी भी मेरे समान भोजन की इच्छा हो। जिस प्रकार मेरे सम्मान एवं दुःख होंगे उसी प्रकार इनके भी हानि (अपमान) एवं आदर मेरे समान होवें अर्थात् यहाँ पर मस्तनाथजी ने शिष्यों को गुरुतुल्य होने का आशीर्वाद दिया है।

एवं श्रुत्वा च ते सर्वे प्रसन्ना गुरुवाक्यतः।
योगराजोदितं चाह मस्तनाथः प्रभाववान्[1]।।४३।।

और इस प्रकार सुनकर वे सभी शिष्य गुरु के वचन से प्रसन्न हुए तदनन्तर सामर्थ्यवान् मस्तनाथजी पुनः योगराज द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए कहने लगे।

---

१. ४०, ४१, ४२, ४३, पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

मया नाथपथस्थानां मतमाश्रित्य मन्यते।
सत्यमेव तथाभूतौ गुरुगी: सा बलीयसी[१] ।।४४।।

नाथसम्प्रदाय के मतावलम्बियों के अनुसार मैं सत्य मानता हूँ कि वे दोनों उसी प्रकार हैं क्योंकि गुरु की वाणी प्रामाणिक होती है अर्थात् गुरु (बड़ों) के वचनों पर विश्वास करना चाहिए।

बलिव्यासादिवत् तुल्यावजरावमरावपि।
अन्यथा शंकयाक्रान्तं समग्रं भुवनं स्वयम् ।।४५।।

बलि और व्यास की भांति वे दोनों भी अजर-अमर के समान हैं। नहीं तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्वयं ही संदेह से आक्रान्त हो जायेगा अर्थात् लोग संसार की सत्ता पर भी संदेह करने लगेंगे।

न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु: प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।
चिरं जगत्यां विचरेच्चरिष्णुर्भवेन्न रोद्धा ननु योगिनश्च ।।४६।।

योगाग्नि से युक्त शरीर को प्राप्त किए हुए मनुष्य को न कोई रोग होता है, न उसको वृद्धावस्था आती है, न ही उसकी मृत्यु होती है और वस्तुत: ऐसा योगिजन चिरकाल तक भूतल पर स्वच्छन्द विचरण करता रहता है।

ओजायते हीनबलोऽपि मानव: कुरूपयोषा च सदाप्सरायते।
विद्वस्यते बालिशना सभास्वपि अहो ! बलं योगबलं मतं मे[२] ।।४७।।

क्षीणशक्ति वाला भी मनुष्य ओजस्वी के समान आचरण करने लग जाता है और कुरूप नारी अप्सरा जैसी हो जाती है, मूर्ख नर भी सभा में विद्वान् की भांति आचरण करने लग जाता है। आश्चर्य है ! मेरे विचार में योगबल ही नि:संदेह बल है अर्थात् योग के प्रभाव से असंभव कार्य भी संभव हो जाता है।

परन्तु दर्शनं स्वान्त:संशयस्य निवारकम्।
सर्वप्रमाणबलवच्चाक्षुषं परिकीर्तिकम् ।।४८।।

(गुरु के सारगर्भित वचन सुनकर योगराज शिष्य पुन: कहने लगा)–

परन्तु यदि उन दोनों का दर्शन हो जाए तो मेरे मन का संदेह दूर हो जाए क्योंकि सभी प्रमाणों में प्रत्यक्षप्रमाण बलवान् बताया गया है।

---

१. पाठभेद–हरिगोपीन्दुनन्दनौ ।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

२. ४५, ४६, ४७ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

कृपा गुरोश्चेत्तद्दृष्टिर्दोषहीने न दूषणम्।
गुरुश्चेत्पश्यति ह्यक्ष्णोर्मम दर्शयतां तदा[1]।।४९।।

यदि गुरुकृपा हो तो उनका दर्शन हो सकता है और यदि ऐसी शंका हो कि दर्शन देने से उन्हें दोष लग जाएगा तो ऐसा संभव नहीं, क्योंकि निर्दोष में कभी दोष नहीं हो सकता। यदि गुरुदेव आप उनको देखते हैं तो मुझे भी उनका दर्शन करा दो।

प्रतिज्ञातं प्रियप्रेम्णा भक्तस्य स्वानुगस्य तद्।
आलोकनं ते भविता तयोः स्वगुरुमायया[2]।।५०।।

अपने अनुयायी भक्त के प्रेम के वशीभूत हो जब नाथजी ने योगदृष्टि से ध्यान लगाकर कहा कि अपने गुरुदेव की माया से कल प्रातःकाल तुम्हें उन दोनों का दर्शन हो जाएगा।

उदयाद्रिं प्राप्य भानुराकाशान्तान् चुचुम्ब ह[3]।
रक्तिम्ना व्याप्य च नभः सौभाग्यवसनं ददौ[4]।।५१।।

सूर्य ने उदयाचल पहुँचकर वस्तुतः आकाश के समस्त भागों में अपनी किरणों को फैला दिया और लालिमा से गगनतल को व्याप्त करके, मानो उसको मांगलिक वस्त्र पहना दिए।

कञ्जानि विचकासुश्च विटा निश्युषितालयाः।
स्नातुं कुमुदिनीसङ्गभ्रान्त्या नीरस्पृशोऽभवन्।।५२।।

और कमल विकसित होगए, जार (विट) लोगों ने रात्रि के निवास के उपरान्त स्नान करने के लिए कुमुदिनी के संग के भ्रम से जल का स्पर्श किया।

चुकूजुर्मधुरारावा विविधं तरुपक्षिणः।
सारिकान्वकरोत् सूची-स्वभावपरिदूषिता[5]।।५३।।

---

१. ४८, ४९ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है–
आस्तां च दर्शनं स्याद्वै प्रातःकाले सुखावहे।
तव प्रत्यक्षतां यातौ हरिगोपीन्दुनन्दनौ।।४३।।
३. पाठभेद–ययौ स्वयम्……।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–रक्तिमालक्तरागेण बभूव जगदीश्वरः।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
५. ५२, ५३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

नाना प्रकार के पक्षी वृक्षों पर मधुर स्वर से कूजने लगे और चुगली करने के स्वभाव से दूषित मैना सब का अनुकरण करने लगी।

कुमारवयसौकर्ण-कुण्डलावलिका[1]काञ्चितौ।
तद्भङ्ग्या बद्धकर्ण[2]शिरीषकुसुमाविव।।५४।।

वे दोनों भर्तृहरि व गोपीचन्द कुमार अवस्था वाले, सोने के कुण्डलों से सुशोभित एवं कुण्डलों की बनावट की तरह शिरीष के फूलों को कानों में बांधे हुए.....।

भस्माङ्गरागच्छुरितौ[3] प्रातः पूर्णकमण्डलू।
तत्रावलोकितौ लोकैरुषसः प्रथमोदये।।५५।।

प्रातः उषा के प्रथम उदय के समय लोगों ने सम्पूर्ण देह पर भस्म रमाए हुए, जल से भरे कमण्डलुओं को हाथों में लिए हुए वहाँ दो सन्तों को देखा।

गुरोरन्तिकमागत्य साष्टांगं प्रणिपत्य तौ।
आदेशं चेरतुः शब्दमाज्ञापूर्वं समागतेः[4]।।५६।।

गुरुदेव के समीप आकर साष्टांग प्रणाम करके उन दोनों ने आदेश शब्द किया अर्थात् प्रणाम कर 'आदेश'-आदेश[5] इस शब्द का उच्चारण किया।

गुरुणा संज्ञया योगराजस्य प्रतिदेहतः।
तयोः परिचयोऽकारि यथास्वं तेन संस्तुतौ।।५७।।

गुरुदेव ने उन दोनों का अलग-अलग नाम लेकर योगराज शिष्य को परिचय कराया, तदनन्तर योगराज ने भी उन दोनों की यथाशक्ति स्तुति की।

सेवार्थं प्रार्थितावुक्तवन्तौ चर्याकृता त्वया।
विरक्तानामभीप्सा का कष्टदानात्पतन्ति ते।।५८।।

---

१. पाठभेद-भरण। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-तत्सदृशा संचिताकर्ण.........।।४५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-भस्मभूषितदेहाङ्गौ.........।।४६।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-..........सदाचारस्य पालकौ।
आदेशं कृतवन्तौ तौ ब्रह्मरूपधियाऽन्यया।।३८।। (प्रकाशित प्रति)
५. नाथसाधु जब परस्पर मिलते हैं तो 'नमस्कार' शब्द के स्थान पर 'आदेश' शब्द का प्रयोग करते हैं।

योगराज ने प्रार्थना की कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ, तब वे कहने लगे कि विरक्तों की कौन अभिलाषा ? अर्थात् विरक्तों को किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती और यदि वे किसी को कष्ट दें तो वे पतित हो जाते हैं।

गुरोः शरणमास्थाय नित्यं सेवापरो भव।
इत्थमुक्ते योगराजः पप्रच्छ पुनरादरात्[१]।।५९।।

वे कहने लगे कि गुरु की शरण लेकर सदैव सेवा में तत्पर रहो। ऐसा वचन सुनकर योगराज ने पुनः आदर से पूछा।

अनाथानां रक्षको यो गोरक्षनाथ ईर्य्यते[२]।
योगिनो योगदाता हि भोगिनो भोगदो भुवि[३]।।६०।।

अनाथों का रक्षक जो 'गोरक्षनाथ' इस नाम से स्तुति किया जाता है वह भूतल पर योगियों को योगविद्या देनेवाला एवं गृहस्थों को भोग देनेवाला है अर्थात् उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला है।

तत्पाददर्शनेनाहं वञ्चितोऽस्म्यधुनाऽवधिः।
गुरुपार्श्वे वसन्नित्यं तत्तृष्णां न ह्यशीशमम्[४]।।६१।।

उनके चरणकमल के दर्शन से मैं आज तक वञ्चित हूँ। वस्तुतः नित्य गुरु के पास रहता हुआ भी मैं उस तृष्णा को शान्त नहीं कर सका।

दत्तात्रेयादिसिद्धैश्च समृद्धैरिह पूजितः।
स कृष्णार्जुनसंवादे पूजितो ब्रह्मणा सह।।६२।।

इस भूतल पर वह दत्तात्रेय आदि सिद्धों एवं समृद्ध व्यक्तियों से पूजित हुआ है तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद में ब्रह्म के साथ पूजा गया है।

रुक्मिण्या कङ्कणो बद्धः पुत्रिकाप्रज्ञया स्वया।
प्रभासक्षेत्रमागत्य येन नाथेन योगतः[५]।।६३।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–ईड्यते। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सः भक्तानां कल्पपादपः। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–गोरक्षदर्शनं भवेत्।।५१।। (प्रकाशित प्रति)
५. ६२, ६३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

जिस नाथ के द्वारा प्रभास[१] क्षेत्र में आकर अपनी योगशक्ति से अपनी पुत्रिका प्रज्ञा (बुद्धि) से रुक्मिणी को कंगन बाँधा गया।

अनुकम्पां परां कृत्वा नाथपादाम्बुजस्य तु।
दर्शनाऽमृतसेकेन भवन्तो जीवयन्तु माम्।।६४।।

अतः आप मुझ पर परम कृपा करके नाथजी के चरणकमल के दर्शन रूपी अमृत की वर्षा कर मुझे जीवित रक्खें अर्थात् जीवनदान दें।

तदाकर्ण्य भर्तृहरिर्विहस्य प्रत्युवाच तम्।
याथातथ्यं सम्प्रक्षे सावधानमनाः शृणु।।६५।।

योगराज शिष्य के उस वचन को सुनकर भर्तृहरिजी हंसकर उसे कहने लगे कि वास्तविकता (यथार्थ रहस्य) बतलाता हूँ, सावधान मन से सुनो अर्थात् ध्यान से सुनो।

योऽयं वह्नि[२]समीपस्थासनसंस्थः सुशोभते[३]।
मन्ये सूर्यं करे कृत्वा मृडो[४] भस्मजटाधरः।।६६।।

जो ये धूनी की अग्नि के समीप स्थित आसन पर बैठे हुए शोभायमान हैं। मैं समझता हूँ कि वह सूर्य को हाथ में लेकर भस्म और जटाओं को धारण करनेवाले साक्षात् महादेव ही हैं।

एनमेव विजानीहि गोरक्षं सकलाञ्चितम्[५]।
चलाचलचलच्चर्चाचुञ्चुं चिन्ताचयाऽपहम्[६]।।६७।।

इन्हें सकलपूज्य, नित्य व अनित्य, गतिशील जगत् की चर्चा में विख्यात व समस्त चिन्ताओं का विनाश करनेवाला गोरक्षजी ही जान। अर्थात् इन्हीं ने जड़ व चेतन नश्वर जगत् का निर्माण किया है, इस बात के लिए जिनकी प्रसिद्धि है।

योगमायां[७] समाश्रित्य सदा जागर्ति भूतले।
धर्मसंचालनायैव नानारूपं समाश्रयत्[८]।।६८।।

---

१. 'प्रभास क्षेत्र' द्वारका के निकट एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान की संज्ञा है।
२. पाठभेद–धूनि। (प्रकाशित प्रति) ३. पाठभेद–विराजते। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–शिवो····।।५६।। (प्रकाशित प्रति) ५. जगतो गुरुम्। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–चराचरजगत्सेव्यं सब्रह्मोद्दण्डखण्डकम्।।५७।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–निजां शक्तिं·····। (प्रकाशित प्रति)
८. पाठभेद–धर्मसंस्थापनार्थाय गोरक्षो भगवान् स्वयम्।।५८।। (प्रकाशित प्रति)

जो योगमाया का आश्रय लेकर भूतल पर सदैव जागते रहते हैं व धर्मप्रचार के लिए अनेक रूप धारण कर लिया करते हैं।

रहस्यमेतत् सर्वे हि नाऽवगच्छन्ति पामराः।
विरला विरला लोका बुद्ध्यन्ते भक्तितत्पराः[१]।।६९।।

वस्तुतः इस रहस्य को सांसारिक पामर लोग नहीं जान पाते अपितु कोई-कोई विरले भक्ति में लीन श्रद्धालुजन ही जान पाते हैं।

त्वद्भक्त्याकृष्टचित्तेन गुह्यं त्वां प्रत्यबोधयम्।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य न्यपतद् गुरु[२]पादयोः।।७०।।

भर्तृहरि जी ने योगराजशिष्य से कहा कि मैंने तुम्हारी भक्ति से आकृष्ट होकर गुप्त रहस्य को बताया है—इस प्रकार के उनके वचन सुनकर योगराज गुरु के चरणों में गिर पड़ा।

त्वं गतिः शरणं त्वं मे शरणागतवत्सल।
क्षमस्वाऽज्ञानजं दोषं भ्रान्तस्यैवमिति ब्रुवन्[३]।।७१।।

हे शरणागतप्रिय ! आप मेरे रक्षक व सहारे हो, अतः मुझ भ्रान्त के अज्ञान से उत्पन्न दोष को क्षमा कर दो, ऐसा कहते हुए उनके चरणों में गिर पड़ा।

तदोवाच मस्तनाथो विहसन् हरिसम्मुखे।
किमिदं कृतवान् लोके गुह्यवेषं प्रदर्श्य वै।।७२।।

तब मस्तनाथजी हंसते हुए भर्तृहरिजी से बोले कि आपने यह क्या किया जो मेरे गुप्तवेश को लोक में प्रकट कर दिया।

मादृशानां गुप्तवेषो प्रपंचे धातृजेऽखिले।
कर्त्तव्यश्चान्यथाऽत्र वै प्रपंचः स्यान्महाधिकः[४]।।७३।।

मुझ जैसों को विधाता की इस सम्पूर्ण सृष्टि में गुप्तवेश में रहना चाहिए अन्यथा अधिक प्रपंच की आशंका रहती है।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद—मस्त........।।५९।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद—निःशेषाक्रोशरोधकम्।।६०।। (प्रकाशित प्रति)
४. ७२, ७३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

श्रीनाथवाक्यसुधया[१] तृप्तः स्वादेशमुच्चरन्।
अन्तर्दधद् भर्तृहरिर्ययौ स्वं मलयाचलम्।।७४।।

श्रीनाथजी के वाक्यरूप अमृत से तृप्त हुआ 'आदेश' ऐसा कहते हुए भर्तृहरि अन्तर्धान होगए और अपने निवासस्थल मलयाचल की ओर चले गए।

परस्पराऽऽलापनेन[२] योगराजस्य चेतसि।
योगविज्ञस्य तद्वाक्ये तदा जाता दृढ़ा मतिः।।७५।।

तब नाथजी व भर्तृहरिजी के परस्पर वार्तालाप को देखने से योगराज के चित्त में योग के ज्ञाता मस्तनाथजी के उस कथन में दृढ़ आस्था उत्पन्न होगई।

देवार्चनादिसुकृतौ मतिमातनोति
दूरीकरोति कुकृतिं प्रददाति मोक्षम्।
स्वर्गादिभोगमपि दर्शयतीह साधोः
किं किं न साधयति कल्पलतेव सेवा।।७६।।

सेवा बुद्धि को देव-पूजनादि सत्कर्म में लगाती है, पापों (कुकृत्यों) को दूर करती है, मोक्ष देती है, इस संसार में ही स्वर्ग इत्यादि सम्पूर्ण भोगों को भी प्रदान करती है। अधिक क्या कहें–सन्त के लिए सेवा कल्पवृक्ष की भांति क्या-क्या सिद्ध नहीं करती, अपितु सब कुछ प्रदान करती है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते आत्मपरिचये गोपीचन्दभर्तृहरिदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः।

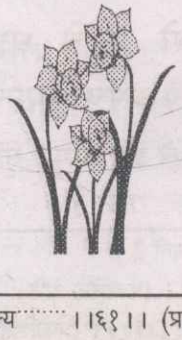

---

१. पाठभेद–रोधबाधां समाशङ्क्य.......।।६१।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–परस्परालापलोकेन.......(प्रकाशित प्रति)

त्रयोदशः सर्गः

वेदनियमप्रचारप्रकरणम्

पटियाला राजधानी याद्यत्वे सुप्रतिष्ठिता।

ग्रन्थमार्गीय राजाऽद्य धर्मात्मा विप्रसेवकः[१]।।१।।

जो राजधानी आजकल 'पटियाला' नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ का वर्तमान समय का राजा 'ग्रन्थसाहिब' का माननेवाला, धर्मात्मा व ब्राह्मणों की सेवा करनेवाला है।

पुरा राजर्षिप्रवरः प्रसिद्धः सुखकारकः।

पुत्रवत् स्वप्रजासौख्यं करोति[२] परमात्मवत्।।२।।

पहले समय में वहाँ का राजा सभी सम्राटों में श्रेष्ठ, प्रसिद्ध और सबको सुख देनेवाला था, जो अपनी प्रजा का अपने पुत्र की भाँति पालन करता था, जैसे कि परमात्मा अपनी सृष्टि का पालन करता है।

उचॉना नामको ग्रामस्तत्रास्ते सुमनोहरः।

सदाचारचणा लोकास्तस्मिन्नासन् विशेषतः[३]।।३।।

वहाँ पर उचॉना नाम का एक अत्यन्त सुन्दर ग्राम हैं। उसमें पहले ज्यादातर सदाचारी लोग रहते थे।

विचचार महायोगी योगमार्गे प्रतापवान्।

प्रचिचारयिषुर्योगं भक्तान् पश्यन् भुवस्तले[४]।।४।।

उस पृथ्वीतल पर योगमार्ग के विषय में लब्धप्रतिष्ठ, योगप्रचार का अभिलाषी, भक्तों पर कृपादृष्टि रखता हुआ एक महायोगी विचरण करता था।

---

१. पाठभेद–(क) .... धनिकैर्धार्मिकैस्तथा।
सेविता सद्गुणेनापि ग्रन्थग्रन्थप्रियापि सा।।१।। (प्रकाशित प्रति)
(ख) सिंहहीनापि सिंहैश्च परिव्याप्ता समन्ततः।
ग्रन्थमार्गीयो राजाऽद्य धर्मात्मा योगिसेवकः।।२।। (प्रकाशित प्रति)
शेरों से रहित हुई भी शेरों (नरश्रेष्ठों से) चारों ओर से व्याप्त नगरी थी जहाँ आजकल ग्रन्थसाहब का अनुयायी राजा धार्मिक तथा योगिजनों की सेवा करनेवाला है।

२. पाठभेद–कुरुते .... ।।३।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–सारासारविदो ...... ।।४।। (प्रकाशित प्रति) ४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

तत्रैतः पर्यटन् सिद्धमस्तनाथः सशिष्यकः।
ग्रामान्तिकैकान्तदेशे आसितं विदधौ गुरुः[१]।।५।।

वहीं से घूमते हुए सिद्ध मस्तनाथजी अपने शिष्यों के साथ वहाँ जा पहुँचे और गाँव के एकान्त स्थान पर अपना आसन लगाकर बैठ गए।

शिष्यानुपादिशन् भेदधिक्कारब्रह्मदर्शनम्।
मिथ्यात्वं जगतो नैव माया मिथ्या न जातुचित्[२]।।६।।

शिष्यों को उपदेश करते हुए द्वैत का खण्डन कर ब्रह्म की स्थापना करने लगे और बताने लगे कि संसार और उसका कारण माया भी मिथ्या (असत्य) है।

प्रत्यहं मस्तनाथस्य स्वोपदेशः प्रजायते।
धार्मिको योगसिद्धान्ते वेदान्तेऽपि सनातनः[३]।।७।।

वहाँ पर मस्तनाथजी का अपना योगसिद्धान्त और वेदान्त के विषय में भी धर्म से युक्त सनातन उपदेश होता रहता था।

प्रत्यक्षसिद्धयस्तत्र व्यवहारविदां समाः।
मायाविकृतमिथ्यात्व-दृष्टान्तस्य प्रखण्डकाः[४]।।८।।

व्यवहार को जाननेवालों के लिए प्रत्यक्ष सिद्धियाँ सबमें समान हैं तथा मायावी से किया हुआ जो मिथ्यात्व है उस दृष्टान्त का खण्डन करनेवाली हैं।

अनित्यतत्वं संसारे[५] नित्यं ब्रह्मसनातनम्।
सृष्टेः पूर्वं निर्विकल्पशून्ये सत्तामयात्मकम्।।९।।

संसार अनित्य है और सनातन ब्रह्म नित्य है, सृष्टि से पहले निर्विकल्प शून्य नाम रूप और क्रिया से रहित ब्रह्म में केवलमात्र सत्तामय रूप था अर्थात् भावरूप था न कि अभाव रूप अर्थात् सृष्टि से पहले भी ब्रह्म की सत्ता विद्यमान थी।

पादांशेन विकारात्मसविकल्पमयं ततः।
निरवच्छिन्नवैशेष्यात्मना[६] सृष्टावपि स्थितम्।।१०।।

---

१. पाठभेद–बद्धपद्मासनस्थितः।।४।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नही है। ३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

४ यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

५. पाठभेद–संसारासारतायुक्तं.......... ।।८।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–स्वयं....।।९।। (प्रकाशित प्रति)

एक पाद में (तीन हिस्से में) निर्विकल्प ही रहा किन्तु एक भाग ब्रह्म का सृष्टिरूप विकार से युक्त होने से सविकल्प हो गया अथवा वस्तुतः सृष्टि में भी निरवच्छिन्न विशेषरूप से ही है। (अखण्ड प्रकृति होने से माया से उसका जो खण्ड किया गया है वह मिथ्या (असत्य) है। अतः ब्रह्म निर्विशेष ही है।)

विशिष्टबुद्धिधर्मांशभानान्मृदिव[1] सन्मयम्।
प्राक् प्रभाते[2] विशेष्यांशज्ञानकारणता यतः।।११।।

विशिष्ट बुद्धि में धर्म के अंश का भान होने से मिट्टी की तरह सभी सन्मय हैं अर्थात् वे सब मिट्टी ही हैं। जैसे 'सन् घटः', 'सन् पटः' इत्यादि सर्वत्र सत् धर्म का ही भान है। वस्तुतः सब सत् ब्रह्मरूप हैं विशेष्य का ज्ञान पहले होता है इसीलिए विशेष्य का ज्ञान विशिष्ट बुद्धि में कारण माना जाता है।

नोचेद् धर्मः कथं माया चाश्रयेण विना क्वचित्।
विना भूमिं न प्रासादः[3] खं विना न रविः क्वचित्।।१२।।

यदि धर्म (सत् रूप ब्रह्म) न रहता तो आश्रय के बिना माया कहाँ किस प्रकार रह सकती है। जैसे बिना भूमि के महल नहीं बन सकता और आकाश के बिना सूर्य कहीं नहीं रह सकता। अतः ब्रह्म के बिना माया भी नहीं रह सकती।

विशेष्यज्ञानपूर्वत्वाद् विशेषणमतिस्ततः।
कारणत्वं विशिष्टांशे समासांशार्थबुद्धिवत्।।१३।।

विशेष्य ज्ञान और विशेषण के बिना विशिष्ट बुद्धि नहीं होती, अतः उन दोनों का ज्ञान विशिष्टांश में कारण है, जिसमें 'राजपुरुषः' इस समास का अर्थ एक-एक पदार्थ का पृथक् ज्ञान होने से होता है।

तस्य तस्य ज्ञानहेतुद्वयस्य जननात्परः।
विशिष्टबोधस्तेनात्र निर्विकल्पद्वयं स्थितम्।।१४।।

उस-उस (विशेषण-विशेष्य) दोनों ज्ञान के पीछे विशिष्ट ज्ञान होता है। अतः विशिष्ट ज्ञान होने से पहले दोनों प्रकार का ज्ञान निर्विकल्प रहता है।

इत्थं नीलघटे ज्ञाते विशिष्टांशः प्रतीयते।
तेन स व्यवहारेऽभूद् वर्तते[4] सत्पदस्थितिः।।१५।।

---

१. पाठभेद–पृथ्वीव ...... ।।१०।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–प्रत्यभात् प्राग् ।।१०।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सद्मालिः ..... ।।११।। (प्रकाशित प्रति) ४. विद्यते ..... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

और इस प्रकार पहले नील का और घट का ज्ञान हो जाने पर 'नील विशिष्ट घट' यह ज्ञान होता है, उसी से वह व्यवहार में सविकल्पक है। इसी प्रकार सृष्टि होने पर व्यवहार में ब्रह्म सविकल्पक हो जाता है, किन्तु वास्तव में वह निर्विकल्पक ही रहता है।

अन्ते शून्ये सदास्तीति सन्मात्रपरिसंस्थितिः[१]।
त्रिकालता निर्विकल्पे तदेकं वस्तु भेदने।।१६।।

अन्त (महाप्रलयकाल) में सब शून्य हो जाने पर 'है' ('अस्ति') यह रहता है, अतः सन्मात्र की स्थिति सदैव बनी रहती है और तीनों काल में निर्विकल्प ब्रह्म की सत्ता रहती है। वही ब्रह्म वस्तु के भेद (द्वैत) होने पर भी एक ही रहता है।

तदंशेऽनुल्लिखन्ती धीरूल्लेखेन विकारगा।
तस्याभेदेन मानञ्च क्षणभेदो विशिष्टगः।।१७।।

उसके अंश (कारणरूप ब्रह्म) का उल्लेखन करती हुई बुद्धि उल्लेख से विकारविषयक नहीं हो सकती और उसके (कारण) अभेद होने से स्पष्ट होता है कि क्षणिक भेद विशिष्ट बुद्धि में वर्तमान रहता है।

अपि च ज्ञानमस्माकं नैवोत्पत्तिविनाशवत्।
नित्यकूटस्थरूपत्वात् जन्मनाशमतिभ्रमः।।१८।।

नित्य एवं कूटस्थस्वरूप होने के कारण हमारा ज्ञान भी उत्पत्ति और विनाश की भाँति नहीं है। जन्म और विनाश तो केवलमात्र बुद्धि का भ्रम है।

यथा शुक्तिधियः पूर्वं रजते सत्यताग्रहः।
तथा नित्यात्मबोधात् प्रागनित्ये सत्यताग्रहः।।१९।।

जिस प्रकार 'सींपी' है ऐसी बुद्धि आने से पहले रजत (चाँदी) में सत्य का आग्रह होता है वैसे ही आत्मा नित्य है, ऐसा ज्ञान होने से पहले व्यक्ति का अनित्य में (आत्मा नित्य नहीं है, इस तथ्य में) ही सत्य का आग्रह होता है।

काष्ठारूढ़कृशानुर्हि यद्वद् दाहनियामकः।
वृत्त्यारूढ़चितिस्तद्वद् बन्धनाशनियामिका।।२०।।

जैसे लकड़ी में व्याप्त अग्नि निःसंदेह दाहनियामक होती है, वैसे ही वृत्ति में व्याप्त बुद्धि (चिति) बन्धन (जीवन) और नाश (मृत्यु) को नियन्त्रित करनेवाली होती है।

---

१. पाठभेद–शून्योऽपि भावरूपोऽस्ति ज्ञाता शून्यस्य विद्यते।
....वस्तु शिष्यते।।१५।। (प्रकाशित प्रति)

दृश्यं सत्यमभिप्रेत्य तत्सम्बन्धं जिहासताम्।
कुतर्काकुलचित्तानां ज्ञानं व्यर्थमुपस्थितम्।।२१।।

अत: सत्य दृश्य को पाकर अथवा पदार्थ की सच्चाई तक पहुँचकर उसके सम्बन्ध को छोड़ देना चाहिए क्योंकि कुतर्क से भरे हुए चित्तवाले व्यक्तियों का ज्ञान व्यर्थ ही होता है।

यथा सदसतोरेव सम्बन्धोऽम्बरवर्णयो:।
तथा सदसतोरेव सम्बन्धो द्रष्टृदृश्ययो:।।२२।।

जिस प्रकार आकाश और अक्षर (शब्द) का सम्बन्ध होता है उसी प्रकार सत् और असत् का सम्बन्ध होता है तथा द्रष्टा और दृश्य की भांति भी सत् और असत् का सम्बन्ध रहता है।

द्रष्टृदृश्येन सम्बन्धो बन्ध इत्युदितो बुधै:।
तत्र द्रष्टा तु चिन्मात्रं दृश्यं जडमिति स्थिति:[1]।।२३।।

द्रष्टा का दृश्य के साथ सम्बन्ध विद्वानों द्वारा 'बन्ध' कहा गया है। उस विषय में द्रष्टा तो चैतन्यमात्र है जबकि दृश्य की तो जड़ पदार्थों में स्थिति (गिनती) है।

प्रत्यभिज्ञायते तत्त्वमेकन्तु परमार्थ-सत्।
व्यवहारो विभिन्नांश-भेदोऽनित्योऽवधार्यताम्।।२४।।

'सोऽयम्' 'वही यह है–ऐसी प्रत्यभिज्ञा होने से एक ही तत्त्व वास्तविक है और नाना प्रकार का जो भेद दृष्टिगोचर हो रहा है, वह अनित्य व व्यावहारिक (लौकिक) है–ऐसा समझना चाहिए।

अद्वैतं नित्यवस्त्वंशे द्वैतानित्यत्वसाधनात्।
प्रसिद्धं न तु मिथ्यात्वं बाधबाधव्यवस्थिते:।।२५।।

द्वैत का अनित्यत्व सिद्ध होने से अद्वैत नित्य वस्तु में है और संसार में जो प्रसिद्ध मिथ्यात्व है, वह नहीं है तथा जो कुछ नहीं है, वह मिथ्या है ऐसा नहीं है क्योंकि संसार नहीं है–इस बाध का भी बाध प्रत्यक्ष है।

एवंविधैस्तर्कपदैरद्वैतब्रह्मबोधत:।
रसयन् रसनाराव[2]रस्यं रसधनं परम्।।२६।।

---

१. १८ से २३ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

२. पाठभेद–आस्वाद...... ।।२५।। (प्रकाशित प्रति)

इस प्रकार के अनेक तर्कों से अद्वैत ब्रह्म का बोध हो जाने से परमोत्कृष्ट रसधन (प्रगाढ रस–सच्चिदानन्द) का आस्वादन करता हुआ सर्वोच्च आनन्द (परब्रह्म) को प्राप्त कर लेता है।

जडं विकारं तस्यैव प्रवृत्तिं बोधयञ्जने।
धरण्यादिपञ्चतत्त्वरमणं बन्धदं नृणाम्[1] ।।२७।।

मनुष्यों में जड़ कार्य भी परमेश्वर की ही प्रवृत्ति है–यह जानते हुए भी पृथ्वी इत्यादि पंचतत्त्वों में रमण करना, मनुष्यों को बन्धन में डालनेवाला है।

तद्धेतुवस्तुविज्ञानात् स्व-स्व-रूपपरिस्थितेः।
तन्मात्रताविवेकेन[2] जीवन्मुक्तपदस्थितिः।।२८।।

इस संसार के हेतु वस्तु के विशेष ज्ञान से अपने-अपने रूप में स्थित रहने से, तन्मात्रता के विवेक से जीवन्मुक्त पद की उपलब्धि होती है।

गुरोः कृपालोः कृपया[3] निर्विकल्पसमाधितः।
मोचनं मरणोऽत्यन्तं शिष्यानुपदिदेश ह[4] ।।२९।।

दयालु गुरु की अनुकम्पा से निर्विकल्प[5] समाधि होती है और उस समाधि के द्वारा प्राण त्यागने पर अत्यन्त मोक्ष हो जाता है–ऐसा उपदेश नाथजी ने अपने शिष्यों को दिया[6]।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–तन्मयत्वस्वरूपेण......... ।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–कृपाकटाक्षेण.............. ।।२७।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–योगेन जायते बोधो नात्र कार्या विचारणा।।२७।। (प्रकाशित प्रति)
(गुरु की कृपादृष्टि से निर्विकल्प समाधि से योग के द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है; इस विषय में संदेह नहीं करना चाहिए।)
५. जिसमें ध्याता, ध्यान, ध्येय–इन तीनों का भान नहीं रहता।
६. निम्न पद्यों का पाण्डुलिपि में असम्बद्ध मानकर अनुवाद नहीं किया हुआ है :-
(क) शिवाऽवतारो गोरक्षो गोरखात्मा स योगिराट्।
यस्य नाथस्तद्गुरुस्तैः ससिद्धैः परिसेवितः।।२२।।
गोरक्षजी शिव के अवतार हैं और वह योगिराज गोरक्षस्वरूप हैं जिसका गुरु वह नाथ ही है; उन सिद्धों से सेवन किया जा रहा है
(ख) तपःकर्तुं गुरोर्गतिं कलिजार्हणसिद्धये।
विप्रसाधुसतां विज्ञेष्वनन्यचरितोऽभवत्।।२३।।
तप करने के लिए, गुरु की अवस्था को, नेतृत्वभाव से उत्पन्न योग्यता प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण, सन्तों, सज्जनों और विद्वानों में अद्वितीय आचरणवाला

तदानीं ये गृहस्थास्ते नास्तिका नाऽभवन्निति।
तेनाऽऽगतं कर्णयित्वाऽऽलोकितुं हर्षतोऽगमन्[1] ।।३०।।

उस समय के जो गृहस्थी थे वे नास्तिक नहीं थे इसीलिए नाथजी के आगमन के विषय में सुनकर अति प्रसन्नता से उन्हें देखने के लिए गए।

सङ्घीभूयादरार्थं त उपायः को भवेदिति।
संमन्त्रयामासुरिदं प्रसादसुमुखार्थिनः।।३१।।

प्रसन्नमुख वे लोग एकत्रित होकर सलाह करने लगे कि इस साधु के आदर-सत्कार के लिए कौनसा उपाय किया जाए।

अतिथिः सत्कृतो नोचेत् सिद्धो धक्ष्यति सर्वशः।
भुवनत्रयमन्योऽपि सिद्धो ग्रामादिकं भुवि[2] ।।३२।।

यदि इस सिद्ध अतिथि का सत्कार नहीं किया जायेगा तो यह तीनों लोकों को भस्म कर देगा क्योंकि साधारण सिद्ध भी पृथ्वी पर गाँव आदि को भस्म कर देते हैं।

परन्तु स्वगुरुं पृष्ट्वा तदुक्तं सविधेलिमम्।
स्वगुरोस्ते मठे स्वीयविचाराऽनुसृता इताः।।३३।।

हुआ अर्थात् गुरुत्व को प्राप्त करने के लिए सभी का मार्गदर्शन करने के लिए सर्वप्रथम उन्होंने अपने अद्भुत आचरण से सबको चमत्कृत किया।

(ग) ईशामूसाखुदादीनां चरितादधिकाः सदा।
हिन्दूनां देवताः सिद्धा आदेशं वेदयन्निदम्।।२४।।
हिन्दुओं के देवता सिद्ध, ईसा मोहम्मद एवं खुदा आदि से चरित की दृष्टि से सदा अधिक प्रभावशाली रहे हैं; इस आदेश को समझो।

(घ) पीरासिद्धादिसंजाप्याश्चक्रे सत्यमतान् स्थिरान्।
उपकारविदामेकस्तदानीमिति ये मताः।।२५।।
पीरों और सिद्धों के जाप में जिन स्थिर (शाश्वत) सत्यमतों का प्रतिपादन किया गया है तथा उस समय उपकार जाननेवालों के जो मत हैं, वे एक ही हैं। पीर और सिद्धों के जाप करनेवालों का व उपकार प्रवृत्ति वालों का सिद्धान्त एक ही है। सभी धर्मों में एक समान ही सत्य तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

(ङ) ते कृतज्ञा मेहतुल्या गुरूणामपरे मताः।
गुरुमाहात्म्यवेतृत्वहानात्पापपरायणाः।।२६।।

१. पाठभेद–यं आकर्ण्यागतं द्रष्टुं मस्तनाथं सनातनम्।।२८।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–............................पुण्यह्रासे भवेद्ध्रुवम्।
दत्त्वा च पापसंकाशमसंतुष्टो व्रजेद् गृहात्।।३०।। (प्रकाशित प्रति)

परन्तु हमें अपने गाँव के गुरु से पूछकर उनके कथनानुसार ही कार्य करना चाहिए, ऐसा विचार कर वे अपने गुरु के मठ में गए।

अनभिज्ञा मदालिप्ता अन्नभट्टा मृगा इव।
भारभूताः स्पर्द्धिनस्ते धर्मादौ विमुखा भुवि[१]।।३४।।

मूर्ख, अहंकारी, व्यर्थ स्पर्धा करनेवाले अन्न के कीड़े व धर्मकार्यों से विमुख व्यक्ति भूतल पर भारभूत हुए मृग (हरिण अथवा जंगली पशु) की भाँति विचरण करते हैं अर्थात् मात्र पीते खाते रहते हैं और अन्त में मर जाते हैं।

जगद्विरुद्धा देवानां सिद्धानां विदुषामपि।
ऋषीणां वेदशास्त्राणां पुराणानाञ्च द्वेषिणः[२]।।३५।।

ऐसे लोग सारे जगत् के विरुद्ध तथा देवताओं, सिद्ध, विद्वान्, ऋषि, वेदशास्त्र व पुराण–इनसे द्वेष करनेवाले होते हैं।

मतानां सम्प्रदायानां निन्दामात्रजपार्थतः।
शास्त्रवेत्तृत्वदम्भेन मूर्खानां सम्प्रलोभकाः।।३६।।

विभिन्न मतों व सम्प्रदायों की निन्दामात्र करना ही इनका उद्देश्य होता है तथा ये शास्त्र के ज्ञाता होने के मिथ्या अहंकार से मूर्खों को ठगा करते हैं।

परमात्मभी राजभी गुरुभी धर्मभीरुता।
परित्यज्य परस्वांशे स्व-स्वत्व-हठधर्मिणः[३]।।३७।।

परमात्मा का भय, राजा का भय, गुरु का भय तथा धर्म का भय–इन सबको छोड़कर अर्थात् इनकी बिल्कुल परवाह न करते हुए दूसरों के अंश (हिस्से) पर अपना अधिकार जमाने में हठधर्मी होते हैं अर्थात् दूसरों की चीजों पर जबरदस्ती कब्जा करते हैं।

यूयं दुष्टा वयं शिष्टाः शिष्टाचारस्य वेदिनः।
अशिष्टाशंसकाः सर्वे शिष्टग्राह्यमताग्रहाः[४]।।३८।।

परन्तु तुम दुष्ट हो और शिष्टाचार को जाननेवाले हम शिष्ट हैं ऐसे कहनेवाले सभी अशिष्ट (असभ्य) अन्त में शिष्टों द्वारा ग्रहण करने योग्य विचारधारा

---

१. पाठभेद– .... परच्छिद्रानुकारिणः।
ईश्वरज्ञानविमुखा धर्मविज्ञानशून्यकाः।।३२।। (प्रकाशित प्रति)

२. निन्दका वादतत्पराः।।३३।। (प्रकाशित प्रति)

३. ३६, ३७ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

(मत, सम्प्रदाय) को ग्रहण करनेवाले हो गए अर्थात् उन्होंने भी आर्यों की विचारधारा को स्वीकार कर लिया।

तत्र गत्वाऽऽर्यावर्त्तेऽपि सेवकास्तस्य चक्रिरे।
प्रणामं स्वगुरोः[१] प्रोचुः स्वीयां तां च विचारणाम्।।३९।।

वे वहाँ आर्यावर्त में जाकर भी उनके सेवक बन गए और अपने गुरु को प्रणाम कर अपनी जिज्ञासा के विषय में उनसे निवेदन करने लगे।

मस्तनाथः समायातो योगिनां प्रबलोऽप्ययम्।
पूजायाः पद्धतिस्तस्य क्रियते वा न वा मुने[२]।।४०।।

मस्तनाथजी आए हैं और ये योगियों में भी सबसे अधिक सामर्थ्यवान् हैं, अतः हे मुनिवर ! उनकी पूजा की विधि की जाए अथवा नहीं ?

कर्त्तव्यं स्वं पप्रच्छुरकृतज्ञः स दुर्मतिः।
निरुक्तलक्षणः[३] प्राह मदुक्तं समुपास्यताम्।।४१।।

उन्होंने पुनः अपने कर्त्तव्य के विषय में पूछा तब वह कृतघ्न दुष्टबुद्धि स्पष्ट कहने लगा कि मेरे वचन का पालन किया जाए अर्थात् जैसा मैं कहूँ वैसा करो।

गर्वी वृथाभिमानी स मूर्खो वैश्यसुतस्त्वयम्।
आत्मानं वक्ति गोरक्षं सिद्धिर्नैवास्ति काचन[४]।।४२।।

अहंकारी, वृथाभिमानी वह मूर्ख वैश्य का पुत्र है और स्वयं को गोरक्षनाथ कहता है परन्तु उसके पास कोई सिद्धि भी नहीं है।

वयमेव हि पूज्या न कस्याप्यन्यस्य योग्यता।
अपरञ्चार्ह्यतिऽस्माकं स्वत्वनाशो भविष्यति[५]।।४३।।

---

१. पाठभेद–प्रणेमुः स्वगुरुं.............।।३५।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पाण्डुलिपि में नहीं है और ४१ पद्य के पश्चात् है जबकि प्रसंग को देखते हुए मैंने इसे ३९ पद्य के पश्चात् रख दिया है।

३. पाठभेद–पृष्टवन्तः कर्त्तव्यं स्वं दुर्मना दुर्मतिः स्वयम्।
निरुक्तिं स्वां ततः...............................।।३६।। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

५. पाठभेद–वयमेव हि पूजार्हा जगन्मन्येत वा न वा।
जगद्गुरुत्वमस्माकं रूढ़ितोऽत्र समागतम्।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

हम ही पूज्य हैं, और किसी में पूज्य बनने की योग्यता नहीं है। यदि हमारे लोगों से वह पूजित हो जायेगा तो हमारे अपने महत्त्व का नाश हो जायेगा अर्थात् मेरे रहते किसी और की पूजा होगी तो मेरी इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी।

वयं शापं प्रदास्यामो गोरक्षोऽस्माकमेव हि।
न विप्राणां न चान्यस्य नाथो नायं प्रपूज्यताम्[१]।।४४।।

हम उसे शाप दे देंगे। वस्तुतः गोरक्ष हमारा ही नाथ है, न ब्राह्मणों का और न किसी अन्य का। अतः यह न पूजा जाए।

अयं चे[२]त्पूज्यते जातु प्रतिवर्षं करो भवेत्।
दक्षिणा नैव देयाऽस्मै भोजनं दीयतां रुचम्।।४५।।

यदि कदाचित् यह पूजा जाता है तो यह प्रतिवर्ष एक प्रकार का टैक्स होगा। अतः इसे किसी प्रकार की दक्षिणा मत देना अपितु रुचिकर भोजन दे देना।

इत्याज्ञाप्य मठाधीशो हठेन स्वनरैर्वृतः।
निर्जगाम मठात् तस्मात् साधुर्भैरवशासनः[३]।।४६।।

इस प्रकार आज्ञा देकर बलपूर्वक अपने आदमियों से घिरा हुआ एवं भयंकर शासनवाला मठाधीश साधु उस मठ से निकल गया अर्थात् मठ का अधिपति उन सबको वह भयंकर आज्ञा देकर मठ से बाहर चला गया, जिसका अनुमोदन मठाधीश के पक्ष के लोग कर रहे थे।

स्वीकृत्य तस्य पार्श्वस्था गुरुत्वस्य प्रतिज्ञया।
मस्तनाथान्तिके प्राप्ताश्चर्यां पप्रच्छुरादरात्।।४७।।

उस मठाधीश के प्रति गुरुत्व बुद्धि होने के कारण उसके पूर्वोक्त वचन को स्वीकार कर उसके समीपवर्ती वे लोग मस्तनाथजी के समीप गए और आदरपूर्वक सेवाविधि पूछी।

दक्षिणापूर्विका भुक्तिर्मर्यादा साधुसेवने[४]।
अदक्षिणं हतं यज्ञमिति शास्त्रविदो विदुः[५]।।४८।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद–मस्तोऽयं...... ।।३९।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। ४. पाठभेद–साधुसंमता...... ।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–निन्दितं दक्षिणाहीनं गीतायामपि भोजनम्।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
दक्षिणापूर्वक भोजन कराना ही सन्तों द्वारा संमत मर्यादा है और गीता में भी लिखा है कि दक्षिणा से रहित भोजन निन्दित होता है।

सन्तों की सेवा करने में यह मर्यादा है कि दक्षिणा देकर भोजन कराना चाहिए क्योंकि दक्षिणा न देने से (अतिथि सेवारूप) यज्ञ बिगड़ (विकृत) जाता है–ऐसा शास्त्रवेत्ता मानते हैं।

ते प्राहुर्नास्ति सामर्थ्यं धनवन्तोऽपि भोजनम्।
केवलं रुचितं वाच्यं नान्यथा पद्धतिर्मम[३]।।४९।।

धनवान् होते हुए भी उन ग्रामवासियों ने कहा कि हमारी दक्षिणा देने की सामर्थ्य नहीं है। हम केवलमात्र रुचिकर भोजन दे सकते हैं। अतः जैसा आपको रुचिकर हो कह दें। इसके विपरीत पूजा का अन्य तरीका हमारा नहीं है।

नोरीचकार मस्तेन्द्रो गतास्ते स्वगुरुं प्रति[४]।
तद्वाक्यं तत्र ते प्राहुः स उवाच पुनर्मठी।।५०।।

मस्तनाथजी ने बिना दक्षिणा का भोजन स्वीकार नहीं किया तब वे लौटकर अपने गुरु के पास गए और वहां जो कुछ मस्तनाथजी ने कहा था उनके वचन को उन्होंने कह सुनाया। तब वह मठाधीश फिर कहने लगा।

साधुता साधुता दूरे साधुता साधुताधुना।
पूज्यार्हं वेषमाधाय भ्रमन्ति बहवो जनाः[१]।।५१।।

सज्जनता–साधुता तो आजकल बहुत दूर की बात है और वह साधुता आज कम्पित है (अपने सत् पर नहीं है।) अपितु पूजा के योग्य (साधु) वेश को धारण करके बहुत से लोग घूमते रहते हैं। भाव यह है कि मस्तनाथ कहाँ का साधु है ? ऐसे बहुत सारे पाखण्डी लोग साधु का वेष बनाए घूमते फिरते हैं।

भ्रमन्ति जटिला धूर्ता ईदृशा भुवि वञ्चकाः।
किं करिष्यति वो मत्तो मत्सत्वे सबली कुतः[२]।।५२।।

---

१. पाठभेद–..............अस्माकमधिकस्य हि।
यदृच्छालाभसंतुष्टाः साधवः संभवन्ति ते।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
वे कहने लगें कि इससे अधिक की हमारी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि साधुजन स्वयं मिले हुए पदार्थों से संतुष्ट होने वाले होते हैं।

२. पाठभेद–निस्तन्द्रः स्वीयकर्मणि............।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

४. पाठभेद-ईदृशा सिद्धदेशीयाः शिष्यसंघसमावृताः।
भ्रमन्ति बहवो लोके ते कुक्षिम्भरितापथे।।४५।।
इस प्रकार के सिद्ध समाजवाले, शिष्यवर्ग से घिरे हुए बहुत सारे साधु लोग हैं वे पेट भरने की दृष्टि से संसार में घूमते रहते हैं।

भूतल पर इस प्रकार जटा धारण किए धूर्त ठग लोग बहुत से घूमा करते हैं। यह हमारा क्या कर लेगा क्योंकि मेरे सामने उसकी कुछ नहीं चल सकती।

क्षेत्रियो मत्सरो रोगो द्वेषेर्ष्यास्वार्थितामलैः।
एधितः सन्निपातेन सम्पातयति धर्मतः।।५३।।

मत्सरता रोग असाध्य होता है। द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ–इन मलों से बढ़ी हुई वह मत्सरतारूपी व्याधि–मनुष्य को धर्म से च्युत कर देती है।

वैश्याः स्वभावकृपणाः पोषके मिलिते दृढ़े।
पुनर्मस्तेन्द्रसविधे गन्तुमीहां प्रतत्यजुः[1]।।५४।।

वणिक्जन प्रकृति से कृपण होते हैं, फिर कोई प्रबल पोषक मिल जाए तो कहना ही क्या ? अतः उन्होंने फिर दुबारा मस्तनाथजी के समीप जाने की अभिलाषा छोड़ दी।

गर्वस्ततः समुत्पन्नो भक्ति सा दलिता समा।
निन्दकाः सकला जाता सतां[2] पूजा विखण्डिता।।५५।।

फिर क्या था उस महन्त के भड़काने से उन लोगों में घमण्ड हो गया जो कुछ भक्ति थी वह भी दलितों की भाँति दयनीय स्थितिवाली हो गई। सभी निन्दक हो गए और सज्जनों की पूजा भी विखण्डित हो गई अर्थात् वह भी जाती रही।

दिनत्रयं दहनवद् धनिग्रामे गतं यदा।
यमतुल्यहठग्रामे वसतां तपतां भृशम्।।५६।।

अग्नि की भांति संतापदायक, धनिकों के यमतुल्य हठीले उस ग्राम में बहुत तप करते हुए नाथजी और उनके शिष्यों को जब तीन दिन बीत गए तब उन्होंने सोचा कि...... ।

सतां विनिन्दका विप्रद्रोहिणः शास्त्रद्वेषिणः।
राज्ञो गुरोर्देवतानां सिद्धानां परिपन्थिनः।।५७।।
भक्तिहीना वेदहीनास्तेभ्यः पापी न चाधिकः।
दण्डलीलां समास्थाय ग्राह्यो यामो न चान्यथा[3]।।५८।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–मस्तपूजा .... ।।४८।। (प्रकाशित प्रति)
३. ५६, ५७, ५८ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

सज्जनों के निन्दक, ब्राह्मणों के द्रोही, शास्त्रों के द्वेषी, राजा, गुरु, देवता, सिद्ध–इनके विरोधी, भक्तिहीन, वेदशास्त्रों से पराङ्मुख व्यक्तियों से अधिक पापी कोई नहीं है इसीलिए इनको दण्ड से ही सन्मार्ग पर लाना होगा, अन्य प्रकार से नहीं (५७-५८)।

स्मरिष्यन्ति भक्तिलेशाद् दण्डभीताः सुभीरवः।
एवं विचार्य शिष्यान् स प्राह यात त्वरान्विताः।।५९।।

इनमें अभी भी थोड़ी भक्ति है अतः भीरू ये दण्ड से डरकर हमें याद करेंगे ऐसा विचार कर उन्होंने अपने शिष्यों को कहा कि जल्दी से जाओ।

वस्त्राण्यादाय जीर्णानि दारिद्र्यव्यञ्जनाय च[१]।
ग्रामे पात्यानि ग्रहवद् राशिभूतानि तत्पथे।।६०।।

दरिद्रता के द्योतक जीर्ण-शीर्ण वस्त्र लेकर उनकी गठरी बांधकर दुष्ट ग्रह (धूमकेतु आदि) की भांति ग्राम के मध्य फेंक आओ।

पतत्रिक्रोष्टुजुष्टानि रक्षांसि भयदेवने।
दृश्यन्ते हानिवद् भान्ति ग्रामस्यास्याशुभं भवेत्[२]।।६१।।

पक्षी और सियार से सेवित राक्षस भयंकर दिखाई देते हैं और हानि के समान (अथवा नुकसान करने वाले) प्रतीत होते हैं। अतः इस गाँव का अशुभ होगा। भाव यह है जहाँ पर उल्लू आदि पक्षियों व सियारों की आवाज आती है, समझ लेना चाहिए वहाँ अनिष्ट अवश्य होगा।

तथाकृते ततो भीताः स्वगुरोस्ते मठे पुनः।
चिक्षिपुः शापचिन्तार्त्ताः स्मारयन्तश्च तद्वचः।।६२।।

वैसा करने पर अर्थात् जब नाथजी के शिष्य उस गठरी को गाँव में फेंक आए, तब गाँव के लोग भयभीत हो अपने गुरु के पास पुनः मठ में गए और उनके (नाथजी) वचन की याद दिलाकर शाप की चिन्ता से परेशान उन्होंने उस कपड़ों की पोटली को उसके मठ में फैंक दिया।

रुदन्तः स्वकृतं प्राप्तं शापभूतानि धारय[३]।
प्रेरणा त्वत्कृता चीराण्येतानि[४] परिधारय।।६३।।

---

१. पाठभेद–भोः शीर्णान्यमलानि च .... ।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। ३. पाठभेद–तेऽब्रुवन्।।५३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–वस्त्राण्येतानि।। (प्रकाशित प्रति)

और रोते हुए कहने लगे कि अपने किए का फल मिल गया है। शापरूप इन वस्त्रों को आप ही रखिए। तुम्हारी ही यह प्रेरणा है, अत: इन जीर्ण वस्त्रों को आप ही धारण करें।

स तु स्वाभ्यासविच्चापि पाण्डित्यं मम कीदृशम्।
दुष्टत्वादिलक्षणानि निरुक्तानि स्मरन् भृशम्[1]।।६४।।

वह मठाधीश तो अपने स्वभाव को जानता हुआ भी अपने पांडित्य पर पश्चात्ताप करने लगा और अपने अन्दर दुष्टलक्षणों को बार-बार स्मरण कर बहुत अधिक दु:खी हुआ।

अन्त:सम्पीडितो भीतो ग्रामे चिक्षेप तानि वै।
मुहु: क्षिपन्तो निर्माय कन्दुकानि च बालका:[2]।।६५।।

आखिरकार अत्यन्त व्याकुल और भयभीत होकर उसने उनको गाँव में फेंक दिया और वहाँ पर बालक उनकी गेंद बनाकर इधर-उधर फेंकते हुए खेलने लगे।

रममाणा यदो: पुत्रा इव युद्धपरा भृशम्।
ते वास:शापसंतप्ता प्रहारार्ता गृहं ययु:।।६६।।

इस प्रकार खेलते हुए वे बालक शाप के वशीभूत हो, यदुवंशियों की भांति परस्पर खूब (बहुत) लड़ने लगे और प्रहार से पीड़ित हुए अपने-अपने घर चले गए।

ततो भाविदु:खभीता गुरुमायाप्रकाशत:।
शुशुचु: स्वकृतं कर्म स्वप्रभा भासते हि सा।।६७।।

तदनन्तर गुरु की माया को प्रकट हुई देख भावी दु:ख से भयभीत हो वे लोग अपने किए पर शोक करने लगे, क्योंकि अपनी प्रतिभा ही सत् व असत् मार्ग की कल्पना कर लेती है।

प्रतिकर्तुं सेवयाऽर्हा तन्मतिर्नाशिता यया[3]।
उपेक्षाकारिका सैव गुरुमाया बलीयसी[4]।।६८।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–...स:।
चिक्रीडुर्बालकास्तत्र क्षिपन्त: कन्दुकं यथा।।५३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सा बुद्धिर्मलिनी कृता। ५७।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–विधानत:। (प्रकाशित प्रति)

जिस गुरु की माया ने उस बुद्धि को भी नष्ट कर जिसके द्वारा सेवा करके क्षमा मांगी जा सकती थी और उनकी उपेक्षा बुद्धि का कारण वह माया ही थी क्योंकि सिद्धपुरुषों की माया बलवती होती है।

उत्पातादभ्रसमयात्तदासन्नस्य कालिमा।
परस्परं प्रकलहश्चौर्यसाहसिकादयः।।६९।।

तब अनेक प्रकार के उत्पातों से तथा असामयिक वर्षा से समीपवर्ती समस्त प्रदेश जलमग्न हो गया। परस्पर बहुत अधिक कलह होने लगा और चोरी डकैती आदि उपद्रव होने लगे।

अन्ते सर्वदरिद्रत्वं रुप्यकादि क्व लभ्यताम्।
कपर्दिकाऽपि दुर्लभ्या दक्षिणाचारिणामपि[1]।।७०।।

अन्त में सब लोग निर्धन हो गए। रुपयों की तो बात ही क्या ? कौड़ी भी मिलनी दुर्लभ हो गई और जो सज्जन थे उनकी भी दुर्जनों की संगति से यह दशा हो गई।

चुक्षुभुः सकला लोका बभ्रमुश्च दिशः प्रति।
शश्रमुर्नैव ते हीना मम्रुश्च कलहाश्रिताः[2]।।७१।।

सभी लोग क्षुब्ध हो गए और इधर-उधर दिशाओं में घूमने लगे, वे शान्त नहीं हुए और धन से रहित होने से परस्पर झगड़ते हुए मर गए अर्थात् गरीबी व बैचेनी के कारण आपस में लड़-लड़कर मर गए।

तस्माद् ग्रामं परित्यज्य ग्रामान्तरशरण्यता।
आश्रितास्ते गुरोः सर्वं माहात्म्यं तद्विभूतिता[3]।।७२।।

उस दुदर्शा के कारण वे लोग गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव में बस गए और गुरु का उस योगसिद्धि से युक्त वह समस्त माहात्म्य सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।

दरिद्रतादर्शनपूर्वमेव ग्रामान्तरं ये च गता अभूवन्।
प्रारब्धकर्मावरणेन सार्धं विवर्णचित्ताः किल कर्महीनाः।।७३।।

जो गरीबी आने से पहले ही दूसरे गाँव में चले गए थे वे भी पूर्वजन्म के कर्म आवरण के साथ (पूर्वजन्म के कर्म के कारण) उद्विग्न मनवाले होगए और भाग्यरहित भी होगए अर्थात् उनकी किस्मत ने भी साथ नहीं दिया अथवा उन्होंने भी कर्म करना छोड़ दिया।

---

१. ६९, ७० पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।   २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

तेषां शिवं नाप्यशिवं बभूव मृत्योः सकाशादपि येऽप्रमत्ताः।
दौर्दश्यमाप्ताः खलु मृत्युमाप्ता आप्तस्य वाक्यं न मतं हि दृप्तैः।।७४।।

उनका कल्याण भी अनिष्ट होगया और जो मृत्यु के समीप आने पर भी असावधान रहे। दुर्दशा को प्राप्त हुए उन्होंने भी अन्त में मृत्यु को पा लिया क्योंकि उन अहंकारियों ने आप्तपुरुष के वचन को नहीं माना।

इतोऽपि मृत्युः परतोऽपि मृत्युर्यतो यतो यान्ति ततोऽपि मृत्युः।
सिद्धस्य वाक्यानि सदा फलन्ति प्रारब्धयोगात्क्वचिदन्यथा वा[१]।।७५।।

इधर भी मृत्यु, उधर भी मृत्यु, जहाँ जहाँ से जाते वहाँ वहाँ से भी मृत्यु ही उनके सामने खड़ी होती थी, क्योंकि सिद्ध के वचन सदा फलित होते हैं, प्रारब्ध के प्रभाव के कारण कहीं विपरीत (अन्यथा) भी हो जाया करते हैं।

लुब्धा जना दम्भपरा नितान्तं स्वार्थार्थिनो वञ्चनमात्रकार्याः।
न जातु तेषां विषकुम्भतुल्यपयोमुखानां वशगोऽपि भूयात्[२]।।७६।।

लोभी, घमण्डी, अत्यन्त स्वार्थी, दूसरों को ठगनेवाले, जिनके ऊपर थोड़ा दूध लगा हुआ है और भीतर विष भरा हुआ है ऐसे घड़े के समान उन व्यक्तियों (साधुओं) के मनुष्य को कभी वशवर्ती नहीं होना चाहिए अर्थात् ऐसे मनुष्यों का संग ऊपर लगे दूध वाले और जिसके अन्दर जहर भरा है ऐसे घड़े के समान छोड़ देना चाहिए।

श्रुतिस्मृतीशानपथे प्रवर्त्त्य स्वभावरागादिकृतस्य दण्डम्।
अनर्हमार्गस्य विधाय नाथः शिष्यैः समं स्वैष्यभुवं जगाम[३]।।७७।।

श्रुति-स्मृति प्रतिपादित सनातन शैव मार्ग में लोगों को लगाकर और (शास्त्रविरुद्ध अपनी मर्जी से बनाए) अयोग्य मार्गानुयायी जनों को दण्डित करके नाथजी अपने शिष्यों के साथ अपने अभीष्ट स्थान की ओर चले गए।

इति श्रीमस्तनाथचरिते वेदनियमप्रचारो नाम त्रयोदशः सर्गः।

---

१. ७३, ७४, ७५ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
श्रुतिस्मृतीशानपथे प्रवर्त्त्य निवर्त्त्य हि हिंसादिविनिन्द्यमार्गात्।
भर्गाकृतिः सर्गशिवाय लोकान् स मस्तनाथोऽन्यभुवं सिषेध।।६१।। (प्रकाशित प्रति)
लोगों को श्रुति और स्मृति में बताए गए शैव मार्ग में प्रवृत्त करके और हिंसादि निन्दित मार्ग से उनको हटाकर कल्याणकरस्वरूप वाले उस मस्तनाथ ने सृष्टि के कल्याण के लिए दूसरे भूमण्डल की सेवा की अर्थात् दूसरी जगह के लोगों को सदुपदेश देने के लिए चले गए।

चतुर्दशः सर्गः

नीरसतरुहरितीकरणादिप्रकरणम्

जागरूकनिवासोऽस्ति महमेति सुखास्पदम्।
घडावढी पुरं तत्र तेजःपुञ्जो गुरुर्जगे[1]।।१।।

महम कस्बे के अन्तर्गत 'घडावढी' नाम का एक अत्यन्त रमणीय ग्राम है, वहाँ किसी समय अत्यन्त तेजस्वी सिद्ध मस्तनाथ गुरु चले गए।

वटः पुरातनः कश्चिन्नीरसो विपलाशकः।
स्थाणुमात्रस्तमस्यन्धे यमदण्डसमो भुवि।।३।।

वहाँ पर सूखा, पत्तों रहित एक बरगद का वृक्ष था जो गहरे अंधेरे में पृथ्वी पर यमराज के दण्ड के समान भयंकर प्रतीत होता था।

विमृश्यभावि किमपि मस्तनाथः स्थितिं तदा।
तत्रोल्लासां स्वकां चक्रे चक्रेशो दक्षमार्गिणाम्[2]।।४।।

तब कुछ भावी परिस्थिति का विचार कर शुद्धमार्गविलम्बियों में अग्रगण्य मस्तनाथजी ने उस वृक्ष के नीचे प्रसन्नता से अपना धूना लगा दिया।

विदग्धां दग्धधूमालिमध्वराध्वरधूमिताम्।
धूनिमाधाय धूमेशस्तत्र तस्थौ शिवो यथा[3]।।५।।

---

१. पाठभेद-माहिमो महिमा यत्र महमेति सुखास्पदम्।
घडावढीति विख्यातो ग्रामः पुण्यजनाश्रयः।।१।। (प्रकाशित प्रति)
जहाँ पर महिमाशाली एवं सुखदायी महम नाम का नगर है उसमें घडावढी नाम का प्रसिद्ध गांव है जिसमें पुण्यात्माजन निवास करते हैं।
तत्रैव मस्तनाथोऽपि सिद्धविद्याविशारदः।
चन्द्रमा पार्वणः साक्षात् तस्मिन् ग्रामे समागतः।।२।। (प्रकाशित प्रति)
यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। इसमें पुनरुक्ति होने से मैंने इसका ग्रन्थ में समावेश नहीं किया।
स महमग्रामसम्पर्कात् वढ्युत्तरघडाभिधः।
वर्धमानः सतां माने तेजःपुञ्जे गुरुर्जगे।।३।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-भवितव्यां विमृश्याथ………………।
………………निवासाय मनो व्यधात्।।५।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

वहां पर मस्तनाथजी विशेषकर जिसमें होमादि पूजा की सामग्री दग्ध हो चुकी थी, जिसमें से धुआँ कतार बाँधकर लगातार निकल रहा था, हिंसा रहित यज्ञ से धूमित अर्थात् हवन की सुगन्ध से युक्त धूनि को स्थापित करके बैठ गए जैसे कि प्राणियों के स्वामी भगवान् शंकर ही विराजमान होगए हों।

अर्थिनोऽप्यर्थिनस्तत्र दक्षिणादक्षिणा[२]सुखाः।
फलमूलमूलाढ्याः कुसुमानुपजह्रिरे।।६।।

वहाँ अनेक याचक, सुखी, मूर्ख तथा विद्वान् बहुभाँति के व्यक्ति फल-फूल और अनेक प्रकार की भेंट लेकर आने लगे।

नामं नामं स्तवस्तावं प्रास्ताविषुस्तथोत्तमम्[३]।
सार्थकं साञ्जलिस्वान्तस्वान्तराशासमर्थकम्।।७।।

और बार-बार प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर मानसिक इच्छा को अभिव्यक्त करनेवाले सार्थक उत्तम स्तोत्रों का पाठ करने लगे।

सादरादरसुस्वादुतीर्थतीर्थप्रपाविनः।
मस्तनाथप्रियप्रियलोका लोकान् बभाषिरे।।८।।

सादर=आदरणीय (आचार्य) के निर्भय करनेवाले, अत्यन्त स्वादिष्ट, पुण्यप्रद गुरु (तीर्थ) के पवित्र (तीर्थ) पादोदक का पान करनेवाले, मस्तनाथजी के अत्यन्त प्यारे लोगों (भक्तजन) ने अन्य लोगों को कहा।

भूतिर्भूतिसुखापस्य धूतिर्धूतीरुजां कृताम्।
दुरितानां रितानां वा मस्तनाथः स ईक्ष्यताम्।।९।।

जिनके धूने की भस्म, (भूत से) अभिभूत व्यक्ति के लिए कल्याणकारी होती है व जिनकी भस्म से भयभीत हो समस्त रोगों का नाश हो जाता है, ऐसे उन मस्तनाथजी के दर्शन किये जायें।

श्रावयञ्छ्रावयञ्छ्रावकानुत्कानुपगाञ्जनान्।
मस्तनाथशिष्यशिष्यः प्रोचे सादरमादरात्।।१०।।

समीप में उपस्थित अभिलाषी शोकान्वित (उत्कान्), सुननेवाले उन भक्तजनों को आदरपूर्वक बार-बार सुनाते हुए मस्तनाथजी के किसी शिष्य ने कहा।

---

१. पाठभेद-कुशलाकुशला .... ।।७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-स्तावमस्तविषुस्तदा .... ।।८।। (प्रकाशित प्रति)

कमनीयकान्तया कश्चिन्नगर्यां जाटजातिकः।
शीलसम्पद्युक्तोऽप्यासीत्पुत्रचिन्ताचिताचितः[१]।।११।।

उस नगरी में कोई जाट जाति का व्यक्ति रहता था जिसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दर थी और उसके पास शील व सम्पत्ति भी घनी थी परन्तु उसे पुत्र की चिन्ता रूप चिता की अग्नि हमेशा जलाती रहती थी अर्थात् वह पुत्र न होने के कारण अत्यन्त चिन्तित रहता था।

सूपाय सूपाय बुधोबुधोऽसावदानदानः समसम्मतोऽपि।
समेधमेधः सितकेशकेशः स्वकान्तकान्तो न सुतं स आप।।१२।।

देवतास्वरूप विद्वान्, शास्त्रविधि अनुसार दान करनेवाले, सज्जनों से सम्माननीय, अपनी पत्नीसहित (पुत्रोत्पादन) उपायों को जाननेवालों के पास जाते-जाते तथा पुत्रोत्पादन हेतु उत्तम-उत्तम उपाय तथा यज्ञ करते-करते उसके बाल श्वेत हो गए थे तो भी पुत्रप्राप्ति नहीं हुई।

न नारदो नारद इत्यभाषि न धीवरं धीवरमाहुरादरात्।
न पण्डितं पण्डितमाहुर्मस्तं न केशवं केशवमाह कश्चित्[२]।।१३।।

मस्तनाथजी को आदरवश किसी ने भी नारद (आध्यात्मिक ज्ञानदाता) होने पर भी नारद (कलह करानेवाला), धीवर (श्रेष्ठबुद्धि, प्रभुसेवक) होते हुए भी धीवर (मल्लाह), पण्डित (विद्वान्) होते हुए भी पण्डित (पाखण्डी ब्राह्मण), केशव (विष्णुस्वरूप) होते हुए भी केशव (छलिया, कृष्ण) नहीं कहा।

निराशी निराशी निराशो निराशो कतान्तो कतान्तो चितावृत्तिहानः।
न मानो न मानो चिता चित्तहानस्तदासीनदासीनतासिद्धसिद्धः।।१४।।

अन्न-जल ग्रहण न करनेवाला (निराशी), वासनारहित (निराशी) अथवा आशीर्वाद से रहित अर्थात् उस पर किसी आशीर्वाद का भी प्रभाव नहीं हुआ था हर किसी से याचना न करनेवाला, निराश, शिथिल शरीरवाला पुत्रप्राप्ति हेतु घूम-घूमकर थक चुका था (कतान्त), सन्तप्त मनवाला (कतान्त), चित्तवृत्ति के हानवाला (उम्मीदरहित) घमण्ड और सम्मान से रहित, उसके आसन के समीप बैठा हुआ और उसकी सेवा करता हुआ सिद्ध की सिद्धि (प्राप्ति) करनेवाला, आसन पर विराजमान सिद्धपुरुष को प्राप्त (सिद्धसिद्ध) करनेवाला, वह वृद्ध मस्तनाथजी के पास जाकर बोला।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

गत्वा मस्तनाथपार्श्वे प्रोवाच साञ्जसाञ्जलिः।
स्वाभिप्रायप्रायवाक्यं समैरदरदास्यतः।।१५।।

मस्तनाथजी के समीप जाकर हर प्रकार से पूर्ण दास्यभाव से हाथ जोड़कर उसने अपना अभिप्रायसूचक वचन कहा।

आदरादारसदारप्रियभावनभावनः।
माधवस्त्वं च मा धाव मायाधवजनप्रियः[1]।।१६।।

सम्माननीय ब्रह्मचारी (अदार), गृहस्थों (सदार) के प्रिय, हितों को अनुप्राणित करनेवाले अथवा जनकल्याण करनेवाले (भावनभावन) अथवा भक्तजनों में अपनी सिद्धियों को दिखाकर भक्तिभाव उत्पन्न करनेवाले, माया के स्वामी (धव), जनप्रिय तुम माधव (विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण) हो अतः भागो मत अर्थात् मेरी पुकार सुनो, मुझसे मुख मत मोड़ो।

कान्तासहितः सहितो लोकलोको हसोऽहसः।
वृद्धौ वृद्धौ केन केन स्वस्वार्थेन समागतौ।।१७।।

उसको पत्नी मित्रजनों के साथ बैठा देख अन्य लोग हँसने लगे और कहने लगे कि ये आदरणीय (वृद्धौ) वृद्धदम्पती अपने किस-किस स्वार्थ से आए हैं अर्थात् पुत्र लेने के लिए आये हैं।

नैषा मतिर्मतिमत्सु मत्क्षेमक्षेममाश्रयात्।
कस्यचित् कस्यचित् प्राप्ताः प्राप्ताः केनाऽत्र हेतुना।।१८।।

तब किसी सज्जन ने कहा कि बुद्धिमानों को इस प्रकार हँसना उचित नहीं है क्योंकि किसी की सहायता से कोई हमारे समान मंगल को प्राप्त कर ले तो क्या हानि है ? क्योंकि यहां पर सभी लोग किसी न किसी कारण से ही आये हैं अर्थात् सब के सब अपने-अपने स्वार्थ के लिए यहाँ पर आये हुए हैं।

कंचित् कंचित् प्रति प्राह कश्चिद् कश्चिद् दिवेश्वरः।
नेतौ नेतौ समर्हौ[2] स्तः सुतजातेरवस्थया।।१९।।

और भी किसी-किसी ने किसी एक दूसरे को कहा कि ये दोनों वस्तुतः पुत्र उत्पन्न करने की अवस्था के योग्य नहीं है।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद-समर्थौ............।।२०।। (प्रकाशित प्रति)

आशाख्यातसुताशानामुपहासो न युज्यते।
देयं पुत्रसुखादेयमिति प्राहेतरो जनः[1]।।२०।।

और फिर किसी ने अन्य व्यक्ति से कहा कि पुत्र की मनोकामना से आये हुओं का उपहास करना उचित नहीं है। वस्तुतः गुरुदेव को इन्हें पुत्र का सुख दे देना चाहिए।

काशा कुत्र भगाः[2] काशा क्षीणाङ्गौ मा वृथा वद।
सुताय तायनं नो वै सुताय बलमेतयोः।।२१।।

दूसरा कहने लगा कि पुत्र की आशा कहाँ ? क्योंकि इनके अंग क्षीण हो चुके हैं, अतः इन दोनों वृद्धों को व्यर्थ पुत्रोत्पत्ति का उपाय मत बताओ क्योंकि इन दोनों में पुत्र उत्पन्न करने का सामर्थ्य नहीं है।

अवदन्नवदन्नत्र केचित् केचित् प्रयातनम्।
ऊचुश्चित्तं समाधत्त वृथा[3] किं नो विरोधनैः।।२२।।

कुछ व्यक्ति कहने लगे कि इन वृद्धों को यहाँ से हटा दो और दूसरों ने कहा कि अपने चित्त को सावधान रक्खो। परस्पर के वाद-विवाद से क्या लाभ ? अर्थात् तुम आपस में क्यों बहस कर रहे हो। ध्यान से देखो कि नाथजी इस विषय में क्या करते हैं।

मस्तनाथस्य सान्निध्येऽदुर्योधनः समागतः।
तस्मै गां च हिरण्यं च विनेयविविधानि च।।२३।।

मस्तनाथजी के समीप अदुर्योधन (उत्तम धन की कामनावाला) आया है, उसे गाय, सोना और अनेक प्रकार की उपहार-सामग्री दी जानी चाहिए।

विषं भुंक्ष्व मस्तनाथ ! सुतो मे यदि जायते।
विनाकेन विना नाभ्यां कृष्णाजिनमलं प्रभो ![4]।।२४।।

मस्तनाथ ! यदि मेरे नाभि से संबंध रखनेवाला (औरस) पुत्र उत्पन्न नहीं होगा तो हम दोनों विष खा लेंगे अथवा ऐश्वर्यों का परित्याग करके (विनाकेन विना) मृगचर्म पहन लेंगे।

---

१. पाठभेद-नरः.......... ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-सुता.......... ।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-मृषा.......... ।।२३।। (प्रकाशित प्रति)
४. २३. २४ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

भक्तिर्बलवती भक्ति: किमर्थ्यर्थं न साधयेत् ।
निःसंशयं सिद्धविद्या परमेशात् प्रसिद्ध्यति ।।२५।।

भक्ति अतीव शक्तिशाली होती है। याचक के किस प्रयोजन को वह सिद्ध नहीं कर सकती ? वस्तुत: सिद्धों के मंत्र-तंत्र परमेश्वर के द्वारा सिद्ध होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मस्तनाथ ! महाराज ! करेणु: करणैर्विना ।
सम्पादयति यद्रूपं सुते जाते तवात्र तत्[२] ।।२६।।

हे मस्तनाथ महाराज ! हाथी अपने सूंड के बिना जिस रूप को सम्पादित करता है, उसी प्रकार यहाँ पुत्र उत्पन्न होने के विषय में होगा अर्थात् आपके द्वारा आशीर्वाद से पुत्र होने की बात उसी प्रकार की होगी जैसे कि सूंड के बिना हाथी किसी कार्य को पूरा कर दे।

रक्तिरेषा या विरक्ति: सा सिद्ध्या किं विधास्यति[३] ।
वृथाऽगृहस्थिनो याच्ञामकृतज्ञा विधाय च ।।२७।।

जो यह राग (आसक्ति) है वही कालान्तर में वैराग्य हो जाता है अत: वही वैराग्य सिद्धि से क्या करेगा अर्थात् उसमें सिद्धि की क्या जरूरत है अत: उपकार को न माननेवाले अगृहस्थी (वानप्रस्थी और संन्यासी) व्यर्थ ही याचना करके क्या करेंगे।

एवं ते बहुलालापं वाचालाश्चक्रुरेव ते[४] ।
मुहुर्मुहु:[५] प्रगायन्तोऽनाथा नाथाय याचनम् ।।२८।।

इस प्रकार उन वाचालजनों ने बहुतसी व्यर्थ बातें की परन्तु उनमें जो असहाय थे वे बार-बार नाथजी के गुणगान करते हुए अपनी अभीष्ट सिद्धि की याचना करने लगे।

कश्चित्तत्राह भो ज्ञेयं नीरस: स पलाशवान् ।
भवेच्चेदेष सुतवान् भाव्यवश्यं विविद्धि भो[१] ।।२९।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद-रागो विरागतामेति मुग्धत्वं सिदध्यति तत: ।।२८।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-मुग्धा दुग्धधियाऽभिया ।।२८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-वारं वारं.................. ।।२९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-नतेन विनतेन किम् ? ।।३०।। (प्रकाशित प्रति)

वहां उनमें से किसी ने कहा कि यदि वह सूखा वृक्ष पत्तों से युक्त (हरा) हो जाए तो यह व्यक्ति भी पुत्रवान् हो जायेगा और हे महात्मन् ! तभी हम समझेंगे कि आप अवश्य भविष्य की बात को जानते हो।

रसाला सरसा यान्ति राजा सार्धं दिवस्पतिः।
उक्तानुक्तदुरुक्तानां वचनानां तदुत्तरम्[१]।।३०।।

द्युलोक के स्वामी राजा इन्द्र के साथ आम भी रसीले हो जाते हैं उसी प्रकार उक्त, (कहे हुए) अनुक्त (न कहे हुए), दुरुक्त (गलत ढंग से कहे हुए अथवा कुत्सित वचनों का) वही उत्तर होता है अर्थात् वर्षा होती है तो उससे समझ लेना चाहिए कि अब आमों में रस आजायेगा। उसी तरह समझ लेना चाहिए कि मस्तनाथजी कुछ बोले हैं तो पुत्र की उत्पत्ति अवश्य होगी।

तदोवाच सिद्धमस्तः ससुतोऽयं भविष्यति।
पौरा विश्वासमायान्तु वटश्च स पलाशवान्।। ३१।।

तब सिद्ध मस्तनाथजी ने कहा कि यह पुत्रवान् होवेगा और यह सूखा वृक्ष भी अवश्य पत्तों से युक्त (हरा) होगा, इस बात पर नागरिक विश्वास कर लें।

यवनौ दासतां प्राप्तावेतयोः कर्षकौ हि कौ।
समायातौ समं ताभ्यां प्रादात् पुत्राशिषं मुदा[२]।। ३२।।

उसी वृद्ध जाट के हल चलानेवाले कोई दो मुसलमान नौकर आए। उन दोनों को भी उस वृद्ध के साथ ही पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद बड़ी प्रसन्नता से दिया।

आहुः केचिद् भवेद् किंचिदौषधं विपुलं जगत्।
रसायनं वेत्ति सिद्धिः का ? नु विश्वासकारणम्।। ३३।।

कुछ कहने लगे कि हो सकता है, पुत्रोत्पत्ति की कोई दवाई होगी क्योंकि विशाल संसार है। या तो दवाई जानता होगा अथवा कोई सिद्धि होगी। वस्तुतः विश्वास का कारण क्या हो सकता है ? इस प्रकार चकित हो जिज्ञासा करने लगे।

ज्ञदाकर्ण्य शिवो मस्तनाथः सिद्धः प्रतापवान्।
जगाद शतशः कृत्वा जलं देयं तरोस्तले[३]।। ३४।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में लिखकर काटा हुआ है।

३. ३३, ३४ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। इसके पश्चात् पाण्डुलिपि में निम्न पद्य है जो यहाँ असम्बद्ध प्रतीत होता है–

उसे सुनकर शिवरूप सिद्ध प्रतापी मस्तनाथजी ने कहा कि सैकड़ों की संख्या में वृक्ष की जड़ में पानी डालो।

ततस्तेषां समक्षेऽभूत्तदा मूले जलार्पणम्।
हरिताङ्कुरपत्राढ्यः सरसः स वटः स्फुटम्।।३५।।

तदनन्तर सब ग्रामवासियों के सामने ही उस वृक्ष की जड़ में पानी डाला गया और वटवृक्ष हरे अंकुरवाले पत्तों से भर गया और सरस (हरा) होगया।

यदाङ्कुरितपत्रोऽभूत्तदा शिष्यैर्निवेदितम्।
पुरा पत्रत्रयं दृष्टं त्रिशाख्यां क्रमतश्चलत्।।३६।।

जब वृक्ष पर पत्तों के अंकुर उत्पन्न हुए तब शिष्यों ने गुरुदेव से निवेदन किया कि सबसे पहले उस वृक्ष की तीन टहनियों पर तीन पत्ते दिखलाई पड़े हैं फिर क्रम से सम्पूर्ण वृक्ष पत्तों से लद गया।

तदैकदा सर्वशाखाः सपत्राः क्षणतोऽभवन्।
सच्छिष्योक्तं समाकर्ण्य मस्तनाथः समुक्तवान्।।३७।।

तब "क्षण भर में ही सब टहनियों पर एक साथ पत्ते निकल आये हैं"– सत्शिष्यों के इस वचन को सुनकर मस्तनाथजी बोले।

सन्ततित्रितयं त्वेवं वर्षे वर्षे भविष्यति।
स्वस्यापि योगः कर्त्तव्यो न तु सिद्ध्यैव मन्यताम्[२]।।३८।।

जिस प्रकार एक-एक करके तीन पत्ते निकले हैं, वर्ष-वर्ष के बाद तीन सन्तान होंगी–यह कहकर नाथजी ने कहा कि स्वयं भी योगानुष्ठान करना चाहिए न कि सिद्धि से ही स्वयं को कृतकृत्य मान लेना चाहिए अर्थात् आशीर्वाद के साथ-साथ व्यक्ति को कोई लौकिक उपाय भी अवश्य करना चाहिए।

एवं श्रुत्वा नागरास्ते स्वयं यवनवेदनम्।
तदैव जज्ञुस्तं सिद्धं स्वोक्तावन्तर्भयाकुलाः।।२७।।

अपने विषय में भयभीत नागरिक उन यवनों के इस प्रकार के वृत्तान्त को स्वयं सुनकर नाथजी को सिद्ध समझने लगे। अर्थात् अपनी कही हुई अनाप-शनाप बातों से नगर के लोग डर गए।

१. पाठभेद-विनय..............तम्।।३९।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-.......किमन्यत् कथ्यतेऽस्माभिर्यदुक्तं तच्छिवाज्ञया।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

ईशाज्ञां न विना पत्रं शाखायाः पतति ध्रुवम्।
पुष्पं विकसितं नैव सर्वसम्बन्ध ईश्वरः[१]।।३९।।

क्योंकि परमेश्वर की आज्ञा के बिना तो वस्तुतः टहनी से पत्ता भी नहीं गिरता और न ही पुष्प विकसित होता है; इन सबका सारा सम्बन्ध ईश्वर ही है अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध से ही संसार की प्रत्येक गतिविधि संभव है, अन्यथा नहीं।

नाथसिद्धस्तत्र युक्तो दिनानि सप्त स्वासितम्।
विधाय चलिश्चाग्रे गीतकीर्तिः समन्ततः[२]।।४०।।

वहाँ सात दिन निवास करके सिद्ध नाथ योगी आगे को चल पड़े और लोग चारों ओर उनकी कीर्ति का गान करने लगे।

तत्रत्यैरद्भुतं वीक्ष्य प्रत्यक्षं हरितं द्रुमम्।
निश्चितं लप्स्यते पुत्रमार्योऽयं सुभगो मतः[३]।।४१।।

वहाँ के लोगों ने अपने सामने वट के वृक्ष को हरा देखकर बड़ा आश्चर्य माना और उनको निश्चय हो गया कि यह भाग्यशाली व्यक्ति अवश्य पुत्र को प्राप्त करेगा।

वत्सरान्ते सुतं प्राप्तः[४] स भक्तो बहु संददौ।
विप्रेभ्यो नाथपथगान्[५] मानयँस्तोषयँस्तदा।।४२।।

ठीक एक वर्ष के पश्चात् उस भक्त के घर पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसने नाथसम्प्रदाय मतावलम्बी साधुओं और ब्राह्मणों को आदरपूर्वक वस्त्रादि और प्रचुर धन देकर संतुष्ट किया।

एवं[६] वर्षत्रयं यावत् तथा जातं यथोदितम्।
यवनो याचितं लब्ध्वा प्रसन्नोऽभूद् गुरौ तदा[७]।।४३।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-

मस्तनाथस्तत्र युक्तो दिनानि चावसत्तदा।
सप्तैवाग्रे चचालासौ गीतकीर्तिः समन्ततः।।४२।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-..................भाग्यवानपि।।४३।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-अब्दान्ते लब्धवान् पुत्रं.......।।४३।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद-योगिनाथांश्च.................।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद-इत्थं.......।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

७. पाठभेद-मुमोदाद्भुतदर्शनात्.......।।४५।। (प्रकाशित प्रति)

इस प्रकार तीन वर्ष तक वैसा ही होता रहा जैसा कि नाथजी ने कहा था, अर्थात् तीन वर्ष तक एक-एक वर्ष के अन्तराल से तीन सन्तान उत्पन्न हुई और यवन भी अपना वाञ्छित फल (पुत्र) पाकर गुरु से बड़ा प्रसन्न हुआ, अर्थात् गुरु से बड़ा प्रेम करने लगा।

सदा प्रसन्नः सुमुखो गुरुनामप्रकीर्तनात्।
नाथं प्रशंसयन् स्वार्थे खुदाशब्दादभाषत।।४४।।

वह यवन गुरु का नाम कीर्तन करके बड़ा प्रसन्न रहने लगा और नाथजी की प्रशंसा करता हुआ स्वाभीष्ट सिद्ध हो जाने से नाथजी को 'खुदा' कहकर पुकारता था।

यथा पीररत्ननाथः कम्बोजेषु प्रगीयते।
तथा तेन मस्तनाथो यवनेन प्रगीयते[१]।।४५।।

जैसे कम्बोज (काबुल) प्रान्त में पीर रत्ननाथ की कीर्ति गाई जाती है, उसी प्रकार उस यवन ने सिद्ध मस्तनाथ को 'पीर' शब्द से सम्बोधन कर उनकी कीर्ति का गान किया।

प्रकृतज्ञार्य्यलोकास्ते तेषां ये ये विनिन्दकाः।
तेषामाशा कदाचिन्न सेत्स्यतीत्यवधार्यताम्।।४६।।

प्रकृत (प्रकरण) को जाननेवाले उत्तम व्यक्तियों की जो-जो निन्दा करते हैं उनका मनोरथ कभी पूर्ण नहीं होता–ऐसा निश्चय से जानो।

स्वाभिमानाः सत्यतत्त्वं मिथ्या प्राहुर्जने जने।
असमाने समानत्वकरास्ते दुःखभाजनम्[२]।।४७।।

अहंकारी पुरुष सत्य को भी प्रत्येक के सामने मिथ्या (झूठ) कह देते हैं और जो अपने से बड़ों के साथ समानता करने लगते हैं, वे व्यक्ति दुःख के भागी होते हैं।

वटः सम्पूज्यतेऽद्यापि दर्शनात्तस्य जायते[३]।
शोकदोषदुःखहानमपापो जायते नरः[४]।।४८।।

---

१. पाठभेद-प्रागायि यवनेन सः...... ।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
२. ४६, ४७ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद-शं भवेत्। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-शोकसंतापसंभीतिदुःखदाहः प्रशाम्यति।।४८।। (प्रकाशित प्रति)
........उसके दर्शनमात्र से शान्ति हो जाती है तथा शोक, संताप, भय एवं दुःख से होनेवाली जलन (दाह) बिल्कुल शान्त हो जाती है।

वह वटवृक्ष आज भी पूजा जाता है तथा उसके दर्शनमात्र से ही शोक, दोष तथा दु:ख इनका नाश हो जाता है तथा मनुष्य निष्पाप हो जाता है।

शोभा च महती तत्र ब्रह्मवृक्षस्य वर्तते।
प्रसीदन् मस्तनाथस्य सिद्धिः सर्वाऽपि गीयते[१]।।४९।।

और वहां पर उस वटवृक्ष की बड़ी विचित्र शोभा है। उसे देखकर लोग खुश होकर मस्तनाथजी की सिद्धियों का गान करने लगते हैं।

वटः पलाशी न पलाशितास्य न जीर्णता जीर्णतरोर्नवीना।
चरित्रगाथा यवने वनेऽभूज्जने द्विजातौ च स योगिसिद्धः[२]।।५०।।

वह वटवृक्ष पहले पत्ररहित था परन्तु नाथजी की कृपा से पत्तोंवाला हो गया तथा वह वृक्ष पुराना भी था परन्तु अब नवीन हो गया। नाथजी की इस प्रकार की चरित्रगाथा यवनों में, जंगल-जंगल में और द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में अर्थात् सर्वत्र फैल गई और हिन्दू तथा मुसलमान एक स्वर से उन्हें सिद्ध योगी कहने लगे।

यदा मात्रासृष्टावणिमगरिमादीष्टविभवः
तदाप्तिः प्राकाम्ये चरितमणिभेदं व्यवसितम्।
परं योगी मस्तः परमशिवभूत्या परिचरन्
निगूढो देवोऽसौ किमु परमहत्त्वं न दवयेत्।।५१।।

जैसे रूप आदि तन्मात्राओं की रचना में ध्यान करने से जो अणिमा, गरिमा आदि अभीष्ट विभव (ऐश्वर्य) है उसकी प्राप्ति होती है, वैसे ही सन्तजनों से याचना करने पर चरित रूप नाना मणि प्राप्त होते हैं, परन्तु योगी मस्तनाथ परमशिव भूति (ऐश्वर्य) के साथ घूमता हुआ गुप्त देवता है, क्या वह परम महत् के पद को प्रदान नहीं कर सकता ? अर्थात् कर सकता है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते शुष्कतरुहरितीकरणपुत्रदानसिद्धिवर्णन-विषयविशिष्टो नाम चतुर्दशः सर्गः।

---

१. इसके भाव का पद्य प्रकाशित प्रति में निम्न है :-
विशाला ब्रह्मवृक्षस्य शोभा लोकोत्तरं यशः।
सिद्धिमस्तनाथस्य सद्यो विद्योततेतराम्।।४९।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद-यवनेषु सार्था सिद्धः प्रसिद्धः किल योगिसंघे।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
..............नाथजी के चरित्र की गाथा यवनों के साथ-साथ योगियों में भी एक प्रसिद्ध सिद्ध के रूप में फैल गई।

पञ्चदश: सर्ग:

पाईदण्डदानप्रकरणम्

रुद्रोऽरौत्सीच्छ्रुतिशतपथैरप्यगम्य: प्रवृत्तम्
धारासारं सुरपतिकृतं संसृतेर्लौकिकानाम्।
ध्यातो मुक्त्या सुजननिहित: स्वीयवृत्त्या स्वचित्ते
कैलासस्थो जयति सरितो धारको य: सुराणाम्।।१।।

जो वेदों के सैंकड़ों मार्गों (अथवा वेदों की सैंकड़ों शाखाओं) से भी जानने योग्य नहीं है और जिन्होंने विष्णु के पैर से निकली गंगा को रुद्र रूप धारण करके अपने शीश पर रोक लिया था, जिनका सांसारिकजन मुक्ति के लिए ध्यान करते हैं तथा सज्जन जिनको अपनी एकाग्र वृत्ति से अपने चित्त में धारण करते हैं, ऐसे देवों की सरिता (गंगा) को धारण करनेवाले कैलासवासी भगवान् शंकर सर्वोपरि विराजमान हैं।

संसारे स्वां सपर्यां जनयति भजक-भ्रान्तिहारां सुताराम्
संसाराब्धेरमेयाममितसुखददां चित्ततुल्यस्य भित्तौ।
भित्त्वा स्वस्मिन् स्ववेद्यस्मृतिहरणपरिस्पन्दविघ्नान्धकारम्
अज्ञानाज्जायमानं निजपरवपुषश्चिन्मयस्यैव कर्तु:[1]।।२।।

संसार में भक्तों की भ्रान्ति को हरनेवाली, भवसागर से भली प्रकार पार उतारनेवाली, संसार सागर में रमण करने योग्य (अत्यन्त सुख देनेवाली), मन की दीवार में भेदन करके (अन्त:करण में झांककर) स्वयं में अपने से जानने योग्य स्मृति का हरण करनेवाली, प्रवाहमान (निरन्तर) अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को दूर करनेवाली, अपने और पराये आकारवाले विशुद्ध ज्ञानमय कर्त्ता (परमात्मा) की अपनी पूजा को जो उत्पन्न करता है, ऐसे गोरक्षनाथजी हैं।

संसारे स्वां सपर्यां जनयति भजकभ्रान्तिहारां सुतारां
विक्षुब्धां दुग्धसिन्धोरधिगतपरमां शान्तस्वान्तस्थभित्तौ।
भित्त्वा स्वस्मिन् स्ववेद्यस्मृतिहरणपरिस्पन्दनिस्पन्दभावम्
अज्ञानाज्जायमानां चिन्मयवपुषा मस्तनाथ: स पायात्[2]।।२।।

---

१. पाण्डुलिपि।   २. प्रकाशित प्रति।

जो संसार में भजन करनेवालों की भ्रान्ति को दूर करनेवाली, भवसागर से पार ले जानेवाली, आलोडित (मथे हुए) क्षीरसागर से प्राप्त हुई सर्वोत्कृष्ट रूप वाली, अपने अन्तःकरण की दीवार को भेद कर अपने में स्वयं को जानने योग्य (आत्मा में अनुभव किए जाने योग्य), स्मृति का हरण करने वाली, शाश्वत सुख के भाव को प्रवाहित करनेवाली, अज्ञान से उत्पन्न (अनजाने ही पूजा को उत्पन्न करनेवाला अर्थात् उसे देखकर स्वतः मनुष्य में पूजा की भावना उत्पन्न हो जाती है) अपनी पूजा को उत्पन्न करता है ऐसे चिन्मय शरीर से मस्तनाथजी हमारी रक्षा करें।

अधिकतरसपर्या नावतारं विनास्य
जनिरपि कुहचिच्चेन्नो मृतिर्यस्य पुंसः।
मृतिरहितयदोर्वा रामभद्रस्य तत्र
विमुखजनमनःसु[1] ध्येयगोरक्षनाथः।।३।।

अवतार के बिना इसकी इतनी अधिक पूजा नहीं हो सकती ? जन्म कहीं पर भी हो परन्तु यदि जिस पुरुष का मरण नहीं है तो वह भी अवतार ही है। अतः जन्म और मरण से रहित यदुवंशी श्रीकृष्ण व श्री रामचन्द्र से विमुख व्यक्तियों के मन में ध्यान करने योग्य यह गोरक्षनाथजी ही हैं। क्योंकि यदि यह अवतार न होता तो इतने सारे लोग इनकी पूजा कदापि नहीं करते और जो व्यक्ति कृष्ण व राम की पूजा न करना चाहे वह गोरक्षजी का ही चिन्तन करले, क्योंकि वह भी भगवान् का ही अवतार है। बात एक ही है, केवलमात्र नाम भिन्न-भिन्न हैं।

नास्योत्पत्तिर्मृतिर्नास्य वा मनस्येव दृश्यते।
तस्याऽवतारा तादृशा गोरक्षा बहवोऽभवन्[2]।।४।।

जिसकी उत्पत्ति व मरण वामन (अवतार) की भांति देखने में नहीं आता उन शिव के अवतार उन्हीं के समान बहुत से गोरक्षनाथ हुए अर्थात् गोरक्षजी भक्तों के कल्याणहेतु अनेक बार भिन्न-भिन्न रूपों में जगत् में भासित हो जाते हैं और फिर तिरोहित हो जाते हैं।

जनिमान् मृतिमान्नैव यदुकृष्णसमो भुवि।
एकदाऽनेकरूपोऽभून्मस्तनाथः शिवः स्वयम्।।५।।

---

१. पाठभेद–ताभ्यां सकलसृतिविधाता .... ।।३।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

यदुवंशी श्रीकृष्ण की भांति जिनका जन्म-मरण नहीं है ऐसे स्वयं शिवस्वरूप मस्तनाथजी एक समय में अनेक रूप वाले हुए।

कलोईनगरं प्राप्तः श्रीमस्तनाथदैशिकः।
समर्थोऽर्थ्यर्थपूर्त्तीनां निदानमापदां हरः[1]।।६।।

याचकों के मनोरथ को पूर्ण करने का सामर्थ्य रखनेवाले व आपत्तियों को हरनेवाले मस्तनाथजी एक बार घूमते-घूमते कलोई नगर में जा पहुंचे।

भक्तिमन्तो दानयुक्ताः श्रद्धावन्तः सुयाजिनः।
देवतागुरुसिद्धानां यत्रार्हास्तत्र साधवः[2]।।७।।

जहाँ देवता, गुरु व सिद्धों की पूजा होती है तथा भक्ति, दान, श्रद्धा, यज्ञ करनेवाले व्यक्ति निवास करते हैं वहीं पर साधुजन जाया करते हैं।

परस्परेर्ष्याद्विषाणां मदानां हानमैश्वराः।
अवताराः सिद्धिवृन्दैः कुर्वन्ति शास्त्रदेशनैः।।८।।

ईश्वर के अवतार अपनी सिद्धियों से और शास्त्रों के दृष्टान्तों से लोगों के परस्पर के ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि को दूर कर देते हैं।

आपदो दुरितं रोगाः क्लेशा एषामनादरात्।
सिद्धा ये देवताभक्ताः सुरा ये गुरवः सताम्।।९।।

जो सिद्ध हैं तथा देवताओं के भक्त हैं अथवा देवता हैं अथवा सज्जनों के गुरु हैं–इनका अनादर करने से व्यक्ति को विपत्ति, पाप व नानाप्रकार के क्लेश घेर लेते हैं।

विप्रा ये जपमाहात्म्यात्सिद्धिं प्राप्ता महर्षयः।
तपस्विनस्तामसास्ते ज्ञानिनः सात्त्विकाः सुखाः।।१०।।

जिन ब्राह्मणों ने जप के माहात्म्य से सिद्धि प्राप्त की वे महर्षि कहलाते हैं तथा वे तपस्वी तामस कहे जाते हैं और जो ज्ञानी हैं वे सात्त्विक तपस्वी कहलाते हैं। अर्थात् ज्ञान के बिना केवल जप के द्वारा जो सिद्धि अर्जित की जाती है वह तामसी

---

१. पाठभेद–............................. मस्तनाथः प्रतापवान्।
सर्वेच्छापूरकः साक्षाद् स भर्गोऽपि नराकृतिः।।५।। (प्रकाशित प्रति)
सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले, नर के रूप में साक्षात् भगवान् शंकर (तिज), वे प्रतापी मस्तनाथजी (एक बार) कलोई नगर में जा पहुंचे।

२. पाठभेद–.. यियक्षवः।
दिदृक्षवः साधुसिद्धान् समृद्धा आसते जनाः।।६।। (प्रकाशित प्रति)

होती है और ज्ञान होने पर जो सिद्धि हासिल की जाती है वह सात्त्विक सिद्धि होती है।

जपपूजासत्वमार्गोऽद्वैतात्मज्ञानतत्त्वत:।
ज्ञानाभावाद् विवेकेन स्वस्वरूपपरिस्थिति:[१]।।११।।

अद्वैत आत्मा के ज्ञानतत्त्व से जो जप-पूजा आदि किए जाते हैं वह सात्त्विक मार्ग कहलाता है और इसमें ज्ञान के न रहने से विवेक के माध्यम से अपने स्वरूप का परिचय किया जाता है।

मस्तनाथ: स योगीन्द्र: सात्त्विको निजज्ञानवान्।
गोरक्ष: स्वोपदेशी च हुतभुक् तपनो जपी[२]।।१२।।

वह योगिराज मस्तनाथजी सात्त्विक (सिद्धियोंयुक्त) आत्मज्ञानी हैं। ये साक्षात् भगवान् गोरक्ष ही हैं। अपने मन को वशीभूत रखनेवाले, यज्ञशेष का भोग करनेवाले, तप तथा जप करनेवाले हैं।

बाध्यबाधकरूपे द्वे कृत्वा स्वस्मात् स्वयं स्थित:।
स्वमायागुणमाविश्य स्वयं मायाकृतिर्भवेत्[३]।।१३।।

स्वयं से स्वयं को बाध्य और बाधक दो रूपों में विभक्त करके स्थित है जो अपनी माया के गुण में प्रवेश करके स्वयं माया करनेवाला है।

कदाचित्पर्य्यटन् रम्यां कलोईनगरीं क्वचित्।
तत्रत्य सुन्दरीदृष्टिं प्राप्त: सुन्दरसद्वपु:[४]।।१४।।

---

१. ८, ९, १०, ११ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

२. पाठभेद–..............................बोधवान्।
भगवानेष कुरुते विविधां विधाम्।।१२।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

४. पाठभेद–..अगात्।
नानाभक्तजनांकीर्णं विशालां देवराजिताम्।।९।।
...............नाना भक्तजनों से भरी हुई, देवों से सुशोभित, विशाल एवं रमणीक कलोई नगरी में गए।
इसके पश्चात् प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
महिला काचित् तत्रासीत् सलिलार्थं समागता।
तयाऽदर्शि मस्तनाथो नग्नदेह: शिवोपम:।।१०।।
कोई स्त्री वहाँ जल लेने के लिए आई। उसने नग्न देह वाले शिव के समान (तेजस्वी व भस्म रमाए हुए) मस्तनाथ जी को देखा।

किसी समय रमणीक उस कलोई नगरी में कहीं घूमते हुए तेजस्वी एवं सुन्दर देहवाले नाथजी को वहां की एक सुन्दरी ने देखा।

हरिसिंहस्य जाया सा वनिता जनमोहिनी।
रतिर्वा कामदेवो वा तया नैव तुलां दधौ[१]।।१५।।

लोगों को मुग्ध करनेवाली वह नारी हरिसिंह की पत्नी थी। उसकी बराबरी कामदेव की पत्नी रति अथवा स्वयं कामदेव भी नहीं कर सकते थे।

हिमस्य पिण्डं विधुमेव सर्वं हैयङ्गवीनस्य सितिम्न ईशः।
विधिः स्वरूपं नरतुल्यरूपं व्यधत्त सा तेन सितेति मन्ये।।१६।।

विधाता ने हिम के पिण्ड से अथवा सम्पूर्ण चन्द्र से अथवा शुभ्र नवनीत (मक्खन) से उस नारी के शरीर का निर्माण किया था। इसी कारण वह गौराङ्गी थी, ऐसा मैं समझता हूँ।

रूपयौवनगर्वेण मदोन्मत्ता धनेन सा।
पातिव्रत्यैकतो नान्यां सिद्धिं कां न च मन्यते[२]।।१७।।

रूप व यौवन के गर्व से गर्वित तथा धन मद से उन्मत्त व पतिव्रत धर्मानुसार मात्र पति को ही देवता मानती थी, अन्य किसी सिद्धि में उसकी आस्था नहीं थी।

जलं हर्तुं प्रत्यहं सा कूपं याति समागता।
कूपपानीयहर्त्रीणां संगत्याऽश्रावयच्च ताः[३]।।१८।।

वह जल लेने प्रतिदिन कुएँ पर जाया करती थी। उसी नियम के अनुसार वह उस दिन भी आई और कुएँ पर पानी भरनेवाली स्त्रियों को सुनाने लगी।

योगी स सुन्दरवपुर्जितकाममूर्तिः भस्माङ्गरागकपिलश्च जटाकलापः[४]।
नग्नो व्यलोकि मदमत्ततनुर्विलज्जः कस्मात्प्रजाः[५] सबहुमानमिमं नमन्ति।।१९।।

---

१. पाठभेद–गर्विता यौवनाक्रान्ता विमूढा नाथबोधने।।११।। (प्रकाशित प्रति)
जो यौवन के मद के कारण नाथजी को समझने में मूढ़ थी।

२. १६, १७ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

३. पाठभेद–तत्रागता उवाचासौ नारीः सर्वा जलार्थिनी।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
इसके पश्चात् प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
तत्रैव मस्तनाथोऽसौ किंचिद् दूरं समास्थितः।
नाथेन्द्रवृन्दयोगीन्द्रजटासंघातकेसरी।।१३।।

४. पाठभेद–जटाविशालः।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–जनाः।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

सौन्दर्य में कामदेव से भी बढ़कर, शरीर में भस्म रमाए हुए और पिंगलवर्ण की जटासमूह वाले, मदोन्मत्त, नग्न शरीरवाले निर्लज्ज उस योगी को प्रजाजन देख रहे हैं और न जाने किस कारण अत्यन्त आदर के साथ उसे प्रणाम कर रहे हैं।

अङ्घ्री[१] कश्चित् स्पृशति बहुशो देववत् स्तौति वान्यः[२]।
अन्धालिङ्गं[३] विवसनतनुं प्रेक्षमाणाः सचीराः।
दर्शं दर्शं मुदितमनसा भाग्यशंसाप्रवादाः[४]।
ईशस्त्वं वा गुरुरपि कथं तं स्तुवन्त्येव हास्याः।।२०।।

कोई पैर छू रहा है व दूसरा कोई देवता की तरह बहुत अधिक स्तुति कर रहा है, स्वयं वस्त्र पहने हुए भी लोग वस्त्रों से रहित शरीर वाले उसको देखते हुए अन्धे हो रहे हैं (अथवा सभी अन्धे हुए, विवेकहीन हुए) नग्न देह वाले उसको देख रहे हैं। कोई-कोई तो बार-बार देखकर मन ही मन प्रसन्न हो अपने भाग्य की प्रशंसा कर रहे हैं और कोई अन्य कह रहा है कि तुम ईश्वर हो, तुम गुरु हो, तुम्हारी स्तुति किन शब्दों में करें परन्तु ये सभी लोग हंसी के योग्य हैं अर्थात् मुझे तो इन्हें देखकर हंसी आ रही है।

बिभाय नारी विजहौ न चाग्रहं सिषेध सन्देहमुवाह भूमिकाम्।
मुमोह तद्धाम ललाट नो खलु रेजे न चानर्च शिवं जहास सा[५]।।२२।।

नारी डर गई परन्तु उसने हठ नहीं छोड़ा और संदेहास्पद तर्क-वितर्क करती रही। उस परमतेजस्वी के मोह में फँसी रही और निश्चय ही वह न प्रसन्न हुई और न ही उसने शिव (कल्याणकारी) की पूजा ही की, अपितु वह हँस पड़ी।

निन्दां श्रुत्वा सकलमहतां तादृशी त्वं विचिन्त्य
भाव्यं कान्ता जनगणचये मा भवेदाह वाचा।
साधूनां भो भगवति सदा वर्तते चेदवस्था
नाऽत्र ग्लानिर्भवतु भवती भाग्यवत्सु प्रसूता।।२३।।

समस्त महात्माओं की उस प्रकार की निन्दा सुनकर नाथजी ने विचार कर कहा कि तू भी इसी तरह नंगी हो जायेगी। परन्तु स्त्रीसमुदाय में तुम्हें ऐसा होना उचित नहीं है। हे भगवति ! साधुओं की हमेशा ऐसी ही अवस्था होती है। इस विषय

---

१. पाठभेद–पादौ।`````।।१५।। प्रकाशित प्रति २. पाठभेद–चान्यः`````।।१५।। प्रकाशित प्रति
३. पाठभेद–सर्वे वान्धा।`````।।१५।। प्रकाशित प्रति
४. पाठभेद–प्रवाहा।`````।।१५।। प्रकाशित प्रति ५. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

में आपको ग्लानि नहीं होनी चाहिए क्योंकि आप तो धनवानों के यहाँ उत्पन्न हुई हो।

धनिनामैश्वरी माया चीराकल्पादिधारणम्[१]।
अनीश्वराणां तद् दृष्ट्वा नोपहासो विधीयताम्।।२४।।

धनिकवर्ग जो अनेक प्रकार के रेशमी वस्त्र व आभूषणादि धारण करते हैं, यह ईश्वर की माया है। अत: निर्धनों को वस्त्रहीन देखकर उनका उपहास नहीं करना चाहिए।

न समा रचिता धात्रा निर्धना: सधनास्तत:।
कुलीना अर्हयन्त्येव[२] मानयन्ति सत: सदा।।२५।।

विधाता के द्वारा गरीब और अमीर समान नहीं बनाए गए परन्तु कुलीन व्यक्ति सर्वदा ही सज्जनों की पूजा करते हैं और उन्हें सम्मान देते हैं।

नमन्त्येव न निन्दन्ति श्रुत्वा प्राहाऽतिकर्कशम्।
अकुलीनस्त्वं कुलीनत्वं त्वदुक्त्या मे व्रजेन्नु किम्।।२६।।

और जो अच्छे होते हैं वे सज्जनों के सामने झुका करते हैं, उनकी निन्दा नहीं करते–इस प्रकार के नाथजी के वचन सुनकर उस नारी ने अत्यन्त कठोर वचन कहा–तू अकुलीन है जो नंगा फिरता है तुम्हारे कहने से क्या मेरी कुलीनता चली जायेगी ?

गाली: श्रुत्वा वचनरचने व्यङ्ग्यभङ्ग्या तदीया:[३]
मत्ताकल्पा बहुतिथसुमालीव वाङ्[४] नात्र योज्या।
नीरं दत्तं दहनसुमुखं[५] वर्द्धयत्येव वह्निम्
मत्वा मस्तो बहुलकठिनं[६] तदेत्थं शशाप।।२७।।

अपने वाक्यों में व्यंग्य रूप से दी हुई उसकी गाली सुनकर नाथजी ने सोचा कि यह उन्मत्त (पागल) की भाँति है। अत: सद्माली की भांति इससे अधिक देर तक बातें करना उचित नहीं क्योंकि अग्नि के ऊपर जल डालने से उसके कण बढ़ते ही हैं उसी तरह इसका क्रोध भी मेरे मधुर वचनों से बढ़ता है। इसीलिए इसको समझाना बहुत कठिन है ऐसा जानकर उसे इस प्रकार शाप दे दिया।

---

१. पाठभेद-कौशेयचीरधारणम्…।।१८।। प्रकाशित प्रति २. पाठभेद-पूजयन्त्येव…।।१९।। प्रकाशित प्रति
३. पाठभेद-स्पष्टरूपास्तदीया…।।२१।। प्रकाशित प्रति ४. पाठभेद-बहुतिथमलं भाषणं।।२१।। प्रकाशित प्रति
५. पाठभेद-दहननिचये…।।२१।। प्रकाशित प्रति ६. पाठभेद-प्रभुशिवगतिं।…।।२१।। प्रकाशित प्रति

हे गर्विले त्वमसि भाग्यवती सुधन्या विज्ञासि मे न हि विभूतिधरा विवासस: ।
मद्वत्स्वकर्मनिचयेन पुराकृतेन या भामिनी प्रतिफलन्ति निजोप्तकानि[1] ।।२८।।

हे अभिमानिनी ! तू भाग्यवती है, धन्य है, परन्तु मेरी महिमा को तू नहीं जानती। तू भी मेरी भाँति पूर्वजन्म में किए गए कर्मवश भस्मधारिणी व वस्त्ररहित हो जा, क्योंकि जो जैसा बोता है वैसा काटता है।

विरूपाक्षावतारस्य गौतमेनाऽवमाननात् ।
चिह्नपूजाकृता यद्वत् तद्वन्मां मानयिष्यसि[2] ।।२९।।

जैसे शिव अवतार का अपमान गौतम ने किया था और फिर दुःखी होकर उसके लिङ्ग की पूजा करनी पड़ी थी, उसी तरह तू भी मेरा मान करेगी।

जहसुर्वनितास्तत्र पानीयार्थं समागता: ।
निरसं खोखरां ज्ञात्वा वनेऽयात्तत्र सद्गुरु:[3] ।।३०।।

नाथजी के इस प्रकार वचन सुनकर वहां जल हेतु आई हुई स्त्रियां हंसने लगीं तब सद्गुरु उस खोखरा प्रदेश को नीरस (भक्तिभाव रहित) जानकर वहां से वन में चले गए अर्थात् खोखरा कोट के सूने जंगल में प्रवेश कर गए।

खोखराजङ्गले गत्वा जङ्गमानां सुदुर्गमम् ।
अतिविस्तारविस्तीर्णमासने तस्थिवान् गुरु:[4] ।।३१।।

चेतन प्राणियों के लिए भी जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है और अत्यधिक विस्तार के कारण फैले हुए खोखरा नामक जंगल में गुरु (मस्तनाथजी) आसन पर बैठ गए। अर्थात् वहाँ पहुंचकर वे सिद्धासन में बैठ ध्यानमग्न हो गए।

---

१. पाठभेद–हे गर्विले ! त्वमसि शीलवत्सु धन्या गण्यासि वेत्सि न महिमानममुं मदीयम् ।
मद्वत्स्वकर्मनिचयेन पुराकृतेन भस्माङ्गरचिता त्वमपि प्रभूया: ।।२२।।
(प्रकाशित प्रति)

हे घमण्डी नारी ! तुम सदाचारिणी नारियों में मूर्धन्य एवं धन्य हो परन्तु मेरी इस महिमा के विषय में नहीं जानती। अत: मेरी भांति अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण तुम भी अपने अंगों में भस्म लगाने वाली बन जाओ।

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

३. पाठभेद–नीरसं देशमालोक्य मस्तनाथस्ततोऽगमत् ।।२३।। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

यान्त्या अध्वनि तत्क्रोधस्वान्ताया: निहितो[१] घट:।
तारयिष्यति मस्तस्त्वां वदन्[२] भूमौ लुलोठ ह।।३२।।

तब मन में क्रोध से भरी हुई मार्ग में जाती हुई उस स्त्री के सिर पर रखा हुआ घड़ा "मस्तनाथजी ही तुम्हें पार उतरेगा"–इस प्रकार कहता हुआ भूमि पर लुढ़क गया अर्थात् जमीन पर गिर पड़ा।

गृहं गता यदा पाई निन्दामात्रेण चेतस:।
विकृतिं प्राप्तवत्येव भूतावेशेन शापत:।।३३।।

जब पाई नाम की वह नारी घर पहुंची तो शाप के कारण उसकी ऐसी हालत हो गई थी जैसी भूत से अभिभूत होने पर हो जाती है और उसका चित्त भी नाथजी की निन्दा करने से विकृत हो गया था अर्थात् उसके मन में अजीब सी बेचैनी पैदा हो गई थी।

उदासीनं तदा चित्तं प्राग्जातं क्षणतस्तदा।
भूतेन गुरुभक्तेन कृतमुन्मत्तमीदृशम्[३]।।३४।।

तब पहले उसका चित्त क्षण भर के लिए उदास हो गया फिर गुरु की प्रेरणा से इस प्रकार उन्मत्त की भांति कर दिया गया अर्थात् पागल की तरह वह विवेकशून्य हो गई।

न पतिस्वामिता पुत्रे ममता नाऽपि तादृशी।
सम्बन्धिबान्धवा दूरे परं वैराग्यमापितै:[४]।।३५।।

उसमें पति के प्रति स्वामित्व का भाव नहीं रहा और पुत्र में भी उस प्रकार की पहले जैसी ममता नहीं रही। अपितु परम वैराग्यवान् पुरुषों की भांति उसने भी अपने सम्बन्धी व बन्धुओं से नाता तोड़ लिया।

क्षणो वर्षो भूत: क्षणकुकणिका घर्मदिवसा:
रविर्दाह: स्वान्तर्गुरुविरहदावाग्निनिचित:।
चितागेहं विश्वं हरचरणधूलिविरहितम्
परीतं सर्वै: स्वैस्तदपि नगरं प्रेतनिलय:[५]।।३६।।

---

१. पाठभेद–यो धृतो…।।२५।। प्रकाशित प्रति २. पाठभेद–नदन्…।।२५।। प्रकाशित प्रति
३. पाठभेद–उत्तम्भितं तदा…।।२७।। प्रकाशित प्रति ४. पाठभेद–आश्रिता।।२८।। प्रकाशित प्रति
५. ……………………ह्यतुलं बलशाली समभवत्।
परीतं सर्वै: स्वैस्तदपि नगरं प्रेतनिलयश्चितागेहं विश्वं हरचरणधूले विरहित्।।२९।।
(प्रकाशित प्रति)

उसका एक क्षण वर्ष के बराबर और पल भी गर्मी के दिन की भांति बीतता था तथा उसके अन्त:करण में गुरु के विरहरूप दावाग्नि का दाह सूर्य के प्रचण्ड तेज की भांति असह्य हो उठा। इसके अतिरिक्त शिव की चरणधूलि से रहित संसार श्मशान के तुल्य व समस्त परिजनों से युक्त नगर भी उसे प्रेतभूमि की भांति प्रतीत होने लगे[1]।

चीरं छित्वा तनुं नग्नां चकार तनुविभ्रमा।
विस्मृतं गौरवं तस्या गौरवेच्छाकराश्रयात्[2] ।।३७।।

उस नारी ने वस्त्रों को फाड़कर फेंक दिया और नग्न हो गई व योग से उपलब्ध गौरव प्राप्ति की इच्छा से अपनी उच्चकुलीनता तथा पतिव्रता रूप गौरवता भूल गई।

यानि यान्यभवंस्तस्या भूषणानि निजानि च।
छित्त्वा भित्त्वा चूर्णयित्वा दवयित्वा मुमोद सा।।३८।।

उसके जो-जो अपने आभूषण थे, उनको उसने तोड़कर, फोड़कर, चूरा करके जलाकर दूर फेंक दिया और स्वयं आनन्दमग्न होगई।

चुल्लीभस्म समादाय निजाङ्गे संलिलेप ह[3]।
गृहद्वारे बहिर्द्वारात् नयने निमिमील सा[4] ।।३९।।

---

१. पाण्डुलिपि में इसके पश्चात् दो पद्य दिए हुए हैं जिन्हें अनुवादक ने असम्बद्ध कहकर 'निकाल दिया है' लिखा हुआ है :-

(क) सखी बुद्धिर्दूती न च भवति कार्यार्थरचना।
न मित्रं स्पन्दोऽपि परिकथितमासीदिषुचय:।।
गुरो: स्फूर्ति: कृष्टि: सृणिरिव न सोढुञ्च सुशका।
मन: शून्यं निद्रा न च भवति मूर्च्छालमवितुम्।।३४।।

(ख) पति: साक्षादीश: श्रुतिषु पठितो वा बहुमत:
तमीशं संस्मृत्य प्रचुरमपि न क्षेम लभनम्।
उपाया: सर्वेऽपि प्रभुगुरुपदाधीनप्रभवो
न चालं तस्यैवं विपरिगमने सन्नमरणे।।३५।।

२. पाठभेद-गङ्गाधरसमा जाता गङ्गया रहितापि सा।
सर्वाङ्गे दिव्यवासांसि तानि चिक्षेप चौजसा।।३६।। (प्रकाशित प्रति)
गङ्गा से रहित भी वह पाई गङ्गा को धारण करने वाले शिव के समान हो गई और तेज के कारण सभी अंगों से उन दिव्य (सुन्दर) वस्त्रों को फेंक दिया अर्थात् नग्न हो गई।

३. पाठभेद–सा।३७।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद–तस्थौ ध्यानपरायणा।।३७।। (प्रकाशित प्रति)

उसने चूल्हे की राख लेकर अपने शरीर पर रमा ली और घर के दरवाजे के आगे आँगन में आकर आँखें बन्द कर लीं अर्थात् आंगन में आकर बैठ गई और ध्यानमग्न हो गई।

शिवगोरक्षमन्त्रेषु श्रद्धा जाता द्रढीयसी।
अनादिवासनाबद्धा तस्या यस्या दशेदृशी[१]।।४०।।

शिव-गोरक्ष मन्त्रों में उसकी श्रद्धा अधिक दृढ़ हो गई। जिसकी इस प्रकार की दशा थी उसकी अनादि वासना के कारण ही थी अर्थात् पूर्वजन्म में उसने आदिनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर भगवद्प्राप्ति का प्रयत्न किया था सो अब मस्तनाथजी का शाप इस जन्म में उसकी परमपद प्राप्ति के मार्ग पर प्रवृत्त होने का हेतु बना।

ॐ गोरक्षपदस्फूर्तिः स्वयं मन्त्रजपाऽभवत्।
स्वयं दृढ़त्वं तत्रैव मन्त्रे पूर्वं बभूव ह[२]।।४१।।

'**ॐ गोरक्षनाथाय नमः**' इस मन्त्र की स्फुरणा उसे स्वयं हो गई और वह स्वयं ही इस मंत्र का जाप करने लगी तथा इस मन्त्र में उसकी अपूर्व दृढ़ता (आस्था) हो गई।

सम्बन्धो हि क्षणस्यापि स जन्मान्तरकारणम्।
दिवामासाब्दसम्बन्धा भवेयुः कल्पकारणम्।।४२।।

वस्तुतः क्षण भर का वह सम्बन्ध भी दूसरे जन्म का कारण बन गया क्योंकि दिन, महीने तथा वर्षों के सम्बन्ध भी कल्प (व्यवहार में लाने योग्य) विधि के कारण बन जाते हैं।

सम्बध्नाति प्रबध्नाति जगदात्मा जगत्प्रभुः।
प्राणिनां सर्वलोकानां सम्बन्धान् संयुनक्ति सः[३]।।४३।।

जगत् का आत्मस्वरूप, संसार का स्वामी वह भली प्रकार बांधता है, प्रकृष्ट रूप से बांधता है व समस्त लोकों के प्राणियों के सम्बन्धों को अच्छी तरह जोड़ता है।

पलायितुं वनं यावदुन्मत्ता प्रतिचक्रमे[४]।
पृष्ठतश्चलिता लोकाः क्व याति प्रेक्ष्यतामियम्।।४४।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. ४२, ४३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
४. पाठभेद—पलायनपरा जाता यदा सा विपिनं प्रति।।३६।। (प्रकाशित प्रति)

जब वह पागल होकर जंगल की ओर भागने लगी तब सब लोग उसके पीछे-पीछे चलने लगे और कहने लगे कि देखो, यह कहाँ जाती है।

कश्चिद् गत्वा पतिं तस्या हरिसिंहमुवाच भोः।
पश्य ते वनिता याति प्रोन्मत्ता रोधयाशु ताम्।।४५।।

उनमें से कोई जाकर उसके पति हरिसिंह से कहने लगा कि अरे ! देखो, तुम्हारी स्त्री पागल होकर जा रही है, उसे जल्दी से रोको।

श्रावं श्रावं जनरवमथ स्वाद् गृहाद्याति यावत्,
पुंभिः स्त्रीभिश्चकितचकितं प्रेक्षमाणा हसन्ती।
निर्वस्त्राङ्गा शिव शिव पदं गोरखं वा जपन्ती,
दृष्टा कान्ता गतकुलवधूवृत्तमावेदयन्ती[१]।।४६।।

जब वह घर से निकली तो लोगों का होहल्ला सुनकर सभी नर-नारियों ने उसे बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि वह वस्त्ररहित है और हंस रही है तथा उसने अपने स्वाभाविक कुलवधू के आचार को बिल्कुल त्याग दिया है तथा 'शिव, शिव गोरक्ष' इस प्रकार जप कर रही है।

किन्तेऽभावि प्रकटसकलाऽङ्गासि नादृष्टपूर्वा
नेत्थं कान्ताचरितमथ यत्ते मुखं भास्करस्य।
जालासङ्गादपि न करतः किञ्चिदाकुञ्चितार्हम्
सर्वो लोकश्चलितचलितं ते नु यात्यक्तदेहम्[२]।।४७।।

उसका पति उसे समझाने लगा कि तुम्हें क्या हो गया है ? जो कि तू नग्न हो गई है। इस प्रकार पहले कभी नहीं देखी थी। स्त्रियों का ऐसा चरित नहीं होता, जो तुम कर रही हो। तुम्हारे जिस मुख को सूर्य की किरणें तक नहीं छू पाती थीं, आज सभी लोग उस मुख की निन्दा कर रहे हैं तथा तेरे इस उच्छृंखल चलन के पीछे-पीछे सब लोग जा रहे हैं अर्थात् तुम्हारी इस दशा को देखकर सब लोग हैरानी मानते हुए तेरे पीछे-पीछे चल रहे हैं।

वासो दत्वा गृहं नीत्वा बोधिता बहुधाऽपि सा।
केनोन्मत्ता मनोवृत्तं सम्यगावेदयाशु माम्[३]।।४८।।

---

१. पाठभेद–गोरक्षात्मा मघवदिशि यं कुर्वती शैवपादं।
निर्धूताङ्गा गणयति न साऽपत्यपत्योर्विमोहम्।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

३. पाठभेद–वस्त्रं दत्त्वा गृहं नीत्वा हरिसिंहेन बोधिता।
केनोन्मत्ता कृता पृष्टा कथ्यतां सा पुरो मम।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

फिर वस्त्र देकर उसे घर ले गया और उसे बहुत प्रकार से समझाया तथा पूछा कि तुम्हें किसने पागल बना दिया। अपने मन की बात ठीक से तुरन्त मुझे बताओ।

हृदयानन्दनं हित्वा बालं त्वमेकहायनम्।
ममतां स्वां मयि त्यक्त्वा मत्ता केनासि हेतुना।।४९।।

तुम हृदय को प्रसन्नता देने वाले एक वर्ष के बालक को छोड़कर और मेरे प्रति अपने प्रेम को भी छोड़कर किस कारण से उन्मत्त (पागल) हो गई हो अर्थात् ऐसा कौनसा कारण है जो तुमने अपने बालक का भी परित्याग कर दिया जो कि एक नारी के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है।

कुलस्त्रियो नो परपुंसदृश्याः परत्र चेहाथ विनिन्दना च।
देव्यो नराणां गृहभाग्यलक्ष्म्यो भवन्ति सत्यो मधुरोक्तिरेषा।।५०।।

कुलीन नारियों की परपुरुष का दर्शन करने से इस लोक व परलोक में भी निन्दा होती है और ऐसा सुभाषित है कि अच्छे कुल की सती स्त्रियाँ पुरुषों के घर की साक्षात् लक्ष्मी होती हैं।

यन्मन्दिरेषु कलहो न हि कर्हिचिच्च कान्ताः स्वसक्तहृदि।
हृद्यं ग्रहीतुमलमेकदृशोऽवलोको यासां च तानि नरकेतरलोकम्।।५१।।

इसके अतिरिक्त जिन घरों में कलह नहीं होता, स्त्रियाँ पतिव्रता व पतियों में आसक्त चित्तवाली हों तथा जिन स्त्रियों की एक नजर भर हृदय को आकर्षित करने में समर्थ हो, ये सब स्वर्गीय पदार्थ हैं।

तत्रापि चात्रापि न वा तया चाचारस्तया नैव विपर्य्ययेण।
प्रदर्शितो वृद्धिमितोऽथ तस्याः पदे पदे संस्खलितानि वा रवे[1]।।५२।।

उस नारी ने विपरीत भाग्य के कारण कहीं पर भी अधिक आचार-व्यवहार को नहीं दिखाया और कदम-कदम पर काम करते समय गलतियाँ हो जाया करती थी, क्योंकि वह उदासीन होगई थी, अतः उसका चित्त किसी काम में नहीं लगता था।

जलाहारी काऽपि तस्या अन्याभ्यो विदिता स्पशा[2]।
प्राह पत्ये तदीयाय शापोऽयं[3] मस्तनाथतः।।५३।।

---

१. ५०, ५१, ५२ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

२. पाठभेद–तथा...... ।।४१।। प्रकाशित प्रति ३. पाठभेद–कोपोऽयं।।४१।। प्रकाशित प्रति

उसके साथ जल लानेवाली दूसरी स्त्रियों में से किसी ने बहुत-सी स्त्रियों के सामने उसके पति हरिसिंह से कहा कि यह मस्तनाथजी द्वारा दिया गया शाप ही है।

ततोऽतिरक्ताक्षतनुः प्रभूतशस्त्राणि संधाय जुगोप्यतायम्[१]।
वने वनेचारिणमाजुहाव युद्धाय दुःसिद्ध ! ततो बभाषे[२]।।५४।।

तदनन्तर हरिसिंह की दृष्टि व शरीर क्रोध से लाल हो गए और शस्त्र बाँध वन में जाकर जंगल में विचरण करनेवाले मस्तनाथ जी को युद्ध के लिए ललकारा कि हे दुष्ट सिद्ध ! अब सावधान होकर अपनी रक्षा करो।

परस्य कान्तां किल कालकोपनां
विधाय मायाच्छलमाश्रितो भवान्।
न बालकान्ताकलितेन कस्वरा
भवन्ति नो योगिजना विमत्सराः।।५५।।

निःसंदेह दूसरे की कान्ता (प्रिय पत्नी) को प्रलयंकारी क्रोध का पात्र बनाकर आपने माया से छल का आश्रय लिया है अर्थात् आपने यह अनुचित कार्य किया है क्योंकि दूषित वचन कहनेवाली नादान स्त्री के द्वारा आप जैसे योगिजन विशेष ईर्ष्या से युक्त नहीं होते। अर्थात् योगिजन स्त्रियों की बातों की परवाह नहीं करते। आपके लिए यह शोभनीय नहीं था जो आपने इस प्रकार क्रोध किया।

सहिष्णुता धर्मत एव योगिनां विवर्धते धर्मचयः समुच्चयः।
पिपीलिकापादतलं नभस्तलं विगाहते किं वद मस्तनाथक।।५६।।

सहनशीलता योगियों में धर्म से ही होती है अर्थात् स्वाभाविक होती है, यह उनका कर्त्तव्य होता है। आपकी धर्मराशि का भण्डार विशेषरूप से बढ़ रहा है। हे मस्तनाथ ! बताइए क्या कभी चींटी के पादतल आकाशतल का अवगाहन करते हैं ? अर्थात् एक छोटी-सी चींटी और विस्तृत गगनतल क्या कभी ये दोनों समान हो सकते हैं ? उसकी और आपकी मानसिकता (समझ) में आकाश-पाताल का अन्तर है।

तपस्या धूलिकामध्ये मिलिता मस्तनाथ ! ते।
नारीवाक्येन संक्षुब्धस्त्वमहो ! सिद्धतापसः।।५७।।

हे मस्तनाथ ! तुम्हारी तपस्या धूल में मिल गई है। आश्चर्य है ! हे सिद्ध तपस्वी ! तुम नारी के वचन से उद्विग्न होगए।

---

१. पाठभेद–प्रभेक्षणः शस्त्राणि संधाय विधाय बन्धनम्। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–सज्जो भव मस्तनाथक।।४२।। (प्रकाशित प्रति)

रुषा कषायेण च चक्षुषा दहन्नुवाच कम्पाश्रितमाश्रितं वचः।
विपश्चितां चित्तचमत्कृतिं दधत् सिंहोत्तरोऽसौ हरिरित्थमूचिवान्[1]।।५८।।

और पुनः क्रोध के कारण लाल नेत्र से जलते हुए कांपते हुए स्वर में विद्वानों के चित्त की अद्‌भुतता को धारण करता हुआ जिसके पीछे 'सिंह' शब्द लगा हुआ है ऐसा वह हरि इस प्रकार बोला अर्थात् उस स्त्री के पति ने उस सिद्ध से अपनी स्त्री के प्रति किए गए क्रोधपूर्ण व्यवहार के विषय में विद्वत्तापूर्ण वचन कहे।

मृगेन्द्रसांमुख्यमितो दिलीपो यथा भुजस्तम्भनमाप तद्वत्[2]।
सज्जो विवक्षुश्च[3] न वा बभाषे तथापि तत्याज हठं यदा न[4]।।५९।।

मृगराज के पास जाकर राजा दिलीप की भुजा जैसे स्तम्भित (जड़) हो गई थी उसी तरह वह हरिसिंह भी युद्ध के लिए तैयार खड़ा रहा। वह कुछ कहना चाहता था परन्तु बोल नहीं सका परन्तु इतने पर भी उसने अपना युद्ध का हठ नहीं छोड़ा।

तदा तदीयं मदभङ्गमाविष्कर्तुं स्फुटं प्राह कुरु स्वमिष्टम्।
मस्तो यदा लक्ष्यधनुः सबाणं जंग्राह लक्ष्यादिषुरस्य हीनः[5]।।६०।।

तब उसके मद को चूर करने के लिए मस्तनाथजी ने स्पष्ट कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो। परन्तु जब हरिसिंह धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना लगाने लगा तो उसका बाण लक्ष्य से च्युत हो गया।

आसने न च मस्तोऽस्ति पुनरासनमाश्रितः।
कदाचित् दृश्यते भूयः कदाचिल्लुप्यते पुनः[6]।।६१।।

आसन पर मस्तनाथजी नहीं है और फिर आसन पर भी बैठे हुए हैं, इस प्रकार कभी दिखाई देने लगते और फिर कभी लुप्त हो जाते।

---

१. ५५, ५६, ५७, ५८ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–यद्वत्। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–तद्दरतस्तेन यदुक्तमुक्तं। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–न हठं त्वहासीत्।।४७।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–............ मदभङ्गनोद्यतः स मस्तनाथो न चचाल चित्ततः।
हरिः सलक्ष्यं धनुषो रुषान्वितो जग्राह बाणं गुरुधर्मविच्युतः।।४८।।
(प्रकाशित प्रति)

तब उसके अहंकार का नाश करने में उद्यत वह मस्तनाथ चित्त से विचलित नहीं हुआ अर्थात् अपने ध्यान में ही लीन रहा। तब गुरु के विमुख हुए हरिसिंह ने क्रोध से धनुष पर लक्ष्य संधान करके बाण को चढ़ाया। ६. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

दुष्टवत्त[1]त्परीक्षायां सिद्धं मेने गुरुं स्वयम्।
अन्तर्धानं प्रकाशं च वीक्ष्य सिद्धी स्फुटे तदा[2]।।६२।।

दुष्ट (अश्रद्धालु) जनों की भांति जब उसने नाथजी की परीक्षा कर ली तब उसने उन्हें स्वयं ही सिद्ध व अपना गुरु मान लिया और उनकी तिरोहित हो जाने व पुनः प्रकट होने की सिद्धियों को स्पष्ट देखकर वह हैरान होगया।

नत्वा चरणयोः शश्वत् प्रपपात तथादरात्।
दुष्टस्य चरितस्याऽथ क्षमाप्रार्थी मुहुर्मुहुः[3]।।६३।।

पैरों में बार-बार प्रणाम करके वैसे ही आदर के साथ उनके चरणों में गिर पड़ा और अपने कुत्सित आचरण के लिए बार-बार क्षमा मांगने लगा।

गुरुः प्राह सतां को वा विरक्तानां प्रियोऽप्रियः।
दुष्टो वा कुह भक्तो वा क्रोधः कोऽथ तपस्विनाम्।।६४।।

गुरुदेव कहने लगे कि विरक्त सन्तों को कौन प्रिय व कौन अप्रिय है, दुष्ट हो अथवा भक्त हो–तपस्वियों की दृष्टि में सब समान हैं और फिर तपस्वियों का क्रोध भी कैसा ? अर्थात् तपस्वी के लिए चाहे कोई अच्छा हो अथवा बुरा, सब समान होते हैं और उनका क्रोध भी थोड़ी देर के लिए ही होता है। वे किसी का अनिष्ट कर ही नहीं सकते।

केनासि कादरेणेदृग् वेद्मि प्राङ् मे न दूषणम्।
दूषणं दयितानिष्ठं न तवापि मया मतम्[4]।।६५।।

---

१. पाठभेद–दृष्टवत्। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–कस्य बाणो लगिष्यति।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
उस परीक्षा में दृष्टान्त की भांति स्वयं उसे सिद्ध गुरु समझ लिया क्योंकि तिरोहित हुए व फिर प्रकट हुए लक्ष्य पर किसका बाण लगेगा ? अर्थात् ऐसे लक्ष्य को कोई भी बींध नहीं सकता–ऐसा हरिसिंह ने मान लिया।

३. पाठभेद–पपात पादयोस्तवद् क्षमायाचनतत्परः।
अहो त्वं हि शिवः साक्षाद् गुरुरस्माकमादरः।।५१।। (प्रकाशित प्रति)
उनके पैरों में गिर पड़ा और उसके साथ ही क्षमा मांगने लगा तथा कहने लगा कि अहो ! तुम वस्तुतः भगवान् शंकर हो, साक्षात् हमारे आदरणीय गुरु हो।

४. न दोषो भवतो भाति न दोषो विद्यते मम।
दोषरूपा च ते कान्ता यया विद्धोऽस्मि वाक्शरैः।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
न ही आपका दोष प्रतीत होता है व न मेरा दोष है जबकि तुम्हारी पत्नी ही दोषी है जिसके द्वारा मैं वाणी रूप बाणों से बींधा गया हूँ।

तू क्यों इतना अधीर हो रहा है। मैं जानता हूं कि पहले न मेरा दोष था और अब न तेरा ही है अपितु यह दोष तो उस तुम्हारी स्त्री का है।

न त्वदर्हा क्वचित् साऽऽस्ते हेया ते सर्वथैव यत्।
स्वकृतं भुज्यते रामः पुनर्नैवावभाषते[1]।।६६।।

अब वह स्त्री तुम्हारे योग्य नहीं रही। सब प्रकार से त्याज्य है क्योंकि प्राणी अपने किए का फल भोगता है। बस अब दुबारा मैं कुछ नहीं कहना चाहता। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

ततः प्रतिनिवृत्याऽसौ मैनापाई स्वयं तदा।
गुरवे प्रापयत्स्माऽथो[2] शिष्यत्वाय स्वभक्तितः।।६७।।

तदनन्तर घर लौटकर उसने अपनी पत्नी मैनापाई[3] को बाबा की शिष्या बनाने के लिए स्वयं भक्ति से नाथजी को सौंप दिया।

वनितापूर्वरागेण नाथं तस्या विरागिणम्।
प्रार्थकं नाथमार्गं च शिशिक्षे वत्सपालनम्।।६८।।

स्त्री के पूर्व प्रेम से वैराग्य को प्राप्त हुए उसके स्वामी हरिसिंह को नाथजी ने नाथसम्प्रदाय की तथा अपने पुत्र को पालने की शिक्षा दी।

संस्काराः पालनं पुत्रसुतानां सकुटुम्बकम्।
जनने न तु पितॄणामृणाल्लोकप्रमोचनम्।।६९।।

(नाथजी कहने लगे कि) पुत्रों का संस्कार करना, परिवार सहित पुत्र तथा पुत्री का पालन करना और पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से मुक्त होना–यह सब कर्त्तव्य गृहस्थियों के हैं।

इत्येवं गुरुवाक्येन धर्मशास्त्राऽविरोधिना।
वारितो हरिसिंहस्तु गेहं निववृते सुखम्[4]।।७०।।

गुरुदेव के इस प्रकार के धर्मशास्त्र के अनुकूल उपदेश से हरिसिंह का मोह तथा क्रोध दूर हो गया और वह सुखी होकर अपने घर लौट गया।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद-............मैनां पाई.......... ।
आदाय गुरवे प्रादात्......... ।।५४।। (प्रकाशित प्रति)
३. ग्राम बालन्द (रोहतक) में रावली सरोवर के तट पर मैनापाई की तपस्थली रही है। आज भी ग्राम में इसकी बड़ी मान्यता है (डॉ० सुदर्शनदेव आचार्य से मिली जानकारी के अनुसार)।
४. ६९, ७० पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

कदाचित्समये प्राप्ते नाथमार्गाभिलाषिणी।
सोपदिष्टाऽपि मन्त्रेण दीक्षिता ज्ञानतस्तथा[1]।।७१।।

फिर कुछ समय बीत जाने पर नाथसम्प्रदाय से स्नेह रखनेवाली उस नारी को गुरुमन्त्रादि का उपदेश दिया गया। तदनन्तर वह ज्ञान से भी दीक्षित होगई।

देवताध्यानसंमग्ना मंत्रजापपरायणा।
हरिसेवापरा भक्त्या तत्रैवासीत् तपस्विनी[2]।।७२।।

वह हर समय देवों के ध्यान में मग्न रहती थी तथा प्रतिक्षण मंत्र का जाप करती रहती थी और प्रगाढ़ भक्ति से भगवान् की सेवा करती हुई वहां पर तप करने लगी।

समक्षमणिमाद्यष्टसिद्धिभूतिविराजिता।
दाक्षायणीव यज्ञे सा कैवल्यपदयापिनी[3]।।७३।।

वह प्रत्यक्ष अणिमादि आठ सिद्धि रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर दक्ष की पुत्री (सती) की भांति ज्ञान प्राप्त करके मोक्षपद की अधिकारिणी हो गई।

सिद्धा जाता महादेवी नाथतुल्या तपस्विनी।
पाईनाथेति विख्याता तत्रैवासीत् तपस्विनी।।७४।।

वह तपश्चर्या करने वाली महादेवी नाथ (मस्तनाथ) जी के समान सिद्ध हो गई और वहीं पर पाईनाथ नाम से विख्यात हुई।

दाक्षायणी च चूडाला मैना[4]चन्द्रावलादयः।
यथा जाताश्च योगिन्यस्तथा पाईसदुत्तमा।।७५।।

---

१. पाठभेद–ध्यानयोगतः।।५६।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–सृष्टिकर्त्तारमाश्रित्य काऽहं सृष्टिरियं कुतः।
कर्मणां बन्धनं क्वास्ते पाईध्यानपरायणा।।५७।। (प्रकाशित प्रति)
सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का सहारा लेकर (उसकी शरण में जाकर) मैं कौन हूँ ? यह सृष्टि क्या है, कर्मों का बन्धन कहाँ है (कर्म बन्धन कब बन जाते हैं)–इस प्रकार चिन्तन करती हुई पाई ध्यान में लीन हो गई।

३. ७२, ७३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। (प्रकाशित प्रति)

४. पाण्डुलिपि के अनुसार मैनापाई एक ही स्त्री का नाम है जबकि प्रकाशित प्रति के शंकरनाथजी रचित पद्य के अनुसार मैनापाई मैना और पाई दो स्त्रियों के नाम हैं। मेरे विचार में पाण्डुलिपि का मत ही प्रामाणिक है।

जिस प्रकार दाक्षायणी, चूडाला, मैना व चन्द्रावल इत्यादि योगिनारियाँ हुई, उसी प्रकार पाईनाथ भी उनमें सबसे श्रेष्ठ थी।

हरिसिंहकुलं पूतं नाथयोगिकृपावशात्।
पतितोऽप्युन्नतो जातो मस्तनाथकृपावशात्[१]।।७६।।

नाथयोगी की कृपा के कारण हरिसिंह का पतित कुल पवित्र हो गया तथा मस्तनाथजी की कृपा के कारण पतित भी उन्नत हो गया।

(बाबा शंकरनाथ योगी जी एक पद्य को उदाहरण के रूप में लिखते हैं)

त्रि-सप्तभिः पितापूतः पितृभिः सह तेऽनघ !।
यस्मिन् कुले त्वमुपन्नो भवान् वै कुलपावनः।।७७।।

हे पापरहित ! इक्कीस पितरों (२१ पीढ़ियाँ) के साथ तुम्हारे पिता पवित्र हो गए हैं और जिस कुल में आप उत्पन्न हुए हो वह कुल भी पवित्र हो गया है (आप निःसन्देह कुल को पवित्र करनेवाले हो)।

ईश्वरस्य जगत्सर्वमीशेन पाल्यते पुनः।
ईश्वरे च लयः प्रोक्तः किमन्यदवशिष्यते।।७८।।

यह समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वर का है और ईश्वर से ही यह पाला जाता है तथा ईश्वर में ही इसका लय हो जाता है–ऐसा कहा जाता है। उस परमेश्वर के अलावा और दूसरा क्या शेष बचता है ? अर्थात् ईश्वर ही सब कुछ है। बाकी उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते पाईदण्डदानं नाम पञ्चदशः सर्गः।

१. ७४, ७५, ७६ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

षोडशः सर्गः

धेनुसंजीवनादिप्रकरणम्

सुरभयः सुरनन्दिनिकासमाः सितपिशङ्गविचित्रसुवर्णिकाः।
सुजितबालसमूर्णजचीरका दधुरिवार्णवमूधसि तत्र ह[1]।।१।।

वहाँ देवों की गाय (कामधेनु) के समान, कोई श्वेत, कोई पीली-अनेक रंगोंवाली, जिनके बाल ऊनी कम्बलों से भी कोमल हैं और जिनके उध (ओहड़ी) में सागर की भाँति अपरिमित दूध भरा था, ऐसी गायें थीं।

अहरहो मिलिताः प्रतियन्ति ता वनमुदस्य रजः स्वपदां जने।
अखिल[2]दुष्कृतसञ्चयमेव यद् दिविषदो[3]मुमुहुश्च विलोकनात्।।२।।

वे गाएँ प्रतिदिन एकत्र होकर जब वन में जाती थीं तब उनकी चरणधूलि उड़कर समीपवर्ती मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर देती थी। इस दृश्य को देखकर देवजन भी मुग्ध हो जाते थे।

प्रतिदिनं पयसां भरतो निजाश्चरणधूलिविधूसरपालिनः[4]।
विशदमानसरागसुरञ्जिता अकृत ताभिरवेक्षणतो दिशा[5]।।३।।

वे गाएँ नित्य अपने दूध से, अपनी पादधूलि से धूसर वर्णवाले ग्वालों को तृप्त करती थीं तथा चारों दिशाओं में भ्रमण करने से उनके कृष्ण, पीत वर्णों से समस्त दिशाएँ शोभायमान हो जाया करती थीं।

अमृतपायसनिर्जरसेवना अमितपुण्यचयोज्ज्वलमानसाः।
स्वजनकोमलपाणितलाञ्चिताः शुभकृतामकृतामपि पोषिकाः।।४।।

गाएँ अपने अमृततुल्य मधुर दूध से वृद्धावस्था पर्यन्त सेवा करनेवाली, अपरिमित पुण्यसंचय से मन को उज्ज्वल करनेवाली हैं अर्थात् गोसेवा से असीम पुण्य की प्राप्ति होती है। अपने जन (गोपालक) के कोमल हस्ततल से शोभायमान और

---

१. सकललोकसुरासुरवन्दिता नतिमतां विपदां च निवारिकाः।।१।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-निखिल.......... । (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-विषदोऽत्र.......... ।।२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-रक्षकाः.......... ।।३।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-विमलधूलिचराचरपावना अकृतके कृतके कुशले रताः।।३।। (प्रकाशित प्रति)

पुण्यकर्म न करनेवालों को भी पुष्ट करनेवाली होती हैं अथवा कर्मकाण्ड में और मोक्ष में भी गाएँ सहायक होती हैं क्योंकि उसके बिना धार्मिक कृत्य संभव ही नहीं है।

सकलभारतभाग्यहिमालया: सकलकामदुघा अघनाशना:।
मरणजीवनजीवनदानदा: सुरभयो विभवस्य नियामिका:।।५।।

सारी की सारी गाएँ सम्पूर्ण भारत का भाग्य उदय करनेवाली हैं, हिमालय के समान गौरवर्ण (अथवा हिमालय के सदृश गौरव देनेवाली हैं) समस्त मन:कामनाओं को पूर्ण करनेवाली हैं, पापों का नाश करनेवाली हैं, मरे हुए (मरणासन्न) व्यक्ति को जीवन देनेवाली और जीवितों को आजीविका (अथवा जीवन) देनेवाली हैं और शक्ति को अवरुद्ध (नियंत्रण) करनेवाली अर्थात् शरीर के भीतर विद्यमान शक्ति के मूलस्रोत वीर्य को गाय का दूध स्खलित होने से रोकता है जिससे शक्ति शरीर के भीतर ही रहती है।

एतादृश्य: सुरभयश्चरन्ति चारयन्ति ता:।
गोपाला: सघनारण्ये प्रत्यहं मोदयन्ति ता:।।६।।

इस प्रकार की वे गाएँ इधर-उधर घूमती रहती हैं और गहरे जंगल में ग्वाले प्रतिदिन उन्हें चराते हैं और उन्हें प्रसन्न रखते हैं।

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा भक्ति: सनातनी।
गोभि: सार्धमभेदेन महादेवेन तुल्यता।।७।।

इसमें जो वह परम प्रेमरूप भक्ति है, वह प्राचीनकाल से चली आ रही है। वह गायों के साथ अभेद रूप से महादेव के समान ही है।

यहाँ कहने का भाव यह है कि वह ग्वाला जो गायों का बड़े प्रेमपूर्वक पालन करता था, उसका गायों के प्रति प्रेम उसी प्रकार का था, जिस प्रकार कोई भक्त महादेव में भक्ति रखता है।

योगरूपा च सा बोध्या ज्ञानयोगेन सम्मता।
अनन्यं चिन्तनं यत्र तत्र भाव: प्रवर्धते[1]।।८।।

और ज्ञानयोग द्वारा प्रमाणित वह योगरूप भक्ति जाननी चाहिए तथा जिसमें किसी अन्य का चिन्तन नहीं होता (अनन्य चिन्तन होता है) वहाँ भाव (प्रेमभाव अथवा भक्तिभाव) बढ़ता है।

---

१. ४, ५, ६, ७, ८ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

कश्चिन्नागरिकस्त्वर्यो यातो मस्तेन्द्रसन्निधौ।
मृता गौर्यवनेनेति[1] याम्येन मम चाऽगदत्।।९।।

उन गायों का कोई सज्जन ग्वाला मस्तनाथजी के समीप गया और कहने लगा कि मेरी एक गाय किसी यमदूत यवन के द्वारा मार दी गई है।

पाहि पाहि मस्तनाथ ! दीनानां वत्सलो भवान्।
विद्यमाने कथं जातं त्वयि गोरक्षके सताम्[2]।।१०।।

हे मस्तनाथजी ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! आप दीनों से स्नेह रखनेवाले हो फिर सज्जनों के एवं गायों के रक्षक आपके होते हुए यह कैसे होगया अर्थात् तुम्हारे रहते मेरी गाय यमदूत के द्वारा कैसे मार दी गई।

नाथस्तदा देवगवादिपूजाप्रियः स दुष्टस्य यमस्य वित्वा[3]।
कार्य्यं तदीयं कृतवान् समानभङ्गं मृकण्डातनयेन तुल्यम्[4]।।११।।

तब देवों व गायों की पूजा जिसे प्रिय थी ऐसे उस नाथजी ने उस दुष्ट यम की दुष्टप्रवृत्ति को जानकर मार्कण्डेय ऋषि की प्रार्थना से जैसे भगवान् शंकर ने यमराज का मान भंग किया था, वैसे ही उस यमदूत का मान भंग कर दिया।

रूपान्तरं रुद्रतनुं स्वकीयं मृत्युञ्जयं जीवनमन्त्रतत्त्वम्।
स्ववीरभद्रेण यथा स्वदक्षं गणं स[5] तं दण्डयितुं दिदेश।।१२।।

शिव ने जिस प्रकार अपने गण वीरभद्र से दक्ष को दण्ड दिलाया था उसी तरह शिव अवतार मस्तनाथजी ने भी जीवन मंत्र का तत्त्व मृत्युञ्जय रुद्ररूप धारण करके यम को दण्डित करने के लिए रुद्रगण को आज्ञा दी।

---

१. पाठभेद-अघानि रक्षसा धेनुः......... ।।९।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। ३. पाठभेद-बुद्ध्वा। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-तदानीं मृकण्डुपुत्रस्य शिवेन तुल्यम्।।११।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद-स दण्डितो वीरवरेण दक्षो गणं च........ ।।१२।। (प्रकाशित प्रति)

पुराणों में कथा आती है कि एक बार दक्ष प्रजापति ने यज्ञ करते समय शिव की अवहेलना की। तिस पर भी पार्वती बिना निमन्त्रण के उनके यज्ञ में सम्मिलित हो गई परन्तु वहाँ पर उसके पिता ने शिव की अपमानजनक शब्दों में निन्दा की जिस कारण सती ने यज्ञ की अग्नि में प्रवेश कर अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी थी। जब शिव को इस वृत्तान्त के विषय में पता चला तो वे अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने अपने शरीर से वीरभद्र नामक गण की उत्पत्ति की जिसने दक्ष को दण्डित किया उसी प्रकार मस्तनाथजी ने भी अपने शरीर से रौद्ररूप उत्पन्न किया और उसने यम के दूत को दण्डित किया।

अभूत्तदा खे नरकादिदेष्टुर्द्वारे दिशारक्त[1]तनुर्बभूव।
ग्रहास्तदा रुद्रगणा इवासन् यमस्य सर्वे परितः प्रतीपाः।।१३।।

तब आकाश में नरकादि देनेवाले यम के द्वार पर दिशा रक्त वर्ण हो गईं, मानो वे भी क्रुद्ध हो गई हों तथा समस्त नक्षत्र रुद्रगणों की भाँति भयंकर हो गए और सभी यम के चारों ओर विरुद्ध होकर खड़े हो गए।

स प्रेतपो दण्डधरः स पृष्ठे[2] स्ववाहनस्याधिरुरोह सेनाम्।
स्वामूचिवाँस्तान् सगणान्[3] ग्रहीतुमहोऽधिकारस्य न कस्य जातु[4]।।१४।।

प्रेतराज यम अपना आयुध लेकर अपने वाहन (महिष) की पीठ पर चढ़ गया और अपनी सेना को आदेश दिया कि इन सभी गणों को पकड़ो। अहो ! यह सत्य है कि किसे अपने अधिकार का घमण्ड नहीं होता ?

ततः समेतै रणमध्ययाते क्रोधारुणाक्षे किल सज्जसज्जे।
चम्वौ तदा तप्तसमीरणेन भूः कम्पिता तप्तिसमेधनेन।।१५।।

फिर मिले हुए योद्धाओं के साथ दोनों पक्षों की सेनाएँ खूब सज-धजकर युद्ध के प्रांगण में पहुँची और क्रोध के कारण सबकी आँखें लाल-लाल हो गई। उस समय गर्म हवा चलने लगी और उससे पृथ्वी हिलने लगी।

अट्टाट्टहासः सगणस्तदाग्रे सेनापतिः षण्मुख एक आसीत्।
षट् तज्जनन्यो निजदिक्पतीनां सेनाः सहाया विदधुः सुतार्थे।।१६।।

तब समस्त गणों को साथ लेकर बड़े जोर से हँसता हुआ कार्तिकेय सेनापति अकेला सेना के आगे हुआ। उस समय कृत्तिका आदि छः माताओं ने अपने पुत्र की रक्षा के लिए दिक्पालों की सेना को सहायक बनाया।

यमस्य भक्तैः किल दण्डरोगाः सम्प्रेषिताः शीतकृतोऽग्निभक्तैः।
सन्ताडिताः संविलयं प्रयाताः पित्ताग्नितापान्निजरूपहीनाः।।१७।।

यमराज के भक्तों (सैनिकों) ने दण्डरोग भेजे और अग्नि (तेजस्वरूप= ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप मस्तनाथजी) के भक्तों ने शान्त कर दिया। ताड़ित किये हुए वे पित्ताग्नि के ताप के कारण अपने रूप से हीन होकर विलय को प्राप्त होगए।

तैः प्रेषिताः पित्तभवा विलीना भवस्य सेवार्थमुपागतैश्च।
दूतैः प्रचेतो दिशयोपभूतैः प्रचेतसो ज्ञानतनोरधीशः।।१८।।

---

१. पाठभेद-शोण…… ।।१३।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-स्वपृष्ठे…… ।।१३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-स्वान्यगणान्…… ।।१३।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-लोभ…… ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

उनके द्वारा भेजे गए पित्तज्वररूपी अस्त्रों को शंकर की सेवा के लिए आए हुए दूतों ने नष्ट कर दिया और ज्ञानरूप शरीरवाले वरुण का स्वामी स्वस्थ ही रहा।

कफादिजा वातसहायतश्च पित्तस्य सम्यग्दहनस्य सैन्यैः।
त्रिदोषजाश्चाथ मयूररूढः चमूपतिस्तत्र यमं ममर्द।।१९।।

कफादि से उत्पन्न रोग, वायु की सहायता से, दहनशील पित्त के सम्बन्ध से त्रिदोष (तीन दोष-वात, पित्त, कफ) रोग सैनिकों के द्वारा अनुभव किये गए और तब मोर पर आरूढ होकर सेनापति ने यम का मर्दन कर डाला।

शक्त्या भृशं[1] वक्षसि ताडितोऽभूत् आकर्णकृत्तश्च तदा मयूरः।
घना यदा वारुणदूतजाता ननर्त खं छादयितुं प्रवृत्ताः[2]।।२०।।

तब कुमार (कार्तिकेय) ने बड़े जोर से यम की छाती पर प्रहार किया जिससे वह कानों तक घायल होगया और जब वरुण के दूत मेघ गगनमंडल में मंडराने लगे, तब मयूर हर्ष से नाचने लगा।

शिवेन कथितः पुत्रो युद्धं कुरु ममाज्ञया।
नतेन च कृतं युद्धं शिवादेशो हि पालितः[3]।।२१।।

शिव ने कहा कि हे पुत्र ! मेरी आज्ञा से युद्ध करो। आज्ञाकारी कार्तिकेय ने युद्ध करके वस्तुतः शिव की आज्ञा का ही पालन किया था।

सस्माराथ यमो भावि किमर्थं न हि निश्चितम्[4]।
कुण्डलीयस्य[5] सविधे गोस्वामी[6] प्रापयिष्यति।।२२।।

इसके अनन्तर यमराज ने भविष्य में होनेवाली घटना का स्मरण किया कि यह गायों का स्वामी सम्पूर्ण वृत्तान्त को कुण्डलधारी नाथयोगी मस्तनाथजी के पास पहुँचा देगा, ऐसा मैंने पहले क्यों नहीं निश्चय किया। यदि मुझे पहले ऐसा पता होता तो मैं ऐसा क्यों करवाता ? अर्थात् गाय के प्राणहरण क्यों करवाता[7]।

---

१. पाठभेद-यमो।
२. पाठभेद-.......................व्रणाङ्गितो देह इहाविरासीत्।
ननर्त्त केकां कलयन् मयूरः खं छादयामास बलाहकोऽपि।।२०।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। ४. पाठभेद-न मया धृतम्।
५. पाठभेद-मस्तनाथस्य। ६. पाठभेद-गोपालः.........।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद-विचिन्तितं प्रेतपुरेश्वरेण तपस्वियोगीन्द्रवरिष्ठशक्तिः।
इच्छा कुमारीति शिवस्य सूत्रं परेति तथ्यं न हि कुण्ठितासौ।।१६।।
इस पद्य को पाण्डुलिपि में लिखा तो हुआ है परन्तु 'निकाल दिया' लिखकर अनुवादक ने अनुवाद नहीं किया व उसे काटा हुआ है।

अलुण्ठिकामारिबलं ययेयं सृष्टिर्विधात्री जगतां ततः सा।
अशुण्ठि शुण्ठ्येव समीरकोपस्तया बलं देवनृपादिभादि[1]।।२३।।

जिस शक्ति ने शिव के बल को भी रोक दिया, उसी शक्ति से यह जगद्विधात्री समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है। जैसे शूंठ से वायु का प्रकोप (अफारा) नष्ट हो जाता है वैसे ही इस शक्ति से देव और राजादि का प्रताप (तेजस्विता) आदि नष्ट हो जाते हैं।

श्रीमस्तनाथः शिव एव कामदक्षादिजेता[2] जगति प्रसिद्धः।
महर्ष्यवज्ञा न कृता पुरापि स्वस्थानहानिः किमु नैव सोढा[3]।।२४।।

मस्तनाथजी शिवरूप हैं। कामदेव तथा दक्ष प्रजापति आदि को जीतनेवाले हैं और संसार में प्रसिद्ध हैं। वह अपने स्थान की हानि सहन कर सकते हैं परन्तु उन्होंने पहले भी महर्षियों का अपमान सहन नहीं किया था।

अणिमाण्डव्यमुनिना नीतः कृकलतां यमः।
नहुषोऽजगरीं प्राप्तस्तनुं मुन्यवमाननात्[4]।।२५।।

अणिमाण्डव्य मुनि ने यमराज को गिरगिट बना दिया था तथा मुनि के अपमान के कारण नहुष राजा को भी अजगर का शरीर धारण करना पड़ा था, अतः तपस्वी व मुनियों का अपमान नहीं करना चाहिए।

परमात्मसमक्षे तु का सेना मम साहसम्।
दीपस्य तरणेः को वा तेजसा स्यात् पराभवः।।२६।।

परमेश्वर के सामने मेरी सेना व मेरे साहस की क्या मजाल है अथवा क्या दीपक के तेज से कभी सूर्य का पराभव होता देखा गया है, अर्थात् नहीं।

मनसा स क्षमां मस्ताद् रुद्रात्सेनापतेरथ।
गोरक्षा गोरखात् प्राप तदा गां प्रैषिषद् भुवि[5]।।२७।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

२. पाठभेद-साक्षाद् गोरक्षनाथो। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-अधारिषातां चरणौ स्वकीयौ याभ्यां च सर्वात्मकदेवताभ्याम्।।२३।। (प्रकाशित प्रति)
...............वही गोरक्ष (रूप में) जगत् में विख्यात हुए और सब की आत्मस्वरूप जिन दो देवताओं ने जगत् कल्याण के लिए मानवदेह धारण कर पृथ्वी तल पर अपने चरण रखे।

४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

५. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

यमराज ने अपने मन से मस्तनाथ, रुद्र व सेनापति-कार्तिकेय से क्षमा मांगी इस प्रकार गोरक्षजी से गाय की रक्षा हुई। तब यम ने भूतल पर गाय को भिजवा दिया अर्थात् गाय के प्राण लौटा दिए।

माया गुरोः स्वयं साऽऽसीद् बुद्धिर्भ्रान्तिर्यमस्य या।
सर्वज्ञस्येव सर्वेषां कर्माणि प्रसमीक्षितुः।।२८।।

वह गुरु की अपनी ही माया थी जिससे यम की बुद्धि में भ्रान्ति हो गई जैसे सर्वज्ञ व सबके साक्षी परमात्मा राम इत्यादि की भी बुद्धि माया से भ्रान्त हो गई थी।

वृद्धावस्था च मृत्युश्च रोगा दुर्घटनादयः।
योजितास्तुल्यरूपेण पक्षपातो न चेश्वरे।।२९।।

वृद्धावस्था, मृत्यु, रोग और दुर्घटना इत्यादि सभी प्राणियों के साथ समान रूप से जोड़ दिए गए हैं क्योंकि ईश्वर के विषय में पक्षपात नहीं है। अर्थात् परमेश्वर किसी के साथ भेदभाव नहीं करता अपितु सभी को बुढ़ापा, मौत, रोग व दुर्घटना आदि समान रूप से देता है।

श्रूयते च कथा काचिल्लक्ष्म्याश्च कथनात् प्रभुः।
पतितो युद्धसंरम्भे सर्वेषां प्रेरको[१] यतः।।३०।।

और एक कथा आती है कि लक्ष्मी के कहने से सभी का प्रेरक होते हुए भी विष्णु युद्ध के आरम्भ में गिर पड़ा।

महामाया सद्गुरोः[२] सा स्वरक्षा नाभवद् यतः।
अन्तकालपदे स्थित्वा महाकालोऽप्यजायत।।३१।।

सद्गुरु की वह महामाया ही थी जिसके कारण यम अपनी रक्षा भी नहीं कर सका और उसी माया से प्रलयकाल में महामाया उत्पन्न होती है।

ततः प्रतिनिवृत्तास्ते षण्मुखाद्या यदागमन्।
प्राणो मनो जीवतत्त्वपञ्चकं सुरभौ स्वयम्।।३२।।

जब वे कार्तिकेय इत्यादि लौट गये उसी समय गाय में पञ्च प्राण, मन तथा जीवतत्त्व सब अपने आप आगए अर्थात् गौ जीवित होगई।

---

१. २९, ३० पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद-इयं सा मस्तनाथस्य.................. ।।२८।। (प्रकाशित प्रति)

अर्धीभूता सर्वरूपा तत्तनु सममन्यत।
दिश: प्रसेदुरमला रणचिह्नं पलायितम्।।३३।।

उस गाय का शरीर पहले आधा हुआ फिर सम्पूर्ण होगया। उस समय समस्त दिशाएँ निर्मल होगईं और वहाँ पर युद्ध का कोई निशान भी नहीं रहा, अर्थात् गाय का पहले शरीर का आधा हिस्सा हिला और फिर वह जीवित हो, उठ बैठी।

समीयुरीशस्य गणाश्च चम्ब: स्वानीव धामानि प्रतीक्षकानि[1]।
दिशां पतीनां समहोत्सवाय तेने विकाशञ्च सचण्डभानु:[2]।।३४।।

शिव के समस्त गण व सेनाएँ प्रतीक्षा करनेवाले अपने-अपने स्थानों पर चले गये और दिक्पालों के अत्यन्त आनन्द के लिए प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य ने भी अपना प्रकाश समस्त दिशाओं में फैला दिया।

नातितप्तिर्नातिवातो नीरोगा सुरभिर्यदा।
न घनं खं सुखस्थं च सर्वं[3] नवमिवाऽभवत्।।३५।।

जब वह सुरभि (गाय) स्वस्थ हो गई उस समय न अधिक गर्मी थी और न अधिक हवा चल रही थी, न बादल थे और आकाश अत्यन्त सुहावना हो गया था और सब वस्तुएँ नयी-सी हो गई थी।

मस्तनाथस्तु गोस्वामिरोदनाकर्षितोऽथ गो:।
सविधे प्राप चोत्तिष्ठ किं शेषे प्राह यावता[4]।।३६।।

उस ग्वाले के रुदन से आकृष्ट होकर मस्तनाथजी गौ के समीप पहुंचे और कहने लगे कि क्यों सोती हो; उठो।

वत्सा रुदन्ति तव गोपकुमारकाश्च क्षीरार्थिनोऽपि जनिकागमदर्शलिप्सा:।
तान् पाययाऽल्पसुतमुष्णनिपेयदुग्धं स्फीतं स्नुतं भवति शैशवरागजुष्टम्।।३७।।

लालायित माता के आगमन के दर्शन के लिए व दूध के चाहनेवाले तुम्हारे बछड़े व तुम्हारे ग्वाले के बालक सब रो रहे हैं उन बालकों व अपने छोटे बछड़ों को पुत्रस्नेह के क़ारण स्रवित (टपकता) हुआ स्वच्छ व धारोष्ण दूध खड़ी होकर पिला।

---

१. पाठभेद-गणाध्वजिन्य: स्वधामधामानि समागतानि...... ।।३१।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-ततान चण्डांशुमलंप्रकाशम्........................ ।।३१।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-घनमाकाशं विश्वं.................................. ।।३२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-प्राह शेषेऽथ किं वय:।।३३।। (प्रकाशित प्रति)

यमः सत्यवतो देहे जीवावेशं यथा व्यधात्।
सुरभेर्विग्रहे तद्वत् प्राणिनं वेशयत् स्वयम्।।३८।।

यमराज ने पहले जैसे सत्यवान के शरीर में जीव का प्रवेश कराया था, उसी प्रकार मस्तनाथजी ने स्वयं गाय के शरीर में प्राणों का समावेश कर दिया अर्थात् गाय को जीवित कर दिया।

गच्छाऽऽर्यज त्वदीया गौः पुनरुज्जीविता सुखा।
नीरोगा कृतकार्योऽसि स जहर्षाऽऽस्यकासवान्[1]।।३९।।

हे आर्यो की सन्तति ! अब तुम अपने घर जाओ क्योंकि तुम्हारी गाय फिर से जीवित हो गई है, सुखी तथा नीरोग है। तुम भी कृतार्थ (धन्य) होगए हो। नाथजी के ऐसा कहने पर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

अधनी धनमाप निःसुतः सुतमनभिज्ञजनश्च धारणाम्[2]।
प्रियमाप विहीनबान्धवः सुरभिप्राणगमागमात्पुनः[3]।।४०।।

जैसे निर्धन धन को, निःसन्तान सन्तान को, अनभिज्ञ (निर्बुद्धि) जन चेतना (बुद्धि) को, बान्धवों से रहित प्रियजन को पा लेता है, वैसे ही गाय के गए हुए प्राणों के फिर से आजाने से वह ग्वाला अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

गृहं गतः स साष्टाङ्गं प्रणिपत्य क्षणादिव[4]।
प्राप्य तां सुरभिं दृष्ट्वा रोमोद्गारी प्रहर्षतः[5]।।४१।।

वह ग्वाला गुरु को साष्टांग प्रणाम करके तत्काल घर चला गया और उस गाय को फिर से जीवित पाकर अत्यन्त हर्ष से उसके शरीर में रोमाञ्च होगया।

पुनः स च पयःपूरं गवां सर्वतपस्विनाम्।
महिषीणां समादाय तत्र चार्हामचीकरत्[6]।।४२।।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :-
पाठभेद-यथेच्छं गच्छ भो भक्त ! स्वच्छेन मनसाऽधुना।
जीविता साम्प्रतं धेनुः स जहर्षातिहर्षवान्।।३३।।
हे भक्त ! अब स्वच्छ (बिना दुःख के) मन से जहाँ जाना चाहते हो वहाँ चले जाओ। इस समय वह गाय जीवित है। नाथजी के इस वचन को सुन वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

२. पाठभेद-सुशेमुखीं जगे। (पाण्डुलिपि)

३. पाठभेद-स च गोपकोऽपि मेलनम्।।३२।। (पाण्डुलिपि)

४. पाठभेद-गुरुं पुनः.....।।३८।। ५. पाठभेद-मुमोद न तनौ ममौ.....।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद-पयःपूरं समादाय.......................।
च तद्दुग्धं महाभोज्यं चकार सः।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

उसने गायों के सारे दूध और भैंसों के भी उस दूध को इकट्ठा करके सभी तपस्वियों की पूजा करवाई अर्थात् सबको खीर खिलाई।

दिव्यं पयस्तत्सहजादगवां तैरभुक्तपूर्वं बुभुजे मुदैव।
दिव्योऽवबोधोऽजनि जग्धशेषमाद्यास्य देवो हि गुरु शिवो मे[1] ।।४३।।

गायों का अमृत के तुल्य दिव्य दूध जिसका पहले कभी उपभोग नहीं किया था; के भोजन को उन तपस्वियों ने बड़ी खुशी से खाया-पीया। उनके खाने से बाकी बचे भोजन को उस ग्वाल ने खाया जिससे उसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न होगया और उसने जाना कि मेरे गुरु साक्षात् शिव ही हैं।

न वा परेतोऽजनि जीवलोके जीवः कथं सा सुरभिः समेता।
पराद् भुवो लोकत एव यम्यपाशाद्विमोक्ता दिविजैर्मतोऽतः[2] ।।४४।।

जीव परलोक में जाकर इस जीवलोक में फिर लौटकर नहीं आता, फिर वह गाय कैसे आगई ? अतः मैं समझता हूँ कि पृथ्वी से परे के स्वर्गलोक से द्युलोक में उत्पन्न देवताओं ने यमराज के पाश से मुक्त कराई होगी।

तस्माद्दीव्यक्षीरस्वादाद्धर्मार्थे ववृधे मतिः।
आत्मा विकल्मषस्तस्य सपर्य्यायां मनो दधौ[3] ।।४५।।

इस कारण दिव्य क्षीर (खीर) के आस्वादन करने से उस ग्वाले की इच्छा (बुद्धि) धर्म के कार्यों में बढ़ गई और उसकी आत्मा (अन्तःकरण) पाप से रहित होगई व मन पूजा में लीन हो गया।

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा कार्यं हृदि निधाय सः।
गुरोर्मूर्तेः सदा पूजां विदधौ जीविताऽवधि[4] ।।४६।।

गुरुदेव को दक्षिणा देकर और उनकी सेवा का कार्य हृदय में धारण करके वह जीवनपर्यन्त नित्य गुरु की मूर्ति की पूजा करता रहा।

---

१. पाठभेद-तत्पायसं सौख्ययुतं सुधास्पदम् .... तदा।
.... शेषितः मास्वाद्य .... स्वयम् ।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

३. पाठभेद-आस्वादास्वादसन्दोहक्षीराब्धिदुग्धकर्षणात्।
दिव्यात् तस्मात् मनोवेगात्कालदर्शी बभूव सः ।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद- .... कृत्वा पूजां यथाविधिः।
आदयामास विप्रैः स विविधान्नं मनोरुचि ।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
गुरु को दक्षिणा देकर और शास्त्रविधि के अनुसार पूजा करके उसने अनेक प्रकार का मनोवाञ्छित अन्न ब्राह्मणों को दिया।

शिक्षा निजस्वार्थभरेण हीनाऽग्राहि स्वनाथस्य निरीक्ष्य शैलीम्[1]।
हीणा तदा मृत्युपतेश्च सेनारीणा[2] गृहस्थस्य समस्ततप्तिः[3]।।४७।।

अपने गुरुदेव की शैली देखकर उसने निजी स्वार्थ से रहित शिक्षा ली। तब मृत्यु के स्वामी यमराज की सेना का अपमान होने से उसके भी गृहस्थ के समस्त दुःख विलीन हो गए अर्थात् उस घटना के पश्चात् उसे कभी भी मृत्यु का भय नहीं रहा।

नरीयसामर्थ्यकृतार्थतातो शक्यं चरीकर्तुमलं बलेन।
स उच्यते शक्तिमतां महात्मा पारङ्गमोऽन्यो न हि जातु कश्चित्[4]।।४८।।

जो अपनी शक्ति से मनुष्यों को कृतार्थ करने में समर्थ हो सके वही शक्तिशालियों में पारंगत महात्मा कहा जाता है, वस्तुतः और दूसरा कोई नहीं।

गृहे निजे वा निजविग्रहे वा सर्वोऽपि वक्तुं समभीप्सतीशम्।
जनिर्विशिष्टाऽस्ति मृतिर्न यस्य तमीशमाविर्जनितं वदन्ति।।४९।।

अपने घर में अथवा अपने शरीर में सब ईश्वर बनना चाहते हैं, परन्तु जिसका विलक्षण जन्म है और मरण भी न हो, उसी को प्रकट हुआ परमेश्वर कहते हैं।

रामस्य वा नन्दकुमारकस्य विशेषणे सत्यपि नो विशेष्यम्।
श्रीवामने तद्द्वितयं न चाऽत्र विशेषणाऽभाववतीशमस्ते[5]।।५०।।

राम का अथवा नन्द के कुमार (कृष्ण) का विलक्षण जन्म (विशेषण) होते हुए भी विशेष्य (मरण अभाव) नहीं है तो भी दोनों परमेश्वर कहलाते हैं और वामन अवतार में विलक्षण जन्म व मरणाभाव दोनों ही हैं। इसी प्रकार ईशरूप मस्तनाथजी में भी विशेषण का अभाव नहीं है अर्थात् उनका जन्म विलक्षण ही है, अतः वे ईश्वर हैं।

श्रीमस्तनाथेन जनिर्मृतिश्च व्यगाहिषातां किल योगबुद्ध्या।
अधारिषातां च परापरौ द्वावभारिषातां च कृताकृती द्वे[6]।।५१।।

---

१. पाठभेद-तत्त्वम्........। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-लीनं..........। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-दुःखम्..........।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद-नरेतरं मानवतत्त्वयुक्तं मनुष्यलोकेषु प्रशंसनीयम्।
करोति कार्यं गणनाफलं न स उच्यते शक्तिमतां बलिष्ठः।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-विशिष्टभावः........।।४६।। (प्रकाशित प्रति) ६. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

श्री मस्तनाथजी के द्वारा योगबुद्धि से निःसन्देह जन्म और मरण अवगाहन किये गये हैं और पर (शत्रु) और अपर (मित्र) दोनों धारण किये गए हैं अर्थात् दोनों को अपना बना लिया, किसी से वैर-विरोध नहीं रखते थे और कृत और अकृति पोषित किये गए हैं। अर्थात् संभव (कृत) व असंभव (अकृति) दोनों कार्य किये।

अदृक् सचक्षुस्त्वपदः सपाद्गौर्मृता पुनः प्राणमवापि येन।
अलौकिकं कार्यचयं प्रचक्रे स सर्वशक्तिर्न मनोरथेन[१]।।५२।।

जिसने अपनी योगशक्ति से अन्धे को आँखे व पङ्गु को पैरों से युक्त किया तथा मरी हुई गाय को पुनः जीवित कर दिया, उस नाथ ने कितने और कैसे-कैसे विलक्षण कार्य किये। अतः वे सर्वशक्तिमान् थे, क्योंकि मनोरथ से ऐसे कार्य संभव नहीं होते।

इत्थं श्रीमस्तनाथस्य दृष्ट्वा कार्याणि भूरिशः।
अवतारत्वेऽपि संदेग्धि मुग्धस्य किं हि तुष्टये[२]।।५३।।

इस प्रकार श्रीमस्तनाथजी के अनेक चमत्कारपूर्ण कार्यों को देखकर उनके अवतार होने में भी सन्देह करता है। निःसंदेह मूर्ख के लिए क्या तुष्टिप्रद होता है ? अर्थात् मूर्ख की कभी भी संतुष्टि नहीं होती।

विषयेष्वेव सक्ताः किं गुणबोधवियोगिनः।
क्रमेलकाः कण्टकेहा मुक्तागन्धविवेचकाः।।५४।।

गुण-ज्ञान से शून्य व विषयों में आसक्त मनुष्य क्या गुणविवेचन कर सकते हैं ? अर्थात् गुणों की परख नहीं कर सकते। जैसे कांटों के भक्षण में तत्पर ऊँट मुक्तामणि तथा गन्ध का क्या विवेचन कर सकते हैं ? भाव यह है कि बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।

परन्तु पक्षिणं यान्तं[३] वीक्ष्यैव लघुमक्षिकाः।
पक्षसामान्यतो जात्या त्वग्रे धावन्ति पक्षिवत्[४]।।५५।।

परन्तु उड़ते हुए पक्षी को देखकर मैं भी पक्षी की जाति की हूं–इस अभिमान से छोटी मक्खी भी पक्षी की भाँति आगे-आगे दौड़ती है। भाव यह है कि जातिसाम्य से गुणसाम्यता नहीं हो सकती।

---

१. अदृक सदृङ् नेत्रविहीनतामितो बभूव पादेन युतः पुमानयम्।
धेनोश्च संजीवनरूपकारितामपादवान् किं न करोति चाद्भुतम।।४८।।

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। ३. पाठभेद-दक्षिणं यान्तं। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-किं गुणैः।।५१।। (प्रकाशित प्रति)

निगुर्णत्वं ब्रह्मणश्च सामान्याऽभावतः श्रुतम्।
श्रुतौ विद्याविरहतः सर्वज्ञत्वं समाश्रयत्[१]।।५६।।

वेदों में सामान्य अभाव के कारण ब्रह्म को निर्गुण कहा गया है परन्तु वेद में ही विद्यागुण न रहने पर भी चित्स्वरूप होकर सभी प्राणियों में आश्रय लेने से उसे सर्वज्ञ कहा जाता है।

परस्य वान्तं यदि चिन्वतां स्याद्विज्ञत्वकर्तृत्वविधातृतादि।
विनैव भङ्ग्या नवता रसायां कुलालसत्वे हि निरीश्वरत्वम्।।५७।।

दूसरों के उच्छिष्ट (वान्त-खाने के बाद थाली में बचा हुआ भोजन) विषय का संग्रह करनेवालों अर्थात् दूसरों की नकल करनेवालों को यदि सर्वज्ञता, जगत्कर्तृता तथा उपादान कारणता हो जाए तो बिना रचनाविन्यास के ही जगत् में नवीनता हो जाए और कुम्हार के रहते हुए संसार में ईश्वर की आवश्यकता ही न पड़े परन्तु अनुकरण करनेवालों में वास्तविकता नहीं आ सकती।

वेदेषु तेषां स्मरणेषु शास्त्रेष्वाधाय निर्दोषगणेषु दोषम्।
काठिन्यमालस्यमहो समुद्रे निमज्जयन्ति क्षपणाः स्वदेशम्।।५८।।

अविवेकी साधुजन (क्षपणाः) दोषरहित वेदों, स्मतियों तथा शास्त्रों में कठिनतारूप दोष लगाकर, पढ़ने में लोगों की अरुचि पैदा करके अपने देश को आलस्य के सागर में डुबो रहे हैं, अर्थात् बहुत से साधु कहा करते हैं कि पढ़ने की कोई जरूरत नहीं केवल साधु बन जाने से ही सब कुछ मिल जाता है। इस प्रकार के अनुचित उपदेश से वे संन्यासी देश को आलसी बनाकर विनाश के गर्त में धकेल रहे हैं।

वेदादिसच्छास्त्रविमर्शगन्धं द्विजाग्र्यविद्वद्वचनं समीरम्।
विहाय मुक्तासुम[२]सुमल्लिकादि जिघ्रन्ति ते पाटलकण्टकाग्रम्।५९।।

वे लोग वेदादि सत्शास्त्रों के विचाररूप गन्ध तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण व विद्वानों के वचनों को त्यागकर दुष्टोपदेश का उसी प्रकार श्रवण करते हैं जैसे कोई मोतिया व गिरिमल्लिक आदि सुन्दर पुष्पों को छोड़कर पाटलवृक्ष (गुलाब) के काँटे को सूँघते हैं।

योगस्य पदवीं[३] गन्तुमनीशास्तद्विनिन्दकाः।
शीतार्त-वानरो नीडं चटकायाः क्षमेत कः।।६०।।

---

३. पाठभेद-सर्वज्ञत्वं च कर्तृत्वमचिन्त्यत्वमपि श्रुतम्।।५२।। (प्रकाशित प्रति)

१. पाठभेद-मुक्तेन्द्र...... ।।५४।। २. पाठभेद-पद्धतिं...... ।।५५।। (प्रकाशित प्रति)

योग के मार्ग पर चलने में असमर्थ लोग उसकी निन्दा किया करते हैं, क्योंकि कौन शीत से पीड़ित बन्दर चिड़िया के घोंसले को सहन करेगा ? अर्थात् बन्दर घोंसला तो बना नहीं सकता अतः अच्छा उपदेश देनेवाली चिड़िया के घोंसले को ही फाड़ डालेगा, उसी तरह योगमार्ग पर कुठाराघात किया ही करते हैं, अतः उनकी बातों में आकर इन शास्त्रों के प्रति अपनी श्रद्धा को कम नहीं करना चाहिए।

पतङ्गशब्दसादृश्यात्कीटो दीपं जिघांसति।
भाषां वित्त्वा पदत्वेन साधुशब्दादराजनाः।।६१।।

जैसे पतङ्ग शब्दमात्र की समानता से तित्तिली नामक छोटा-सा कीट सूर्य (पतङ्ग) की भाँति दीपक को निस्तेज करना चाहता है, उसी तरह मूर्ख लोग भाषा को पढ़कर पदत्व की समता से भाषा को ही साधु शब्द मान बैठते हैं अर्थात् साधु शब्द का अर्थ भला व्यक्ति। इस प्रकार भाषा का अल्प ज्ञान पाकर वे साधु शब्द से सम्बोधित प्रत्येक व्यक्ति को सज्जन मान बैठते हैं, उनमें गुणदोष परखने की क्षमता नहीं होती अतः उनके द्वारा बताये गये अनुचित मार्ग पर नहीं चलना चाहिए। ऐसे पाखण्डी साधुओं से हमेशा सावधान रहना चाहिए।

कृतघ्नः स्वोपदेष्टारं गुरुं मत्वावहेडते।
आश्रितो यं तरुं तस्य मूलाग्रं कृन्तते नरः।।६२।।

वह कृतघ्न है जो उपदेश देनेवाले अपने गुरु को जानकर भी उसका निरादर करता है। वह ऐसे ही करता है जैसे कोई जिस वृक्ष की छाया में बैठा हो और उसी की जड़ काटता हो।

गोरक्षा-वरपुत्रादिसिद्धीनां स्वस्य कर्तृताम्।
जगाद योऽप्यकर्तारं कर्तारं मन्यते जडः[1]।।६३।।

गायों की रक्षा, श्रेष्ठ पुत्रादि सिद्धियों की कर्तृता को जो स्वयं में बताता है वह मूर्ख है क्योंकि वास्तव में वह अकर्ता आत्मा को कर्ता मान लेता है, अर्थात् सांख्य, योग, वेदान्तदर्शनों में सिद्धान्ततः आत्मा को कर्ता नहीं माना गया। उस आत्मा को निर्लेप कहा गया है किन्तु अन्तःकरण के साथ अभेदाध्यास होने से व्यक्ति स्वयं (आत्मा) को कर्ता मान लेता है।

इत्थमेव च मस्तस्य कर्तृत्वं नास्ति कुर्वतः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न कर्हिचित्।।६४।।

---

१. ६१,६२, ६३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं। ६३वें पद्य के स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :- ससांख्ययोगवेदान्तैः कर्तृत्वं नास्ति चात्मनः।
अभेदाध्यासमाश्रित्य कर्तृत्वं भाति चेतसा।।५६।।

और इसी प्रकार कर्म करते हुए भी मस्तनाथजी का कर्तृत्व नहीं है अपितु वे आत्मा में ही संतुष्ट हैं और उनका कहीं भी कुछ भी प्रयोजन नहीं है अर्थात् वे पूर्ण हैं उन्हें किसी भी प्रकार का कर्म करने की आवश्यकता नहीं है।

कारागृहे गच्छति भूमिपालो हेतुर्दया तत्र न कर्मबन्धः।
एवं च सर्वेश्वरदेवदेवो दयावतारो न तु कर्मतन्त्रः।।६५।।

भूमि का पालन करनेवाला राजा कारागार में जाता है वहां उसका हेतु दया है कर्मबन्धन नहीं अर्थात् वह अपने किसी कर्म में बन्धकर कारागार में प्रवेश नहीं करता अपितु वह तो निरीक्षण आदि के लिए वहाँ जाता है। वैसे ही सबका पालन करनेवाला देवों का देव दया के कारण अवतार लेता है न कि अपने किन्हीं कर्म-बन्धनों के कारण।

सा भेदभातिर्यमिभिः प्रभाषिताः कर्तृत्वभोक्तृत्वनिजात्मनोऽपरा।
स्यात् सङ्गभातिश्च विकारभातिका सत्यत्वभातिर्जगतश्च पंच ताः।।६६।।

मुनियों के द्वारा वह भेद प्रतीतिवाली कही गई है, दूसरे वह कर्तृत्व और भोक्तृत्व रूपवाली है अर्थात् शरीर के साथ सम्बन्ध होने से उसके कर्त्तापन और भोक्तापन का अध्यास कर लेता है। संसार की ये पाँच भ्रान्तियाँ है–संगभाति, विकारभाति, सत्यत्वभाति, भेदभाति, कर्त्तत्व-भोक्तृत्वभाति। भाति=भान।

आत्मबोधस्य नापेक्षा कर्मणो निश्चितं मतम्।
स्वोत्पत्तौ ब्रह्मविद्यायाः कर्मणोऽपेक्षता मता।।६७।।

यह सर्वमान्य धारणा (मत) है कि आत्मज्ञान में कर्म की (कर्मकाण्ड की) आवश्यकता नहीं है जबकि ब्रह्मविद्या की अपनी उत्पत्ति में कर्मकाण्ड की जरूरत समझी गई है।

घटाकाशं हि कूटस्थं तज्जलं सूक्ष्मदेहकम्।
तत्प्रतिबिम्बितं व्योम चिदाभासोऽत्र कथ्यते।।६८।।

निःसंदेह घटाकाश कूटस्थ है और उसमें विद्यमान जल सूक्ष्म आकारवाला है और उसमें प्रतिबिम्बित आकाश यहां पर चिदाभास कहा जाता है।

निद्रा भोज्यञ्च कान्ता तनयधनगृहारामधेनुक्षमाद्या-
स्त्रैपाद्यां[1] पूर्वसिद्धा विषयसुखजुषां सन्ति लोके सुखानि।

---

१. **पूर्वत्रासिद्धम्** (८।२।१) पाणिनीय अष्टाध्यायी में सवा सात अध्यायों में जो व्याकरण के नियम बतलाये गये हैं, उनमें त्रिपादी (आठवें अध्याय के २, ३, ४ पादों) में कहे गये नियम असिद्ध माने जाते हैं। **'त्रैपाद्यां पूर्वसिद्धाः'** से पाणिनीय **'त्रिपादी असिद्ध'** नियम को इंगित किया गया है।

वैकुण्ठस्वर्गभर्गद्रुहिणधरणिगं चास्ति शास्त्रीयमेतत्
सौख्यं योगात्मकं तद् यदुभयविगतं मस्तनाथानुभूतम्।।६९।।

संसार में विषयसुख चाहनेवालों के लिए नींद, भोजन, प्रेम करनेवाली सुन्दर पत्नी, पुत्र, धन घर, उद्यान, दूध देनेवाली गाय, भूमि आदि सुख पहले से ही विद्यमान हैं। वैकुण्ठ, स्वर्ग, भर्ग आदि शास्त्रीय पारलौकिक सुख कहे हैं। इन दोनों से रहित जो मोक्षसुख है उसका मस्तनाथजी ने अनुभव किया है।

चिच्छाया बुद्धिसंयुक्ता जीवत्वेन निगद्यते।
न शुद्धा चित् तथा धीर्वा मायाभासस्तथेश्वरः।।७०।।

बुद्धि से संयुक्त चिच्छाया जीव के रूप में कही गई है। चित् शुद्ध नहीं होता है वैसे ही बुद्धि भी और वैसे ही परमेश्वर भी माया के कारण भासित होता है।

कर्माणि मस्तनाथो हि मायागुणगणाश्रयः।
करोति साक्षिरूपेण प्रतिबिम्बसमाश्रयः।।७१।।

निःसंदेह मायावी गुणों का आश्रय लिए हुए, प्रतिबिम्ब में समाये हुए मस्तनाथजी साक्षिरूप से कर्मों को करते हैं।

गुणरूपा च या भक्तिरीशरूपा मता हि सा।
गुरोर्बुद्धिं समाविश्य द्योतते भगवान् स्वयम्।।७२।।

और गुणरूप जो भक्ति है वह निश्चय ही ईश्वररूप मानी गई है, क्योंकि गुरु की बुद्धि का आश्रय लेकर स्वयं भगवान् ही दीप्त (आभासित) होता है अर्थात् स्वयं भगवान् ही गुरु के रूप में भक्त के लिए प्रकट होता है।

तत्रत्या ग्रामवास्तव्या गुरुं मत्वा सनातनम्।
धेनोः संजीवनं दृष्ट्वा मस्तनाथमपूपुजन्[१]।।७३।।

उस गाय को जीवित देखकर उस गांव में रहनेवाले लोग मस्तनाथजी को अपना सनातन गुरु मानकर उनकी पूजा करने लगे।

इति श्रीमस्तनाथचरिते धेनुसंजीवनविविधदेवादिसंग्राम-
वर्णनविषयविशिष्टो नाम षोडशः सर्गः।

---

१. ६४ से ७३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

सप्तदशः सर्गः

झज्जरवने विविधजीववधादिप्रकरणम्

आईरामोऽथ सत्यः कपिलमुनिपथो धर्मवैराग्यगङ्गा-
मन्नाथः पावमार्गो ध्वज इति गदितः कन्थडो रावलश्च।
नाटेश्वर्यात्मकोऽपि प्रथितयमिजनैः पाकलश्चाप्यगादि
मार्गानितान् समस्तान् पठति यदि जनः शुद्धचेता भवेत्सः।।१।।

आई, राम, सत्य, कपिलमुनिपथ, धर्म, वैराग्य, गङ्गा, मन्नाथ, पावमार्ग, ध्वज, कन्थड़ और रावल (ये बारह पंथ) कहे गए हैं (परन्तु) प्रसिद्ध यमिजनों ने नाटेश्वरी और पाकल भी कहा है। जो इन समस्त मार्गों का अध्ययन करता है वह शुद्धचेता हो जाता है।

एकं ब्रह्म तथा परे बहुभुजं निर्ब्रह्म पक्षान्तरे
साकारं करुणाकरं कतिपये मायावदातं परे।
द्वैताद्वैतविलक्षणं तदपरे शून्यातिशून्यं परे
त्वाँ मायावृतचेतनं बहुविधा मन्यन्त इत्यात्मकम्[१]।।२।।

कोई ब्रह्म, कोई बहुभुक्, कोई निर्ब्रह्म, कोई करुणाकर साकार, मायावी, कोई द्वैत और अद्वैत होने से विलक्षण, कोई शून्य-अतिशून्य, माया से आवृतस्वरूप तुमको उक्त अनेक स्वरूपवाला मानते हैं।

दुःखानां त्रितयं जनस्य न भवेद् यावन्निवृत्तं तनौ
तावत्तस्य निवारणाय यतते जिज्ञासते चादरात्।
दृष्टे स्रग्वनितादिचन्दनचये शक्या निवृतिर्न चे-
न्नैकान्तेन समुच्छिदा भवभियो नात्यन्ततो ध्वंसनम्।।३।।

जब तक आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन प्रकार के दुःखों की शरीर से निवृत्ति नहीं होती है तब तक व्यक्ति उनके निवारण के लिए प्रयत्न करता है और उनके उपायों की आदरपूर्वक जिज्ञासा रखता है। माला, वनिता (नारी) और चन्दन आदि दृष्ट=लौकिक उपायों से उन दुःखों की निवृत्ति

---

१. यह पद्य २१वें सर्ग में भी उपलब्ध है।

नहीं हो सकती, यदि निवृत्ति हो भी जाये तो भी उसका ऐकान्तिक भाव से उच्छेद नहीं होता है, इस प्रकार भव-भीति का अत्यन्ताभाव नहीं होता है।

सिद्धिर्मेयगणस्य मानवशगा दृष्टा यत: सूरिभि:
क्लृप्तं मानमितं मितं मितिमितं मानं त्रिधा कापिलै:।
प्रत्यक्षं यदहंकृतीन्द्रियशरैरालोकविद्धं तम:
सद्हेतुप्रभवानुमानमपरं शाब्दं तथाप्तोक्तित:।।४।।

क्योंकि विद्वानों के द्वारा प्रमेय पदार्थों की सिद्धि मानव अधीन बतलाई गई है। कपिलाचार्य के शिष्यों ने प्रमाण-मानमित, मित, मितिमित (क्रमश: प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द) भेद से तीन प्रकार का माना है। अहंकार से उत्पन्न इन्द्रियों के आलोक रूप शर (बाण) से नष्ट किया गया तम (अन्धकार) प्रत्यक्ष कहलाता है और जो सद्हेतु से उत्पन्न हो उसे अनुमान कहते हैं तथा आप्तवचन को शब्द प्रमाण कहा जाता है।

दृष्टं त्वध्यवसाय एव विषये साकारचित्तार्पणं
प्रोक्ता चानुमितिस्त्रिधात्र मुनिभिस्तद्वत् प्रमाणान्यपि।
हेतौ साध्यपुरोगमान्वयमुखं व्याप्त्यातिरेकिद्वयं
यत् सामान्यत उत् स्वलक्षणगतं लिङ्गं ह्यभावोत्थितम्।।५।।

अध्यवसाय (निश्चयात्मक) विषय में साकार चित्त का समर्पण दृष्ट=प्रत्यक्ष है। मुनिजनों ने अनुमिति (अनुमान) तीन प्रकार का बतलाया है। वैसे ही प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द भेद से प्रमाण भी तीन ही हैं। हेतु में साध्य अन्वयी और व्यतिरेक और सामान्यतो दृष्ट भेद से अनुमान तीन प्रकार का होता है। अनुमान के लक्षण में लिङ्ग परामर्श अभावजन्य है।

सामान्यार्थनिबन्धनो हि विषय: प्रत्यक्षधीगोचरो
ग्राह्यं सर्वमतीन्द्रियं त्वनुमया धर्मादि बुद्ध्यादि वा।
आभ्यां चाविदितं यदस्ति विदितं तत्त्वाप्तवाक्साक्षिकं
वेदा: सर्गसमावृतिस्थितिलया: शाब्दा हि सांख्ये नये।।६।।

सामान्य अर्थ से निबद्ध विषय प्रत्यक्ष-बुद्धिगोचर है और अतीन्द्रिय विषय धर्म आदि और बुद्धि आदि अनुमान से ग्राह्य है। प्रत्यक्ष और अनुमान से जो अविदित (अज्ञात) है वह आप्तवचन से ग्राह्य है। जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का उपदेश करनेवाले वेद सांख्यसिद्धान्त में शब्द प्रमाण माने गये हैं।

नाध्यक्षं ह्यतिदूरमन्तिकमथो पत्री च नेत्राञ्जनं
सूक्ष्मं ग्राह्यसमानमानमखिलं यच्चाभिभूतं पुनः।
आलोक्यं त्वनवस्थितेन मनसा बुदीन्द्रियैर्वैकलैर-
प्राप्तं हतधर्मकं व्यवहितं प्रत्यक्षहीना नव।।७।।

विद्यमान पदार्थ के प्रत्यय न होने में नौ कारण हैं। प्रथम अतिदूर होना जैसे आकाश में उड़ता हुआ पक्षी, दूसरा अतिसमीप होना जैसे नेत्र का अंजन, तीसरा सूक्ष्म होना जैसे परमाणु, चौथा ग्राह्य वस्तु के समान होना जैसे दो सदृश पदार्थ, पाँचवाँ अभिभूत होना जैसे सूर्य से नक्षत्र आदि का प्रकाश, छठा मन का स्थिर न होना, सातवाँ ज्ञानेन्द्रियों में दोष होना, आठवाँ धर्म का नष्ट होना और नौवाँ व्यवधान होना।

सौक्ष्म्यान्न प्रतिलभ्यते प्रकृतिरित्याद्योनुमेयं समं
माऽभावादपलप्यतां कृतिरियं कार्यैकलिङ्गार्थवत्।
ते चार्था महदाद्यहंप्रकृतयस्तन्मात्रमात्रावधि
तुल्यातुल्यतया स्थितं विकृतिमद् द्वेधा प्रधाने जगत्।।८।।

प्रकृति का सूक्ष्म होने से प्रत्यक्ष नहीं होता है अतः वह अनुमेय पदार्थ है, उसका अभाव नहीं है यह कार्य जगत् उस प्रकृति का लिङ्ग है। उस प्रकृति से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे महत् आदि हैं अर्थात् प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से रूप आदि पाँच तन्मात्रायें, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन उत्पन्न होते हैं। यह जगत् प्रकृति और विकृति भेद से दो प्रकार का है।

सत्कार्यं च सदेव कारणमिदं नारात्कथा शोभते
हेतुः स्यादसतो ह्यकार्यपरतोपादानरूपग्रहः।
शक्तस्यापि च शक्यरूपकरणं सर्वस्य सम्भाव्यता
भावः कारणभाव इत्यपि बुधैः सत्कार्यता साधिता।।९।।

यह कार्यजगत् कारण रूप में सत् है, इसके विपरीत कथन शोभनीय नहीं है। यदि असत् कारण से कार्य उत्पन्न हो तो अकार्यपरता हो जाये और उपादान कारण का भी ग्रहण नहीं हो सकता। शक्त से ही शक्य की उत्पत्ति होती है, तिल से ही तैल उत्पन्न होता है, सिकता (बालू रेत) से नहीं। यदि यह कार्य-कारणभाव न हो तो सबसे सब उत्पन्न हो जाया करें, मृत्तिका से भी पट पैदा हो जाया करे। अतः कार्य का कारण भाव सत् है इस प्रकार विद्वानों ने सत्कार्यवाद को सिद्ध किया है।

प्रीत्यप्रीतिविषादलक्षणमिदं सिद्धं गुणानां त्रयं
कार्याणि द्युतिचित्प्रवृत्तिनियमा मोहः शमो वासनाः ।
अन्योऽन्याभिभवः परस्परजनिः स्वैकैकशश्चाश्रयः
सम्बन्धो विषयः समश्च मिथुनी-भावः समेषां समः । ।१० । ।

सत्त्व, रज और तम-ये तीन गुण प्रीति, अप्रीति और विषाद आत्मक हैं। इन तीन गुणों का कार्य क्रमशः प्रकाश, प्रवृत्ति और स्थिति (नियमन) तथा शम (शान्ति) मोह और वासना है। ये अन्योऽन्य के अभिभव करनेवाले, परस्पर जननशक्तिवाले और एक-दूसरे के आश्रय से रहनेवाले हैं। सम्बन्ध, विषय, समता और मिथुनीभाव इनका समान गुण है।

सौख्यं ज्ञप्तिलघुप्रकाशकमिदं सत्त्वं समाख्यायते
चञ्चच्चंचलतृष्णिका रज इहोपष्टम्भकं गीयते।
मोहान्धं गुरुवरणकं सुमनसामूर्णोति बुद्धिं तमः
स्त्रीवद् दीपवदर्थिवज्ज्वलनवद् वृत्तिः प्रयुक्तानुगा । ।११ । ।

सुख, ज्ञान, लघुता, प्रकाश को सत्त्व कहते हैं, चंचलता, इच्छा और उपष्टम्भकता (प्रवृत्ति कराना) रज कहलाती है, मोह, अन्धकार, गुरुत्व और आवरक (आच्छादक) होना तम कहलाता है जो कि विद्वानों की बुद्धि को आच्छादित कर लेता है। इनकी वृत्ति दीप एवं ज्वलन=अग्नि के समान (सत्त्व) और स्त्री के समान (रज) तथा प्रार्थी के समान (तम) होता है और ये परस्पर अनुसरण करते हुए मिलकर कार्य करते हैं।

इत्यादिसांख्यसन्दर्भप्रक्रियावचनैरपि।
स्तूयते मस्तनाथो हि शिव एव सनातनः[1] । ।१२ । ।

इत्यादि उपरोक्त सांख्यदर्शन की सृष्टि प्रक्रिया से संबंधित दृष्टान्तों (वचनों) से मस्तनाथजी की ही स्तुति की गई है। वे ही वास्तव में सनातन शिव हैं।

सर्वेशः शम्भुमूर्तिर्भवति यदि मतो निश्चितोऽहंकृतिश्चेत्
नो तेनास्तेऽपि किञ्चित् कुहचिदितरया तं विना कार्य्यकारि।
एवं ज्ञानी न कुर्यादसफलमथवा नापि किंचिद्विदध्यात्
तस्मात्प्रारब्धलीला चरितनिजमपि स्वीकरोति स्म देवः[2] । ।१३ । ।

---

१. १ से १२ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

यह निश्चित है कि जब वह सर्वेश्वर शम्भुरूप को धारण करता है तब वह अहंकारविशिष्ट हो जाता है। इसीलिए अहंकार का अधिष्ठाता देव शम्भु माना जाता है क्योंकि अहंकार के बिना केवल चिद्रूप से प्रलय आदि कार्य नहीं हो सकते। अत: ज्ञानी पुरुष अहंकारशून्य होने पर कुछ कार्य सफल कर लेता है इसीलिए परमदेव भी सृष्टि कार्य निर्वाह के लिए प्रारब्धानुसार अहंकार की शक्ति से शरीर ग्रहण करता है।

जीवान् सर्वान् विरक्तान् जनयति न हि स भ्रान्तियुक्तान्न सर्वान्
विज्ञानज्ञानहीनान् जनयति बहुधा भिन्नदृष्टि: स लोक:।
बुद्धेर्भेदो यथा स्वे वपुषि सुविपुलो[१] दृश्यते देहभेदे
नोकस्माज्जायतां स्व: स इति निगदितुं तच्चरित्रे भिदास्य।।१४।।

वस्तुत: वह सर्वेश्वर समस्त प्राणियों को विरक्त नहीं बनाता क्योंकि वह उनकी वासनानुकूल ही कर्मफल का देनेवाला है। अत एव समस्त जीवों को ज्ञान-विज्ञान से हीन तथा भ्रान्त नहीं बनाता इसीलिए अहंकारानुसार सब लोग भेद दृष्टिवाले होते हैं अर्थात् दूसरे को अपने से अलग मानते हैं। जैसे अपने शरीर में बुद्धि का भेद विषय के भेद (देहभेदे) से अत्यन्त विशाल (अनेक) देखने में आता है वैसे ही देहभेद से भी अनेक आत्मा प्रतीत होते हैं, यह व्यवहार भेद भ्रम के बिना स्वयं नहीं हो सकता। हम और वह स्वयं किससे उत्पन्न होता है, इसी तत्त्व का निरूपण इस चरित में किया गया है।

जीवोऽनामा यदाऽसौ विलयमुपगत: स्वात्परे स्वेष्टदेवे
सर्वत्राऽसौ[२] स्थितो य: सकलमयवपु: स्वान्तरो ज्ञायते[३] न।
अज्ञैर्जीवैर्मदिन प्रतिपदमखिलं[४] पौरुषं स्वं वदन्ति
तेषां प्रारब्धविद्याक्रमकृतापरता ख्यायते[५]ऽत्रापि सर्गे।।१५।।

नाम से रहित जब यह जीव मृत्यु को प्राप्त होता है तब वह अहंकारानुसार ही देवादि उत्तम देह अथवा नीच देह में जाता है। यद्यपि वह सर्वत्र व्यापक व सर्वस्वरूप है तथापि अज्ञानीजन अपने अहंकार के कारण आत्मा को न जानकर हर समय अपना अभिमान प्रदर्शित करते रहते हैं इसीलिए उनका प्रारब्ध कर्म तथा विद्या के क्रम से जो भेद किया जाता है इसका वर्णन भी इस सर्ग में किया जायेगा।

---

१. पाठभेद-विमलो····· ।।१३।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद-अयं····· ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद-बुध्यते····· ।।१४।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद-अभित····· ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद-बोध्यते····· ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

स्वयं रुद्रो महेशो यो गोरक्षो गोरखः स्वयम्।
अभिमाननिवृत्तिं स्वां प्रावद्योऽक्षयोऽजरः[1]।।१६।।

अविनाशी व अजर रुद्र महेश ने स्वयं गोरक्षरूप में अवतार लेकर गोरख नाम से प्रसिद्ध हो अपने अभिमान की निवृत्ति दिखाई है, अर्थात् अपने अभिमान को गोरक्ष रूप में प्रकट किया है।

चतुर्भुजं भुजाधारं भुजगेशानमद्वयम्।
भूभुजां बोधकं वन्दे गोरक्षं नाथमद्वयम्[2]।।१७।।

चार भुजाओं वाले, भुजाओं के आधार (अथवा भुज-भोजन अथवा दैनन्दिन जीवन के उपयोगी पदार्थ, जीवन के आधार) सर्पों के अधिपति, अद्वैत, राजाओं को भी ज्ञान देनेवाले अद्वैत गोरक्षनाथजी की मैं वन्दना करता हूँ। अद्वैत से यहाँ अभिप्राय है कि गोरक्षनाथजी परमात्मा से भिन्न नहीं हैं, अपितु दोनों एक ही हैं।

अमरो निर्विकारोऽस्मिन् निरञ्जनपदस्थितिः।
अनामेति तदा लोकैर्न ज्ञेयोऽहं परस्थितः[3]।।१८।।

इसीलिए अमर, विकार रहित निरञ्जन पद पर वर्तमान धर्माधर्मरहित, अहंकारशून्य व नाम रहित वे गोरक्षनाथजी लोगों द्वारा न जानने योग्य पद पर स्थित हैं, अर्थात् सांसारिक व्यक्ति विषयों में आसक्ति के कारण उन्हें नहीं जान पाते। (निरञ्जन का अर्थ है–निष्कलंक, मिथ्या से रहित) यह शिव की उपाधि है।

गोरक्षमूर्तिं सबला-सुपुत्रं याच्ञावशात् कल्पितबालरूपम्।
आरण्यमाद्यं न च योनिजातं श्रीमस्तनाथं सततं नमामि।।१९।।

प्रार्थना (याचना) के कारण सबला के सुपुत्ररूप में बालरूप धारण करनेवाले, जंगल में उत्पन्न, प्रारम्भ (सृष्टि से पहले ही जिसकी सत्ता थी) से सत्तावान् (आद्य)

---

१. पाठभेद-अयं रुद्रो महेशो यो गोरक्षो भगवान् स्वयम्।
विष्णुर्ब्रह्मा स्वयं भूत्वा करोति सर्गकारिताम्।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
यह शंकर का रौद्ररूप ही सबका ईश है जो स्वयं भगवान् ही गोरक्ष हैं तथा जो स्वयं ब्रह्मा-विष्णु होकर समस्त सृष्टि के क्रियाकलाप को करता है।

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाठभेद-अमरो निर्विकारोऽस्मिन् स निरञ्जन-जनार्दनः।
अनामेति स्वयं लोकैर्व्यलोकि योगलोचन!।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
वह अमर, निर्विकार, बिना नामवाला, शिव व योगदृष्टिवाला विष्णु (कृष्ण) लोगों के द्वारा स्वयं देखा गया अर्थात् लोगों को जो शक्ति शिव और विष्णु व स्वयं बिना नामरूप वाले निर्विकार परमतत्त्व में थी वह समस्त शक्तियाँ मस्तनाथजी में दिखाई दीं।

और योनि से न उत्पन्न होनेवाले गोरक्षस्वरूप श्रीमस्तनाथजी को निरन्तर नमन करता हूँ।

कृष्णं रामं शिवं गङ्गां गिरिजां गोमतीं गयाम्।
रामं रामं महारामं नमामि गणनायकम्[1]।।२०।।

कृष्ण, राम, शिव, गङ्गा, पार्वती, गोमती, गया, बलराम, परशुराम तथा अत्यन्त मनोहर गणों के स्वामी गणेश अथवा शिव को नमन करता हूँ।

आसेदिवान् वेदयितुं सुशिक्ष्य स्वभक्तिरक्तिञ्च विरक्तलोके।
निजेऽथ शिष्ये सुररक्तिभेदमन्तर्दधे सर्वसमक्षतोऽसौ[2]।।२१।।

विरक्तों में तथा अपने शिष्यों में अपनी भक्ति का अनुराग व देवों में प्रीति रखने की शिक्षा देकर लोगों को सचेत करने के लिए गोरक्षजी इस लोक में आए और सबके समक्ष अन्तर्हित होगए।

स एव साक्षाद् गुरुमस्तनाथो विभिन्नसंज्ञाभिरुदीर्यमाणः।
पृणान आत्मानमलं दृणान एनस्ततिं देशभुवं पुनानः[3]।।२२।।

विभिन्न नामों से पुकारा गया (कीर्तित), आत्मा को पवित्र करता हुआ, पापशृंखला का पर्याप्त नाश करता हुआ, देश के भूमण्डल को पवित्र करता हुआ वह मस्तनाथजी साक्षात् गुरु=अज्ञान के अन्धकार को दूर करनेवाला है।

भाग्यं वेदयितुं प्राप्तो झज्जरं नगरं प्रति।
वाहीकदेशे भक्त्याढ्या[4] यत्र लोका सनातनाः।।२३।।

वाहीकदेश (रोहतक जिले) में झज्जर नाम का एक नगर है, उसमें सनातनधर्मानुयायी व ईश्वरभक्त लोग रहते थे। उन्हें शुभकर्म का उपदेश देने के लिए एक बार मस्तनाथजी वहां जा पहुँचे।

विपिनं हिंस्रबहुलं नानापक्षिसमाकुलम्।
कूजद्भिः कोकिलैर्भृङ्गैः सुखैः सुषमायुतम्।।२४।।

---

१. १९, २० पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

२. पाठभेद-आसेदिवान् वेदयितुं स्वशिक्षां दीक्षाञ्च लोकेषु विदाञ्चकार।
अन्तस्थलं योगबले नदीशो गोरक्षनाथो अधुनाऽस्ति साक्षात्।।२०।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

४. पाठभेद-एकदा मस्तनाथोऽसौ········ ।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
एक बार यह मस्तनाथजी लोगों के भाग्य को जानने के लिए झज्जर नगर में पहुँचे जहाँ पर सनातनधर्म के अनुयायी लोग रहते थे।

जहाँ का जंगल हिंसक जन्तुओं की अधिकतावाला व भाँति-भाँति के पक्षियों से भरा हुआ था तथा कूकती हुई कोयलों एवं मधुर गुंजार करते हुए भ्रमरों से अत्यन्त सुन्दर लगता था।

सुरभिस्वादुमूलैश्च कन्दैर्बहुफलैर्जलैः ।
स्रोतसां सरसां वापी-कूपादीनां मनोरमम्[१] ।।२५।।

सुगन्धित एवं स्वादिष्ट मूलों, कन्दों व बहुभाँति के फलों तथा तीव्रप्रवाहवाली नदियों व सरोवरों के जलों से तथा बावड़ी व कुएँ इत्यादि के कारण मनोरम था।

व्याप्तं कदम्बनीपाद्यैश्चाऽशोकबकुलैर्भृशम् ।
पनसैः कोविदाराद्यैः रसालैस्सरसं कृतम् ।।२६।।

कदम्ब, नीम (भूकदम्ब), अशोक, मौलसिरी, कटहल, कचनार, आम्र इत्यादि के वृक्षों से शीतल तथा हरा भरा जंगल था।

करीरकरवीरालिशमीकीनाटपीलुभिः ।
शिंशपापर्कटिखेजैर्न्यग्रोधपिप्पलादिभिः[२] ।।२७।।

वह वन कैर (करीर), कनेरवृक्ष की पांतों, शमी, बबूल (कीनाट), जाल (पीलु), शीशम, पाकड़ (पापड़ी का वृक्ष), अमरबेल (खेज), बरगद, पीपल आदि के वृक्षों से युक्त था।

हरिणशावकसञ्चयसंकुलं गहनमत्र वनं वनजैश्चितम् ।
कलुषितं तु मृगेन्द्रजसञ्चरैः कुहचिदात्तमृगव्यधखेलनम्[३] ।।२८।।

यहाँ हरिणों के बच्चों के झुंडों व अन्य जंगली जानवरों से ठसाठस भरा हुआ सघन जंगल था, जिसमें बलिष्ठ सिंह अपनी मदमस्त गति व डरावनी दृष्टि से शिकार की तलाश में इधर-उधर घूम रहे थे और कहीं-कहीं व्याघ्र भी हरिणों के क्षणभंगुर प्राणों के साथ अपनी आखेटक्रीडा का परिचय दे रहे थे।

सर्वत्रगोऽपि तां भूमिं पावयन्निजचारतः ।
किञ्चिद् भव्योपदेशाय मस्तनाथो जगाम ह[४] ।।२९।।

---

१. पाठभेद-कूपादिभिः सुखास्पदम्......... ।।२४।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद-परिव्याप्तं वनं तत्र मस्तनाथः समागतः।
सर्वत्रगोऽपि तां भूमिं पावयन्निजचारतः ।।२७।। (प्रकाशित प्रति)

सर्वत्र अप्रतिहतगतिवाले मस्तनाथजी उस धरती को अपने भ्रमण द्वारा पवित्र करने के लिए और वहाँ के लोगों को कुछ कल्याणकर उपदेश देने के लिए वहां जा पहुँचे।

सुशीतलो वन्यसुमैः सुगन्धिरन्धीप्रकुर्वन् मधुपान् समीरः।
समीर्य्यति रम्यपथस्वकान्ता[1]ध्यानागमोद्गारकरः समन्तात्।। ३०।।

वन के फूलों से सुगन्धित, अत्यन्त शीतल और अपनी सुगन्ध से भौरों को अन्धा बनाता हुआ तथा पथिकों को निज प्रियाओं की ओर आकर्षित करनेवाला वायु चारों ओर बह रहा था।

वने वने तत्र समागतं गतं महीनहीनद्युतिरोचितं चितम्।
तं मस्तनाथं वनजा नगा गजा लुलोकिरे संतमसेऽपि सादरम्[2]।।३१।।

वहाँ प्रत्येक वन में आते-जाते राजा न होते हुए भी ब्रह्मतेज से प्रकाशित चित्तवाले उस मस्तनाथजी को वन में उत्पन्न हुए वृक्षों व हाथियों ने थोड़े अन्धकार में भी आदर के साथ देखा।

तत्रैकत्र तरोर्गाढच्छायामाश्रित्य होमवान्।
मन्त्रतन्त्रजपासक्तिर्जटाधारी ततापं सः[3]।।३२।।

वहाँ एक जगह वृक्ष की गहरी छाया का आश्रय लेकर होम, मन्त्र, तन्त्र तथा जप आदि करते हुए वह जटाधारी मस्तनाथजी तप करने लगे।

नादतन्तुं समालम्ब्य केदारस्थितमानसः।
चन्द्रस्य मण्डलं भित्त्वा कुण्डलालंकृतः शिवः[4]।।३३।।

नादतन्तु का सहारा लेकर केदार में स्थित मनवाला होता हुआ चन्द्र के मण्डल का भेदन करके कुण्डलों से सुशोभित हुआ (साक्षात्) शंकर ही है।

---

१. पाठभेद-रम्यपथे सुयोगी........।।२८।। (प्रकाशित प्रति)
रमणीक पथों पर श्रेष्ठ योगिजनों के ध्यान को भी आकर्षित करनेवाला वायु चारों ओर प्रवाहित होता रहता है। भाव यह है कि वन की प्राकृतिक सुषमा इतनी सुन्दर है जिससे उच्चकोटि के योगियों का ध्यान भी विचलित हो जाता है।

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाठभेद-बद्धसिद्धासनस्तस्थौ सिद्धराजो जटाधरः।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
सिद्धासन लगाए हुए सिद्धराज जटाधारी मस्तनाथजी विराजमान होगए।

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

इस पद्य में कवि ने योगसाधना के विषय में बताया है। नादतन्तु–'नाद' के कई अर्थ होते हैं। वैयाकरणों के अनुसार स्फोट, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं, परन्तु योगशास्त्र में योगसाधना करते समय जो अनहदनाद योगी को सुनाई देता है, जो कि शीघ्र सिद्धिदायक होता है; अभिप्रेत है। इसे सूक्ष्मनाद नाम से भी जाना जाता है। 'केदार' शब्द से योगशास्त्र में आज्ञाचक्र अभिप्रेत है तथा चन्द्रमण्डल-तालुमूल में चन्द्रमा कहा गया है। उसका भेदन करके योगी सहस्त्रार चक्र में प्रवेश करता है।

स्वशिष्यवर्गादधिकप्रभावा भूतानि रक्षांसि पिशाचलोकाः।
नागाः सुराः सिद्धगणास्तदानीं नरोऽभवन् सेवयितुं समायाः[1] ।।३४।।

अपने शिष्यों से भी अधिक प्रभाववाले भूत, राक्षस, पिशाच, नाग, देवता व सिद्धगण उस समय मनुष्यों का रूप धारण करके नाथजी की सेवा के लिए आए।

कुयोनिजा ये यवनाः खशाद्या म्लेच्छास्तथाङ्ग्लाः पृथिवीं विहाय।
विहायसा यातुमथो प्रवीणाः पवित्रतायै प्रसिषेविरे ते।।३५।।

वहां कुयोनिज यवन, खश आदि म्लेच्छ, वैसे ही अंग्रेज जो पृथ्वी को छोड़कर आकाशमार्ग से जाने में प्रवीण हो रहे हैं, इन सबने भी स्वयं को पवित्र करने के लिए मस्तनाथजी की शुश्रूषा (सेवा) की।

अनेकरूपैर्गुरुसत्कृपाभिरनेकरूपाणि पवित्रितानि।
मन्त्रान् जपन्तो भजनप्रसक्तास्तदाज्ञया चर्यचराः स्वकृत्ये।।३६।।

अनेक रूपवाली, गुरु की श्रेष्ठ कृपा से, अनेक रूप हुए व पवित्र हुए वे सब भूत-प्रेतादि उनकी आज्ञा से अपने-अपने इष्टमंत्रों का जाप करते हुए भजन में लग गए और अपने अपने कर्त्तव्य कर्म में संलग्न होगए।

प्रारब्धभव्यं यदि दोषजातं कुदुष्फलं तत्र विधातुकामाः।
आज्ञां गुरोस्तेऽखिलदक्षिणाचारीये जने स्वस्य समीहयन्ते[2] ।।३७।।

यदि नियति का फल दोषयुक्त एवं बुरे अन्तवाला हो तो वहाँ गुरु की आज्ञा को माननेवाले वे समस्त दयालुतापूर्ण चरितवाले जन में अपनेपन (अपनी भलाई) की कामना करते हैं, अर्थात् बुरे कर्मों का बुरा अन्त होता है ऐसा जान लेनेवाले गुरु की आज्ञानुसार सत्कर्मों में संलग्न हो जाते हैं।

---

१. पाठभेद-प्रवृत्ताः……… ।।३१।। (प्रकाशित प्रति)
२. 'निकाल दिया' यह लिखकर पाण्डुलिपि के टीकाकार ने इसकी टीका नहीं की।

उपद्रवं विना दोषं नैव कुर्वन्ति कुत्रचित्।
भूतबाधां प्रेतबाधामुन्मादा द्वादशाऽथ ये[१]।।३८।।

वे भूत-पिशाचगण बिना दोष के कहीं पर भी भूतप्रेत की बाधा व बारह प्रकार के जो उन्माद हैं, ऐसे इन उपद्रवों को नहीं करते थे।

रोगाः शोका महामार्यो डाकिन्यो योगिनीगणाः।
कुण्डलीया भैरवाश्च विनाज्ञां नैव बाधकाः।।३९।।

अनेक प्रकार के रोग, शोक, महामारियाँ, डाकिनी, पिशाचिनी, भूतनी, योगिनी, कुण्डलीय और भैरव-ये सबके सब बिना आज्ञा के किसी को तकलीफ नहीं देते थे।

आज्ञा तत्र विरोधो वा नास्तिकत्वं च दुष्कृतम्।
पूर्वजन्म स्वभाग्येन नान्यथा कुत्रचित् क्वचित्[२]।।४०।।

वहां गुरु की आज्ञा व विरोध, नास्तिकता और दुष्कर्म–ये सब पूर्वजन्म में अर्जित अपने भाग्य से जिस किसी व्यक्ति तथा स्थान में प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं।

यमस्तस्य च दूतानि सदा सेवकराणि यत्।
रुद्रतां तस्य तामाहुरन्यथा हरिरेव सः[३]।।४१।।

स्वयं यमराज और उसके दूत जिसकी हमेशा सेवा करें उसे रुद्र कहते हैं अन्यथा नहीं अर्थात् जिसकी आज्ञा में ये नहीं रहते उसे रुद्र नहीं कहा जाता। वह हरि ही थे, अर्थात् मस्तनाथजी की आज्ञा में ये सब रहते थे, अतः वे रुद्र के अवतार ही थे।

कस्यचिन्मृगयावृत्तिर्विनाऽस्ति सुरपूजनम्।
पुरुषार्थे दृढा वृत्तिस्तं कदाचिद् दिदेश सः[४]।।४२।।

उस नगर में कोई शिकार से जीविका चलानेवाला सरदार रहता था। वह देवपूजन में श्रद्धा नहीं रखता था, अपितु पुरुषार्थ में उसका दृढ़विश्वास था। किसी

---

१. ३५, ३६, ३७, ३८ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

३. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलता है :-
यमो याम्या धर्मराजश्चित्रगुप्तोऽपि गुप्तकाः।
सूक्ष्मसृष्टिगणाः सर्वे सेवन्ते नाथयोगिनम्।।३३।। (प्रकाशित प्रति)

४. आसीत्स मृगयावृत्तिः सरदारपदोदितः।
अयमेव हि गूढार्थः कश्चिज्झज्जरवासनम्।।३४।। (प्रकाशित प्रति)

समय मस्तनाथजी ने उसे आदेश दिया, अर्थात् उसे हिंसावृत्ति से हटाकर सदाचरण की शिक्षा देने का विचार किया।

अन्येऽपि बहवोऽभूवन् यादृशास्तादृशा जनाः।
तान्नियन्तुं स मस्तेन्द्रो विचारं कृतवान् किल।।४३।।

वहां पर दूसरे भी बहुत सारे व्यक्ति उस जैसे थे, अतः उनको अनुशासित करने के लिए उन मस्तनाथजी ने विचार किया।

वारणाकृतयो लोका येन केनापि वारणम्।
यदि वारणमाश्रित्य हिंसावारणमाश्रये[१]।।४४।।

लोग तो विरोध करनेवाले ही होते हैं, फिर भी जिस किसी भी तरीके से उन्हें हिंसा से रोकना चाहिए। यदि विरोध का सहारा लेकर हिंसा रुक सकती है तो मैं उसी का सहारा लूँगा।

सुवर्णवर्णः सितपादबालो धावन् पतन् घोरतनुः कदाचित्[१]।
सुतीक्ष्णभृङ्गो मृगयाप्रतीक्षो[२] वने मृगोऽभूत् स मनोहरोऽथ[३]।।४५।।

वह मस्तनाथजी जिसका रंग सुनहरा है और पैरों पर बाल सफेद हैं, कभी बालरूप व कभी विशालरूप होकर तीखे सींगोंवाले, कभी दौड़ते और कभी गिरते हुए मनोहारी मृग का रूप बनाकर वन में इधर-उधर घूमने लगे। उसे देखने से ऐसा मालूम होता था कि इसके पीछे शिकारी लगे हुए हैं।

पलायते वन्यगजान् श्रृगालान् स केसरोद्धूतसटाप्रटोपान्।
सिंहान् कपीन् व्याघ्रसशारभाँश्च दृष्ट्वा प्लुतो याति दिगन्तरेण[४]।।४६।।

जंगली हाथियों, गीदड़ों, कन्धे पर लम्बे-लम्बे बालोंवाले सिंहों, वानरों, व्याघ्रों और शरभों (पतंगों) को देखकर वह मृग कभी भागता था और कभी दूसरी तरफ चला जाता था।

तदा नरेशोऽखिलघोषमान्योऽरण्ये समेतो मृगयुर्मृगं तम्।
मारीचवद् राघवतुल्य एकं गर्वेण हन्तुं प्रमुमोच बाणम्।।४७।।

---

१. ४३, ४४ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद-तनीयान्········। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद-मृगया मृगेन्द्रो········। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद-हि मस्तनाथः।।३७।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद-तरक्षुनादान् श्रुत्वा च दृष्ट्वा शुनति स्म भीतः।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

उसी समय सारे गांववालों का मानवीय एक नरेश शिकार खेलने के लिए उस वन में आया और उस हरिण को देखते ही उसे मारने की इच्छा से बड़े गर्व के साथ उसके ऊपर बाण चलाया, जैसे रामचन्द्रजी ने स्वर्णमृग रूपधारी मारीच पर छोड़ा था।

लताविटपसंछन्नास्तरुमूले ततः स्वयम्।
स्रवद् रक्ततनुं हित्वा ततापः पूर्ववत्तदा[1]।।४८।।

उस बाण के लगते ही मायामृग रूपधारी मस्तनाथजी चारों तरफ से बेलों व वृक्षों से ढके हुए एक वृक्ष की आड़ में टपकते हुए रुधिरवाले उस शरीर को छोड़कर धूने पर जाकर पहले की भाँति तप करने लगे।

यं रक्तं स्रावयामास देहात्तस्मात् प्रसेवकाः।
तस्य तत्तरुपालाशैः खण्डैः सम्ममृजुस्तदा[2]।।४९।।

और उस शरीर से जो रुधिर निकला था तब उसको सेवक उस वृक्ष के पत्तों के टुकड़ों से पोंछने लगे।

मार्गयन् मृगमत्यन्तं रक्तधारानुगो नृपः।
तत्रायातस्तरुतले स्थितो यत्र विभु[3]र्मृगः।।५०।।

उस हरिण को खोजता हुआ रक्त की धारा के पीछे-पीछे चलता हुआ वह राजा उसी वृक्ष के नीचे आ गया, जहाँ वह सर्वव्यापी मृग (मस्तनाथजी) बैठा हुआ था।

सर्वाङ्गसुन्दरः काये भस्मधारी जटाधरः।
हुतवान् शयितः पादे बाणलग्नास्रस्राववान्।।५१।।

वहाँ उस नरेश ने देखा कि अत्यन्त सुन्दर, सम्पूर्ण शरीर में भस्म रमाये हुए जटाधारी, अग्निदेव की उपासना करनेवाला (धूना लगाए हुए) एक साधु लेटा हुआ है और उसके पैर में बाण लगा हुआ है और उससे खून बह रहा है।

कृष्णो गोलोकयात्रायै यदासीत् कृतनिश्चयः।
व्याधेन हतबाणोऽभूदेवमेतं जगुर्बुधाः[4]।।५२।।

---

१. पाठभेद-यमी.......... ।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
यद् रक्तं स्रावयामास देहात् तस्मात् विनेयकाः।
तस्य तत्तरुपालाशैः कोमलैर्ममृजुस्तदा।।४१।।

३. पाठभेद-यमी.......... ।।४२।। ४. पाठभेद-एवं तथाऽभूत्...... ।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

श्रीकृष्ण ने गोलोक की यात्रा के लिए जब निश्चय किया था तब एक शिकारी ने जैसे उनके पैर में बाण मारा था वैसे ही इसको भी मारा–ऐसा विद्वान् कहते हैं।

मृगयुस्तं विलोक्येदृक् एष एव प्रभुर्मृगः।
आसीदित्याह बाणस्य चिह्नं सस्मार स्वं शरम्।।५३।।

वह शिकारी, नाथजी को इस प्रकार की हालत में देखकर कहने लगा कि यही प्रभु मृगरूप में थे और फिर उसने बाण के निशान व अपने बाण को भी पहचान लिया।

पश्चात्तापं ततश्चक्रे रामतातो यथा पुरा।
विहायास्त्रं धनुर्नैजं पादयोर्निपपात सः।।५४।।

जैसे पहले राम के पिता दशरथ ने पश्चात्ताप किया था उसी तरह वह सरदार भी पछताया और वह अपने अस्त्र धनुष को फैंक कर नाथजी के चरणों में गिर पड़ा।

पहले प्राचीनकाल में हाथी के धोखे में दशरथ ने श्रवणकुमार को मार दिया था और बाद में पता लगने पर बहुत पछताया था, वैसे ही सरदार को पछताना पड़ा।

अहमज्ञो न मे दिव्यं चक्षुस्तादृक् यथा तव।
त्वं गुरुर्मे महादेवः स्वामी[1] क्षम्योऽहमद्य ते।।५५।।

हे स्वामी ! मैं मूर्ख हूँ अतः मेरी आप जैसी दिव्य दृष्टि नहीं है। देवों के देव आप मेरे गुरु हैं इसीलिए आज मेरे इस अपराध को क्षमा कर दीजिए।

स्खलितं मे तवाऽज्ञानान्मृगे बाणो निपातितः।
मृगा भवन्ति बहवो वने को वेद त्वादृशम्।।५६।।

आपको न पहचानने के कारण मुझसे गलती हो गई, जो मैंने हरिण पर बाण चलाया। वन में बहुत से हरिण होते हैं परन्तु आप जैसे हरिण को कौन जान सकता है, अर्थात् यह कौन जान सकता है कि हरिण का रूप धारण करनेवाले आप हैं।

स्वयं स्वकं तदा ज्ञानं देयं युक्तं जगत्पते।
दारौ विनिहितो[2] वह्निरन्तस्थः केन बुध्यते।।५७।।

हे संसार के स्वामी ! आप स्वयं अपने ज्ञान का उपदेश मुझे दें क्योंकि बिना उपदेश के मैं आपकी महिमा को नहीं जान सकता, जैसे लकड़ी के भीतर छिपी हुई

१. पाठभेद-नाथ ! .... ।।४७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-काष्ठे चान्तर्हितो.......... ।।४९।। (प्रकाशित प्रति)

अग्नि किसके द्वारा जानी जाती है ? अर्थात् लकड़ी के भीतर छिपी हुई अग्नि को कौन जान सकता है ?

सर्वत्रेशः परो वेदैस्तन्त्रैः शास्त्रैः पुरातनैः ।
गुरुवाक्येन तत्त्वेन वेद्यः शिष्येण नान्यथा ।।५८।।

ईश्वर सब जगह विद्यमान है, ऐसा पुरातन वेद, तन्त्र, शास्त्र कहते हैं परन्तु शिष्य तो उसे गुरुवाक्य रूप तत्त्व से ही जान सकता है, अपने आप नहीं।

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः ।
अमुखः स्पष्टवक्ता च प्रीतिदः परमेश्वरः ।।५९।।

बाबा कहने लगे कि परमेश्वर पैर से रहित होता हुआ भी दूर तक जानेवाला है और साक्षर (ज्ञानयुक्त) है परन्तु पण्डित (बुद्धिमान्) नहीं है। बिना मुख के है फिर भी स्पष्ट कहनेवाला व सबको प्रेम देनेवाला है।

पशुनां भक्षणं दुःखं भूतानां क्षुत्पिपासयोः ।
मानवानां च तृष्णाया देवानां स्वर्गविच्युतिः ।।६०।।

पशुओं को खाना दुःखदायी होता है तथा प्राणियों की भूख-प्यास और मनुष्यों की तृष्णा को बढ़ानेवाला व देवों तक को स्वर्ग से गिरानेवाला होता है अर्थात् पशुओं का मांस खाने से व्यक्ति की भूख-प्यास बहुत ज्यादा बढ़ जाती है व मनुष्य की तृष्णा भी बढ़ती ही जाती है और अच्छा व्यक्ति (देव) भी सुख (स्वर्ग) से वंचित हो जाता है।

गतं पापं गतं दुःखं गता निर्धनता तथा ।
आगताः सम्पदः सर्वाः पुण्याहे नाथदर्शनम् ।।६१।।

यदि मस्तनाथजी का दर्शन किसी पुण्य दिन कर लिया जाए तो समझो कि पाप चले गए, दुःख चला गया, वैसे निर्धनता भी समाप्त हो जाती है तथा सब प्रकार की सम्पत्तियाँ व्यक्ति के पास आ जाती हैं।

धीरः कीदृग् वचो ब्रूते को रोगी कश्च नास्तिकः ।
कीदृक् चन्द्रं न पश्यन्ति तत्सूत्रं नाथ ते प्रभो ! ।।६२।।

धैर्यवान् कैसे वचन् बोलता है, रोगी कौन है और नास्तिक कौन है, कैसा चन्द्रमा दिखाई नहीं देता ? (भादों शुक्लपक्ष का चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होता), हे प्रभु ! उसका सूत्र तुम्हारे पास है।

शान्ताश्च मुक्तये लोकेऽतिगर्वं दधतो जनाः।

नाद्यः सिद्धान्त एषोऽत्राथवाऽयं मन्यतां नरः।।६३।।

अथवा इस विषय में संसार में अत्यन्त गर्व धारण करते हुए मनुष्य और शान्त लोग यह समझलें कि मुक्ति के लिए यही आद्य (प्रमुख) सिद्धान्त नहीं है, अर्थात् मुक्ति के अनेक मार्ग हैं।

शंसन्ति दानिनं लोकाः कर्मरूपेण सर्वदा।

रम्यं लोकं समासाद्य नाथोऽसौ दानपुण्यतः।।६४।।

लोग सदा कर्मरूप से दान करनेवाले की स्तुति करते हैं अतः दान और पुण्य से रमणीय लोक को प्राप्त करके यह मनुष्य नाथ (सबका स्वामी) हो जाता है।

नमस्ते सर्वलोकानां शोकानामपहारिणे।

महादेवाय दिव्याय निये पप्ये बहुश्रिये।।६५।।

समस्त लोकों (अथवा प्राणियों) के शोक का अपहरण करनेवाले, दिव्यस्वरूप, प्रेरणा देनेवाले नेतृत्व करनेवाले (अथवा ले जानेवाले) निर्मल प्रकाशस्वरूप व अत्यधिक कल्याण करनेवाले महादेव को नमस्कार है।

किमहं कथयाम्यत्र कलिकालस्य कर्मणाम्।

हिंसायां निरतो जातो जानन्नपि जगत् प्रभो !।।६६।।

इस कलियुग के कर्मों के विषय में मैं क्या कहूँ। हे प्रभु ! जानता हुआ भी संसार हिंसा में संलग्न होगया है।

साम्प्रतं दृश्यतां नाथ ! नाहमेकाकिकेवलः।

चतुर्धा दृश्यते दृश्यं कथयामि यथामति।।६७।।

हे नाथ ! इस समय देखिए ! मैं केवल अकेला नहीं हूँ। दृश्यमान पदार्थ चार प्रकार का दिखाई देता है, उसके विषय में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ।

मायया भाति सर्वस्वं सम्बन्धाबन्धसंयुतम्।

ग्रामाग्रामविसंग्रामनामानामविकत्थनम्।।६८।।

माया के कारण सर्वस्व (समस्त पदार्थ) सम्बन्ध और आबन्ध (बन्धन) से युक्त प्रतीत होता है। प्रत्येक गांव में कलह है और नाम-नाम पर दर्पोक्ति (मिथ्या प्रशंसा) है, अर्थात् आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी झूठी प्रशंसा कर रहा है।

धनिको धार्मिको नास्ति शिश्नोदरपरायणः।
दृश्यते सर्वलोकोऽयं सशोकः कष्टवाञ्जनः।।६९।।

धनिकवर्ग धार्मिक नहीं है अपितु कामासक्त व उदरपरायण हो गया है। यह समस्त संसार शोकयुक्त दिखाई देता है और प्रत्येक व्यक्ति कष्ट से युक्त है, दुःखी है।

कदाचिद् दृश्यते साधुः कोऽप्येको भाग्ययोगतः।
अस्मद्भाग्ययोगाच्च भवानत्रागतः स्वयम्[१]।।७०।।

कभी कभार भाग्य के योग से कोई एकाध साधु दिखाई देता है और हमारे भाग्य के योग से आप स्वयं यहाँ आ गए हैं, यह हमारी अच्छी तकदीर ही है।

मुहुर्मुहुः पादपातैः स्तावैः प्रार्थनया भृशम्।
प्रोवाच मस्तस्वामी भीर्मा ते स्तात् सुखितो भव[२]।।७१।।

बार-बार पैरों में गिरकर बहुतसी प्रशंसापरक स्तुति करने पर मस्तनाथजी कहने लगे कि तुम डरो मत, खुश रहो।

राजा योगी जलं वह्निर्विपरीतचतुष्टयम्।
सर्वदा सहयोगेन कार्याणां साधका ध्रुवम्[३]।।७२।।

राजा, योगी, जल और आग ये चारों परस्पर विपरीत आचरणवाले हैं परन्तु हमेशा सहयोग से निःसन्देह कार्यों को सिद्ध करनेवाले भी हैं।

अज्ञानाद् यत् त्वयाऽकारि मया न प्रतिबोधितः।
आज्ञानाद् मृगया नैव कार्या ज्योतिर्विदा सह[४]।।७३।।

मैंने अपने स्वरूप के विषय में तुम्हें नहीं समझाया इसी कारण अज्ञानवश तुमने ऐसा किया, अतः अब आगे ब्रह्मवेत्ता के साथ अज्ञानपूर्वक शिकार मत खेलना।

स्वयं वा प्रार्थना कार्या नरो वा न नरो भवान्।
नरश्चेत्त्वं पलायस्व न नरो निश्चलो भव[५]।।७४।।

---

१. ५९ से ६९ तक के पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
२. पाठभेद-मस्तनाथो हि मा बिभीहि सुखी भव.......।।६३।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
४. पाठभेद-कस्मिन्नपि हि काले च जीवघातो न शोभते।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
५. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

जब तुम किसी पशु पर बाण चलाओ तो पहले स्वयं उससे प्रार्थना कर लिया करो कि तुम मनुष्य हो अथवा नहीं। यदि मनुष्य हो तो भाग जाओ और मनुष्य नहीं हो तो निश्चल खड़े रहो।

न योधनं हीनजनेन वीरो विधत्त एषा ह्यवमाननाऽस्य।
न वा प्रहारस्तव शोभते वा विहाय सिंहं[1] मृगशावकेषु।।७५।।

वीर का कमजोर प्राणी के साथ युद्ध करना उचित नहीं है क्योंकि इससे वीर का अपमान होता है अथवा सिंह को छोड़कर हरिण के बच्चों पर प्रहार करना तुम्हें शोभा नहीं देता।

विना शास्त्रं भाग्यविज्ञा चरन्ति दुरितं सदा।
ते पापा यदि देवाः स्युस्तेऽपि दुःखं प्रभुञ्जते।।७६।।

शास्त्र के बिना भाग्यवादी पुरुष भी हमेशा ही पापाचरण किया करते हैं, क्योंकि पाप और पुण्य का निर्णय तो शास्त्र ही कर सकता है और मनमानी करने से अवश्य पाप होता है। यदि वे पापी कदाचित् देवता भी बन जाएँ तो भी उन्हें दुःख भोगना पड़ेगा।

भाग्यादप्यधिका सिद्धिरैश्वरी सिद्धगोचरा।
ईशोऽपि सिद्धजनुषो नरस्य वशगः सदा।।७७।।

भाग्य से भी अधिक ईश्वरप्रदत्त सिद्धि सिद्धपुरुषों में होती है और ईश्वर भी सदा सिद्ध पुरुषों के वश में रहता है।

अस्माकं सा समीहाऽऽसीद् भाग्यं स्वं वेदितुं त्वयि।
तदीहाभूत्ततो भाग्यं फलतीति निदर्शितम्।।७८।।

अतः अपना भाग्य जानने के लिए हमारी ऐसी इच्छा हुई थी और तुम्हारे में भी वह इच्छा हुई कि शिकार करूँ, परन्तु जो भाग्य में होता है वही फलता है, यह तथ्य इस पद्य में उजागर किया गया है।

पुराकृतविपाकार्थं स्वान्तसंस्कारमेव हि।
भाग्यं जात्यायुर्भोगश्च साधनं विदुरर्हिताः।।७९।।

योग्य विद्वज्जन पूर्वजन्म में किए हुए कर्मों के फल देने के लिए ही वस्तुतः मृत्युपर्यन्त संस्कारसमुदाय को ही जाति, आयु और भोग इन तीनों के साधन को भाग्य कहा करते हैं।

---

१. पाठभेद-दुष्टं.............. ।।६६।। (प्रकाशित प्रति)

एवं विबोधितोऽज्ञासीत् पौरुषात् प्रबलं सदा।
भाग्यं ततोऽप्यनियतिरीश्वरेच्छा बलीयसी।।८०।।

इस प्रकार समझाने के पश्चात् वह नृप समझ गया कि पुरुषार्थ से भाग्य प्रबल है, परन्तु भाग्य भी कभी-कभी अनिश्चित हो जाता है, क्योंकि ईश्वर की इच्छा बलवती होती है।

ततः प्राह प्रार्थयन् स श्रीनाथ मम दूषणम्।
भवादृशां कुदृष्टिर्या न मे दृष्टिस्तदाप्यभूत्।।८१।।

तदनन्तर प्रार्थना करते हुए उसने श्रीनाथजी को कहा कि हे नाथ ! यह मेरा ही दोष है जो कि आप जैसों की कुदृष्टि मेरे ऊपर पड़ी और फिर भी मुझे उसका ज्ञान नहीं हुआ।

न प्रारब्धं भाग्यवत्ता पूर्वजन्मनि सञ्चिता।
तद्दोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्तं निदर्शय।।८२।।

पूर्वजन्म में सञ्चित किये गये भाग्य का नाम प्रारब्ध है और वह किसी प्रकार भी हट नहीं सकता, अतः उस दोष का परिहार (निराकरण) करने के लिए कोई प्रायश्चित्त मुझे बतलाइए।

आज्ञा धनं गृहं देवमन्दिरं रुचिरं सुखम्।
वाच्यं ह्यभीप्सितं चेत्तद् यथाशक्ति करोम्यहम्।।८३।।

हे महाराज ! धन, मकान, देवमन्दिर अथवा और कोई सुख जो आपको रुचिकर व अभिप्रेत हो उसके लिए मुझे आज्ञा दीजिए। मैं उसे यथाशक्ति पूरा करूँगा।

यज्ञो दानं तपो होमो जापो योगिसमर्चनम्।
सतां सेवा पात्रदानं रोग्यन्धादिकभोजनम्।।८४।।

यज्ञ, दान, तप, जप, हवन, योगिजनों की पूजा व सन्तों की सेवा, सत्पात्र में दान, रोगी, अन्धे आदमियों को भोजन देना, इनमें से जो कुछ करने के लिए आप कहेंगे, उसे मैं अवश्य करूँगा।

तदोवाच गुरुर्वाक्यं न मे ग्राह्यं त्वया कुतः।
लोभमोहमहाघोरान्धकारे पातयाम्यहम्[१]।।८५।।

---

१. ७५ से ८४ तक के पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

तब गुरुदेव ने ये वचन कहे कि मुझे कुछ नहीं चाहिए क्योंकि मैं तुम्हारे द्वारा स्वयं को लोभ, मोहरूप अत्यन्त घोर अन्धकार में गिराना नहीं चाहता।

तच्छ्रुत्वा तस्य[1] माहात्म्यं दरिद्रापीडनं भृशम्।
मुमोद प्रणिपत्यासौ स्वं गेहं प्रजगाम ह[2]।।८६।।

उस वचन को सुनकर वह सरदार समझ गया कि इनका माहात्म्य गरीबों को पीड़ा पहुँचाना नहीं है। फिर वह प्रसन्न हुआ और इनको प्रणाम करके अपने घर चला गया।

सर्वं स्ववृत्तं निजपूर्निवासिनामन्तश्चरं सोऽथ चकार येन ते।
तथा न हिंसां प्रचक्रुराश्रिताः स्वधर्ममार्गं कथितं प्रभूक्त्या[3]।।८७।।

उसने घर जाकर स्वामी मस्तनाथजी के कथनानुसार अपने सम्पूर्ण वृत्तान्त को अपने नगरवासियों को सुना दिया। जिस कारण उन्होंने फिर हिंसा नहीं की और अपने धर्म के मार्ग पर चलने लगे।

सतां स्वधर्मोपचयोपदेशो हिंसा श्रुतौ यद्वदिहोपदिष्टा।
प्रचारिता सर्वविदा तदेत्थं श्रीमस्तनाथेन हिताय तत्र।।८८।।

वेदशास्त्रों में जो हिंसा बताई गई है उसी तरह यहाँ पर भी बताई गई है अतः सब कुछ जाननेवाले श्रीमस्तनाथजी ने सबके कल्याण के लिए सज्जनों से अपने धर्म का पालन करने के उपदेश का प्रचार उस सरदार के माध्यम से कराया।

इति श्रीमस्तनाथचरिते झज्जरवने विविधजीववधस्तथा असमययुद्धनिषेधनं नाम सप्तदशः सर्गः।

---

१. पाठभेद-तदाकर्ण्य स.........................। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद-जगाम स्वगृहं प्रति..............।।६७।। (प्रकाशित प्रति)
३. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं :-
सर्वं स्ववृत्तं निजपूर्निवासिनां निवेदयामास यथार्थधर्मतः।
न्यगादि धर्मोपचयोऽपि योगतः श्रीमस्तनाथेन च भक्तिः केवला।।६८।।

अष्टादशः सर्गः

इन्द्रप्रस्थगमनादिप्रकरणम्

अकारि लोकत्रितयो त्रयीमयीमधारि योगाऽग्निमयी तनुस्तनुम्।
अहारि दौस्थ्यं जगतां यया शुभां व्यभारि गोरक्ष इति स्तुतां स्तुमः।।१।।

जिसके द्वारा त्रयीमयी (उत्तम, मध्यम व अधमस्वरूप अथवा सत्त्व, रजस्, तमस् स्वरूप वाले) तीनों लोक (स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल) बनाए गए, योगाग्निमय शरीर धारण किया गया, जगत् के कष्ट दूर किए गए व उसका कल्याण किया गया, ऐसे 'गोरक्ष' नाम से स्तुत शरीरवाले तुम्हारी हम स्तुति करते हैं।

साकारतां वाधिकरोतु हीश्वरः करोतु चाकारविशेषशून्यताम्।
अहो! स्वतन्त्रो जगदीश्वरेश्वरः स मस्तनाथत्वमवाप्तवानिह।।२।।

वह ईश्वर चाहे साकारता को पाए अथवा आकारविशेषशून्यता (निराकारता) को करे अर्थात् वह ईश्वर साकार रूप में विद्यमान रहे अथवा निराकार में। अहो! जगत् का नियन्त्रण करनेवाले का भी शासक वह परमतत्त्व प्रत्येक कार्य में स्वतन्त्र है और इस संसार में उसने ही मस्तनाथस्वरूप को प्राप्त किया हुआ है अर्थात् सर्वसामर्थ्यवान् परमेश्वर ने ही मस्तनाथजी के रूप में अवतार लिया।

ज्ञाततायां च या भ्रान्तिरज्ञाततत्वस्य विद्यते।
मिथ्यात्वे सत्यतायाश्च तन्निरासाय वेदवाक्[१]।।३।।

और न जाने गए तत्त्व का ज्ञान होने पर भी जो भ्रान्ति (संदेह) है और सत्यता के विषय में मिथ्यात्व का आरोप होने पर उसका निराकरण करने के लिए वेदवचन प्रामाणिक होता है। अर्थात् वेदवचन से सब भ्रान्तियाँ दूर होती हैं।

असिर्निगीर्णो यवनस्य पूर्वं हिन्दूजनः पूर्वत एव नष्टः।
न देवतुल्याऽसिधरस्य पूजा हिन्दूगणो हीनमतो व्यलोकि[२]।।४।।

---

१. १ से ३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद–असिर्निगीर्णो यवनस्य कालात् प्रागेव यः सर्वशिरोमणिश्च।
कालक्रमाद् ह्रासमुपेयिवान् स आर्यत्वहिन्दुमनार्यसङ्गात्।।

जिसने यवनों की तलवार को निगल लिया था ऐसा हिन्दू समाज तो पहले ही नष्ट हो चुका था और मतिमन्द जिस हिन्दूजाति में खड्‌गधारी देवतुल्य वीरपुरुष का भी सम्मान नहीं रहा था।

सर्वे देवा मानहीनाः कृतास्तैर्मूर्तिस्तेषां धातुजा भ्रंशितैव।
तीर्था भ्रष्टाः कुण्ठिता शस्त्रधारा आर्याणां च स्थानमाला हृता वै[१]।।५।।

उन यवनों ने सभी देवता पूजा से रहित कर दिए, उनकी धातु से बनी हुई मूर्ति तोड़ दी गई, तीर्थस्थल अपवित्र कर दिए तथा हिन्दुओं के शस्त्रों की धारा कुण्ठित कर दी गई और आर्यों के प्रदेश (राज्य) नष्ट कर दिए गए अर्थात् भारत में सर्वत्र यवनसाम्राज्य छागया और हिन्दुत्व की दयनीय अवस्था होगई और वे अत्याचारों से पीड़ित हो 'त्राहि माम्', 'त्राहि माम्' कहने लगे।

रंगारामागानमांसादिसक्ता वैश्ये नृत्ये लम्पटा देवकार्ये।
तादृक् पूजाभक्तिरेषां प्रयाता रक्षाहीनाः शास्त्रहानात् प्रजाताः[२]।।६।।

नाटक, स्त्री, संगीत और मांसादि में आसक्त तथा गणिकाओं के नृत्य देखने में लम्पट व्यक्तियों की देवकार्य में वैसी पूजाभक्ति नहीं रही जैसी पहले थी। इसीलिए शास्त्रविधि छोड़ने से ये रक्षाहीन होगए।

केचिल्लोका आत्मरक्षाविचाराद्धर्मं हित्वा युद्धसिद्ध्यैव केचित्।
धर्मो देवाः पूजनीयाश्च सिद्धाः सन्तस्त्वेतां संजहुः सन्मतिं स्वाम्।।७।।

कुछ लोग आत्मरक्षा के विचार से अपने धर्म को छोड़ युद्ध की तैयारी में लग गए और कितने ही व्यक्तियों ने अपने इस उत्तम विचार को भी छोड़ दिया कि धर्म, देवता, सिद्ध व सन्त पूजनीय हैं।

न वारनारीजनबिम्बतुल्यसुधाधरासेवनतः स्वधर्मः।
स्वरक्षिता सोऽधिरजन्यमूषामधोऽङ्गसंसेवनतो द्रुतो यः।।८।।

रात्रि में गणिकाओं के बिम्ब के समान अमृतयुक्त अधर (नीचे का होठ) का निरन्तर पान करने से तथा उनके साथ रतिक्रीड़ा करने से नष्ट हुआ उनका अपना धर्म अपनी रक्षा भी न कर सका।

येषां दुर्गा खड्‌गधारा-स्वशक्तिर्ध्येया हृद्येतेऽसिहस्ताः समासन्।
अज्ञैर्देवानादरात्तत्प्रहाणाज्जीर्णाः शीर्णास्ते कृता ये द्विजान् हा!।।९।।

---

१. पाठभेद-संघो व्यनाशि।।७।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

तलवार धारण करनेवाली दुर्गा अपनी शक्तिरूप में जिनके हृदय में चिन्तन की जाती है व जिन्होंने अपने हाथ में तलवार धारण की हुई है, ऐसे वीरों द्वारा अज्ञानियों से किए गए देवों का अनादर करने के कारण उनका नाश करने से वे जीण-शीर्ण कर दिए गए जो द्विजों (ब्राह्मणों-विद्वानों) को नष्ट करनेवाले थे।

य आर्यजनसम्मर्दः प्रत्यहं नु पदे पदे।
यवनैर्भक्षिताः पूर्वं धर्महानात् प्रदण्डिताः[१]।।१०।।

उस समय यवनों ने कदम-कदम पर आर्यों का विध्वंस किया और उनके धर्म का विनाश करके उन्हें दण्डित किया।

आर्यधर्मस्य न्यायोऽयं श्रुतिस्मृत्यनुसारतः।
यवनग्रन्थानुसारेण यवनानां शुभे नृपे[२]।।११।।

उस समय अच्छे राजा का शासन होने पर आर्यधर्म का यह न्याय श्रुति एवं स्मृति के अनुसार होता था तथा यवनों का, यवनों के ग्रन्थ (कुरान) के अनुसार होता था अर्थात् राज्यसभा में हिन्दुओं एवं मुसलमानों के न्यायाधीश अलग-अलग होते थे।

तेषां पूर्वजवृत्तान्तं सत्यं सिद्धिसमन्वितम्।
हित्वा व्यासविरोधेन कल्पितं दुष्कवेरिव।।१२।।

उनके पूर्वजों के सिद्धि से युक्त सत्य वृत्तान्त को छोड़कर वेदव्यास के विरुद्ध दुष्टकवि की भांति झूठी कल्पना कर ली गई अर्थात् विरोध के कारण हिन्दुओं के ग्रन्थों में दोष निकाले गए। जैसे कहा कि द्रौपदी ने पांच पतियों को भोगा। कुन्ती ने विवाह से पूर्व ही सूर्य नामक किसी व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करके सन्तान उत्पन्न की तथा विवाह के पश्चात् भी सन्तानोत्पत्ति में पति के असमर्थ होने पर इन्द्र, वायु इत्यादि व्यक्तियों से अपनी सन्तानें उत्पन्न की। इसी तरह माता सत्यवती ने भी अविवाहित होते हुए भी व्यास को उत्पन्न किया तथा मनु व शतरूपा सगे भाई-बहिन थे जिन्होंने परस्पर विवाह किया, जिनसे मानवजाति का जन्म हुआ। इस प्रकार की सिद्धियों में यवनों ने दोषारोपण किया।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस सभ्यता को समाप्त करना चाहते हो तो उनके सामने उनके पूर्व इतिहास में दोष बताए जाएं तथा उन्हें उसके सही ज्ञान से वंचित रखा जाए तो वह जाति स्वयं अन्य जाति में लुप्त हो जायेगी। यही अंग्रेजों ने भी आर्यों के मूलधर्मग्रन्थ वेदों के साथ किया। उनमें अनेक दोष निकाले गए और

---

१. ८, ९, १० पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

उसी की बदौलत आज भी स्वतन्त्र भारत मानसिक रूप से गुलाम है जिस कारण अपनी सभ्यता के प्रति ध्यान न देकर आंग्लभाषा के माध्यम से शिक्षण उत्तरोत्तर बढ़ता जारहा है तथा उन्हीं के साहित्याध्ययन को प्राय: सभी क्षेत्रों में वरीयता दी जारही है। वह दिन दूर नहीं जब शनै: शनै भारतीय सभ्यता लुप्त होकर आंग्लसंस्कृति का सर्वत्र प्रचार हो जायेगा।

मेघदूतसमं वृत्तं परस्परविलक्षणम्।
आंग्लयावनभाषाज्ञैर्नास्तिकत्वाय कल्पितम्।।१३।।

अंग्रेजी तथा फारसी के विद्वानों ने नास्तिकता फैलाने के लिए मेघदूत की तरह परस्पर विलक्षण कल्पित इतिहास बना लिया।

अप्रमाणं तु तद्वृत्तं यत्र सिद्धिर्न गीयते।
न देवतार्चा सिद्धार्चा तां बिना किं प्रसिद्ध्यति[1]।।१४।।

उनका वह इतिहास प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसमें सिद्धियों का वर्णन व देवों की पूजा तथा सिद्धों का आदर नहीं किया गया है क्योंकि इसके बिना वह क्या प्रसिद्ध होता ? अर्थात् द्वेष के कारण सच्चाई को छुपा दिया है।

प्रत्यक्षानुमानाभ्यां शब्दगत्या न सिध्यति।
हेतुतात्पर्यवादाद्यैर्न विना प्रमितिर्भवेत्।।१५।।

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण के बिना सत्यता सिद्ध नहीं हो सकती और हेतु, तात्पर्य, वाद इत्यादि के बिना प्रमिति (निश्चितज्ञान) भी नहीं होती।

आर्याणां च सिद्धान्तो निकषाशाणशाणित:।
योगप्रज्ञातप:प्रज्ञाब्रह्मप्रज्ञाविधानत:।।१६।।

और आर्यों का सिद्धान्त कसौटी रूप शाण पर शाणित (पैनाया हुआ) है, जो योगप्रज्ञा, तप:प्रज्ञा व ब्रह्मप्रज्ञा के अनुसार है।

दैवीं शक्तिमनादृत्य मानवीमाश्रिता: पुन:।
आर्याणां च नाशोऽभून्नात्र कार्या विचारणा।।१७।।

दैवी शक्ति का निरादर करके फिर मानवी शक्ति का आश्रय ले लिया गया, जिससे आर्यों का विनाश होगया; इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए।

अत एव हि भक्तिर्हि सर्वेषां सुखदायिका।
उत्तमाधममध्यानां दिव्यभावप्रदायिनी।।१८।।

---

१. यह-पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

वस्तुत: इसीलिए ही भक्ति सभी को सुख देनेवाली होती है तथा श्रेष्ठ, निकृष्ट एवं मध्यमवर्गीय मनुष्यों को अलौकिक भाव देनेवाली होती है।

योगो हि चोच्चकक्षाणां दिव्यलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् योगादृते सदा[1]।।१९।।

नि:संदेह योग उच्चकोटि व दिव्यलक्षणों से युक्त दृष्टिवालों (दिव्यदृष्टिवालों) के लिए है। अन्यथा योग के बिना तो व्यक्ति सदैव अन्धों के हस्तगत अधिकार की भांति होगा।

पूर्ववृत्ताद् यदा या या प्रजाराज्यविपर्य्ययात्।
प्रवृत्तिर्भौतिकी नारीसिद्धविप्रादिवैभवात्[2]।।२०।।

प्राचीन काल में जब-जब प्रजा व राजा के परिवर्तन से मनुष्य की जो-जो भौतिक प्रवृत्ति हुई है वह नारी (देवी), सिद्ध ब्राह्मण आदि के ऐश्वर्य से ही हुई है।

तस्मात्सत्यं तु यद्वृत्तमाङ्ग्लागमनकारणम्।
इन्द्रप्रस्थे सुचारित्र्यं मस्तनाथस्य वर्ण्यते।।२१।।

सम्प्रति इन्द्रप्रस्थ में अंग्रेजों के आगमन में जो सच्चा कारण है उसका व मस्तनाथजी के उत्तम चरित्र का वर्णन किया जायेगा।

इन्द्रप्रस्थमुपेयिवान् स जगति भ्राम्यन् पदा पावयन्,
भक्तान् साधुसपर्यया सुकृद्भिराक्रान्तहृद्भावित:[3]।
स्वीयं शुभ्रयशश्चिरं त्विह ततो ह्याचन्द्रतारागणम्,
कालं स्थापयितुं निजै: परिगतो नाथैश्च शिष्यैर्मुदा[4]।।२२।।

वह संसार में घूमते हुए व अपनी चरण धूलि से उनको पवित्र करते हुए अपने भक्तजनों को महात्माओं की पूजा से अर्जित पुण्यसमूह से पूर्ण हृदय बनाते हुए व अपनी निर्मल कीर्ति को कल्प पर्यन्त स्थिर रहनेवाली बनाते हुए अपने नाथ शिष्यों के साथ प्रसन्नतापूर्वक दिल्ली नगर में जा पहुंचे।

---

१. १६ से १९ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
इनके पश्चात् प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलता है जिसमें पुनरुक्ति है।
एतस्मिन्नेव संरम्भे सन्तापाम्रेडनोत्थित:।
सशिष्यो मस्तनाथोऽयं दिल्लीनगरमीयिवान्।।१६।। २. २०,२१ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
३. पाठभेद–विलसितो विद्वज्जनानन्दकृत्…… ।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–कार्याकार्यविचारचारुचतुरो धीरो गंभीराशय:।
संमोदेन विभावयन् मुमुरहो श्रीमस्तनाथो यमी।।१७।। (प्रकाशित प्रति)

यावच्चन्द्रदिवाकरौ हरिहरौ यावच्च वेदा नगा
यावद् विन्ध्यहिमालयौ क्षितितले यावच्च गङ्गाऽनघा।
तावत् स्थास्यति सज्जनेषु ललिता श्रीमस्तनाथस्य सा
श्रेयो नाथमहत्सु धास्यतितरां कीर्तेर्विभूतिप्रभा[१]।।२३।।

जब तक चन्द्रमा और सूर्य, विष्णु और शंकर, जब तक वेद और पर्वत, जब तक विन्ध्य और हिमालय, जब तक निष्पाप (निर्मल) गंगा वर्तमान है तब तक श्री मस्तनाथजी की कीर्ति की वह ललित (मनोहारी) विभूतिप्रभा सज्जनों में स्थिर रहेगी व महान् कल्याण से युक्त भक्तजनों में विशद रूप से धारण की जायेगी।

पञ्चकूपीसमीपस्थः स्वासीनः पञ्चभूतगः।
ज्ञानपञ्चेन्द्रिये कर्म समीपे मानसं शिवः।।२४।।

शिवस्वरूप मस्तनाथजी ने पंचकुइयों (पंचकुइया रोड) के समीप जाकर वहां अपना धूना लगाकर पांच भूतों पर विजय पाकर पांच ज्ञानेन्द्रियों व पांच कर्मेन्द्रियों में मन लगाकर सिद्धासन में आसीन हो गए।

रसत्रिंशत्-तत्त्वचिन्ताजपासक्तोऽनुगैः सह[२]।
पण्डितैर्लोकदक्षैश्च[३] मन्त्रजापैस्तपस्विभिः।।२५।।

अपने अनुचरों (सेवकों), लोकव्यवहार में निष्णात पण्डितों व मन्त्रजाप करनेवाले तपस्वियों के साथ छत्तीस (३६) तत्त्वों के चिन्तन व उनके जप में संलग्न होगए। 'रस' शब्द से यहां छः की संख्या अभिप्रेत है।

महामहर्षितुल्यैः[४] स्वशिष्यैर्दिव्यगणैरपि[५]।
भूतादिभिश्च सततं[६] समन्तादथ वेष्टितः।।२६।।

बड़े-बड़े महर्षियों के समान दिव्यशक्ति वाले अपने शिष्य-समूह से व भूतादिकों से वह चारों ओर से निरन्तर घिरे हुए थे अर्थात् ये सब उनकी लगातार सेवा कर रहे थे।

यवनैर्हिन्दूलोकैश्च समाकीर्णः स्तुतस्तदा।
दिगम्बरो जटाधारी तपस्विवेषधृग्गुरुः।।२७।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–गणैः सह। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–स प्राज्ञैर्धीरधौरेयैः...... ।।२०।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–संकाशैः। (प्रकाशित प्रति) ५. पाठभेद–शान्तभावगैः। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–सूक्ष्मसृष्टिगणैश्चैव...... ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)

तब दिगम्बर (नग्न), जटाधारी व तपस्विवेषधारी गुरु मस्तनाथजी को यवन तथा हिन्दू लोगों ने चारों ओर से घेर लिया और उनकी स्तुति करने लगे।

तत्र लोका: कर्णयित्वा लोकनाय समाजगु:।
श्रुतं यदा महान् सिद्धो नग्न एक: समागत:[1]।।२८।।

लोगों ने जब सुना कि एक दिगम्बर महान् सिद्ध आए हैं, तो सब उनके दर्शन के लिए वहां आने लगे।

शाह आलमनामकोऽधिपतिर्बभूव भुवस्तदा।
नैष यस्य समानवृत्तिरभीप्सिता निजगौरवात्।।
यावनादरमात्मनीनहितं चकार सदा यत:।
हीनतां व्यदधाद् द्विजेषु विवेकविप्लवभावत:।।२९।।

उस समय 'शाह आलम' दिल्ली प्रदेश का अधिपति था, जिसे अपने मुस्लिम राजा होने के गौरव के कारण प्रजा के साथ समान व्यवहार पसन्द नहीं था अर्थात् समान व्यवहार को वह अपनी शान के खिलाफ समझता था। इसी कारण यवनों का खूब आदर-सम्मान होता था और विवेकहीन होने से वह ब्राह्मणों का निरादर करता था, हिन्दूजातिवालों का उसके राज्य में कदम-कदम पर अपमान होता था।

द्विजा: स्वार्थपरा म्लेच्छधर्मात्यस्तमता: स्वयम्।
इतो भ्रष्टास्ततो भ्रष्टा नाममात्राऽवशेषिता:[2]।।३०।।

---

१. प्रसंग को देखते हुए २८वां पद्य २७वें से पहले होना चाहिए तथा २७ व २८वें पद्य के स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य हैं–

(क) अर्यैरार्यैश्च यवनै: समाकीर्ण: स्तुतस्तदा।
दिगम्बरो जटाधारी वासनावर्जितो गुरु:।।२२।।
वैश्यों (व्यापारी) और आर्यों से घिरा हुआ था तथा तब वे उनकी स्तुति कर रहे थे। वह नग्न, जटाधारी व वासनारहित गुरु था।

(ख) तत्रत्या दिल्लीवास्तव्या: समाकर्ण्य त्वरान्विता:।
तद्दर्शनार्थमाजग्मुर्नद्यश्च सागरं यथा।२३।।
वहां के दिल्लीवासी नाथजी के विषय में सुनकर जल्दी करते हुए उनके दर्शन के लिए आए जैसे नदियां सागर के पास स्वयं जाकर मिल जाती हैं।

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है–
इतो भ्रष्टास्ततो भ्रष्टा नाममात्रावशेषिता:।
तद्धर्ममात्रविश्वासा द्विजास्ते द्विजसन्निभा:।।२५।।

और ब्राह्मणों ने स्वार्थवश अपने धर्म का परित्याग कर म्लेच्छधर्म के आगे शिर झुका दिया अर्थात् उन्हीं की बात मान ली। और फिर वे न इधर के रहे और न उधर के, केवल नाममात्र के ब्राह्मण रह गए।

नृपः शुश्राव सिद्धोऽयं मन्त्रिभि[१]र्व्यमृशत्तदा।
पण्डिताः फारसीभाषाऽरब्बीविज्ञाननैपुणाः।।३१।।
चिकित्सका धर्मविदो नीतिज्ञाः शास्त्रचुञ्चवः।
ज्योतिर्विद्रमलविद्याः[२] प्रवीणाः समुपस्थिताः।।३२।।

जब राजा ने सुना कि यह सिद्ध है तब वह मन्त्रियों के साथ विचार-विमर्श करने लगा। उस समय फारसी, अरबी भाषा के विशेष ज्ञान में निपुण विद्वान्, संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, वैद्य (चिकित्साशास्त्र के ज्ञाता), धर्मशास्त्र के ज्ञाता, विधिवेत्ता (कानून को जाननेवाले) व निर्मलविद्या (जिसमें हेर-फेर नहीं किया जा सकता ऐसी) ज्योतिषशास्त्र के जाननेवाले व्यक्ति आकर उपस्थित होगए।

दिदृक्षुणा नृपेणोक्तं सिद्धोऽयं कीदृशः।
द्रष्टव्यो नो विलोक्यो वा नग्नोऽथ तपसां निधिः।।३३।।

उसे देखने के इच्छुक राजा ने कहा कि यह कैसा सिद्ध, और कहां से आया है। हमें इस नग्न तपस्वी के दर्शन करने चाहिएं अथवा नहीं ?

योगी सिद्धः श्रुतोऽस्माभिः स्वधर्मः प्रसमीक्ष्यताम्[३]।
नीत्या भावि ज्यौतिषेण विचार्य[४] वदताऽखिलम्।।३४।।

हमने सुना है कि यह योगी सिद्ध है अतः तुम विचार कर बताओ कि हमारा क्या धर्म (कर्त्तव्य) है अर्थात् हमारे लिए क्या उचित है ? तथा ज्योतिषवेत्ता भी बतायें कि आगे भविष्य में क्या होनेवाला है व राजनीति इस विषय में क्या कहती है ? आदि-आदि बातें भली प्रकार विचार कर हमें बतलाइए।

नीतिज्योतिर्धर्मविद्भिरुत्प्रेक्षा कविताचणैः।
प्रतिभाकौशलैः सर्वैः सम्मन्त्र्य सुविनिश्चितम्।।३५।।

---

१. पाठभेद–अमात्यैः.......................।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–रामलीज्योतिषोर्विज्ञाः.......।।२७।। (प्रकाशित प्रति)
(रामली नामक ज्योतिष का विशेष ज्ञाता)
३ पाठभेद–विचार्यताम्। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद–समीक्ष्य......।।२९ (प्रकाशित प्रति)

नीति, ज्योतिष, धर्म के ज्ञाता प्रसिद्ध कवियों ने तर्क पर तर्क किया तथा लोकव्यवहार में प्रवीण व्यक्तियों ने भी भली प्रकार विचार-विमर्श कर अन्त में यह निश्चय किया कि–

धर्मविज्ञानमौलवीय-मुखेनैतद्विचार्यताम् ।
नृपधर्मोऽस्मदादीनामत्र यो हिन्दूधर्मगः ।।३६।।

अन्त में हिन्दू विद्वानों ने कहा कि मुस्लिम धर्म के विशेष ज्ञाता (ठेकेदार) मौलवियों द्वारा राजधर्म के विषय में विचार किया जावे क्योंकि हम लोगों का विचार हिन्दूधर्मानुकूल है।

नग्नः समीक्षितव्यो न कुरानप्रतिपादकः ।
कुरानमात्रधर्माणां वेदो हेयोऽन्यशब्दतः ।।३७।।

मौलवी कहने लगे कि कुरान के अनुसार नंगे का दर्शन नहीं करना चाहिए अतः कुरान के माननेवाले हम लोगों को जो वेदवचन कुरानानुकूल है, वही माननीय है, बाकी त्याज्य है।

एवं भाविवीक्षितं यद् नृपवृत्तिर्विलक्षणा ।
योगिसिद्धदुःखदानान्नाशयेत्सकलं जगत् ।।३८।।

जब भविष्य का इस प्रकार विचार किया गया जिससे कि राजा की चित्तवृत्ति विचित्र होगई, क्योंकि योगी सिद्धों को दुःख देने से सम्पूर्ण संसार नष्ट हो जाता है।

योऽविचार्य नृपो राजा सिद्धसिद्धिपरीक्षकः ।
तदभीष्टस्य का सिद्धिः सिद्धानां नाशनं न हि[1] ।।३९।।

जो मनुष्यों का पालक राजा बिना सोचे समझे सिद्धों की सिद्धि की परीक्षा लेना चाहता है, उसका अभीष्ट कैसे सिद्ध हो सकता है क्योंकि संसार में वस्तुतः सिद्धों का अभाव नहीं है।

एकाऽभावेऽपरः सिद्धस्तत्कार्यस्य समर्थकः ।
नृपो युधिष्ठिरो नाद्य नैवाऽकबरगोत्रजः[2] ।।४०।।

एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा–इस प्रकार उस कार्य का समर्थक हो ही जाता है। आज न तो राजा युधिष्ठिर है और न ही कोई अकबर का वंशज है अर्थात् पुराने मरते जाते हैं और नए जन्म लेते रहते हैं समय बीतने पर पता भी नहीं रहता कि कौन किसका वंशज है। केवल व्यक्ति के अच्छे व बुरे कर्म ही जीवित रहते हैं। उन्हें ही लोग याद रखते हैं।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद–क्वचित् ।।३४।। (प्रकाशित प्रति)

परिच्युता हिन्दूलोका महतामप्यनादरात्[१]।
राष्ट्रच्च यवना:[२] सिद्धयोगिनामवहेलनात्[३]।।४१।।

महान् व्यक्तियों का अनादर करने के कारण हिन्दू लोग नष्ट हो गए (अर्थात् उनका शासन जाता रहा) और यवन भी सिद्धयोगियों का निरादर करने से राज्य से च्युत होगए अर्थात् उनकी सत्ता भी समाप्त होगई।

विप्रस्यैव विरोधेन नृपबंगप्रजापति:।
सिराज्जुद्दीननामापि हतस्तत्रांग्लवर्द्धक:।।४२।।

वहां ब्राह्मणों के विरोध से ही अंग्रेजों को बढ़ानेवाला गुलाम सिराज्जुद्दीन नाम का बंगाल का राजा मारा गया।

तत्पत्नीहरणास्तेन निगृहीतास्तदा न हि।
स्वस्त्रीत्यक्ता भवानी च पुरा लोभान्निराहता[४]।।४३।।

उसने अपनी पत्नी का हरण करनेवालों को पकड़ा नहीं और अपनी पत्नी भवानी लोभवश मरवा दी।

विप्राणां नैव सिद्धानामादरो यै: पुराकृत:।
वृथा परीक्षा दग्धानां वृथा सर्वं सुमन्त्रितम्[५]।।४४।।

जिन्होंने पहले ब्राह्मणों व सिद्धों का आदर नहीं किया। व्यर्थ परीक्षा लेने वाले उन निकृष्ट पुरुषों की समस्त सुन्दर मन्त्रणाएं भी व्यर्थ हो जाती हैं।

नीति: का सिद्धसाम्मुख्यं करोति खड्गपातिनी।
सा सदा नृपयुद्धानां हेतु: सिद्धाऽवमाननात्।।४५।।

सिद्धों के सम्मुख असिप्रहार करनेवाली नीति क्या करेगी अर्थात् जो युद्धप्रिय राजनीति है उसका बस सिद्धों के आगे नहीं चलता और सिद्धों का तिरस्कार करने से ही वह राजनीति राजाओं के युद्धों का कारण बन जाती है।

माया गरीयसी सिद्धयोगिनां तद्विमोहित:।
क्व मे बलं क्व सिद्धिश्चेत्येवं तस्य मनोऽभवत्[६]।।४६।।

---

१. पाठभेद–वेदाभ्यसनं विना। (प्रकाशित प्रति)
२. 'यवना:' के पश्चात् 'जाता:' पाठ है। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सिद्धानां सिद्धिदर्शनात्।।३५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाण्डुलिपि में 'निकाल दिया' लिखकर इसका अनुवाद नहीं किया हुआ।
५. ४२, ४३, ४४ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं। ६. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

वस्तुत: सिद्ध पुरुषों की माया बड़ी प्रबल होती है उससे मुग्ध होकर उस राजा के मन में अहंकार उत्पन्न होगया कि मेरा बल कहां और सिद्धि कहां अर्थात् मेरी राजशक्ति के आगे उसकी सिद्धि मेरा क्या बिगाड़ लेगी।

एषा भगवती दुर्गा ययेदं धार्यते जगत्।
माया बलीयसी तस्या: को वेद न च वेद क:।।४७।।

यह भगवती दुर्गा है जिसके द्वारा यह समस्त ब्रह्माण्ड धारण किया जाता है; उसकी माया बलवती है। उसे कौन जानता है और कौन नहीं जानता अर्थात् उसकी वास्तविकता के विषय में कोई विरला ही व्यक्ति जान पाता है परन्तु वह माया जगत् की प्रत्येक गतिविधि में भासित हो रही है अत: उसकी सत्ता के विषय में सब जानते हैं।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति[1]।।४८।।

वस्तुत: वह भगवती देवी (महामाया दुर्गा) ज्ञानियों के चित्तों को भी बलपूर्वक आकर्षित करके मोह को दे देती है अर्थात् वह ज्ञानियों के मन को भी बलपूर्वक मोह में फंसा देती है।

परीक्षितव्य: सिद्धोऽसौ भृतक:[2] प्रेषितस्तदा।
सदक्षिणं भक्ष्यभोज्यमूर्णवस्त्रेण प्रेरितम्।।४९।।

इस सिद्ध की परीक्षा की जानी चाहिए–ऐसा विचार कर राजा ने दक्षिणासहित खाने योग्य खाद्य पदार्थ एवं ऊनी वस्त्र (दुशाला) के साथ एक दूत को भेजा।

तदादायाऽभिमानेन नृपस्येति न्यवेदयत्।
दूतो राज्ञश्च निखिलं दहने गुरुरक्षिपत्।।५०।।

तब दूत ने यह भेंट (उपहार) राजा की है–इस तरह अभिमान से बाबा से निवेदन किया, तब गुरु ने राजा की समस्त सामग्री को अग्नि में डाल दिया।

'निवेदितं श्रुतं राज्ञा दूतोक्तं तद्विचेष्टितम्।
पुनराज्ञापि चाऽऽनेतुं यद्वृत्तं प्रतिपाद्यताम्[3]।।५१।।

दूत ने जाकर राजा को सारा वृतान्त सुना दिया, तब उसे सुनकर राजा ने फिर आज्ञा दी कि जाओ और उस साधु से कहो कि जो कुछ आपको दिया था, वह वापिस लौटा दे।

---

१. ४७, ४८ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं। २. पाठभेद–सेवक:...... ।।३९।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–दत्तं प्रदीयताम्।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

मदेन नोवाच बहुप्ररूढं वचो नृपस्याथ तदा स हार्दम्।
परं न किञ्चिद्विदितं न योगसमृद्धिभाजामिति वेद मस्तः।।५२।।

राजा की आज्ञा पाकर वह सेवक वहां गया और राजा की गर्वोक्ति को नाथजी के सम्मुख जाकर कह दिया परन्तु मस्तनाथजी ने राजा के अभिप्राय को जान लिया क्योंकि योगियों को कोई वस्तु अविदित नहीं होती।

दूतस्तु वृत्तं निखिलं नृपाय न्यवेदयद् विस्तरशोऽथ दग्धः।
आकर्ण्य रागं स वमन् रुषाक्षि-द्वयेन मौनं क्षणमाललम्बे[१]।।५३।।

दूत ने सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक राजा से निवेदन कर दिया कि उसने सम्पूर्ण सामग्री जला दी। यह सुनकर राजा के दोनों नेत्र क्रोध के कारण लाल हो गए और फिर वह क्षण भर चुप रहा।

ततः स जातः प्रतिकूलचिन्त[२] आनेतुमीशात्सचिवं समूचे[३]।
दत्तं स वासो भवदर्हणं नेत्युक्तः स मन्त्री समियाय तत्र[४]।।५४।।

तदनन्तर उस राजा की सोच उल्टी हो गई और उसने फिर मन्त्री से कहा कि जो वस्त्र हमने दिया था उसे उस सन्त से जाकर वापिस लाओ और उनसे कहो कि हमने जो वस्त्र आपको दिया वह आपके योग्य नहीं है अतः उसे वापिस दे दो। राजा की इस प्रकार की आज्ञा ले वह मन्त्री वहां गया।

हुतमपि दहने चेद्दास्यति ज्ञायतां स
गुरुरिति मतिरासीत् या स्वका तत्परीक्षाम्।
अपि चरितुममीषां नाशकाले[५] मतिं या-
मकृत गुरुवरोऽसौ साऽभवत्स्वा[६]द्विरुद्धा।।५५।।

अग्नि में जलाने पर भी यदि उस वस्त्र को दे देगा तो मैं समझूंगा कि वह गुरु (सिद्ध) है, ऐसी नाथजी की परीक्षा करने की, जो उस राजा की बुद्धि हुई, वह उन्होंने उसका विनाशकाल समझकर ही की।

---

१. ५१, ५१ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं। २. पाठभेद–चिन्तन। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–समूचिवान्। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–न च प्रदीयतां मन्त्रिवरो जगाम सः।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–ध्वंसकाले .... ।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–ईशबोधाद् .... ।।४३।। (प्रकाशित प्रति)

तदा दूतो मन्त्रिमुख्यः कश्चित् सिद्धविरोधकृत्।
प्रेषितः समगात् सोऽपि प्रणिपत्य न्यवेदयत्[१]।।५६।।

तब सिद्धविरोधी किसी प्रधानमन्त्री को दूत बनाकर बाबा के पास भेजा। उसने भी वहां पहुंचकर नाथजी को प्रणाम कर निवेदन किया कि.........।

गुरुवर नृपनीतिर्वक्रगा दुर्विभाव्या[२]
नयकृतमपि ते स्तात् सिद्धितत्त्वं समीक्ष्यम्[३]।
इति वदति नृपोऽनादृत्य मां वह्निदत्तं
प्रवितरतु मदीयं प्रेषितं सूर्णवासः[४]।।५७।।

हे गुरुदेव ! राजनीति बड़ी कुटिल गतिवाली होती है। उसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं समझ सकता। आपका नीतियुक्त भी सिद्धितत्त्व विचारणीय है, इसीलिए राजा कहते हैं कि मेरा अनादर करके जो ऊनी वस्त्र तुमने अग्नि में फेंक दिया था, मेरे द्वारा भेजे हुए उसी ऊनी वस्त्र को वापिस दे दो।

श्रावं श्रावं वचनरचनाचातुरीं वीक्ष्य योगाद्
राज्ञो भाव्यं सचिवगदितं रोषताम्राक्षप्रान्तः[५]।
वह्नेस्तादृग् बहुलवसनस्तूपमेकक्षणेन
ग्राहं ग्राहं सचिवसविधे त्याजयन्[६] मस्तनाथः।।५८।।

मन्त्री की वचन-रचना की चतुराई को सुनकर और योगशक्ति से राजा की भावी होनहार को देखकर मस्तनाथजी के नेत्र क्रोध से लाल हो गए और उन्होंने एक क्षण में अग्नि (धूने) से निकालकर वैसे ही बहुत सारे वस्त्र मन्त्री के सामने रख दिए।

आदिदेश नृपो ह्येषु स्वीयं बुद्ध्या विमर्शयन्।
निष्कास्याऽस्माद् ब्राह्मणेभ्यो दद्याद् वाच्यो नृपस्तथा[७]।।५९।।

---

१. पाठभेद–इत्याज्ञाप्य प्रधानं कंचित् सिद्धविरोधिनम्।
मुमोद...।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–दुर्विगाह्या। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–चलति युगलपक्षे तोषरोषेऽपि जोखम्। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–भवांस्तद् दत्तमादाय वह्नेः।।४५।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–गदिते होनहारं विचार्य।......।।४६।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–हापयन्.....................।.........।।४६।। (प्रकाशित प्रति)

७. पाठभेद–...............................मानी स्वीयं प्रज्ञावधानतः।
परिचीय पृथक् कुर्याद् देयं विप्राय कथ्यताम्।।४७।। (प्रकाशित प्रति)

तब नाथजी ने आज्ञा दी कि राजा से कहो कि इनमें से अपना दुःशाला पहचानकर ले जा और किसी ब्राह्मण को दान कर दे।

नृपस्य यदि भिक्षार्थमिताः सम्मानितास्ततः।
परीक्षा चेत्पुनस्तेन कार्या का सा मतिः कृता।।६०।।

यदि हम राजा के पास भिक्षा के लिए जाते और वह हमारा सम्मान करता तब तो उसे परीक्षा करनी चाहिए थी, परन्तु उसकी मति विपरीत क्यों होगई ?

प्रथमं या परीक्षा सा परीक्षा न मुहुर्मुहुः।
नत्वा परीक्षणं पुसां सकृत्पापप्रणाशनम्[1]।।६१।।

प्रथम बार जो परीक्षा ली जाती है वही परीक्षा कहलाती है, बार-बार नहीं जबकि नम्रभाव से की गई परीक्षा मनुष्यों के समस्त पापों का नाश कर देती है। इसके अतिरिक्त अहंकार से की गई परीक्षा विनाश का कारण बनती है।

किमिदं दुर्लभं वस्त्रं राज्ञे[2] को वास्ति दुर्लभः।
देशे देशे राजलाभः सिद्धलाभः क्वचित् कदा।।६२।।

क्या यह वस्त्र दुर्लभ है ? (जो राजा ने हमसे वापिस मंगवाया) अथवा राजा के लिए कौनसी वस्तु दुर्लभ है ? राजा तो प्रत्येक देश में मिल जाता है। किन्तु सिद्ध पुरुष तो कहीं-कहीं व कभी-कभी मिला करते हैं इसलिए सिद्ध पुरुष के समान राजा नहीं हो सकता।

पण्डिता योगिनः सिद्धाः पूज्यन्ते धार्मिकस्थले।
राजा स्वदेशे नान्यत्र नृपत्वं मद एव हि।।६३।।

ब्राह्मण, योगी और सिद्धजन धार्मिकस्थलों पर पूजे जाते हैं जबकि राजा अपने ही देश में पूजा जाता है अतः राजा होना अहंकार ही है अर्थात् राजपद केवलमात्र घमण्ड है।

यस्य खड्गस्याऽभिमानः[3] स खड्गस्तव नाशकः।
यथार्हमर्हणार्हा न[4] परीक्षा केवलं कृता।।६४।।

और जिस तलवार का तुम्हें अभिमान है, वही तलवार तुम्हारी नाशक बनेगी क्योंकि तुमने पूजनीयों की यथोचित पूजा तो की नहीं, बल्कि केवल परीक्षा ली है।

---

१. ५८, ५९ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं। २. पाठभेद–राज्ञा। (पाण्डुलिपि)

३. पाठभेद–अभिमानः खड्गस्य...... ।।५०।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–नैव........................ ।।५०।। (प्रकाशित प्रति)

श्रवणादेकदा क्वापि सिद्धिर्मान्या सतां मता।
पाण्डित्यं शास्त्रवादेन विद्वद्भिः प्रसमीक्ष्यते।।६५।।

सज्जन तो कहीं पर भी एक बार सुनने से ही सिद्धि को सत्य मान लेते हैं और विद्वान् शास्त्रार्थ से पाण्डित्य की समीक्षा कर लेते हैं।

वाचि लेखे च पाण्डित्यं शास्त्रतत्त्वेषु सद्विदाम्।
कवितासम्मुखे ग्रन्थे कवीनां सुपरीक्षणम्।।६६।।

विद्वानों के शास्त्रविषयक पाण्डित्य की वचन तथा लेख से परीक्षा हो जाती है और छन्दोबद्ध ग्रन्थ में कवियों की भलीभांति परीक्षा हो जाती है।

भूषणाभङ्गिनी नारी मुहुस्तं प्रेक्षते नवम्।
सुकवेः पद्यरचना भङ्ग्या नूतनतां व्रजेत्।।६७।।

बार-बार भूषण का विन्यास करनेवाली नारी उस आभूषण को नवीन ही देखती है, इसी प्रकार कवि की पद्यरचना भी विन्यासभेद से नवीन सी प्रतीत होती है।

सिद्धिर्नवा नवा नैव सिद्धैः काचित् समीक्ष्यते।
न चैकदा मतं चेत्स्यात् क्रीडया किं मुहुर्मुहुः।।६८।।

परन्तु सिद्धि नवीन नहीं प्रतीत होती और सिद्धों की सिद्धि की बार-बार परीक्षा नहीं हुआ करती और यदि एक बार सत्य नहीं मानी गई तो क्या वह बार-बार खिलवाड़ करने से सच्ची मानी जायेगी ?

देशदेशान्तरे सिद्धिः श्रुता येन न मानिता।
पुनर्दत्तं प्रगृह्णाति दग्धं राज्यं मतं तव[1]।।६९।।

जिसने देश देशान्तरों में सिद्धि सुन रखी है परन्तु फिर भी मानी नहीं और देकर फिर ले लेता है, ऐसे तुझ राजा का राज्य दग्ध ही है; ऐसा मेरा मत है।

शापो वाऽनुग्रहो वापि परेशाधीनतो भवेत्।
स यदिच्छेदस्मन्मुखात् तदेव निर्गतं भवेत्।।७०।।

शाप अथवा कृपा भी परब्रह्म के अधीन हुआ करती है। अतः उसने जो चाहा होगा, वही हमारे मुख से निकला होगा।

---

१. ६३ से ६७ तक के पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

विश्वासेऽपि च विश्वासो दाहकत्वं न नश्यति।
अविश्वासेऽपि सत्यं स्यात्तदग्नेरिव बुध्यताम्[1]।।७१।।

विश्वास में भी विश्वास होता है जो जलने-जलानेवाला होने पर भी नष्ट नहीं होता। अविश्वास में भी कुछ सत्य होगा, अतः उसे अग्नि की भांति समझना चाहिए।

नहुषो रावणो वेनः कारं कारं वहेलनाम्।
वल्लालः सिद्धवृन्दानामापदः प्राप्नुवन् पुरा।।७२।।

प्राचीनकाल में नहुष, रावण, वेन तथा वल्लाल इन सब राजाओं को सिद्धों का बार-बार अपमान करने से आपत्तियां उठानी पड़ी।

सागरीणामस्थिसंधेः कपिलस्याऽवमाननात्।
अद्यापि सागरो भूतः सहस्राणां क्षणादिव।।७३।।

कपिल मुनि के अपमान के कारण सगर के साठ हजार पुत्र क्षणभर में ही भस्म हो गए, जिनकी अस्थियों का समूह आज भी सागर में विद्यमान है।

श्रुत्वा फणीव हतशोणितदिग्धभोगः
नीत्वाऽऽर्यवृत्तमखिलं गदितं स सिद्धैः।
वस्त्राणि तथा सकलं निजपूरुषोक्तम्
राजानमाह हतभाग्यतया स मेने।।७४।।

उस मंत्री ने हतवीर्य (जिसकी शक्ति नष्ट हो गई है) सर्प की भांति सिद्धों से कहे हुए सम्पूर्ण आर्य वृत्तान्त को चुपचाप सुनकर, समस्त वस्त्रों को ले राजा को सारा हाल सत्य-सत्य कह दिया और फिर वह राजा उस वृत्तान्त को सुनकर अपने भाग्य को कोसने लगा।

सभ्येषु तीर्णनयसिद्धगुणाग्रहा ये
मान्याः सतां सपदि वन्दकतत्त्ववेदाः।
खिन्ना नृपं हृदि गृहीतसमस्तवासः
स्तोमं विदुर्गतपरेतपुरं तदानीम्[2]।।७५।।

उस समय राजा की सभा में जितने सभ्य उपस्थित थे उनमें जो राजनीतिज्ञ, सिद्धों के गुणों के पक्षपाती, माननीय तथा श्रद्धालु थे, वे यह जानकर खिन्न हुए कि

१ ६८, ६९ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–कीकसौधः''''' ।।५४।। (प्रकाशित प्रति)

राजा ने सब वस्त्र वापिस मंगवा लिए हैं इसलिए इसे सिद्धों का शाप लग गया, अतः अब यह राजा शीघ्र नष्ट हो जायेगा।

नादवादाज्ञया यातु समुक्तं गुरुणा तदा।
सर्वैर्वादः कृतस्तत्र कीर्तिनाथो न चाऽकरोत्।।७६।।

फिर मस्तनाथजी ने सब योगियों को आज्ञा दी कि उल्टा नाद (शंख) बजाओ। तब वहां सबने नाद बजाया परन्तु कीर्तिनाथ ने नहीं बजाया।

विपरीतेन नादेन सर्वे ते शङ्कितास्तदा।
किं भावि किं न वा भावि संभाव्यं जनितं तदा।।७७।।

तब विपरीत नाद से वे सब भयभीत हो गए। क्या होगा अथवा कुछ भी नहीं होगा; उस समय इस प्रकार की संभावनाएं की जाने लगीं।

अशक्यतत्त्वबोधार्थं मूढानामपि सम्मतम्।
प्रोक्तं गोरक्षनाथेन नादवादनमिष्यताम्[१]।।७८।।

नादवादन की अभिलाषा रखनेवालों के लिए अशक्यतत्त्व को समझने के लिए गोरक्षनाथजी के द्वारा जो कहा गया, वह मूढ़ों को भी सम्मत है अर्थात् उसे सभी स्वीकार करते हैं।

शिष्यसूचनया पृष्ट उवाच गुरुणा मया।
संदेहाद्वादनं नैव कृतं किन्तु भविष्यति।।७९।।

शिष्यों से सूचना पाकर गुरु ने कीर्तिनाथ से पूछा कि तुमने शंख क्यों नहीं बजाया, तब कीर्तिनाथ ने कहा कि मुझे संदेह है कि भविष्य में क्या होने वाला है ? इसीलिए मैंने शंख नहीं बजाया।

महारथा भीष्मलवादयो न वीराः पृथासूनुस्तदीयबालाः।
महारथैः सप्तभिरेकयोद्धा न वाऽभिमन्युः समयेऽद्य दृष्टाः[२]।।८०।।

---

१. ७५, ७६ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

२. पाठभेद–न भीष्मतुल्या न च कर्णतुल्या न भीमतुल्या न च पार्थतुल्याः।
न रामतुल्या न च रामतुल्य न रामतुल्या भुवि सन्ति वीराः।।६०।।
(प्रकाशित प्रति)
अब पृथ्वी पर न भीष्म के समान और न (दानवीर) कर्ण के समान, न भीम के समान और न पार्थ (अर्जुन) के समान, न राम के समान न परशुराम के समान और न बलराम के समान वीर हैं।

महारथी भीष्म, लवादि (कुश), पार्थ और उनके पुत्र, सात-सात महारथियों से अकेला युद्ध करने वाला अभिमन्यु (सुभुद्रा का पुत्र) इत्यादि क्षत्रिय आज के समय में विद्यमान नहीं है।

न धर्मपुत्रादिसमाः स्वधर्म-प्रचारमात्रैकसुशेमुषीकाः[1]।
कृष्णो न नीतौ परमः प्रदक्षो न पृथ्वीराजो नृपताश्रयेत् कम्[2]।।८१।।

स्वधर्म प्रचार में रुचि रखनेवाले सत्यवादी युधिष्ठिर आदिकों के समान राजा लोग आज नहीं हैं। न ही नीति में अत्यन्त प्रवीण कृष्ण है, न वीरश्रेष्ठ पृथ्वीराज है। न्याय व नीतियुक्त राजश्री किसके आश्रय पर रहेगी।

क्षत्रिणां न हि सामर्थ्यं बलं न चैव शस्त्रकम्।
न धर्मो न च सिद्धानां योगिनां सम्मतिः क्वचित्।।८२।।

अब वास्तव में क्षत्रियों में सामर्थ्य, बल (सैन्यशक्ति), शस्त्र व धर्म नहीं रहा और न कहीं सिद्ध योगियों का सम्मान ही है।

वीरता धीरता नास्ति भीरवः सर्वतश्च्युताः।
वन्दिनृत्यप्रिया देव-शस्त्रशास्त्रविरोधिनः[3]।।८३।।

राजाओं में वीरता व धैर्य का सर्वथा अभाव सा हो गया है। कापुरुष सब ओर से नीचे गिरते जा रहे हैं, वे वन्दियों (भाट-चरणों) तथा नृत्य गीतादि में रुचि रखते हैं और देवता, शस्त्रविद्या व शास्त्रों से विमुख होते जा रहे हैं।

यवना नाशमायाता राष्ट्रं को वा विधास्यति।
यस्य खड्गश्च मुद्रा च[4] राज्यलक्ष्मीस्तदाश्रया।।८४।।

यवनों के विनाश का समय आ गया है अर्थात् मुस्लिमशासक अब प्रायः नष्ट हो चुके हैं। फिर राज्य को कौन संभालेगा ? जिसके हाथ में तलवार (सैन्यशक्ति)

---

१. संचारविधानदक्षाः.......... ।।६१।। (प्रकाशित प्रति)
२. न कृष्णतुल्यो नयवान् गुणज्ञो ह्यमानगोमामभृतां महीयान्।।६१।। (प्रकाशित प्रति)
३. ८०, ८१, पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद–महिषी यष्टिकायत्ता.......... ।।६२।। (प्रकाशित प्रति)

महिषी के दो अर्थ हैं–भैंस एवं रानी। भैंस की उचित गतिविधि छड़ी के अधीन होती है उसी प्रकार रानी (राजलक्ष्मी) भी राजा के अधीन होती है। उस राजा के सहारे के बिना रानी अथवा राजलक्ष्मी की स्थिति दयनीय हो जाती है। अब शंख बजाने से यवनों का राज्य तो बिल्कुल नष्ट हो जायेगा फिर राज को कौन संभालेगा। ऐसा संदेह हो जाने पर ही कीर्तिनाथ ने शंख नहीं बजाया था। यही अपना मत कीर्तिनाथ ने गुरु के पूछने पर बता दिया।

और छलकपट है उसी के अधीन राज्यलक्ष्मी रहती है। ऐसा कोई दिखाई नहीं देता फिर राजलक्ष्मी किसके सहारे रहेगी।

न कातरं वाञ्छति राज्यलक्ष्मीर्न वन्दिनं भीरुमबुद्ध्यदत्तम्।
नापंडितं लोकप्रवृत्त्यविज्ञं न कीर्तिहीनं रणमर्दनादौ।।८५।।

क्योंकि राज्यलक्ष्मी कायर (दीनहीन), वन्दि (बन्दी), भीरु, निर्बुद्धि, कृपण, मूर्ख, लोकव्यवहार से अनभिज्ञ व युद्धादि में यशहीन पुरुषों को नहीं चाहती अर्थात् ऐसे पुरुषों के हाथ में राजलक्ष्मी स्थिर नहीं रह सकती।

दृष्टैव यस्मान्न भयात्पलायिता जैना इवाऽज्ञानहता विहिंसया।
रक्तं स्रवन्तीं परसैनिकाश्चेन्नग्नासिधारां निशितां कराग्रैः।।८६।।

अज्ञानी जैनी जैसे हिंसा को देखकर भाग जाते हैं इसी तरह खून से भीगी हुई तीक्ष्ण नंगी तलवार को धारण करने वाले जिस पुरुष को देखकर शत्रु सेना नहीं भागती (ऐसे पुरुष को राजलक्ष्मी नहीं चाहती, क्योंकि वसुन्धरा वीरों के द्वारा ही भोगने योग्य होती है–"वीरभोग्या वसुन्धरा")

परःशतानीव महारथानां संग्राममध्येऽसिबलेन नैव।
विनाशितानीह न राज्यलक्ष्मीस्तमेति वाणीव निरर्थिका सा।।८७।।

जिसने युद्ध के मध्य (प्रांगण में) तलवार की शक्ति से सैंकड़ों महारथियों को नष्ट नहीं किया उस पुरुष को निरर्थक वाणी की भांति वह राज्यलक्ष्मी स्वीकार नहीं करती।

रक्ताक्षदृक्पातमथास्य दृष्ट्वा वने वने चेद्दयिता परेषाम्।
पलायिता नेत्रजलैस्तरूणां न सेचिका राज्यश्रियः प्रियो न[१]।।८८।।

जिस पुरुष की कोपकषायित दृष्टि को देखकर शत्रुओं की स्त्रियों ने भागकर जंगल के वृक्षों को अपने नेत्रजल से नहीं सींचा, उससे राज्यलक्ष्मी प्रेम नहीं करती।

एवं कीर्तिवचः श्रुत्वा नाथः सिद्धस्तदाह भो।
यवनप्रियं मा ब्रूहि राष्ट्रमाङ्ग्लस्य सम्प्रति[२]।।८९।।

तब कीर्तिनाथ के इस प्रकार के वचन सुनकर नाथसिद्ध (मस्तनाथजी) ने कहा कि अरे! तू यवनों के विषय में प्रियवचन मत बोल अर्थात् उनकी प्रशंसा मत कर। अब भारत में अंग्रेजों का राज्य होगा।

---

१. ८३ से ८६ तक के पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–गौराङ्गा राष्ट्रनायकाः।।६३।। (प्रकाशित प्रति)

तत: पश्चाद् भवेद् राज्यं भारतीयं न संशय:।
माण्डलिकं ततो राज्यं प्रजाराज्यं ततो भवेत्[१]।।९०।।

उसके (अंग्रेजों के राज्य के) पश्चात् भारतीयों का राज्य होगा; इसमें संदेह नहीं है। तदनन्तर मण्डलों (प्रदेशों) से युक्त प्रजा का राज्य होगा।

यातो यथेच्छमथ शिष्यगणै: परीतो[२]
मस्तो मुहुर्मु[३]हुरनीतिनृपश्च सभ्यै:।
तत्प्रार्थना स्व[४]दुरितीयविनाशकामै:
उक्तो विमृश्य निजदूतगणेन नाथ:।।९१।।

इसके बाद मस्तनाथजी अपने शिष्यसमूह के साथ इच्छानुसार वहां से अन्यत्र चले गए। फिर राजा के निजी सभासदों ने राजा से बार-बार कहा कि अपने पापों की निवृत्ति के लिए उस नाथ से प्रार्थना कीजिए। तब राजा ने उनको ढूंढने के लिए अपने दूतों को आज्ञा दी परन्तु वे नहीं मिले।

तस्य मंत्री महामानी कादिराख्यो महाप्रिय:।
इन्द्रप्रस्थेऽहर्निशं स राजाज्ञातत्पर: सदा[५]।।९२।।

उसका अत्यन्त अभिमानी कादिर नाम का अत्यन्त प्रिय मन्त्री था। वह हमेशा ही राजा की आज्ञापालन में तत्पर रहता था तथा दिनरात दिल्ली में ही रहता था।

सिद्धशापप्रभावेण स्वान्ते तस्य हि कौटिलम्।
समागतमत: सोऽस्य राज्यं नेतुमकांक्षयत्[६]।।९३।।

अब कभी सिद्ध मस्तनाथजी के शाप के प्रभाव से उसके भी हृदय में कुटिल विचार आया और वह इसके राज्य को हथियाने की इच्छा करने लगा।

उपेत्यावसरं सेनामादिश्यैनं बबन्ध ह।
असिना लोचने तस्य निष्कृष्य निगडेऽक्षिपत्[७]।।९४।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद–गणेशो............ ।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–पुन: पुन:........... ।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–वाक्यं विचार्य।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–इन्द्रप्रस्थसमस्तस्य धूर्वोढा राजतत्पर:।।६६।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–समागता: मती राज्ञो राज्य उच्छेत्तुमिच्छया।।६७।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–निगडे पातयामास कस्तं मोचयितुं क्षम:।।६८।। (प्रकाशित प्रति)

फिर कभी मौका पाकर सेना को आदेश देकर इसे बन्दी बना लिया और तलवार से उसके नेत्र निकालकर उसे कारागार में डाल दिया।

एतत्कुकृत्यमालोक्य तत्रत्याः सकला जनाः।
क्रोधग्रहसमाविष्टा अन्योऽन्यं युद्धमाचरन्।।९५।।

इस कुकर्म को देखकर वहां रहने वाले सब लोग क्रोध के मारे आपस में युद्ध करने लगे।

असिना निहताः केचित् केचित् खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुराः शतोशऽथ सहस्रशः[1]।।९६।।

कुछ तलवार से मारे गए और कुछ चारपाई के अंगों (लाठियों) से पीटे गए। इस प्रकार न केवल सैंकड़ों अपितु हजारों की संख्या में असुर (यवन) विनाश को प्राप्त होगए।

विलोक्य दुरवस्थां तां गौराङ्गाः प्रशमय्य वै[2]।
स्वायत्तीकृतवन्तोऽद्यावधि शास्तिं प्रकुर्वते[3]।।९७।।

उस खराब हालत को देखकर अंग्रेजों ने उस गदर को शान्त कर दिया (दबा दिया) तथा इन्द्रप्रस्थ को अपने कब्जे में कर लिया और आजतक शासन कर रहे हैं।

यद् दुःस्थदुःखसहनं समशत्रुमित्रं चित्रविचित्रघटनाघटितस्वभावम्।
विद्वद्घटाघटितभारतशब्दबिन्दुं श्रीमस्तनाथगुरुराजमहं व्रजामि[4]।।९८।।

अत्यन्त असहनीय कष्ट को भी सहन करनेवाले, शत्रु और मित्र के प्रति भी समदृष्टि रखनेवाले, चित्र-विचित्र घटनाओं के अनुसार अपनी प्रकृति को बनानेवाले अर्थात् चित्र-विचित्र घटनाएं करने के स्वभाव वाले अथवा जिनका स्वभाव ही अद्भुत घटनाएं बनाने का है, विद्वानों द्वारा बनाए गए भारतरूप ब्रह्मबिन्दुस्वरूप गुरुश्रेष्ठ श्रीमस्तनाथजी की शरण में मैं जाता हूं।

इति श्रीमस्तनाथचरिते इन्द्रप्रस्थगमनं-यवनराज्यपरिवर्तन-मांग्लराज्यस्थापनं नाम अष्टादशः सर्गः।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है और प्रकाशित प्रति में ९३ से पहले है परन्तु यह ९३ के बाद उचित है।
२. पाठभेद–प्रशमय्यते.......... ।।७१।।
३. पाठभेद–बबन्धुर्मारयामासुर्मृताः केचित्स्वयं भिया।।७१।। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

एकोनविंशः सर्गः

प्रलयाग्निग्रामदाहादिप्रकरणम्

गोरक्षनाथं जगतां सनाथं नाथैकनाथं भुवनैकनाथम्।
देवाधिनाथं गुरुशिष्यनाथं नाथं नमामि हठसिद्धनाथम्।।१।।

संसार को आश्रय देने के कारण नाथों के प्रधान नाथ (अद्वितीय), ब्रह्माण्ड के मुख्य नाथ, देवों के नाथ, गुरु एवं शिष्य के नाथ, हठयोग के प्रवर्त्तक, सिद्धों के नाथ गोरक्षनाथजी को नमस्कार करता हूं। (यहां गोरक्षनाथजी का सर्वोपरि महत्त्व दिखाने के लिए ही उन्हें बार-बार नाथ शब्द से अभिहित किया है।)

अहो माया महामाया दयायाः परमोऽवधिः।
सुखानि गमयत्येषा कथं दुःखमुपासते।।२।।

उनकी माया व महामाया को देखकर आश्चर्य होता है। दया (करुणा) की भी चरमसीमा है। यह माया सुखों का गमन करवा देती है और व्यक्ति किस प्रकार दुःखों की उपासना करता है अर्थात् माया के कारण ही व्यक्ति के सुख छिन जाते हैं और व्यक्ति दुःख भी भोगनि लग जाता है।

लोकदृष्ट्या च यन्निन्द्यं त्वद्दृष्ट्या स्तुत्यमेव तत्।
तव चित्तं केन बुद्धं बुद्ध्वा किं लिखितं प्रभो।।३।।

और लोकदृष्टि से जो निन्दनीय है वही तुम्हारी दृष्टि में स्तुत्य है। हे स्वामी! तुम्हारा चित्त किसके द्वारा जाना गया और जानकर भी क्या लिख दिया गया?

प्राक्संस्कारं विना कश्चित्स्तुत्ये निन्द्ये न धावति।
निन्दा सा त्वन्मते ग्राह्या लोकनिन्दा न गृह्यते।।४।।

पूर्वजन्म के संस्कार के बिना कोई भी व्यक्ति प्रशंसनीय व निन्दनीय कर्मों के पीछे नहीं भागता अपितु वह निन्दा तुम्हारे विचार में ग्रहण करने योग्य है, लोकनिन्दा ग्रहण नहीं की जाती? अर्थात् पूर्वजन्म के संस्कार के बिना कोई भी व्यक्ति न तो अच्छा काम करता है और न ही बुरा।

रसो न च रसाभासश्चेतनाचेतनं जगत्।
या कूटस्थाश्रिता बुद्धिः कूटस्थं न जहाति सा।।५।।

और रसाभास रस नहीं है, जगत् जड़-चेतनस्वरूप है, जो कूटस्थ पर आश्रित बुद्धि है वह कूटस्थ को नहीं छोड़ती।

मस्तनाथेन यत्कार्यं कृतं लोकेन सम्मतम्।
जगदाधारमाश्रित्य जगदाधार एव हि[1]।।६।।

मस्तनाथजी के द्वारा लोककल्याण के लिए जो कार्य किया गया उसे संसार प्रामाणिक (सत्य) मानता है। समस्त संसार के आधार परमेश्वर का आश्रय लेकर जो कार्य करता है वह वस्तुतः जगत् का आधार ही होता है।

कातरा दक्षमार्गेण कुपथे यवना गताः।
विप्रदेवसिद्धकष्टा हिन्दू[2]विद्वेषकारणात्।।७।।

ब्राह्मण, देवता व सिद्धों को कष्ट देनेवाले कायर यवन हिन्दुओं के साथ द्वेष करने के कारण कुमार्ग पर अग्रसर हो, नष्ट होगए। जैसे शिव का अनादार करने से दक्षप्रजापति नष्ट होगया था।

सिद्धमस्तेन्द्रनाथेन रुद्रदेवाऽवतारिणा[3]।
युद्धयागव्यवस्थार्थं रुद्र[4]सिद्धान्त आश्रितः।।८।।

रुद्रावतार सिद्ध मस्तनाथजी ने युद्धरूपी यज्ञ की व्यवस्था के लिए रुद्र के ही सिद्धान्त का आश्रय लिया अर्थात् जिस प्रकार शिव ने दक्ष प्रजापति से क्रुद्ध हो, रौद्र रूप धारण कर, सबका विनाश कर डाला था, उसी प्रकार मस्तनाथजी भी यवनों के विनाश के लिए तत्पर हो गए।

चिन्ताजर्जरगात्रतां मनसिजान् रोगाँस्ततो देहगान्[5]
दीनक्षीणशरीरिणां सुतनुजौदासीन्यमापादयेत्।
पुत्रस्त्रीप्रमुखास्त्यजन्ति मृतकं दग्धुं[6] बुभूषुं जनं
राज्यश्रीः कथमाश्रयेज्जनममुं चिन्तासपत्नीयुतम्[7]।।९।।

मानसिक चिन्ता शरीर को दुर्बल कर देती है, फिर उसके शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दीनता से क्षीणशरीरवाले पुरुषों को अपने पुत्रादि

---

१. १-६ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं। २. पाठभेद–आर्य......।।७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–समस्तहितकारिणा....................।।८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–शैव....................................।।८।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–समुत्पादयेत्। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद–दग्धम्। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–युता।।९।। (प्रकाशित प्रति)

में उदासीनता हो जाती है; तब अन्त में मरे हुए जलने के लिए उपस्थित पुरुष को पुत्र तथा स्त्री इत्यादि भी छोड़ देते हैं तो फिर चिन्तारूपी सपत्नी से युक्त इस पुरुष (राजा) को राज्यलक्ष्मी कैसे अपनायेगी ? (कभी नहीं)।

कदर्य्यता भृत्यविरोधिनी या वृथा व्ययो मास्त्विति तर्कयन्ति।
सम्पाद्य कार्य्यप्रतिबन्धनेन राज्यश्रियं सा दवयन्त्यभीक्ष्णम्[1] ।।१०।।

व्यर्थ खर्च न हो; इस प्रकार की जो कृपणता है वह नौकरों के साथ विरोध उत्पन्न कर देती है व साध्यकार्यों में रुकावट डालती हुए वह राज्यलक्ष्मी को भी बहुत दूर भगा देती है अर्थात् राज्य में बहुत से व्यर्थ खर्च होते ही रहते हैं, जब कभी राजा उन्हें रोकने का प्रयास करता है तो राज कर्मचारी उनके विरोधी हो जाते हैं, जिस कारण राजसत्ता उस राजा के हाथ से छिन जाती है।

मंत्राः सन्ध्यादियोगाः परमदहरणाः सैनिकाः ख्यातयुद्धाः[2],
शस्त्राऽस्त्राणि[3] प्रभावा बुधजनसहजा दानमात्रैकलभ्याः।
नीत्यर्थाः शास्त्रवादाः पुरुतरगहनाः कौचुमारप्रयोगाः[4],
राज्यश्रीभृत्यतुल्याः कथमपि यदि न स्युः कथं सा समेयात्[5] ।।११।।

मन्त्र (सन्मति), सन्धि आदि छह उपाय और शत्रु का मर्दन करनेवाली युद्ध में लब्धप्रतिष्ठ सेनाएं, समस्त प्रकार के शस्त्र व अस्त्र, दानमात्र से प्राप्त विद्वानों का स्वाभाविक प्रभाव, नीति, धन, शास्त्रचर्चा–ये सब राज्यलक्ष्मी के सेवक के समान हैं। यदि ये सब न हों तो वह कैसे मिलेगी ?

अदण्डनीतिः प्रथिता धरित्र्यां सम्मोदिनी या बहुपापभाजाम्।
सम्यग्विचार्यैव कृतेन तुल्यं फलं प्रसूते कुह राज्यलक्ष्मीः[6] ।।१२।।

अत्यन्त पापाचरण करनेवाले व्यक्तियों को सुख देनेवाली जो अदण्डनीति जगत् में विख्यात है वह यदि भली प्रकार विचार कर कार्य करनेवाले पुरुषों के समान फल दुर्जनों को भी दे तो राज्यलक्ष्मी कहां रही ? अर्थात् राजलक्ष्मी वही है जो दण्डनीय को दण्ड व सज्जनों को सुख देवे।

---

१. दूरात्।।१०।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–युद्धदक्षाः।।११।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–अभ्यस्त।।११।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद कर्ममार्गे रतानां।।११।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–तुलयति वसुधां सा कथं दीनभावा।।११।। (प्रकाशित प्रति)
६. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

भूतं भावि हि वर्तमानमखिलं भानूडुपस्वग्रह[1]-
कार्य्याकार्यपरीक्षणं खगपरिस्पन्दं ग्रहाणां गतिः।
ज्योतिःशास्त्रगतं मुहूर्तघटनाबोधं पुरा कार्य्यतो
न प्राप्तं[2] गुरुवाक्यतः स्खलयति श्रेयःपदात् कुप्रभुम्[3]।।१३।।

वस्तुतः भूत, भविष्यत् व वर्तमान–तीनों कालों का ज्ञान; सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रहों के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की परीक्षा, पक्षियों का चलन, ग्रहों की गति, कार्य से पहले ही काल की घटना का बोध–ये सब जिसमें हैं ऐसे ज्योतिष शास्त्र के विषय को जिस कुत्सित भूपति ने गुरुवाक्य से नहीं जाना उसका कल्याणमार्ग से पतन हो जाता है।

धर्मः सर्वजनप्रियो यवनगो हिन्दूप्रियो वा भवेत्,
तच्छास्त्रैकविचारचुञ्चुगदितो निर्मत्सरं निर्हठम्।
निर्लोभं सकलैकवाक्यलसितैः शास्त्राक्षरैर्निश्चितम्,
न प्राप्तं गुरुवाक्यतो रहयति श्रेयः श्रियां नाशनम्।।१४।।

धर्म यवन का हो अथवा हिन्दू का; वह सबके लिए हित करनेवाला होता है, क्योंकि वह धर्मशास्त्रों के विचार से लब्धप्रतिष्ठ पुरुषों से हठ, राग-द्वेष व लोभ को छोड़कर कहा गया है तथा वह एकवाक्यता से युक्त व शास्त्रों के अक्षरों से निश्चित है। ऐसे धर्म को जिसने गुरुवाक्य से नहीं जाना, राजलक्ष्मी उसे छोड़ देती है व उसके कल्याण का नाश हो जाता है।

लुब्धा हिंस्राः परेर्ष्याः परधनवनितामात्रचौर्य्यप्रसक्ताः[4],
धर्माऽपायादवद्या गुणिजनविरहप्रार्थिनः सूचकाद्याः।
बुद्धा[5] जैनास्तथाऽऽर्य्याः परहितरहिता नास्तिकाः साहसार्थाः[6],
राज्यश्रीनाशनाय[7] प्रतिदिनमुदिता नादृताश्चेत् स्पशाः स्युः[8]।।१५।।

---

१. पाठभेद–स्वभानुभानूदितं .... ।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–प्राप्तं तद् .... ।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–द्रढयति श्रेयोऽधिनाथं यथा।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–महिलामात्रतृप्तिं दधानाः .... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–बौद्धा .... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–कोऽपि धर्मः कथं न .... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–वाच्यास्ते ते भवेयुः .... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
८. पाठभेद–कातरास्ते .... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

यदि राजघराने में श्रेष्ठ गुप्तचरों का आदर न हो तो वहाँ लोभी, हिंसक, ईर्ष्यालु, दूसरों के धन व स्त्री के हरण मात्र में आसक्त और धर्माचारण न करने से निन्दा के पात्र, गुणीजनों से कोसों दूर रहनेवाले, चुगलखोर दूसरे का अनिष्ट करनेवाले, नास्तिक, बिना सोचे-समझे काम करनेवाले, बौद्ध, जैन तथा हिन्दू–इन सभी सम्प्रदायों में ऐसे अनार्य पैदा हो जाया करते हैं जो राज्यलक्ष्मी का नाश कर देते हैं।

पौरोहित्यं सकलवसुधां संविजित्याश्रितं[1] यैः,
दत्त्वा राज्यं जयकृतमिदं देवताराधनञ्च[2]।
वैधव्याप्तौ कुलजनिरथोऽकारि सौभाग्यसिद्धिः,
तेषां नाशे कुलरतिमता राज्यलक्ष्मीर्जहाति[3]।।१६।।

जिन्होंने समस्त वसुन्धरा को जीतकर भी स्वयं पुरोहित का कार्य ही लिया और जीते हुए राज्य को अन्यों को देकर देवता-आराधना में ही लग गए तथा विपत्ति के समय जिन्होंने पुत्र देकर राजवंश की रक्षा की ऐसे पुरोहितों का नाश (अपमान) होने से परम्परागत राज्यलक्ष्मी राजा को छोड़ देती है।

येभ्यः सर्वसमृद्धयोऽथ पठनं शास्त्रेषु लोकेषु च,
सर्वे कर्षणधर्षणादिविविधा वाणिज्यकार्य्यादयः।
विद्या वेदरसाह्वयाः सुपठिताः सम्यक्कलाकौशलं,
विप्रास्ते ह्यवमानिता नृपपदं घ्नन्त्येव सर्वांशतः[4]।।१७।।

जिनसे सब प्रकार की समृद्धियां प्राप्त होती हैं और अध्ययन किया जाता है, शास्त्र तथा लोक में सब प्रकार की कृषि, दण्डनीति व अनेक प्रकार के वाणिज्य-व्यापार के कार्यादि–इन सबकी व साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या, कला-कौशल की शिक्षा मिलती है

---

१. पाठभेद–धारयित्वाशितं ....।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–वा ....।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–पुत्रं दत्त्वा क्वचिदपि जनो धर्मतत्त्वं ततान।
येषां तेषां भवति न च सदा विप्रपूजा विनाशे।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। पाण्डुलिपि में इसके बाद का १२, १३, १४, १५ पद्य वाला पृष्ठ उपलब्ध नहीं है तथा इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलता है :-
सर्वे कर्षणधर्षणादिविधयो वाणिज्यभैषज्यके, विद्यावेदरसा रसाश्च पठिताः सम्यक्कलाकौशलम्।
येभ्यः सर्वसमद्धयोऽथ पठनं तातर्त्ति लोकत्रयं, विप्रा योगिगणा गुणिगणा राज्ञा समर्च्याः सदा।।१६।।
(प्रकाशित प्रति)

ऐसे ब्राह्मणों का जो अपमान करता है उस राजा का राजपद समूल नष्ट हो जाता है।

देवाः पूर्वसमुद्भवा मनुमुखैर्धर्म्यैर्नृपैर्मानिता
आधिव्याधिजराजरान्तकरणे कार्याय संमानिताः।
ध्वंसासन्नदशां विलोक्य मनुजो मोमोत्ति रागातते–
र्मानापेतपदे कृता भुवि नृणां शंसापि दंशोऽपि न।।१८।।

देवता पहले उत्पन्न हुए हैं, वे मनु इत्यादि धार्मिक नरेन्द्रों द्वारा माने (पूजे) गए हैं तथा आधि (मानसिक संताप), व्याधि (शारीरिक संताप), जरा (क्षीणता) व वृद्धत्व का अन्त करने के लिए व विशिष्ट प्रयोजन के लिए संमानित किए गए हैं अर्थात् संकटों के समय साधारण जनता से लेकर मनु आदि धार्मिक राजा भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनकी पूजा करते आए हैं। विनाशकाल समीप आया जानकर मनुष्य अपनी मोहशृंखला का बार-बार परित्याग करता रहा है और मान (अहंकार) से रहित पद पर विराजमान होने पर भूतल पर राजाओं की प्रशंसा भी की गई है, दोष नहीं बताए हैं। अर्थात् मानवसुलभ दोष होते हुए भी श्रेष्ठ राजाओं के स्तुत्य कर्मों की ही पृथ्वी पर समय-समय पर प्रशंसा होती रही है न कि उनकी कमियों की, क्योंकि छोटी-मोटी कमियां तो मनुष्य में हुआ ही करती हैं, उनकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए अपितु मनुष्य के गुणों को ही ध्यान में रखना चाहिए।

सिद्धैः स्वीयबलेन मन्त्रसहितैः श्रीमस्तनाथादिभिः
स्वाशामात्रसमीहितार्थरचनं स्वस्वानुकूलं पुरा।
तत्सर्वं विफलं क्षणेन विमतं पम्फुल्यमानं यशो
नित्यं सिद्धपरीक्षकस्य विभुता सर्वा धुता साम्प्रतम्।।१९।।

पहले मन्त्रशक्ति से युक्त मस्तनाथादि सिद्धों के द्वारा अपनी शक्ति से अपनी आशामात्र वाले अभीष्ट पदार्थों की रचना अपने अनुकूल की गई थी, वह सब क्षणभर में ही व्यर्थ हो गई और विरोधी मतवाला यश फैलने लगा। प्रतिदिन सिद्ध की परीक्षा करनेवाले व्यक्ति का सम्पूर्ण सामर्थ्य अब कम्पित होगया है अर्थात् आजकल प्राचीन सिद्धों की अच्छी बातों को भी बुरी भावना के साथ ग्रहण किया जाता है, जैसे कि प्राचीन सिद्ध अपने सामर्थ्य से कुत्सित शराब आदि पदार्थों को भी भक्ष्य सात्त्विक पदार्थ दूधादि में परिवर्तित करके उसका उपयोग करते थे जबकि आज उसी बात

को विपरीत मत में लेकर बुराइयों का अनुसरण किया जा रहा है कि हमारे पूर्वज भी ऐसा ही करते आए हैं तथा सिद्धों की परख करनेवाले व्यक्ति भी एक बात पर स्थिर नहीं रहते।

शान्त्या शान्तिजनोपदेशकरणैर्विद्याविरोधादिभि-
रात्मप्रेमविवेकहानजनितैर्दौर्बल्यमुख्यैरसिम्।
धृत्वा लाञ्छनमात्मनस्त्वहननाद्यैर्यैः प्रसङ्गादिभि-
स्तस्य स्थानविडम्बनाघटितघटस्फोटाट्टकूटाटनैः।।२०।।

शान्ति के उपदेशक जैनियों के उपदेश को माननेवाले, आत्मा से प्रेम करने व विवेकशून्यता के कारण उत्पन्न दुर्बलता से वीरत्व का विरोध करनेवाले, तलवार को हाथ में धारण किए हुए भी जीव-वध की शंका से प्रहार न करते हुए क्षत्रिय धर्म में लाञ्छन लगानेवाले जिन पुरुषों ने कुसंगति के कारण क्षत्रियत्व का स्थान भंग किया है–ऐसे व्यक्तियों ने मानो भारत की राज्यलक्ष्मी का घड़ा फोड़ दिया अर्थात् ऐसे राजा इस देश की राज्यलक्ष्मी से हाथ धो बैठे।

त्रयोदश सपत्न्यस्ता राज्ञां सर्वार्थनाशनाः।
विजित्य धीरं नृपं राज्यश्रीः सेवते चिरम्।।२१।।

चिन्ता आदि पूर्ववर्णित तेरह राज्यलक्ष्मी की सपत्नी हैं। ये राजा के सम्पूर्ण अर्थ का नाश कर डालती हैं और जो राजा इनको जीत लेता है उस धीर भूपति की सेवा राज्यलक्ष्मी चिरकाल तक करती है।

एवं मत्वा राज्यलक्ष्मीः शशाप क्षत्रियान् पुरा।
हिन्दूनन्याँश्च यवनानाङ्गलराष्ट्रमचीकरत्।।२२।।

ऐसा समझकर पहले राज्यलक्ष्मी ने दूसरे हिन्दू व यवन क्षत्रियों को शाप दे दिया और अंग्रेजों का राज्य करवा दिया।

सिद्धोऽपि शैवमार्गीयं विहाय वपुरात्मनः।
दुष्टानां दमनायैव तद्देहं स्वीचकार सः।।२३।।

सिद्धरूप होते हुए भी अपने शैवमार्गीय गोरक्षरूप को छोड़कर भक्तों के हित तथा दुष्टों के दमन के लिए उन्होंने उस मस्तनाथरूप देह को धारण किया था।

शैवाऽविरोधिना तस्माद्राजानं यवनं खलम्।
विनाश्य सम्प्रदायेन व्यचरद् योग्यराज्यगः।।२४।।

इसी कारण दुष्ट यवन राजा को नष्ट करके योग्य अंग्रेजों से शासित भारत भू पर शैवमतानुकूल सम्प्रदाय के वेष में विचरण करने लगे।

न हिन्दूराजलोकेभ्यः किञ्चित्सम्पादितं निजम्।
न यवनाङ्गलैर्मही दत्ता सिद्धिरक्षा स्वयं कृता[१]।।२५।।

मस्तनाथजी ने हिन्दू राजाओं से अपना कुछ भी स्वार्थ सिद्ध नहीं किया और न ही यवन व अंग्रेज शासकों ने भी कोई भूमि उन्हें दान में दी किन्तु उन्होंने सिद्धि से अपनी रक्षा स्वयं की।

वैदिके वाङ्मये भक्तिर्गुरोर्भक्तिर्विशेषिता।
प्रजा विरहिता तत्र मस्तनाथेन शिक्षिता[२]।।२६।।

वैदिक वाङ्गमय में जिस भक्ति का उल्लेख किया गया है, वह गुरुभक्ति सभी भक्तियों में श्रेष्ठ बताई गई है। वहां उस गुरुभक्ति से विरहित प्रजा को भी मस्तनाथजी ने शिक्षित किया अर्थात् लोगों को भी गुरुमन्त्र की दीक्षा दी।

एकदा तपसांधामा पचूपानगरान्तिकम्[३]।
गतः श्रीमस्तनाथोऽभूत्तत्रत्यैरपि[४] वन्दितः।।२७।।

एक समय तपोनिधान मस्तनाथजी पचूपा नामक नगर के पास जा पहुंचे और वहां रहनेवाले लोगों ने उनकी बहुत सेवा-अर्चना की।

देवीदासाऽभिधः साधुस्तद्ग्रामचिरसंस्थितिः।
पौरैर्गत्वा समूचेऽस्य सन्मानपथदर्शनम्[५]।।२८।।

देवीदास नाम का एक साधु उस गांव में बहुत दिनों से रहता था। नगरवासियों ने उसके पास जाकर कहा कि मस्तनाथ नाम के एक साधु आए हैं, अतः उनका आदर करने की विधि बताइए।

---

१. २१ से २५ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
३. पाठभेद–ग्रामसन्निधौ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–अभि .... ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–स देवीदासनामासीत् साधुस्तद्ग्रामसंस्थितः।
आगतो मस्तनाथोऽत्र ब्रूहि किं करवाम भोः।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
प्रकाशित प्रति के अगले पद्य में पुनरुक्ति है :
पौरैर्गत्वा समूचेऽस्य सन्मानपथदर्शनम्।
का सामग्री कियन्मात्रं किं चास्मै रोचते वद।।२३।।

न साधवः सन्ति यथा तथाविधा
विधानदीक्षाभिरलङ्कृता भुवि।
भ्रमन्ति भूभारयुता न सन्मता
एतादृशा मस्तसमाः सहस्रशः[१] ।।२९।।

(देवीदास ने लोगों के पूछने पर कहा कि आजकल विधानदीक्षाओं से अलंकृत (अलौकिक ज्ञानसम्पन्न) वैसे (असली) साधु पृथ्वी पर नहीं हैं (अपितु) इस प्रकार के पृथ्वी के भारस्वरूप व पूजा के अयोग्य मस्तनाथ जैसे हजारों घूमते हैं।

न मन्त्रजप्यादिविशेषमत्या न योगसिद्ध्यादिसुमार्गगत्या[२]।
लोको वशे तस्य बिडम्बनाभिः पाखण्डछद्मादिभिरालुलोके[३] ।।३०।।

मंत्रजपादि की विशेष बुद्धि से अथवा योगसिद्धि आदि सुमार्ग पर चलने से लोग उसके वश में नहीं है, अपितु वह पाखण्ड व छलकपट आदि से लोगों में पूजित हो रहा है।

विप्रा द्विजोत्तमगणेषु च साधवस्तेष्वाचारचारुचरितानि खिलेषु तेषु।
विज्ञा बुधेषु सुरता[४] सुरलौकिकेषु जानन्ति चार्हणविधिं[५] विषमा न चान्ये।।३१।।

(वस्तुतः) ब्राह्मणसमुदाय में जो सज्जन हैं, उनमें भी जो पवित्र आचरणवाले हैं, उनमें भी देवपूजन में रत और विद्वत्प्रेमी लौकिक व्यवहार के जाननेवाले हैं वे ही पूजन की विधि को जानते हैं, अन्य कुटिल व्यक्ति नहीं। (अतः उस कुटिल देवीदास ने लोगों को मस्तनाथजी की पूजा करने से मना कर दिया।)

ग्रामौकसो ग्रामगृहं विहाय मनुष्यसाधारणतामवाप्ताः।
यूयं कुतः कारणतश्चरध्वं महीतले मानभृतो जना भोः[६] ।।३२।।

जब ग्रामीण गांव के घर को छोड़कर बाहर आगए तब देवीदास ने उनसे कहा कि तुम सब सम्माननीय व्यक्ति हो और किस कारण पृथ्वी पर साधारण व्यक्ति की भांति घूम रहे हो।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद–योगधाम्ना न च शास्त्रगत्या।।२५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–आविप्रवाहोपगता मनुष्याः।।२५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–कृतयः .... ।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–पूजनविधिं .... ।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
६. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

स तु श्रुततप:ख्यातितप:फलसुखादिकान्।
अनादृत्य नूत्नसिद्धिपरीक्षार्थमुपादिशत्।।३३।।

उसने मस्तनाथजी के तप की प्रसिद्धि व तप के फल सुखादिकों को सुन भी रखा था, फिर भी उनका अनादर करके नवीन सिद्धि की परीक्षा के लिए लोगों को सलाह दी।

विना परीक्षां सिद्धेश्च नादरं तस्य सोऽवदत्।
तदुक्ता मूर्खलोकास्ते प्रत्यहं त्रिदिनीं प्रति[1]।।३४।।

देवीदास ने पुन: कहा कि सिद्धि की परीक्षा बिना उसका आदर मत करो और उसके कहने से वे मूर्ख लोग प्रतिदिन तीन-तीन दिन के बाद उनके पास जाने लगे।

प्रातिस्विकां सिद्धिवाचमुक्तवन्तोऽज्ञतावशात्[2]।
पुत्रो मे स्याद्धनं मे स्याद् यशो मास्तु विपर्ययम्।।३५।।
शत्रुनाशोऽवश्यकार्य्यं स्वामिलाभ: सरस्वती।
भवेन्मे बह्वभीष्टं स्याद्विघ्नं[3] कार्य्येषु नो[4] भवेत्।।३६।।

मूर्खतावश उन लोगों ने अपने-अपने सिद्धि विषयक वचन कहें कि मुझे पुत्र दो, धन दो, मेरा यश खण्डित न हो, शत्रु का विनाश हो व मेरा कार्य अवश्य सिद्ध होवे। स्वामी का लाभ हो, मुझे विद्या मिले, मेरे सकल मनोरथ पूर्ण होवें, मेरे कार्यों में विघ्न न आएं–इत्यादि मनमाने पदार्थों की याचना नाथजी से करने लगे।

इत्यादिकार्यकरणे पणमाहु: शुकादिवत्।
शिक्षिता न च भक्त्या ते किञ्चिदादरवादिन:।।३७।।

इत्यादि पूर्वोक्त काम पूरे हो जाने पर हम आपको भेंट देंगे; इस प्रकार शुकादि की तरह उन्होंने शर्त (पणबंध) रखी क्योंकि न तों व्रे शिक्षित थे न ही भक्ति से उनके चित्त में आदर की भावना ही थी।

पणबन्धो द्यूतकार्य्यं सिद्धयो न हि तादृश:।
सिद्ध्यर्थं पणबन्धोऽपि पूजया न हि युज्यते[5]।।३८।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–तत्र गत्वा सिद्धिवाचमुक्तवन्तोऽज्ञतावशात्.......... ।।२९।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सिध्यन्तु काम्यकार्याणि विघ्न:........................ ।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
४. 'नो' के स्थान पर निषेधात्मक 'न' अव्यय उचित है।
५. ३७, ३८ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

रुपया-पैसे की बाजी लगाना द्यूत कहा जाता है जबकि सिद्धियां वैसी नहीं होती। सिद्धि के लिए पणबन्ध भी पूजा के योग्य नहीं हो सकता।

इत्थं दुग्धधियो मुग्धा देवीदासप्रताडिता:।
यन्मुखे च समायातं तदेव कथितं पुर:[1]।।३९।।

इस प्रकार देवीदास द्वारा उकसाए हुए निर्मल बुद्धिवाले भोले-भाले ग्रामवासियों ने जो मुंह में आया वही मस्तनाथजी के सामने कह दिया।

प्रसमीक्ष्य न चोक्तं तत् किञ्चिदर्हणमात्मन:[2]।
परं स साधुविद्रोहे प्रधानं प्रैरिरत्तदा।।४०।।

परन्तु मस्तनाथजी ने विचार कर अपनी पूजा के विषय में उन लोगों से कुछ भी नहीं कहा। इतने पर भी देवीदास ने साधुओं के साथ द्रोह करने के लिए गांव के प्रधान को प्रेरणा दी (उकसाया)।

तत्रत्येन प्रधानेन पुरे ख्यापितमीदृशम्।
विप्रयोगीन्द्रसाधूनामर्हणे दण्डनं भवेत्।।४१।।

तब वहां के उस प्रधान ने नगर में सबको यह आज्ञा दे दी अर्थात् गांव में मनादी पिटवा दी कि जो ब्राह्मण, सिद्ध योगी व साधुओं की पूजा करेगा उसे दण्ड मिलेगा।

यं रक्षति स्वयं देवो गोरक्ष: सकलं जगत्।
वैरितामादधीतापि कर्त्तुं शक्तं न किंचन।।४२।।

जिसकी रक्षा स्वयं दिव्यरूपधारी गोरक्षजी करते हैं उसका सारा संसार वैरी भी हो जाए तो भी उसका कोई कुछ नहीं कर सकता अर्थात् कोई उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता।

मया न क्रियते किचिन्न जाने केन कार्यते।
त्वया न क्रियते किंचिन्न जाने तेन कार्यते[3]।।४३।।

मेरे द्वारा नहीं किया जाता, मैं कुछ भी नहीं जानता कि किसके द्वारा करा दिया जाता है, तुम्हारे द्वारा नहीं किया जाता, मैं कुछ नहीं जानता, उसके द्वारा करवा दिया जाता है।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद-एतदाकर्ण्य नाथोऽसौ नोवाच मौनमास्थित:।।३२।। (प्रकाशित प्रति)
३. ४२, ४३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

असूचि वृत्तं नगरस्य तस्य धर्मार्जनामात्रसुनिष्ठितेन[1]।
वने गतिं तन्नगरोपकण्ठे मेनेऽथ सिद्धैः सह सज्जनेन।।४४।।

तब किसी प्रतिष्ठित धर्मात्मा सज्जन ने उस नगर का सब वृत्तान्त नाथजी को बता दिया। उसे सुन मस्तनाथजी ने सिद्धों के साथ उस नगर के समीपवर्ती एक जंगल में जाने का विचार किया।

तत्र गत्वोक्तवान् साधो ! स्वकीयं वस्तु यद्गृहे।
समानय भवेदग्निदग्धमाग्रामदाहतः[2]।।४५।।

वहां जाकर नाथजी ने उस भक्त से कहा कि हे सज्जन ! तुम्हारे घर में जो अपना सामान है, उसे निकाल लाओ नहीं तो सम्पूर्ण गांव के साथ वह भी अग्निदग्ध हो जायेगा।

तथाऽकारि[3] सज्जनेन भक्तेन गुरुवर्तिना।
पथ्यमौषधसद्वाक्यं परिणामसुखप्रदम्।।४६।।

गुरु के अनुकूल व्यवहार करनेवाले उस सज्जन भक्त ने वैसा ही किया अर्थात् अपने घर का सारा सामान बाहर निकाल लिया क्योंकि सज्जन साधुओं का वचन औषधि की भांति हितकारी व परिणाम में सुखदायी होता है।

यथानीतं द्रव्यं वसनधनगोरत्ननिचयं
निवास्य स्वान् बन्धून् परमहितलोकान् बहिरिति[4]।
प्रभूतो ग्रामाग्निर्ज्वलित बहुरोचिःपरिसरः[5]
प्रवातव्याकोपो दहनहरि[6]राभात्परिसरः।।४७।।

उस सज्जन ने अपने परम हितैषी बन्धुजनों को ग्राम से बाहर लाकर बसा दिया और जैसे तैसे करके वस्त्र, धन, गौ इत्यादि बहुमूल्य सामग्री भी बाहर निकाल ली। उसके निकलते ही उस गांव में बड़े जोर की आग लग गई। जिसकी लपटों से सब जगह प्रकाश हो गया और चारों तरफ वायु का प्रकोप बढ़ गया तथा सारा परिसर (आसपास का क्षेत्र) अग्नि की ज्वालाओं से प्रकाशित होगया।

---

१. पाठभेद–अबोधि केनापि स मस्तनाथः समस्तनाथोऽपि स एकनाथः.....३६।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–दग्धोऽयं ग्राम इत्यतः।।३७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–तथा कृतं..........।।३८।। ४. पाठभेद–अथो.........।।३९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–परिकरः।।३९।। (प्रकाशित प्रति) ६. पाठभेद–भृतिः.....।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

क्रन्दन्ति नीडगतपोतकपोतकीराबाला रुदन्ति बहुतापभरेण वीरा:
तप्ता: पलायनपरा: स्वसुतान् विहाय ताता: सहोदरमुखा जननी च यान्ति।
भूमौ पतन्ति विपुला: सहभित्तिसंगै: प्रासादगेहसुरचन्दिरमन्दिराणि
अन्तर्निगूढपरिदग्धमणिप्रवालमुक्तादिरत्ननिचयानि धरीभवन्ति।।४८।।

उस समय घोंसलों में बैठे हुए बच्चे कबूतर व तोते और बालक-बालिकाएं अग्नि के ताप से रो रहे थे। बड़े-बड़े वीर पुरुष भी अग्नि की ज्वालाओं से संतप्त हो अपने पुत्रों को छोड़कर इधर-उधर भागने लगे और पिता, सगा भाई तथा माता–ये सब अपना-अपना जीवन बचाने में व्यग्र थे। दीवारों के साथ बड़े-बड़े महल, घर व सुन्दर-सुन्दर देवमन्दिर पृथ्वी पर गिर रहे थे तथा उनके भीतर रखे हुए मणि, मूंगा, मोती आदि सब बहुमूल्य चीजें जलकर राख का ढेर होगईं।

वावश्यमाना अपि दह्यमाना पम्फुल्यमाना अपि दह्यमाना:।
चञ्चूर्यमाणा अपि दह्यमाना बभूवुराराज्जनसंघवीरा:[1]।।४९।।

समीपवर्ती जनसंघ (गांव) के वीर बेबस होते हुए जलने लगे, तितर-बितर होते हुए भी जलने लगे, तथा चूर्णित (चूर-चूर) होते हुए भी जलने लगे।

तन्त्रमंत्रा प्रघुष्टा ये देवीदासस्य सिद्धय:।
नार्थदा: सात्रपा तस्य मृत्युतुल्या हि जीवत:[2]।।५०।।

देवीदास की जो सिद्धियां व तन्त्रमन्त्र थे वे सब के सब निष्फल होगए, अत: उसको इतनी लज्जा महसूस हुई कि वह जीता हुआ भी मरे हुए के समान होगया।

पराभवात्स्वान्तगतोऽस्य रोषस्तदाश्रुबिन्दुत्वमुपेयिवान् स:।
कृतप्रयत्नस्य फले विलीनेऽभिमानभाजां ज्वलतीव चेत:।।५१।।

अपनी हार के कारण वह क्रोध से रोने लगा तथा उसका चित्त अपमान की अग्नि में उसी प्रकार जलने लगा जैसे अभिमानी पुरुष का चित्त उद्योग विफल होने पर जलने लगता है।

प्रत्यक्षं नाशिता लोका भाषापाखण्डवित्तमै:।
धूर्तै: सुराणां सिद्धानां सतां भक्तेश्च निन्दकै:।।५२।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद–न जाता: सफलास्तत्र मृत्युतुल्यो बभूव स:।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

· भाषा के ज्ञान का आडम्बर करनेवाले देवता व सत्सिद्धों की भक्ति की निन्दा करनेवाले धूर्त औरों का नाश करा देते हैं; यह इस गांव के काण्ड से प्रत्यक्ष हो गया।

एवं वदन्तस्ते लोका मस्तनाथस्य प्रार्थनाम्।
कोपशान्त्यै यदा चक्रुर्दहनः शान्तिमार्छकत्[1] ।।५३।।

इस प्रकार कहते हुए उन लोगों ने जब क्रोधाग्नि की शान्ति के लिए मस्तनाथजी से प्रार्थना की तब अग्नि तुरन्त शान्त होने लगी।

प्रासादपातो न च वह्नितेजो न मृत्युमाप्तोऽत्र जनश्च कोऽपि।
स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु लीलाविलासोऽपीह योगलीला[2] ।।५४।।

वहां न महलों का गिरना था, न अग्नि की ज्वाला थी, न वहां कोई व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुआ। निश्चय ही वह कोई स्वप्न था, माया थी, मति का भ्रम था, लीला का विलास था अथवा यहां यह उनकी योग की लीला का प्रदर्शन ही था।

सोपहारं तदा शान्तमदृष्टपूर्वविग्रहम्।
वीक्ष्य प्रजा[3]स्तदा चक्रुः स्तुतीर्नत्वा च पादयोः।।५५।।

फिर प्रजाजन अदृष्टपूर्व देहधारी, शान्त मस्तनाथजी को देखकर उपहार भेंट कर उनके पैरों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे।

दैवीः सिद्धीर्दिशसि जनता सुप्रदर्श्य[4] स्वशिष्यान्
योगारूढानणिमगरिमादीन् विभूतिप्रभूतान्[5]।
तन्वन्निष्टं सकलवसुधाव्याप्तकीर्तिर्विधत्से
ज्ञानं धर्म्मं भजकजनतां मस्तनाथः[6] प्रपाहि।।५६।।

वे लोग इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हे मस्तनाथजी ! हमारी रक्षा करो। आप लोगों में दैवी सिद्धियों का उपदेश कर रहे हैं और अपने शिष्यों को योगमार्ग का भली प्रकार उपदेश देकर अणिमा, गरिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य का

---

१. पाठभेद–अभ्यगात्।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। ३. पाठभेद–लोकाः······ ।।४६।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–स्वाप्तकामान्································ ।।४७।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–गौरवोपेतत्त्वान्································ ।।४७।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–योगं वितर जनतां।।४७।। (प्रकाशित प्रति)

विस्तार करते हुए समस्त भूतल पर अपनी कीर्ति का विस्तार कर रहे हैं तथा शरीरधारियों के लिए इष्ट का विधान करते हो तथा जनता में ज्ञान व धर्म का उपदेश दे रहे हो।

न पावकः किञ्चन तत्र कर्तुं प्रवृत्तिमासादितवान् पुरापि।
भ्रान्त्यैव मत्याः परिवर्तनेन सिद्ध्या तथाऽकारि स लोकभावः[१]।।५७।।

वहां पहले भी अग्निजन्य कुछ भी क्षति नहीं हुई थी और न अब हुई अपितु भ्रान्ति के द्वारा बुद्धि घूम जाने से लोगों को ऐसा प्रतीत होने लगा था। यह सब सिद्धि का ही प्रभाव था।

अल्पीयसेनैव समर्थलोकाः कार्य्याय किञ्चित् प्रचरन्त्यकार्य्यम्।
महीयसामर्हणमात्मनः किं तेजःप्रभावैर्ननु दर्शनीयम्[२]।।५८।।

सामर्थ्यवान् पुरुष थोड़े से कार्य के लिए कुछ भी अकर्त्तव्य कर्म नहीं करते हैं और महापुरुषों के लिए अपनी पूजा क्या चीज है अर्थात् कुछ भी नहीं, किन्तु अपने प्रभाव के द्वारा स्वकीय तेज अवश्य दिखाना चाहिए।

सिद्धाः किं न हि कुर्वन्ति प्रारब्धाद्[३] बलवत्तरम्।
सिद्धवाक्याद् वह्निशैत्यमवह्नेर्दहनं[४] ततः।।५९।।

सिद्ध लोग वस्तुतः क्या नहीं कर सकते ? वे प्रारब्ध से भी अधिक कर सकते हैं। जैसे सिद्ध के वाक्य से अग्नि में शीतलता व अनग्नि (जल) में अग्नि का दर्शन भी हो सकता है।

बीजं तनोति विटपं निजनामधेयं
भाग्यं करोति जनता सुफलं[५] स्वकीयम्।
योगस्तनोति परिणामफलञ्च भेदं
सिद्धःप्रसेव्यत इतोऽधिककार्य्यकारी[६]।।६०।।

---

१. पाठभेद–ईशेच्छया योगतनुस्तनोति प्रियाप्रिये कर्मवशाज्जनानाम्।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद–प्रसिद्धा........................।।४९।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–दर्शनं........................।।४९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–सफलं........................।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–प्रसिध्यतितरां तुलयाधिकोऽसौ।।५०।। (प्रकाशित प्रति)

बीज अपने अनुरूप वृक्ष को उत्पन्न करता है अर्थात् जिसका बीज होगा उसी नामवाले वृक्ष को उत्पन्न करता है और भाग्य भी स्वानुकूल सुख-दुःखादि फल जनता को देता है, किन्तु योग परिणाम के फल का परिवर्तन भी कर सकता है, अतः लोग बीजादिकों से अधिक फलदायी सिद्ध पुरुषों की सेवा करते हैं। (क्योंकि सिद्ध पुरुषों की सेवा विपरीत भाग्य को भी बदलकर उसे व्यक्ति के अनुरूप कर देती है।)

ज्ञानी च योगी च समौ मतौ द्वौ
याति स्वयं यत्र विभुः स भक्तः।
योगी तु योगात्परमं प्रयाति
ज्ञानी तु बोधान्मनसो विशुद्धौ।।६१।।

ज्ञानी और योगी—ये दोनों (महत्त्व की दृष्टि) से समान माने गए हैं जहां वह भक्त स्वयं चला जाता है परन्तु योगी तो योग से परमधाम को प्राप्त करता है जबकि ज्ञानी ज्ञान से मन की निर्मलता को पाता है कहने का भाव यह है कि भक्ति के बिना ईश्वर में लगाव (प्रेम) नहीं हो सकता, मोह की निवृत्ति ज्ञान और वैराग्य के बिना संभव नहीं तथा ज्ञान और वैराग्य निर्मलता के बिना नहीं होते। मन की विशुद्धि (निर्मलता) निष्काम कर्मों के बिना संभव नहीं। अतः ये सब परस्पर संबद्ध हैं। एक के बिना दूसरे की प्राप्ति संभव नहीं।

इति श्रीमस्तनाथचरिते प्रलयाग्निग्रामदाहतच्छान्तिसिद्धिप्रदर्शनं नाम एकोनविंशः सर्गः।

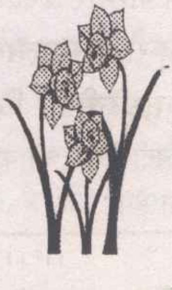

विंशः सर्गः

मिष्टान्नसुवर्णकरणादिप्रकरणम्

दक्षं दक्षिणचारिणं[1] निजजनोद्धारं परं सद्गुरुम्।
रुद्रं रौद्रतनुं सुशान्तमयता[2] दक्षं हरं चाऽऽपदाम्।
दक्षेशं मखघातकं मखकरं श्रीचन्द्रचूडं शिवम्।
स्वेच्छाविग्रहजीवकष्टहरणं श्रीमस्तनाथं नुमः।।१।।

प्रवीण, शुद्धमार्गानुयायी, अपने भक्तों का उद्धार करनेवाले, श्रेष्ठ सद्गुरु, रुद्ररूप, रुद्रदेह को धारण करनेवाले, अत्यन्त शान्त, भाग्यविधाता, विपत्तियों का नाश करनेवाले, दक्ष (शिव का नन्दी बैल) के स्वामी, अनादर होने पर यज्ञ को विध्वंस करनेवाले और सम्मानित होने पर यज्ञ सम्पादित करनेवाले, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करनेवाले, इच्छानुरूप शरीर धारण करनेवाले और प्राणियों के कष्टों को हरण करनेवाले शिवरूप श्रीमस्तनाथजी की स्तुति करते हैं।

ईशमायामनादृत्य दुःखिनः प्राणिनः समे।
अनन्तानन्तसामार्थ्यं भजतस्तस्य का कथा।।२।।

ईश्वर की माया का अनादर करके सभी प्राणी दुःखी हैं। अनन्त ईश्वर के अन्तहीन सामर्थ्य का भजन करनेवाले की क्या कथा (कहना) ? भाव यह है कि पहले तो प्राणी ईश्वर की माया को न समझने के कारण कष्ट पाता है और फिर दुःखनिवारण हेतु अन्त में परमेश्वर की भक्ति का ही सहारा लेता है, जिस कारण वह कष्टों को पार कर लेता है, उसी की भांति यदि कोई श्रद्धा से ईश्वर का भजन करेगा तो प्रभु की कृपा से उसका निरन्तर अनिर्वचनीय कल्याण अवश्य ही होगा।

स्वयं च स्वेन रूपेण करोति स्वात्मनः स्थितिम्।
अनन्तान्तकार्याणि सध्रीचीनं विना प्रभुः।।३।।

प्रभु स्वयं अपने रूप से अपनी स्थिति को करता है तथा बिना किसी सहचर के ही अनन्त कार्यों को भी करता है।

---

१. पाठभेद–दीनजनाश्रयं.......... ।।१।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्ररुद्रवपुषा.......... ।।१।। (प्रकाशित प्रति)

आज्ञया वाति वातोऽयमाज्ञया द्योतते रविः।
क्षणं न स्थितिमायान्ति तत्त्वनक्षत्रराजयः।।४।।

जिसकी आज्ञा से यह वायु बहती है और जिसकी आज्ञा से सूर्य प्रकाशित होता है। (यदि उसकी सत्ता न हो तो) मूल प्रकृति (तत्त्व) और तारकपुञ्ज की पंक्तियों की स्थिति क्षणभर के लिए भी विद्यमान नहीं रह सकती (अथवा जिनकी शक्ति से नक्षत्रगण एक क्षणभर के लिए स्थिर नहीं रहते अपितु गति करते रहते हैं)।

कर्मशीलं जगत्सर्वं नाकर्मा दृश्यते जनः।
कारणे च तथा भाति कथं कार्ये न संभवेत्।।५।।

यह समस्त संसार कर्मशील है। कोई भी व्यक्ति बिना कर्म नहीं दिखाई देता अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति हर समय कोई न कोई कार्य करता ही रहता है और कारण में वैसा ही प्रतीत होता है फिर कार्य में कैसे न होगा।

यथा स्वप्नस्तथा जाग्रत् यथा सुप्तिस्तथेतरत्।
यथा चित्तं तथा वित्तं विद्वद्भिर्मन्यते तथा।।६।।

जैसे स्वप्न वैसे जाग्रत, जैसे सुषुप्ति अवस्था वैसे ही अन्य अवस्थाएं हैं। जैसा चित्त होता है वैसा वित्त अर्थात् वैसी ही उपलब्धि होती है वैसा ही विद्वानों द्वारा माना जाता है।

युध्यते स्वप्नकालेऽपि युध्यते जागरे तथा।
युध्यते मनसः सृष्टौ मायावी युध्यते तथा।।७।।

स्वप्नकाल में भी युद्ध किया जाता है वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी युद्ध किया जाता है। जैसे मन की सृष्टि होने पर युद्ध किया जाता है वैसे ही वह मायावी युद्ध करता रहता है।

मानापमानौ स्वप्नेऽपि भवेतां जागरे तथा।
न मे हानिर्न मे लाभो यथेच्छं जायतां स्वतः।।८।।

संभवतः मान और अपमान स्वप्न में भी होते हैं वैसे ही जागते हुए भी होते हैं। मेरी हानि नहीं, मेरा लाभ नहीं, वे दोनों अपनी इच्छानुसार अनायास ही उत्पन्न हो जाते हैं।

स्वप्नपुत्रस्य यो मृत्युर्जागरे बाधते न तम्।
जागरे चापि यो मृत्युः स्वप्नेऽपि बाधते न तम्।।९।।

स्वप्नपुत्र की जो मृत्यु है वह उसे जाग्रत अवस्था में पीड़ा नहीं देती और जाग्रत अवस्था में भी जो मृत्यु है वह स्वप्न में भी उसे बाधित नहीं करती।

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः ईश्वरं प्रति गच्छति।।१०।।

जैसे आकाश से गिरा हुआ जल सागर में जाता है वैसे ही सभी देवताओं को किया गया नमस्कार ईश्वर की ओर ही जाता है।

एष एव हि सिद्धान्तो मस्तनाथस्य साक्षिणः।
मायाधनसमाच्छन्नो बुध्यते न च लौकिकैः[1]।।११।।

निःसंदेह प्रत्यक्षद्रष्टा मस्तनाथजी का यही सिद्धान्त है जो माया और धन से ढके हुए सांसारिक व्यक्तियों द्वारा नहीं जाना जाता अर्थात् छलकपटपूर्ण जीवन यापन करनेवाले और धन (भौतिक सुखों) में आसक्त सांसारिक व्यक्ति उनकी यथार्थता को जानने में सर्वथा असमर्थ हैं।

बीकानेरपदाऽभिधास्ति विपुला श्रीराजधानी सुखा,
धर्मक्षान्तिदयार्जवादिगुणिनो यत्रैव सर्वे जनाः।
जैनैः सापि पुरा पराकवलिता दक्षप्रचाराश्रयात्[2]
विद्यादानसमानतामुपगता तत्रैव नाथोऽभ्यगात्।।१२।।

बीकानेर नाम की राजधानी अत्यन्त सुखदायी है तथा विशाल ऐश्वर्य से सम्पन्न है। जहां के सभी लोग धर्म, क्षमा, दया, कोमलता आदि गुणों से युक्त हैं और जहां पर पहले जैनधर्मानुयायी लोगों का प्राबल्य था परन्तु मस्तनाथजी ने वहां जाकर अपने निपुण प्रचार से उस सम्प्रदाय को निर्बल बनाकर विद्यादान से सबको समानता प्राप्त कराई।

कदाचिद्गजसिंहोऽभून्नृपो धर्मपरः सदा।
विज्ञान् विप्रान् सिद्धवर्य्यान् देवताः स्वगुरून्नपि[3]।।१३।।

---

१. २-११ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
२. पाठभेद—सत्यासत्यविवेकचारुचरिता धीरा मनीषान्विता.......। (प्रकाशित प्रति) पाण्डुलिपि पद्यसंख्या।।२।। की अन्तिम पंक्ति उपलब्ध नहीं है अतः मैंने वहां पर प्रकाशित प्रति पद्य संख्या १२ की अन्तिम पंक्ति लिखी है।
३. पाठभेद—मानयामास धर्मतः।।१३।। (प्रकाशित प्रति)

उस राजधानी में किसी समय गजसिंह नामक राजा हुआ जो हमेशा धर्म में लगा रहता था। वह विद्वान् ब्राह्मणों, श्रेष्ठ सिद्धों, देवताओं और अपने गुरुओं को भी सम्मान देता था।

मेने सर्वान् यथार्हं स कमलाविमलालयः।
भृत्यानचीकरत्[1] सर्वांस्तोषयन् निजशासनम्।।१४।।

समृद्धि का भण्डार वह राजा सबका यथोचित सम्मान करता था और समस्त राज कर्मचारियों को सन्तुष्ट करता हुआ प्रजापालन करता था।

भेदेन शत्रूनुरुदानतः स्वान् स[2]त्सेवयाऽसन्निधनेन लोकान्।
देवान् स्वभक्त्या स्वगुरूँश्च रक्त्या स्वराष्ट्रमात्रं स वशीचकार।।१५।।

भेदनीति से शत्रुओं को प्रचुर दान देकर तथा अच्छी प्रकार सेवा करने से स्वकीय बन्धुजनों को, दुष्टों के विनाश से प्रजाजनों को, भक्ति से देवों को और अनुराग से स्व गुरुजनों को, इस प्रकार वह समस्त राष्ट्र को ही अपने वश में रखता था।

निस्सपत्नापि राज्यश्रीर्धरान्तरनृपवल्लभाम्।
अपतापां समस्तां हि श्रियं मेने नृपानुगा[3]।।१६।।

फिर भी सदा राजा का अनुसरण करनेवाली शत्रुरहित उस राजा की राज्यश्री दूसरे राजाओं की समस्त राज्यश्रियों को सुखी मानती थी।

गङ्गासिंहपदेश्वरो विजयते यद्वंशजो भूपतिः,
यत्कीर्तिर्वसुधां महोदधिपरं पारं समालम्बते।
यौरोपीयमहानुभावचरिता मित्राणि हार्दानि च,
भूयः क्ष्मापमहर्घमौलिमणिमालाचर्चितो गौरवात्[4]।।१७।।

जिस गजसिंह के वंशज भूपति गंगासिंह सर्वोपरि माने जाते हैं और जिनकी कीर्ति महासागर के पार तक पहुंच गई है तथा यूरोपीय महानुभावों के शत्रु और मित्र सबके हृदय में निवास कर रही है, गौरवान्वित होने से वह राजा के योग्य बहुमूल्य मुकुट की मणि-मालाओं से सुशोभित है।

---

१. पाठभेद–भृत्यान् मित्रवत् सर्वान् मित्राणि बान्धवानिव।
स बन्धूनात्मवत्.........।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–तत्..............................।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद–राजन्यार्चितपादपद्मविशदो मालासुमेरूपमः।।१६।। (प्रकाशित प्रति)

सिकतामयमेदिनी कापि कृता किल कामदुघा जनरञ्जनिका।
कुसुमालयरम्यफलस्वित्[१] सत्कुसुमाकरकालसमानगुणा।।१८।।

यद्यपि वहां की भूमि रेतीली है तथापि उसमें सब प्रकार के धान्य की उत्पत्ति के कारण वह कानधेनु के तुल्य लोगों को हर्ष प्रदान करती है और वसन्त ऋतु में तो वह फल-फूलों से शोभित हो जाती है।

स धूमयानादिपदास्पदेन[२] निवारित: पान्थपदश्रमोऽपि।
संहापिता येन तडित्प्रकाशै: तम:प्रगाढा तमसा तमिस्रा।।१९।।

उसने रेलगाड़ी, मोटर आदि वाहनों के प्रचार से राहगीरों के परिश्रम को दूर कर दिया और बिजली के प्रकाश से गाढ़ अन्धकार को दूर हटा दिया।

अदैवजातानि वनानि यत्र स्वयं स्रवन्त्य: सरित: सुपूरा:।
कृता विना दूतनरैश्च वार्ताहरैस्त्वरापत्रकलाभिरेव[३]।।२०।।

जहां कृत्रिम वन हैं तथा सुन्दर-सुन्दर नदियां बह रही हैं और दूतादि के बिना ही पत्रों के माध्यम से अतिशीघ्र समाचार पहुंच जाते हैं अर्थात् डाक-तार का उचित प्रबन्ध है।

नानीतयो नीतिरवाच्यवादा न चोरचर्य्याश्रवणोऽपि यत्र[४]।
प्रजा: समानन्दपरा: स्वधर्मे प्रवर्तमाना नृपतौ यदीये।।२१।।

जहां अनीतियां नहीं होती और जिसकी नीति के विषय में शत्रु नहीं जान पाते तथा चोरी का तो नाम सुनने में भी नहीं आता, उस राजा के शासन में समस्त प्रजाजन बड़े आनन्द से रहते हैं और स्वधर्म में प्रवृत्त हैं।

क्षमापाला वंश्या: सकलसुखमालासुललिता:,
प्रजा आकुर्वन्तो विदधति मुदा स्वर्गकलिता:[५]।
न शोको मोहो वा रघुपतिसमं यत्कवलिता:[६]
अधर्माद्या रक्षोगणजननिकाया: समर्लिता:[७]।।२२।।

---

१. पाठभेद–फलाऽविफला .... ।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–स्वदेन .... ।।१८।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–वार्ताहरैर्वृत्तमलं क्षणेन सम्प्राप्यते यत्र विधानरीत्या।।१९।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–द्रव्यापवादा न विवादिता च ...... ।।२०।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–प्रजा मोदं मोदं दिशि दिश दिशत्यामुकुलनात् ...... ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–यो भुजिविधि: .... ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–समन्तात्सामन्ता विदधति सपर्यां प्रतिदिनम्।।२१।। (प्रकाशित प्रति)

जिस वंश के राजा प्रजाजनों को समस्त सुखों की परम्परा से युक्त करके उन्हें आनन्द से परिपूर्ण करते हुए तथा स्वयं स्वर्गीय सुख भोगते हुए शासन करते आ रहे हैं और शोकमोहादि से सर्वथा रहित हैं तथा जिन राजाओं ने श्रीराम की भांति अधर्म और दुष्टसमुदाय को नष्ट कर दिया है।

यद्वंशममलं जगुरन्यदेश्या आतङ्करहिता: सुकृता: प्रजा: स्वा: ।
कुर्वन्तमभित: सुगुणै: सुराँश्च बुधाँश्च सकलाननुरञ्जयन्तम्[1] ।।२३।।

जिनके निर्मल वंश का गुणगान दूसरे देश के लोग भी करते हैं। जिन्होंने अपनी प्रजा को निर्भय एवं धर्मात्मा बना दिया है और समस्त देवों तथा विद्वानों को प्रसन्न कर दिया है।

गुरौ पत्यौ चेशे युवतिजनरागो न दलित:
समत्वं देशेऽपि प्रथयतितरां व्याप्तमहिमा।
अविद्याया ध्वंस: क्वचिदपि विभात्येष गरिमा
समाधानं दानं दलयति नितान्तं शिविनृपम्।।२४।।

(उनके शासनकाल में) गुरु में, पति में और परमेश्वर के प्रति युवतियों का स्नेह कम नहीं हुआ था अर्थात् वे सदाचारिणी थीं। वह देश में भी समानता का अत्यधिक विस्तार कर रहा है तथा सर्वत्र अविद्या का विनाश समाधान एवं दान में शिवि राजा का भी नितान्तरूप से उन्मूलन कर रहा है अर्थात् अपने दया दानादि गुणों के कारण शिवि को भी मात कर रहा है। उनकी यह महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है।

उपाधौ सर्वथा नास्था मन्तव्या न तथा गुणा: ।
राजभक्तिश्च या प्रोक्ता परेशात् सा न भिद्यते[2] ।।२५।।

सर्वथा उपाधि में आस्था नहीं माननी चाहिए वैसे ही गुण भी नहीं मानने चाहिएं क्योंकि प्राय: उपाधियुक्त राजा इत्यादि व्यक्ति उस उपाधियोग्य गुणों से युक्त नहीं होता और राजभक्ति जो कही गई है वह ईश्वर से भिन्न नहीं होती अर्थात् ये जो गंगासिंह राजा थे जैसी उनकी उपाधि थी वैसे ही उनमें गुण भी थे।

सुरतसिंहनामाऽस्य राजाऽभूत्तनय: प्रिय: ।
स्वानुकूलं धराधुर्य्यमन्तकाले[3] पिताऽकरोत्[4] ।।२६।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. २४, २५ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
३. पाठभेद–स्कन्धे ....।।२४।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद–न्यधात् ....।।२४।। (प्रकाशित प्रति)

इसका प्रिय पुत्र सुरतसिंह नाम का राजा हुआ। अन्तिम समय में पिता ने अपने समस्त राज्यभार को उसके कन्धों पर रख दिया।

दिवं प्रयाते गजसिंहभूपे नृपे तनूजे पितृभुक्तभूमिः।
जातं समान्यं धरणीधराणां वंशे महान्तं स्फुटमेव मेने।।२७।।

राजा गजसिंह के दिवंगत हो जाने पर जब उनका पुत्र राजसिंहासन पर विराजमान हुआ तब उसके पिता की भोगी हुई भूमि ने राजवंश में उत्पन्न हुए उस युवराज को मान्य एवं बड़ा समझा।

अनीतयो नीतिपर[१]प्रतिष्ठाः प्रजाः स्ववर्गो वचनाऽनुकूलाः।
सस्यैः समृद्धा धरणी फलाढ्या न चापदो दैवकृतास्तथान्याः।।२८।।

जिसकी प्रजा अतिवृष्टि, अनावृष्टि इत्यादि छः प्रकार के विघ्नों से रहित, नीति की प्रतिष्ठा करने वाली थी। जिनके स्वबन्धुजन आज्ञाकारी थे तथा भूमि धान्य एवं फलफूलों से परिपूर्ण थी। वहां दैवकृत तथा मनुष्यकृत किसी प्रकार की आपत्तियां न थीं।

कदाचिदासीत् सुरपूजनादौ महोत्सवो दक्षमखानुकूलः।
विप्रा महान्तः सकलप्रभेदा नाथास्तदन्ये मिलिताः सुहूताः[२]।।२९।।

किसी समय वहां पर दक्षप्रजापति के यज्ञ की भांति देवपूजनादि के निमित्त महान् उत्सव हुआ। उसमें बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मण, योगी तथा और भी बहुत से दूसरे व्यक्ति आमन्त्रित किए गए थे।

योगीश्वरान् सर्वजनेश्वरेश्वरान्
प्रतीच्यपाश्चात्यमुनीश्वरानपि।
औदीच्यगावाच्यसमर्च्यकोविदान्
विदाञ्चकार क्षितिपाल आगतान्।।३०।।

पृथ्वी का पालक राजा सुरतसिंह यज्ञ में पूर्व दिशा से एवं पश्चिम दिशा से आए हुए समस्त योगिराजों, सामन्तों, सम्राटों, श्रेष्ठ मुनियों और उत्तर एवं दक्षिण दिशा से आए हुए पूजनीय व अनुभवी विद्वानों को जानता था। अर्थात् सम्पूर्ण लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों को जानता था।

---

१. पाठभेद–पद………………।।२६।। (प्रकाशित प्रति)

२. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
आसीत्कादाचिन्मिलिता बभूवुर्महोत्सवो दक्षमखानुकूलः।
विप्रा महान्तो मखशास्त्रविज्ञा समाजुहाव क्षितिपाल एषः।।२७।। (प्रकाशित प्रति)

पश्चिमे स्थीयते होत्रा पूर्वे चोद्गातुरासनम्।
उत्तरेऽध्वर्युसंज्ञस्य विष्टरो दक्षिणे विधेः[1]।।३१।।

वेदिका के पश्चिम में होता को बैठना होता है, पूर्व में उद्गाता का आसन होता है और उत्तर में अध्वर्यु नामक पुरोहित का कुशा का आसन होता है।

संयावपायसपवित्रितमिष्टमिष्टं वातादशैलसितशर्करया समेतम्[2]।
सव्यञ्जनामलकचूर्णप्रकारजातं[3] चुक्रं च तत्र[4] बहुलं रसपाकधाम्नि।।३२।।

वहां पाकशाला में हलुआ, खीर, बादाम, शिलाजीत मिश्री इत्यादि से बनी हुई पवित्र एव अत्यन्त स्वादिष्ट मिठाइयाँ, शाक, सब्जी, चटनी, आंवले का चूर्ण व इमली के रस से बने हुए नाना प्रकार के खाद्य, लेह्य (चाटने योग्य) बहुत से पदार्थ बने रखे थे।

तत्रत्यमित्थं सहशिष्यमस्तनाथं व्रजन्तं कुह मार्गमध्ये।
गोपालकः कश्चन रूपनाथेनाविश्चकारात्र[5] च पृष्ठवृत्तः।।३३।।

अपने शिष्य के साथ रास्ते में जाते हुए मस्तनाथजी को कोई ग्वाल मिला और रूपनाथ शिष्य के पूछने पर उसने यज्ञविषयक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

यज्ञान्तिकं रम्यतरं नृपस्य संवर्ण्य नानाविधपक्षिघोषैः।
वेदादिवादानुकृतिं दिशन् स आराममेकं व्रजतेत्युवाच।।३४।।

राजा के नाना प्रकार के पक्षियों के कूजन से रमणीय, यज्ञ के समीपस्थ एक उद्यान का वर्णन करके, वेदध्वनि तथा वाद्यों का अनुकरण करके बतलाते हुए रास्ते में उस ग्वाले ने कहा कि उस उद्यान की तरफ चले जाइए।

ततो गुरुस्तेन सहैव रूपनाथेन भस्मज्वलितञ्च काष्ठम्।
चिक्षेपयामास गुरुर्गरीयान्[6] विधिः कटाहे स तथा व्यधत्त।।३५।।

फिर रूपनाथ शिष्य को साथ लेकर गुरुशिरोमणि मस्तनाथजी वहां गए और भस्म एवं जलती हुई लकड़ी रूपनाथ के हाथ से कटाह में फिंकवा दी क्योंकि विधि बलवान् होती है, वह जैसा चाहे वैसा करवा देती है।

---

१. ३०, ३१ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–सनाथम्……।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–रसालशोभि……।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–तक्र……………।।३०।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–अथ………।।३१।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–सम्पातयामास गुरुः स मस्तो………।।३३।। (प्रकाशित प्रति)

नग्नो भस्मधरः कोऽयं साधून्मादी कुहागतः।
भोज्यं सुविहितं प्रेम्णा भ्रष्टं सर्वं कुतः कृतम्।।३६।।

नग्न, भस्म रमाए यह कौन पागल साधु कहां से आ गया जिसने बड़े प्रेम से बनाए हुए सारे भोजन को दूषित कर दिया।

नायं वैष्णवजैनादिसनातनपथस्थितः।
सर्वान् भ्रष्टीकरोत्येष नास्तिको वान्यमार्गगः।।३७।।

न तो यह वैष्णव है, न जैन आदि और न सनातनी है, अन्यथा ऐसा नहीं करता, इसीलिए यह कोई नास्तिक है या कोई विधर्मी है क्योंकि इसने सारे भोजन को दूषित कर दिया हैं।

बुभुक्षाप्रतापान्तराग्निप्रकोपाद् भृशं दुःखिता रुक्षवाचप्रलापान्।
अबाला युवानस्तथास्त्रैश्च पोताः विपोता ववर्षुर्धरां क्षुन्नदीतः[1]।।३८।।

उस समय भूख के कारण शरीर में जठराग्नि के प्रकोप से बालक, वृद्ध व युवा सब अत्यन्त दु:खी होकर चिल्लाने लगे और धरातल पर आंसुओं की वर्षा करते हुए रोने लगे।

स्वयं मस्तनाथः प्रयातः सभातो वने वन्यपत्र्यादिलीलाप्रवादान्।
समाकर्णयन् स्वं विनोदेन जाप्यैस्तपस्विप्रकारेण[2] कालं निनाय।।३९।।

तब मस्तनाथजी उस उत्सव-स्थल से वन में चले गए जहां वे वन के पक्षी आदि की क्रीड़ा-ध्वनि को सुनते हुए जप के द्वारा तपस्वियों की विधि से सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

नृपः संश्रावितोऽविज्ञैर्भोजनं विकृतं कृतम्।
विप्रैस्तैः सूचकैर्जैनैर्नव्यैर्वैष्णवमानिभिः[3]।।४०।।

चुगलखोर अज्ञानी उन ब्राह्मण, जैनी तथा नवीन वैष्णवों ने राजा के समीप जाकर शिकायत की कि हें राजन्! एक नाथ ने भोजन को विकृत कर दिया है।

---

१. ३६, ३७, ३८ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
२. पाठभेद–तपश्चर्यया.........।।३४।। (प्रकाशित प्रति)
३. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
अजिज्ञपंस्तत्र नृपं सभागतं हे नाथ सिद्धेन समागतं कृतम्।
नाथेन मस्तेन च दारुपातितं कटाहमध्ये ज्वलितं द्विजास्तदा।।३५।।

न सिद्धिं न सिद्धस्य माहात्म्यशौचं तदीयस्य हस्तस्य संसर्गमात्रात्।
तदा मन्वते ते हठे संप्रलग्ना पदा जैनधर्मीयभूतप्रवेश:।।४१।।

उस नगर में जब से जैनियों की अधिकता हुई थी तभी से लोग हठी होगए थे और उन्होंने सिद्धों की सिद्धियों, उनके महत्त्व व पवित्रता को मानना छोड़ दिया था। इसीलिए मस्तनाथजी के हाथ के स्पर्श से ही उन्होंने भोजन को विकृत मान लिया।

सिद्धयो भूतमार्गाणां प्रेतानाञ्च तदाश्रया:।
अनेके मतभेदं स्वं मन्वते स्वविरोधत:।।४२।।

भूत-प्रेतों के उपासक सिद्ध कहलाते हैं–इस प्रकार अनेक व्यक्ति द्वेष से अपना-अपना मतभेद मानते हैं। अत: उन्होंने भी नाथजी को द्वेष के कारण भूतों का उपासक सिद्ध माना।

सूचकाख्यानराज्यश्री-मदेन नृपराडपि।
मत्तोऽन्ध इव नाऽद्राक्षीत् कार्य्याकार्य्ये क्षणं तदा।।४३।।

चुगलखोरों के कहने व राजलक्ष्मी के अहंकार के कारण उस क्षण राजा ने भी पागल तथा अन्धे की भांति कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को नहीं देखा।

क्रुद्धोऽब्रवीदिदं दुष्टं कार्य्यं धर्मविरोधि तत्।
दक्षिणाचारिणो जैना बौद्धवैष्णवधर्मगा:[1]।।४४।।

क्रुद्ध हुए राजा ने कहा कि यह कार्य धर्म विरुद्ध है तथा अत्यन्त दुष्टतापूर्ण है। हमारे प्रजाजन सदाचारी हैं तथा जैन, बौद्ध व वैष्णव धर्म को माननेवाले हैं।

अद्यत्वे सकला लोका वयं दक्षाश्च साधव:।
विप्रा मद्देशगा नैव मद्यमांसादिकस्पृश:।।४५।।

आजकल मेरे देशवासी साधु, ब्राह्मण तथा सब वैष्णव हैं इसीलिए मद्य-मांस को छूते तक नहीं और न किसी का छुआ हुआ ही खाते हैं।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
श्रुत्वाऽब्रवीत्तदा राजा कार्यं धर्मविरोधि तत्।
य: कर्त्ता दोषभाक् स स्यात् क्रुद्ध: को वाप्ययं भवेत्।।३६।।

कोऽसौ मूर्खोऽथवा मत्त उन्मत्तो वा तथाऽकरोत्।
मृग्यतां दण्डनीयो मे नृपधर्मः प्रशासनम्[१]।।४६।।

ऐसा मूर्ख अथवा अभिमानी अथवा पागल वह कौन था जिसने वैसा कार्य किया। उसको ढूंढो। वह दण्डनीय है क्योंकि यह मेरा राजधर्म है कि ऐसे व्यक्तियों को मैं अपने शासन (नियंत्रण) में रखूं।

अथैवं महाक्रोधफूत्का[२]ररावे नृपे भीतभीताः समन्तान्महान्तः।
द्विजा ये द्विजाग्र्याः[३] समूचुर्मिलित्वा नृपेश त्वदीयैर्न वाऽकारि किञ्चित्।।४७।।

इसके अनन्तर जब राजा क्रोधित हो, बड़े-बड़े जोर-जोर से कहने लगा तब बड़े-बड़े ब्राह्मण भयभीत हो, सब मिलकर राजा से कहने लगे कि हे सम्राट्! हम क्या करें? आपके सैनिकों ने उन्हें कुछ नहीं कहा।

मदोन्मत्तः साधु[४]र्धरन् कुण्डले द्वे स शिष्यस्समेतः कुतश्चिच्चकार।
सुभोज्यं पवित्रं परीतं विभूत्या ज्वलत्काष्ठविक्षेपतोऽसच्चकार।।४८।।

दोनों कानों में कुण्डल पहने हुए, शिष्य सहित एक मदोन्मत्त साधु कहीं से आया और खाने योग्य समस्त पवित्र भोजन को राख मिलाकर एवं जलती हुई लकड़ी फेंक कर दूषित कर दिया।

तच्छ्रुत्वा नृप[५] ऊचे स्वं दूतमाहूय याहि भोः।
अन्वेषय कुहास्तेऽसौ बद्ध्वानय मदन्तिके[६]।।४९।।

ऐसा सुनकर राजा ने अपने दूत को बुलाकर कहा कि अरे! तुम जाओ, और उसे कहीं से भी ढूंढो और बांधकर मेरे पास ले आओ।

एवमुक्तो गतोऽरण्ये तरुच्छायासमाश्रितः।
दूरतोऽदर्शि तेनाऽसौ[७] मस्तनाथः स्वयं प्रभुः।।५०।।

---

१. ४० से ४६ तक पद्य प्रकाशित में नहीं है तथा इसके ४६वें पद्य के स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
सिद्धो वा सिद्धशिष्यो वा यो वा को वा भवेदयम्।
मृग्यतां दण्डनीयोऽसौ राजधर्मप्रशासनात्।।३७।।

२. पाठभेद–हुंकार ……………… ।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–प्रजास्ताः ……………… ।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–महासिद्धयोगी ……… ।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–भूप ……………… ।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–झटित्यानय मा चिरम्।।४०।।-(प्रकाशित प्रति)

७. पाठभेद–दूतेन ……………… ।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

इस प्रकार राजा से आज्ञा पाकर वह जंगल में गया। वहां उसने एक वृक्ष की छाया में बैठे हुए स्वयं देदीप्यमान मस्तनाथजी को दूर से देखा।

विकीर्णनिर्धूतसटाकटाहो निमज्जयन्[१] खेचरवृन्दमेकः।
आक्रम्य गर्जन् भयकृत् स्वरक्ताक्षालोकतोऽदर्शि[२] ततो मृगेन्द्रः।।५१।।

वहां उसने इधर-उधर फैले हुए कंधे के लम्बे-लम्बे बालों की फटकार से पक्षिसमूह को भयभीत करते हुए और गर्जना करते हुए लाल-लाल नेत्र वाले एक भयंकर सिंह को बैठे देखा।

भीरुर्नागरिको दूतस्ततोऽसौ प्रपलायितः[३]।
ईक्षते दूरतो मर्त्यमन्तिके हरिमेव तम्।।५२।।

नगर में रहनेवाला भीरू वह दूत सिंह को देखते ही भाग खड़ा हुआ। फिर दूर से देखता है तो मनुष्य मालूम होने लगा और फिर पास में आया तो उसे वह शेर ही दिखाई दिया।

मुहुर्मुहुस्तथेक्ष्यैव[४] निवृत्तो नृपसन्निधौ।
उवाच नृपशार्दूल सिद्धोऽसौ देवता स्वयम्।।५३।।

बार-बार उसी तरह देखकर वह दूत राजा के समीप आकर कहने लगा कि हे नरश्रेष्ठ ! वह सिद्ध साक्षात् देवता है।

स्वयं गुरुः स्वयं रूपं निजं विपररिणामयन्।
सिंहो नरो मृगेन्द्रोऽसौ जनोऽदर्शि मुहुर्मुहुः[५]।।५४।।

वह स्वयं रूप बदलकर कभी सिंह हो जाता है फिर मनुष्य बन जाता है, पुनः सिंह बन जाता है फिर मनुष्य बन जाता है, ऐसा मैंने बार-बार देखा है।

---

१. पाठभेद–विभाययन्.................................. ।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–घनघोररावो रक्ताक्षतो ह्यैक्षि........ ।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पलायितस्ततोऽभवत्.................................. ।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–पुनः पुनर्विलोक्यैव........................ ।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
५. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
सिंहः कदाचित् स नरः कदाचित् संमिश्रितश्चापि ततः कदाचित्।
विपल्टयत्येष निजस्वरूपं जात्यन्तरं वा परिदृश्यतेऽसौ।।४५।।

एतां वदन्ति जनतासु समृद्धसिद्धिं सर्वत्रगा यदि भवेन्नहि का हि सिद्धिः।
तस्माद्वदामि न हि मेऽस्ति समीपयाने सामर्थ्यमीश न तवोक्तिनिरादरेण[१]।।५५।।

यदि जिसे सब लोग न जानते हों तो वह समृद्ध सिद्धि नहीं कही जाती परन्तु इस साधु के विषय में तो जनता में सब जगह जिक्र है इसलिए मैं कह रहा हूं कि मुझमें उनके पास जाने का सामर्थ्य नहीं है। हे स्वामी ! ऐसा मैं आपके कथन का निरादर करने की दृष्टि से नहीं कह रहा हूं।

कर्माधीनं योनिजन्म प्रदिष्टं लोके तुल्यं चेत्तदा कास्ति सिद्धिः।
एकः सर्वो दृश्यते चेत्तदासौ लोकैः सर्वैः सिद्धिदृष्टिर्मता वै।।५६।।

संसार में चौरासी लाख योनियों में जन्म लेना साधारणसी बात है, तब इसमें कौन सिद्धि है ? परन्तु जो एक होता हुआ भी अनेक शरीर धारण करने का सामर्थ्य रखता हो, वही सभी के द्वारा सिद्ध कहा जाता है।

तस्मादहं तं मत्वा न सिद्धं शस्त्रमपातयम्।
तद्विवादो नृपाऽयुक्तः प्रहारः समयो भवेत्[२]।।५७।।

इसीलिए मैंने उनको सिद्ध समझकर शस्त्रप्रहार नहीं किया। हे राजन् ! उनके साथ विरोध करना उचित नहीं और उन पर प्रहार करना भी ठीक नहीं है।

इत्यूचिवांसं स्वं दूतं नृपस्तं सत्यवादिनम्।
तुतोष दानमानाद्यैः शशंस च गुरुं बहु[३]।।५८।।

इस प्रकार कहनेवाले सत्यवादी अपने दूत को राजा ने दान-मान आदि से संतुष्ट किया और गुरु मस्तनाथजी की बहुत प्रशंसा की।

मुहुः स्पशस्य विश्वासदार्ढ्याय निजमन्त्रिणम्।
सुविश्वस्तं प्रैरिरत् स नृपनीतौ त्वरा कुतः[४]।।५९।।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
तत्र गन्तुं परिप्रष्टुं प्रहर्तुं द्रष्टुमेव तम्।
अनादर्तुं च सिद्धानां सामर्थ्यं विद्यते मयि।।४६।।

२. ५५, ५६, ५७ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

३. पाठभेद–तोषयामास मानेन मस्तनाथं ननाम सः।।४७।। (प्रकाशित प्रति)

४. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
पुनर्दूतस्य विश्वासपुष्टीकरणहेतवे।
मन्त्रिणं प्रेषयामास मस्तनाथस्य सन्निधौ।।४८।।

फिर दूत के वचन को दृढ़ करने के लिए राजा ने अपने अत्यन्त विश्वस्त मंत्री को भेजा क्योंकि जल्दी करना राजनीतिविरुद्ध है।

सोऽनुज्ञया ययौ द्रष्टुं तं गुरुं सिद्धिदर्शिनम्।
तत्र ज्ञात्वा तथा दृष्ट्वा पादयोरपतद् भुवि[1]।।६०।।

वह राजा की आज्ञा से सिद्धि दिखानेवाले उस गुरु को देखने के लिए गया और वहां जाने पर जैसा सुना था वैसा ही उनको जानकर उनके चरणों में पृथ्वी पर गिर पड़ा।

क्षमाप्रार्थी तदा भूत्वा राजानं तं न्यवेदयत्।
नृपस्तं स्वयमागम्य[2] गुरुं गेहमुपानयत्।।६१।।

तब नाथजी से क्षमाप्रार्थना करके मंत्री ने आकर समस्त समाचार उस राजा से कह दिया। तब राजा स्वयं आकर उन गुरुदेव को अपने भवन में ले गया।

यदा यदा लोकविलक्षणो यस्तदा स सिद्धः सकलैर्निरीशैः।
प्रगीयते तेन तदर्चनाय सुरा मनुष्याः समुपव्रजन्ति[3]।।६२।।

जब-जब कोई अलौकिक शक्ति से सम्पन्न होता है तब उसको सब लोग सिद्ध कहने लगते हैं और इसीलिए देव तथा मानव सभी उसकी पूजा के निमित्त उनके पास पहुंच जाते हैं।

सुरासुरैर्देवगणैः समन्ता[4]न्नरैर्यशस्तस्य सदा प्रगीयते[5]।
कलौ कराले जनपर्य्यपाले विलोक्यते कोऽपि कदापि सिद्धः[6]।।६३।।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
दर्शनं दीयतां नाथ ! सिंहरूपं निवारय।
उवाच मस्तनाथोऽपि निजं रूपं ददर्श तम्।।४९।।
तत्र बुद्ध्वा तथा दृष्टवा पादयोरपतद् भुवि।
तुभ्यं नाथ ममादेश उवाचाऽमात्यतल्लजः।।५०।।

२. पाठभेद–नाथमागत्य.............. ।।५१।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. पाठभेद–मुनीश्वरैः.............................. ।।५२।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–अनुमोद्यते.............................. ।।५२।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–देवस्य सिद्धस्य यमीश्वरस्य यद् दिव्येन नेत्रेण विना न दर्शनम्।।५२।। (प्रकाशित प्रति)

देव, राक्षस एवं मानव सब के सब सिद्ध के यश का चहुँ दिशाओं में गान करते हैं, फिर करालकाल इस कलियुग में कभी-कभी कोई सिद्ध देखने में आता है। वह सिद्ध प्रत्येक स्थान एवं प्रत्येक समय में नहीं मिलता।

तादृशीं तां सुवेलामारुह्य स्वगुरुर्यथा।
रूपान्तरेण संमान्य स्वस्वामी मन्यते समैः।।६४।।

उस प्रकार के शुभ अवसर को पाकर राजा ने अपने गुरु मस्तनाथजी का ऐसा सत्कार किया कि सब लोग उनको दूसरे रूप में अपना स्वामी मानने लग गए।

विगुरूणां गुरुर्नान्यस्तैः सर्वैः स गुरुस्तदा।
प्रक्रियाभिमतो देवः स्वाभीष्टः सैव सद्गुरुः।।६५।।

वहां के उन लोगों का कोई गुरु नहीं था, अतः उन्होंने तब अपनी परम्परा के अनुसार मस्तनाथजी को ही अपना गुरु बना लिया।

तत्तन्नाम्नार्चकानां सा देवता सम्प्रसीदति।
यां यामिच्छति भक्तोऽस्य समीहां पूरयत्यसौ[१]।।६६।।

उस-उस नाम से पूजा करनेवाले भक्तजनों के ऊपर वही-वही देवता प्रसन्न हो जाता है और भक्त जिस-जिस वस्तु की इच्छा करता है उसकी अभिलाषा को वह देवता पूर्ण कर देता है।

आनीय तं विभुं[२] सिद्धं तदा स्वेष्टं प्रपूज्य च।
प्राह भोः सिद्ध किमिदं भोजनं विकृतं कृतम्[३]।।६७।।

तब सर्वत्र व्यापक उस सिद्ध को लाकर, उसका यथेष्ट पूजन कर राजा कहने लगा कि हे सिद्ध ! आपने इस भोजन को क्यों दूषित कर दिया ?

अनास्पदां प्रश्नविचारचातुरी-
मस्मास्वधीनं किमु योगिनामिह।
कर्त्तुं समीहे न तथापि मे मनः
पुनः पुनर्मां विवशीकरोत्यदः।।६८।।

---

१. ६४, ६५, ६६ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
२. पाठभेद–प्रभुं .... ।।५३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–प्राह राजा मस्तनाथं कृपया वद मे विभो।।५३।। (प्रकाशित प्रति)

प्रतिष्ठारहित प्रश्न के विचार की चातुरी हमारे ऊपर निर्भर है, योगियों का तो कहना ही क्या ? यद्यपि मेरा मन प्रश्न करने की इच्छा नहीं करता फिर भी भोजन अथवा दिया गया कष्ट (अदः) मुझे बार-बार यह प्रश्न पूछने के लिए विवश कर रहा है अर्थात् साधारण व्यक्ति के मन में आया हुआ प्रश्न उसे विवश करता है परन्तु योगी तो प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्वयं ही जानने में समर्थ होते हैं, अतः उन्हें प्रश्न करने के लिए विवश नहीं होना पड़ता।

गोदुग्धसम्पन्नमिदं हि पायसं
द्विजैः स्वहस्तैश्च विनिर्मितं तत्।
विभूतिदानं किल दारुदानिता
किं शोभते ते भवतोऽत्र मे वद[१]।।६९।।

क्योंकि यह खीर गाय के दूध से बनाई गई थी और ब्राह्मणों ने इसे स्वयं अपने हाथों से तैयार किया था। फिर विभूतिदान के स्थान पर दारु दान आपको क्या शोभा देता है ? अर्थात् आपको तो मेरे कल्याण की कामना करनी चाहिए थी परन्तु आपने तो उसके बदले में उसमें लकड़ी ही डाल दी। इस विषय में मुझे बताइए।

तदाहासौ त्वया यागः कृतो दत्तास्ति दक्षिणा।
मया पश्य कटाहस्ते समीपे तं समानय।।७०।।

तब मस्तनाथजी ने कहा कि तुमने अन्न यज्ञ किया है और मैंने दक्षिणा दी है। यह जो तुम्हारा कटाह है उसे मंगवाइए और देखिए।

आकर्ण्य राजा स कटाहमारात् समीपमानाय्य ददर्श तत्र।
चामीकरं सर्वम[२]दृष्टपूर्वमन्तर्बहिर्नापि तदान्यवस्तु।।७१।।

उस राजा ने उस वचन को सुनकर दूर रखे हुए कटाह को वहां समीप मंगवाकर देखा तो उस सारे को सोने का पाया तथा उसके बाहर-भीतर भी कोई दूसरी चीज नहीं थी।

धन्या नाथ ! भवन्माया धन्यं नाथ ! भवद्बलम्।
धन्यं योगस्य योगत्वमाश्चर्यं कृतवान् नृपः[३]।।७२।।

---

३. ६८, ६९ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
१. पाठभेद–तप्तं...................।।५६।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

हे नाथ ! आप धन्य हैं । हे नाथ ! आपकी माया धन्य है। आपकी शक्ति धन्य है। योग का योगत्व भी धन्य है–ऐसा राजा ने आश्चर्य किया अर्थात् उपर्युक्त वचन कहते हुए राजा ने मस्तनाथजी योगविषयक सामर्थ्य के विषय में आश्चर्य प्रकट किया।

मतो गुरुस्तेन तदा स राज्ञा दातुर्वितन्वन् वितरन् महीञ्च।
विडम्बनां कामपि हास्य मानी मस्तस्तदा तां विजहौ कुमात्राम्[१] ।।७३।।

तब राजा ने मस्तनाथजी को अपना गुरु मान लिया और लज्जित होकर कहने लगे कि गुरुदेव ! मैं कुछ भूमि आपको देना चाहता हूं तब स्वाभिमानी नाथजी हंसकर कहने लगे कि हम रमते साधु हैं, हमें किसी भूमि इत्यादि की जरूरत नहीं है, ऐसा कहकर उन्होंने कुछ भी ग्रहण नहीं किया।

किन्तु तत्र स्थिता तस्य[२] रूपनाथस्य भामिनी।
शिष्यस्य सा समायाता पत्या हीना रुरोद ह[३] ।।७४।।

किन्तु उस रूपनाथ शिष्य की पत्नी वहां रहती थी। वह स्त्री नाथजी के विषय में सुनकर वहां आई और पतिवियोग में रोने लगी।

प्राह मे दयितः स्वामी दयातो दीयतां गुरो।
यौवनं ललितं दत्ते निर्वाहो वा प्रदीयताम्।।७५।।

और कहने लगी कि हे गुरुदेव ! युवावस्था शरीर को सुन्दर बना देती है अतः पति बिना वह सौन्दर्य व्यर्थ है इसलिए या तो दया करके मेरे पति को दीजिए अथवा जिससे मेरा जीवन निर्वाह हो ऐसा कोई उपाय कीजिए।

ददौ तदाशापूर्त्यर्थं मतीराख्यं तदा फलम्[४] ।
तद्बीजानि समागत्य मुक्ता दृष्टाः सहस्रशः।।७६।।

---

१. पाठभेद–स मस्तनाथः समस्तनाथोऽपि समस्तनाथः।
राज्ञा तदाऽन्यैश्च समस्तलोकैः क्षितिं स दत्तां नहि नीतवास्ताम्।।५८।।
(प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–चासीत्.................. ।।५९।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–शिष्यत्वकालात्पूर्वाया समागत्य रुरोद सा।।५९।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–महाफलम्.................. ।।६१।। (प्रकाशित प्रति)

उसकी आशा पूर्ण करने के लिए तब नाथजी ने एक मतीरा नामक फल दिया जब घर आकर उसको फोड़ा तो उसके बीज हजारों मोती दिखाई दिए अर्थात् उसमें से बीजों की जगह हजारों मोती निकले। यानि कि सब बीज मोती बन जाए।

रूपनाथस्य सा भार्या तुतोष मनसा यदा।
द्रव्यप्रियाश्च महिला भवन्ति कश्चिदुक्तवान्[1] ।।७७।।

रूपनाथ की वह पत्नी जब मन से संतुष्ट हुई तब किसी ने उसे देखकर कहा कि स्त्रियों को धन प्रिय होता है।

एवं सिद्धपदं[2] तत्र दर्शयित्वा दिगन्तरम्।
गतो महीं मठार्थेऽपि राज्ञा दत्तामममानयन्।।७८।।

इस प्रकार वहां सिद्धि दिखाकर राजा के द्वारा मठ के लिए दी हुई भूमि को ठुकराते हुए नाथजी वहां से देशान्तर में चले गए।

तोतानाथो मस्तनाथशिष्योऽभूत् सोऽपि योगिराट्।
दयालुः सिद्धगुणवान् यदा किञ्चिददर्शयत्[3] ।।७९।।
तस्य राज्ञोऽथ पुत्राय[4] निजां सिद्धिं गुरोस्तथा।
स्मारयामास थेड़ीति ग्रामो राज्ञा स्वयं ददे।।८०।।

तोतानाथजी मस्तनाथजी के शिष्य हुए। वह योगिराज भी दयालु तथा समस्त गुणों से सम्पन्न था। जब उन्होंने उस राजा के पुत्र को भी कुछ सिद्धियां दिखलाई और अपने गुरुदेव की सिद्धियों का स्मरण कराया, तब राजा ने स्वयं 'थेहड़ी' नामक गांव उनको दे दिया।

दानी स दानार्हसमानमानी न्यदर्शि चादर्शपदेन राजा।
त्यागी स साधुर्न कृतोपकारे लिप्सुर्व्यदर्श्येव च मस्तनाथैः[5] ।।८१।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद–सिद्धिचयं.................... ।।६३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सिद्धिं कांचिददर्शयत्।।६४।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–तस्मै राज्ञे शिवं दत्त्वा...... ।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–दत्तस्य दानाच्च कृतस्य कार्यात् प्रत्यावृतिं प्रत्युपकारिता न।।६६।। (प्रतिशत प्रति)

वह राजा दानी था एवं दानयोग्य पुरुष का बहुत आदर करता था। आदर्श व्यक्ति भी था। वह साधु भी त्यागी था तथा उपकार करके प्रत्युपकार की इच्छा नहीं करता था। अतः मस्तनाथजी भी एक आदर्श पुरुष ही थे।

एकं योगास्त्रमादाय भोगलिप्सां जिहासतः।
असिना धीरवीरस्य भङ्गः सङ्ग्रामगोचरे।।८२।।

एकमात्र योग का आश्रय लेकर भोग-लालसा को त्यागने की इच्छा करने वाले धैर्यशाली वीर का मानमर्दन युद्ध होने पर (असि) तलवार के द्वारा ही संभव है।

आरूढस्य विवेकाश्वं तीव्रवैराग्यखड्गिनः।
तितिक्षावर्मयुक्तस्य प्रतियोगी न दृश्यते।।८३।।
परिभाव्य जगन्मिथ्याऽनुभाव्य स्वार्थसंविदम्[२]।
ततो यातो मस्तनाथो योगसिद्धिसमाश्रितः।।८४।।

विवेकरूपी अश्व पर आरूढ़, तीव्र बैराग्यरूप असिधारी, सहनशीलतारूप कवच को धारण करनेवाले व्यक्ति का प्रतिद्वन्द्वी नहीं दिखाई देता।

जगत् मिथ्या है, अतः उसकी उपेक्षा करके और स्वार्थ ज्ञान (निजी चेतना) अर्थात् अपने चैतन्यस्वरूप का अनुभव कराकर मस्तनाथजी वहां से अन्यत्र चले गए।

इति श्रीमस्तनाथचरिते बीकानेरराज्ये मिष्टान्नसुवर्णकरण-शिष्यप्रीत्यर्थमतीरादानं नाम विंशः सर्गः।

२. ८२, ८३ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।

एकविंशः सर्गः

भीमसिंहदर्पहरणादिप्रकरणम्

रक्षाप्रदक्षो निजभक्तवर्य्यं मुनिं मृकण्डातनयं ररक्ष।
संहारकृल्लोकप्रसिद्धितोऽसौ पायादपायाच्छिवरुद्ररूपः।।१।।

रक्षा करने में निपुण, अपने प्रिय भक्त मृकण्डा के पुत्र (मार्कण्डेय) की रक्षा करनेवाले, लोक प्रसिद्धि से संहार करनेवाले रुद्ररूप शिव विपत्ति से हमारी रक्षा करें।

गोरक्षगोरखपदैर्बहुभिः स्वरूपैर्लोकोपकारकृतये जगतीषु रेमे।
वेषैरनेकचरितैर्धरणीं स पूतां व्यधत्त मस्तो यतिनाथपदोऽप्यनाथाम्[1]।।२।।

गोरक्ष, गोरख इत्यादि नाम वाले, अपने अनेक स्वरूपों से लोगों का उपकार करने के लिए संसार में रमण करनेवाले मस्तनाथ यति ने इस अनाथ भूतल को अपने नाना प्रकार के चरितों से पवित्र बना दिया।

अचरावलपूरपि तेन पुरा निजपादरजःपरिपूतपदा।
धरिता बहुसिद्धिशतैरमिता धवला निजकीर्तिबलैरभितः।।३।।

अचरावल नाम का एक नगर था जिसके स्थान पहले कभी नाथजी ने अपनी चरण धूलि से पवित्र कर दिए थे तथा सैंकड़ों सिद्धियों से युक्त अपने कीर्तिपुञ्ज से जिसे चारों ओर से पवित्र कर दिया था।

बहुलान् प्रसमीक्ष्य निजेन यतीन् न गुणैर्न समानधर्मानपि[2] तान्।
समवेषगतान्नु विडम्बनतामपनेतुमनाः प्रसमाह[3] तदा।।४।।

गुणों में अपने से कम परन्तु समान वेषवाले अनेक साधुओं को देखकर उनका अभिमान दूर करते हुए मस्तनाथजी उनसे कहने लगे।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
गोरक्षसाभासपदैरनेकैः रेमे जगत्यां जगदन्तरात्मा।
अभूत्परात्मा गुरुमस्तनाथो व्यधत्त पूतां धरिणीं शिवात्मा।।२।।

२. पाठभेद–गुणवानपि............।।४।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–इदमाह..................।।४।। (प्रकाशित प्रति)

मृतं समुज्जीवितुमुज्जिहानमचेतनं वोऽस्ति स कोऽत्र शक्तः।
विनापि वेलां मरणस्य धात्रा ललाटपट्टे लिखितं लिखेद्वा[१] ।।५।।

हे योगिजनो ! इस समय कोई व्यक्ति मर रहा है। तुममें से इस विषय में किसी का सामर्थ्य है कि उसे जीवनदान देकर यमराज के दूतों से उसकी रक्षा करे; क्योंकि विधाता ने मरणसमय से पहले ही उसके ललाटपट्ट पर मृत्युलेख लिख दिया है, उसे कोई मिटा सकता है ?

यतीन्द्रवर्य्यं बहुलप्रसन्नमकारणं वेषप्रकर्षहेतुम्।
वाक्यं वदन्तं प्रसमीक्ष्य हर्षप्रवर्षणं प्राहुरिदं मुदाऽक्तम्।।६।।

यतिराजश्रेष्ठ, अत्यन्त प्रसन्न, अकारण ही योगियों के वेष का सम्मान बढ़ानेवाले, स्वयं प्रसन्नमुख मस्तनाथजी के हर्ष की वर्षा करनेवाले वचन को सुनकर उन साधुओं ने यह कहा।

समर्थतार्थं सकलं समर्थयेदनर्थजातं निखिलं प्रहापयेत्।
मृतं जनं जीवयताद्विजित्य यमं सजीवं शरणं च याप्यात्[२] ।।७।।

सामर्थ्य समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण कर देता है और सब अनिष्टों का निवारण कर सकता है, यम को भी पराजित करके मृत व्यक्ति को जीवित कर सकता है तथा सजीव को निर्जीव बना देता है, अतः सामर्थ्यवान् व्यक्ति सब कुछ कर सकता है।

भवत्सु सा नाकलितात्मदेहे यथा भवत्सार्थतया स्वसार्था।
तथेति सेवैव भवद्विधानां न तुल्यतायामभिगर्धना नः[३] ।।८।।

हे नाथ ! हम तो आपके सेवक हैं जैसे आप लोगों में की हुई हमारी सेवा सार्थक होती है वैसी अपने शरीर में की हुई सेवा चरितार्थ नहीं होती, अतः आपकी सेवा ही हमारा मुख्य कर्त्तव्य है, न कि आपकी समानता करना।

तदा समुक्तं किल मस्तनाथैर्गौः कर्दमे मग्नपदाऽस्ति काचित्[४]।
समीहितं किं भवतां समुद्धर्तव्या न वा सोऽत्र वदन्तु सर्वे[५] ।।९।।

---

१. पाठभेद–अचेतने चेतनतां च नेतुम्।
युष्मासु कोऽप्यस्ति समर्थयोगी वियोगिनं योग्यपदे विधातुम्।।५।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–रक्षेत्।।७।। (प्रकाशित प्रति)

३. सेवावशात्साधयति त्रिलोकम्।।८।। (प्रकाशित प्रति)

४. सीदति दुःखिनी सा.............. ।।९।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–तस्याः समुद्धारमुदाहरन्तु समीहितं किं भवतां भवन्तः।।९।। (प्रकाशित प्रति)

तब मस्तनाथजी ने कहा कि कोई गौ कीचड़ में फंसी हुई है उसका उद्धार करना चाहिए अथवा नहीं ? इस विषय में आप सबकी क्या राय है सो उसे कहो।

श्रुत्वा वचः प्रश्नमयं न युक्तं गुरोः स्वशिष्यैर्नु विनोदनं स्यात्।
सर्वज्ञविज्ञानमयस्य शंका नोदेति वाच्यास्ति कृपा तदीया।।१०।।

गुरुदेव के प्रश्नसूचक वचन सुनकर शिष्यों ने अपने मन में विचार किया कि गुरु को अपने शिष्यों से पूछना उचित नहीं अथवा गुरुदेव अपने शिष्यों के साथ मजाक कर रहे हैं क्योंकि सर्वज्ञ ज्ञानवालों को शंका ही नहीं हो सकती फिर भी हमसे जो पूछ रहे हैं तो यह भी उनकी हमारे ऊपर बड़ी भारी अनुकम्पा ही है।

का गौः कुतो वा कुह कर्दमः कः, का मग्नता केन कथं च तस्य।
उद्धृतिर्युक्तपदा कुतुहलादूचे सशिष्यैर्बहुवीक्ष्य यत्नात्।।११।।

शिष्यों ने बड़े ध्यान से सोच-विचार कर बड़ी जिज्ञासा से कहा कि कौन गौ है, कहां से आकर धंसी है, कौनसा कीचड़ है, कैसा धंसना है, धंसने का क्या कारण है ? वह किस प्रकार फंसी है और उसका निकालना उचित है अथवा नहीं इत्यादि सब बातों का भेद हमें बतलाइए।

तदा गुरुः प्राह स मानसिंहो
नृपोऽस्ति गौः शीलकृपालुताभ्याम्।
स मानसिंहो गततद्विपक्षो
मानोऽपि कालस्य बलेन भीतः।।१२।।

फिर मस्तनाथजी ने कहा कि सुशीलस्वभाव तथा दयालु मानसिंह ही गौ है। यद्यपि उसके शत्रु का मान भंग हो चुका है तो भी मृत्यु के भय से वह मानसिंह बहुत भयभीत है।

जालौरदुर्गे स्वविपक्षभीमसिंहस्य राज्ये घटनावशेन।
गतः स तत्कर्दमसैनिकान्तः प्रविष्टतातोऽस्ति महानिमग्नः।।१३।।

अपने शत्रु भीमसिंह के राज्य में जालौर नाम के किले में वह किसी घटनाचक्र से जा फंसा है। अब वह भीमसिंह की सेनारूपी कीचड़ में प्रविष्ट होने से डूबा हुआ है अर्थात् उसे भीमसिंह की सेनाओं ने चारों ओर से घेर रखा है।

सुशीलतौदार्य्यगुणा गुणज्ञैः प्रशांसितास्ते समये गुणा ये[१]।
अकालवर्षा समदुर्नयान्ते मुहूर्तहीना दुरुपद्रवा हि[२]।।१४।।

सुशीलता तथा उदारता आदि गुणों से युक्त, समय-समय पर गुणीजनों से प्रशंसित जो योद्धा थे आज उनके वे गुण अकालवर्षा की भांति भीमसिंह की कुनीति से शुभलक्षणरहित होकर उपद्रवों के रूप में प्रकट होरहे हैं।

बलं न भाग्यं बलवत्सु भाग्यप्रचण्डदोर्दण्डविखण्डितारौ[३]।
कालेन सर्वे प्रबला यमस्य पुरं विनीता न समीक्ष्य भाग्यम्[४]।।१५।।

बल तथा भाग्य कुछ चीज नहीं क्योंकि शक्तिशाली एवं अच्छे भाग्यवाले के प्रचण्ड बाहुबल का नाश करनेवाले काल और यमराज प्रबल हैं इसीलिए उसके आगे भाग्य की कुछ गणना न करके समस्त वीर काल द्वारा यमलोक पहुंच जाते हैं अर्थात् मृत्यु के सामने भाग्य का कुछ वश नहीं चलता।

न चोद्यमे भाग्यबलं न किञ्चिन्न भाविता कापि यमोऽपि कालः।
सन्मन्त्रदेवेश्वरसद्गुरूणां सहायतः सर्वकरोऽवभाति[५]।।१६।।

और केवल उद्योग भी कुछ नहीं कर सकता है, न भाग्य और बल, न होनहार (भवितव्यता) ही कोई चीज है, न यम ही कुछ कर सकता है, न काल ही अपितु केवलमात्र सन्मंत्र, ईश्वर व सद्गुरु की सहायता से ही समस्त कार्य सिद्ध होते हैं।

कालस्य कालं विरलप्रकारं गुरुं निजं दैवतमामनन्ति।
ततः सहायो भवगीतमन्त्रो भवैकनाथस्य मया समर्हः।।१७।।

सबके प्रवर्त्तक काल का भी परिवर्तन करनेवाले, निराले अपने गुरु को शास्त्रकार देवता मानते हैं। अतः हे गुरुवर ! मैंने आज तक आपके मंत्र का ध्यान किया है, आप एकमात्र सामर्थ्यवान् हैं अतः मेरी सहायता करो। (अर्थात् मेरा भक्त इस प्रकार के उपर्युक्त वचन कहकर मुझसे सहायता मांग रहा है।)

---

१. पाठभेद–अस्य लीनाः.................... ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–अकालवृष्टिर्जलदालिभीषणां विभीषिका मा तनुते जलं विना।।१४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–करण्डितारौ.................... ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–यमस्य पृष्ठेऽपि जगन्नियन्ता।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–विभाति।।१६।। (प्रकाशित प्रति)

नो चेत् कठोरः स हि भीमसिंहः पित्रार्जितां स्वोन्मददोःप्रकाण्डैः।
दण्डैः समीकर्तुमरातिहीनां स्वभोगभाजां धरणीं तनोति[1]।।१८।।

यदि इस आपत्तिकाल में उसकी सहायता न होगी तो निर्दय वह भीमसिंह अपनी अदम्य भुजाओं से पिता से अर्जित की गई समस्त भूमि को शत्रुरहित और अपने अधीन कर लेगा।

दुर्योधनो योऽनयतो भुवं स्वामासेदिवान् भीमरिपुः प्रसिद्धः[2]।
विपर्य्ययेणास्य स भीमसिंहो नयं पृथक्कृत्य कुरूद्वहोऽस्ति।।१९।।

जिस दुर्योधन ने कुनीति से सम्पूर्ण भूमि को अपने अधीन कर लिया था, इस कारण भीमसेन उसका शत्रु होगया था। आज ठीक उसके विपरीत भीमसिंह अनीति के द्वारा सारे कुरु देश का राजा बना हुआ है।

न तातमित्रे न सुते न बन्धुषु न चानुजे वा निजतो यवीयसि।
प्रदत्तदण्डो दमनैकनीतिमान् स नीतिबाणस्य मुखे[3] प्रहोष्यति।।२०।।

वह भीमसिंह पिता, मित्र, पुत्र, बन्धु, छोटा भाई और बड़ा भाई–इन सबको दण्ड दे चुका है केवल दण्डनीतिवाला वह भीमसिंह मानसिंह को भी अपनी दण्डनीति का शिकार बनाना चाहता है।

इयं महाम्बा जगदन्तकारिणी संतारिणी भक्तजनस्य पूरणी।
सम्प्रेरयत्यद्य धियं च मामिकां मानस्य रक्षार्थमलं बलीयसी[4]।।२१।।

यह जगत् का संहार करनेवाली, भवसागर से पार उतारनेवाली एवं भक्तजनों की मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाली भगवती आज मेरी बुद्धि को मानसिंह की रक्षा करने के लिए भली प्रकार प्रेरित कर रही है, जबकि वह मानसिंह की रक्षा करने की पर्याप्त सामर्थ्य रखती है अर्थात् मैं जाकर यदि मानसिंह की रक्षा नहीं करता तो भी वह उसे बचा सकती है। मैं केवलमात्र रक्षा का माध्यम बन रहा हूँ।

---

१. पाठभेद–......कमठोपमो यः स भीमसिंहः किल भीमदेश्यः।
दण्डैर्वशीकर्तुमरातिहीनां स्वभोगभाग्याँ............ ।।१८।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–दुर्योधनः कृष्णबलं न मत्वा भुवं प्रपेदे स च भीमवैरिः............ ।।१९।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–मानसिंहदहने............ ।।२०।। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

यावान् विलम्बः स तु कालिकाम्बा गणस्य तद्भोज्यपरावलम्बः।
स्मरन्तमेनं सततं भयात्तन्मोक्तुं व्रजामीति मतिर्मता मे[1]।।२२।।

अतः अब ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जारहा है त्यों-त्यों उसका विनाश समीप आरहा है इसलिए मुझे निरन्तर स्मरण करने वाले उसको भय से बचाने के लिए मैं जाऊँ, ऐसी मेरी इच्छा हो रही है।

गुरुः सुमन्त्राश्च निजेष्टदेवाः सद्बान्धवाः सत्सुहृदो नराणाम्।
कृपाकरा वा न हिते प्रतीता मुधैव काले खलु संकटस्य[2]।।२३।।

गुरु और इष्ट मंत्र, अपना इष्ट देव, सद्बन्धुवर्ग तथा सच्चा मित्र विपत्ति के समय यदि सहायक न हुए तो इनका जन्म व्यर्थ है।

यदा यदा भक्तजनस्य कश्चित् स्यात्संकटस्तत्र विजन्मनाशः।
स्वयं जगत्यामवतीर्य्य संकटं पराभवच्छास्त्रकृता समुक्ताः[3]।।२४।।

जब-जब भक्तजनों के ऊपर कोई कष्ट आया है तब-तब अजन्मे, अविनाशी परमेश्वर ने संसार में स्वयं अवतार लेकर भक्तों का संकट दूर किया है; ऐसा शास्त्रकार कहते हैं।

गोरक्षनाथो भगवाञ्जगद्धरः
केनोपमीयेत विशेषणेन सः।
स मस्तनाथस्य सरूपतामितः
करोति कार्याणि जनोत्तराणि यत्[4]।।२५।।

भगवान् गोरक्षनाथजी जगत् को धारण करनेवाले हैं। किसके साथ उनकी उपमा दी जाये ? अर्थात् उनकी विशेषता का बोध करानेवाला संसार में कोई विशेषण ही नहीं हैं। वे मस्तनाथजी के रूप में अवतरित होगए हैं जो कि लोकोत्तर जनकल्याण के कार्य कर रहे हैं।

---

१. पाठभेद–यावान् विलम्बः स च शोभनो न च मानस्य मानार्थमहं व्रजामि भोः।
परावलम्बस्य सदाऽवलम्बनमपेक्षते विज्ञजना वदन्ति यत्।।२२।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–गुरुश्च मित्राणि निजेष्टदेवताः सद्बान्धवाः सत्सुहृदो नरो नराः।
कृपाकरा वा न हिते हितैषिणो मनीषिणो धर्मरता गदन्ति तत्।।२३।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

एवं समुक्त्वा परमप्रसिद्धः सिद्ध्या जगत्यामथ मस्तनाथः[1]।
सिद्धिप्रवीणैर्निजसार्थशिष्यैः स जोधपूरान्तिकमाप युक्तः।।२६।।

संसार में अपनी सिद्धि के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध मस्तनाथजी इस प्रकार कहकर अपने साथी शिष्यों के साथ जोधपुर के नजदीक जा पहुंचे।

यौक्तं जन[2]स्थानमिति प्रसिद्धमलंचकाराचरणप्रसादैः।
इतस्ततस्तत्प्रथनात् समेताः पौराः पुरः कर्षणतोऽवसृण्या[3]।।२७।।

वहां योगियों का एक प्रसिद्ध निवास-स्थान है जिसे लोग 'बाबा वाली टेकरी' कहते हैं। उस स्थल को नाथजी ने अपने गमन से सुशोभित किया। तब मस्तनाथजी को आया हुआ सुनकर अंकुश से नियन्त्रित हाथी की भांति लोग उनके गुणों से आकृष्ट होकर आने लगे।

छिद्रान् प्रपश्यन्ति खलाः स्पशा ये गुणेषु दोषानगुणाः कुपात्राः।
म्लेच्छाः स्वभावात् परनिन्दकाश्च क्षुद्रा यथा नास्तिकदुःस्वभावाः।।२८।।

जो दुष्ट गुप्तचर हैं वे सत्पुरुषों के गुणों में दोषरूप छिद्र देखा करते हैं और गुणशून्य अयोग्य म्लेच्छ लोग प्रकृति से ही दूसरों की निन्दा किया करते हैं जैसे क्षुद्र बुद्धिवाले नास्तिक तथा दुष्ट लोगों का स्वभाव अत्यन्त मलिन होता है।

दुःस्थलं कलुषं नीरं दुष्कीटं वातकोपतः।
देशनीरकुकोपनाऽऽमयस्येव प्रवर्द्धते[4]।।२९।।

दूषित प्रदेश में भरा हुआ जल दूषित हो जाता है और दूषित वायु के प्रकोप से उसमें गन्दे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। फिर उस प्रदेश के जल से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार दुष्ट गुप्तचर की संगति से राजा का मन भी विकृत हो जाता है और उससे बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं।

गुणान् गुणज्ञा अगुणा गुणेतरान्
पश्यन्ति शंसन्ति मुदा मनन्ति ते।
गायन्ति गाथाः किल पूर्वयोगिना-
मपूर्वकर्माणि विभिन्नबुद्धयः[5]।।३०।।

---

१. पाठभेद–निजेच्छया तत्र जगाम तूर्णम्...... ।।२५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–स स्थानिका.............................. ।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–अंकुशेन.................................. ।।२६।। (प्रकाशित प्रति)
४. २८, २९ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ५. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

गुणों को जाननेवाले (पारखी) स्वयं गुणरहित होते हुए भी वे भक्तजन तुम्हारे गुणों व गुणों से इतर भी अन्य विशेषताओं को देखते हैं, प्रशंसा करते हैं और प्रसन्नता से उन्हें मानते हैं। विभिन्न विचारोंवाले विभिन्न सम्प्रदायानुयायी व्यक्ति भी निःसंदेह पूर्ववर्ती योगियों की गाथाएँ व उनके अद्भुत कर्मों का गान करते हैं।

तत्सूचकैः कैरपि दुःस्वभावैरज्ञो नृपो भीम इदं न्यवेदि।
कश्चित् स्पशः कुण्डलयोगिवेशः समागतोऽरिप्रहितः प्रकोपी[१] ।।३१।।

दुष्ट स्वभाववाले उसके दूतों ने मूर्ख भीमसिंह को यह निवेदन किया कि शत्रु का भेजा हुआ, अत्यन्त क्रोधी, कानों में कुण्डल पहने हुए तथा योगी के वेष वाला कोई गुप्तचर आया है।

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।
संजीवयामि मृतकं दुरितं क्षयामि
स्वर्गं नयामि नरकेऽपि जगाद मस्तः[२] ।।३२।।

वह कहता है कि मस्तनाथ कह रहा है कि मैं ब्रह्माण्ड को अन्धा कर सकता हूँ, बहरा कर सकता हूँ, सचेतन धीर को भी अचेतन कर सकता हूँ, मरे हुए को जीवित कर सकता हूँ, पाप को क्षीण कर सकता हूँ, स्वर्ग में ले जा सकता हूँ व नरक में भी ले जा सकता हूँ।

न मानचर्चास्ति न वाचि मार्दवं न कौशलं तस्य निजेऽपि कर्मणि।
स्वयं वदन्न त्रपते जनेष्वयं मृतिर्जनिर्मे वचनाऽनुसारिणी।।३३।।

उसके न किसी मान की चर्चा है, न उसके वाक्य में कोमलता है और न ही अपने कार्य में निपुणता है। मारना और जिलाना तो मेरी जुबान का खेल है ऐसा स्वयं कहता हुआ वह लज्जित नहीं होता है।

स मन्यतेऽयं सकलो हि लोको मदीयवाक्सिद्धिपदेन मुग्धः।
मद्वाग्वशः कार्य्यपदं मदीये संसिद्धिमाधास्यसि निःसपत्नम्।।३४।।

वह यह मानता है कि ये सब लोग मेरी वाक्सिद्धि से मोहित हैं जो मेरे कहने के मुताबिक कार्य करेगा, वह निष्कंटक भाव से अपना कार्य सिद्ध कर सकता है।

---

१. पाठभेद-प्रतापी।।२८।। (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

कस्यापि सौतं सुखमाह दत्तं को वापि कीनाशपथे प्रशापात्।
संयापिता हापितसर्वसौख्याश्चराचरे मे प्रथितास्ति सिद्धिः।।३५।।

वह कहता है कि किसी को मैंने पुत्र दिया, किसी को शाप देकर समस्त सुखों से वञ्चित कर यमलोक में भेज दिया, इस प्रकार जड़ एवं चेतन सबमें मेरी सिद्धि प्रसिद्ध है।

देवान् मृतान् दूरगताञ्जनाँश्च स्ववाक्यमात्रात्सृणितः प्रणीतान्।
त्रिकालविज्ञानसुखापि ताँश्च ब्रूते स्वयं स्वं शिवसर्वसिद्धिम्।।३६।।

तीनों काल के विशेष ज्ञान से सुखी वह देवों, मृतों एवं दूरस्थान पर वर्तमान व्यक्तियों को अपने वचनमात्र रूप अंकुश (सृणितः) से स्वाधीन कर अपनी सम्पूर्ण सिद्धियाँ दिखाता है और स्वयं को शिव कहता है।

त्वन्निन्दनं वाचि सदैव तस्य कंसस्य गोपालविचिन्तनं वा।
सद्यो मृतिं वेदयते प्रमत्तवाक्यं यथा हृत्स्थविकारभावम्।।३७।।

तुम्हारी निन्दा तो उसकी वाणी में सदैव रहती है जैसे कंस को श्रीकृष्ण की चिन्ता हर समय रहती थी और आपकी मृत्यु जल्दी ही हो जायेगी–इस तरह से पागल की भांति अपने अन्तःकरण में विद्यमान दूषित भावों को वह प्रकट करता रहता है।

मदेन मंत्रेण कुनिद्रया वा प्रलापरोगेण पिशाचशब्दैः।
अस्माभिरीशाप्तसुशिक्षयैव संवेद्यते कुस्पशता सुगुप्ता[1]।।३८।।

मदमंत्र, नकली निद्रा, प्रलाप रोग एवं पिशाच शब्द–इन सबके द्वारा नृप से प्राप्त उत्तम शिक्षा के प्रभाव से हम गुप्त से गुप्त दूत के भाव को भी जान लेते हैं।

संचेष्टया गात्रविलासितेन स्वयं भ्रमोक्तेन निगूढचित्तम्।
समुक्ततुल्ये क्रियते जनैर्यत् कथं प्रलापेन न बुद्ध्यतां तत्।।३९।।

जो बुद्धिमान् चेष्टा से शरीर के चलन और भ्रमात्मक उक्तियों के द्वारा अन्तःकरण में छिपे हुए भाव को, कहे हुए की भांति जान लेते हैं वे स्पष्ट कथन से क्यों नहीं जान लेंगे अर्थात् अवश्य जान लेंगे।

---

१. ३६, ३७, ३८, ३९ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

इत्यादिदुर्वाक्यकुसूचनां तन्निन्दया दुर्मददु:स्वभाव:।
हिताऽहिताऽवेक्षणहीनचक्षु:[१] स भीमसिंहोऽथ भृशं चुकोप।।४०।।

इत्यादि बहुत से दुर्वचनों द्वारा दूतों से की हुई उनकी (नाथजी) निन्दा से घमण्डी, दुष्टस्वभाव हित-अहित के विचार करने में अन्धा (विवेकहीन) वह भीमसिंह अत्यन्त क्रुद्ध होगया।

सपत्नलोकोऽपि नृपत्वभावान्न नास्ति कस्यापि च वक्तुमर्हम्[२]।
परन्तु नान्यं स विदनरातिं तं मानसिंहेरितमेव चारम्।।४१।।

यद्यपि भीमसिंह के अनेक शत्रु थे तो भी राज्य का अधिकारी होने के कारण वह मानसिंह को ही अपना शत्रु मानता था अन्य किसी को नहीं। इसलिए मस्तनाथजी के महत्त्व को न जानते हुए वह भीमसिंह–यह मानसिंह का गुप्तचर है ऐसा बाबा को समझने लगा।

बलं निजं तत्र समादिदेश स मानसिंहस्य विमाननायै।
पराऽपरज्ञानविहीनमेवं कंसो जिहिंसेव पुलस्त्यपुत्र:[३]।।४२।।

भीमसिंह ने अपने पराये के ज्ञान से शून्य उन्मत्त अपने सैनिकों को मानसिंह का मान भंग करने के लिए आज्ञा दी, जैसे प्राचीन समय में कंस तथा पुलस्त्य के पुत्र रावण ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी थी।

तं मस्तनाथोऽखिलभावविज्ञो वित्त्वा[४] हृदा सैनिकमुख्यचित्तम्।
समैरयत्तेन तदीयदूत: स भीमभावं सकलं समाह[५]।।४३।।

समस्त प्राणियों के हृदयस्थ भावों को जाननेवाले मस्तनाथजी ने प्रधान सेनापति के चित्त को प्रेरित किया जिस कारण उसके दूत ने मानसिंह के समीप जाकर भीमसिंह का सम्पूर्ण गूढ़ वृत्तान्त उसे बता दिया।

पलायतां क्वापि विधीयतां च त्वरा जिघांसन्निजसांमुखीनम्।
विधित्सतीति प्रभुता गुणाविस्त्वां नापराधं न वयं स्वकार्य्ये[६]।।४४।।

---

१. पाठभेद–बोध:.................................।।३३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–स मानसिंहोऽपि बभूव वैरि:।।३४।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद–बुद्ध्वा.................................।।३५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–स मानसिंह हि समस्तवृत्तं विज्ञापयामास च भीमभावम्।।३५।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–.............................त्वरा निधीयतां क्वापि निधिर्हि नैज:।
जिघृक्षति त्वां स च भीमसिंहो विनापराधं खलु युध्यमान:।।३६।। (प्रकाशित प्रति)

आप कहीं भाग जाइए और जल्दी कीजिए क्योंकि वह भीमसिंह आपको मारने की इच्छा से आपके साथ युद्ध करना चाहता है, अतः इस गुप्त वृत्तान्त को बताने से मेरा दोष प्रकट न हो जिससे मैं कृतघ्न न कहलाऊँ।

पक्षार्धमात्राहरणस्य वेला प्रशासिता तेन विवेकहीनः।
प्रभुर्न यावत् खलु दुर्मदस्त्वां हन्यादितो याहि विविच्य गूढम्।।४५।।

उसने एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर आपको पकड़कर लाने की आज्ञा दी है इसीलिए विवेकहीन, दुष्ट एवं मदोन्मत्त वह राजा जब तक तुम्हें न मारे उससे पहले ही यहाँ से किसी गुप्त सुरक्षित स्थान पर चले जाना चाहिए।

अपक्षपक्षेन मितं स्वरक्षा-हेतुं विनैवान्यमिनञ्च मन्त्रम्।
रात्रौ स्वगेहे मनुते स्म तस्मिन् मित्रे प्रयाते गुरुमेकमेव[१]।।४६।।

उस मित्र के चले जाने पर रात में अपने घर में बैठकर अनाथों के नाथ, ईश्वर से प्रेरित, स्वयं सहायक अपने गुरु तथा उनके पवित्र मन्त्र का जाप करने लगा।

असाधनं वा न रणं[२] स्वगुप्त्यै तद्विग्रहे स्यान्मरणं न सन्धिः।
भीमे खले हीनधनो न दाता गुरुः शरण्यो भव रक्ष देव[३]।।४७।।

साधनहीन युद्ध भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, अतः युद्ध करने से मृत्यु निश्चित है। सन्धि हो नहीं सकती और भीमसिंह जैसे प्रबल शत्रु के साथ युद्ध होने पर साधारण धनिक की सहायता पर्याप्त नहीं है। अतः हे गुरुदेव ! आप ही मेरे रक्षक हो। हे देव ! मेरी रक्षा कीजिए।

अदेहवाचं स तदैव मस्त-नाथेरितां प्राह मुहुः समुक्ताम्[४]।
श्रुतेः सुखां यर्हि भविष्यसि त्वं राजा तृतीये दिवसे ह्यचिन्त्याम्[५]।।४८।।

तब मानसिंह ने मस्तनाथजी से कही हुई मधुर आकाशवाणी (बिना शरीर के कही हुई वाणी) सुनी कि तुम तीसरे दिन राजा बनोगे, चिन्ता मत करो।

---

१. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
गते च मित्रे गुरुणा प्रदिष्टे शरण्यनिर्विण्णमनाः स राजा।
गुरुं हि सर्वेश्वरमेव मेने तदीयमन्त्रं हि जजाप रात्रौ।।३८।।

२. पाठभेद–असाधनो वा न रणः.................।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–गुरो ! त्वमेव स्मरणे मदीये।।३९।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–वै श्रुतवान् स मानः.................।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–च सत्यम्।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

मत्स्येन्द्रनाथोऽथ जलन्धरो वा गोरक्षनाथोऽथ स मस्तनाथः।
स आदिनाथो गुरुमस्तनाथो वाचं सुधां पाययसे मुमूर्षुम्[१]।।४९।।

मत्स्येन्द्रनाथ, जलन्धरनाथ, गोरक्षनाथ अथवा आदिनाथ ही वह मस्तनाथ है। आप मोक्ष के इच्छुक (संकट से मुक्ति के अभिलाषी मुझ मानसिंह भक्तजन) को इस प्रकार की अमृतमयी वाणी का पान करा रहे हो।

को देवराजोऽसि गणोऽसि भूतो गन्धर्वविद्याधरयक्षराजः[२]।
नरोऽथवा किन्नर एक कश्चित् वाचं सुधां पाययसि मुमूर्षुम्[३]।।५०।।

उस वाणी को सुनकर मानसिंह जी कहने लगे कि क्या आप देवराज इन्द्र हैं अथवा शिव के कोई गण हो अथवा भूत हो अथवा गन्धर्व हो या यक्षराज कुबेर हो अथवा मनुष्य हो या किन्नर हो–इनमें से कौन हो जो मरणासन्न मुझे अपने वाणीरूपी अमृत का पान करा रहे हो।

मनोविकारो मम किन्नु बुद्धिर्भ्रान्तिर्मदीया न च निद्रितोऽहम्।
पश्यामि नो किञ्चिदिहैव पार्श्वे योऽस्युत्तरं देहि समक्षमेव[४]।।५१।।

क्या मेरे मन में कोई विकार अथवा बुद्धि का भ्रम है, मैं सोया हुआ भी नहीं हूँ और अपने समीप भी कुछ नहीं देख रहा हूँ। अतः हे देव ! जो कुछ आप हैं, उसी रूप में मेरे सम्मुख आकर उत्तर दें।

कथं खलान्मे भवतादहिंसा[५] चिन्ताऽत्र मे राज्यसुखं क्व वा स्यात्।
क्व कीट एकः प्रभवेन्निहत्य रिपुं रविं क्वामरलोकताऽत्र[६]।।५२।।

इस दुष्ट से मेरी हिंसा कैसे न हो–यह चिन्ता मुझे सता रही है और मुझे राज्यसुख मिलेगा यह संभव नहीं क्योंकि कहीं एक कीट सूर्य को मारकर प्रभावशाली बन सकता है ? उसी तरह शत्रु को मारकर कहाँ अमरलोकता ? अर्थात् जब ऐहलौकिक सुख नहीं तो स्वर्ग की बात तो बहुत दूर है।

---

१. यह पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–रूपः............ ।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–कुबेरकौबेरिजनश्च कोऽपि नरोऽथवा किन्नररूपधारी।।४२।। (प्रकाशित प्रति)
४. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
न मानवा दिव्यदृशं विना समे ह्यमानवं द्रष्टुमलं भवन्ति ते।
मनोविकारो मम कोऽपि संभ्रमो लीलाविलासो जगदीश्वरस्य वा।।४३।।
५. पाठभेद–विमुक्तिः............ ।।४४।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–रिपुप्रदीपं सुरलोकता क्व ? ।।४४।। (प्रकाशित प्रति)

असम्भवार्थो न हि जातु कश्चित् श्रद्धादृढत्वे जनतार्थसिद्धिः।
श्रद्धाप्रकारो न विनार्थसिद्धि-प्रकारसंदर्शनतोऽध्यबोधि[१]।।५३।।

वस्तुतः असम्भव वस्तु कभी सम्भव नहीं हो सकती। श्रद्धा के दृढ़ होने पर मनुष्यों की अर्थसिद्धि हो जाती है परन्तु श्रद्धा का प्रकार अर्थसिद्धि को प्रत्यक्ष देखे बिना नहीं जाना जाता।

प्रकारभेदेन विशिष्टबुद्धेर्विभेद एव प्रथितो धरित्र्याम्।
न प्रत्यभिज्ञां नु विनार्थसिद्धिरन्यान्यथा कस्य भवेत् स्वसिद्धिः[२]।।५४।।

विशेषण भेद से विशिष्ट बुद्धि का भेद हो जाता है, यह बात धरती पर प्रसिद्ध है। जैसे नील विशेषण के भेद होने से नील विशिष्ट घटबुद्धि का पीत घटबुद्धि से भेद हो जाता है। यह वही है (प्रत्यभिज्ञा) इस बुद्धि के बिना अर्थसिद्धि नहीं कही जाती क्योंकि दूसरे में गई हुई सिद्धि अपनी सिद्धि नहीं कही जा सकती।

तस्मान्मदीयोऽपि प्रकारावबोधविमर्शसम्भावनतोऽर्थसिद्धिः।
सा साध्यसिद्धिर्न च वाग्विशेषाददेहवाचा स मृतोऽथ कंसः[३]।।५५।।

इसलिए मदीयरूप विशेषण ज्ञान का विचार होने से अर्थात् मेरा ही यह वरदान है इत्यात्मक ज्ञान से अर्थ सिद्धि होगी और वह कार्य्यसिद्धि भी वचनविशेष से नहीं होगी। जैसे कंस आकाशवाणी मात्र से ही नहीं मरा किन्तु उसके लिए अवतार लेना पड़ा, वैसे ही आप भी प्रत्यक्ष होकर मार्ग दिखाइये[४]।

न वा दिनानां तृतीयं प्रसोढुं समर्थता मे जनितेऽग्निदाहे[५]।
तृतीयवारे जनिते न कूपे शान्तिर्गृहस्यापि समीप्सितार्था[६]।।५६।।

अथवा तीन दिन सहन करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। जैसे अग्नि लग जाने पर तीसरे दिन कूप खोदकर अग्नि बुझाने से अपने घर की मनचाही शान्ति नहीं होती।

---

१. पाठभेद–असम्भवार्थोऽपि च संभवार्थ ईशेच्छया स्यादपि तर्कयामि।
श्रद्धा च विश्वासमयी दृढ़ा सा करोति कार्याणि विचारितानि।।४५।।

२. पाठभेद–विशेषणाच्छिष्टविशिष्टबुद्धेः संजायते भेद इति प्रसिद्धिः।
न प्रत्यभिज्ञां नु विनार्थसिद्धिः संबोभवीति प्रथितार्थसिद्धिः।।४६।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ४. पाण्डुलिपि से संकलित।

५. पाठभेद–भगवन् ! दयालो !.......... ।।४७।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–गजेन्द्रमोक्षे न हि ते विलम्बो नरेन्द्रमोक्षेऽपि च को विलम्बः।।४७।।
(प्रकाशित प्रति)

प्राणान्तिके क्वाऽऽमयनाशिनीनां भिषक् क्रियाणां जनिते फलं स्यात्।
मृतौ[१] च मातुर्जननं सुतानां को वा प्रमत्तो मनुते नरो यः।।५७।।

प्राण निकल जाने पर वैद्यों की रोगनाश करनेवाली क्रिया किस काम की और माता की मृत्यु हो जाने पर कौन ऐसा पागल व्यक्ति है जो मानेगा कि पुत्र की उत्पत्ति हुई है।

उपायसंदर्शनहीनवृत्तिः वृथा वचोमात्रविवेकभित्तिः।
अमूलवाक् केन मताऽज्ञलोकाद्विज्ञानमेवाश्रयते स सिद्धः[२]।।५८।।

उपाय सुझाने में असमर्थ, केवल वचनमात्र की आधार विवेक भित्ति जो निर्मूल वाणी है उसको कौन मानता है ? और ऐसा वह सान्त्वनामात्र देनेवाला सिद्ध अज्ञानियों में ही ज्ञानी माना जाता है।

तस्मात्स्वरूपस्य निजस्य बुद्धेश्चितैकभित्तौ प्रतिबिम्बनेन।
गुरुर्गरीयान् भव मे विशोकस्तेनैव नान्यं शरणं प्रवेदिम[३]।।५९।।

इसलिए हे गुरुदेव ! मेरी एकमात्र चित्तरूपी भित्ति में अपने स्वरूप के ज्ञान का प्रतिबिम्ब डालिए। आप मेरे सद्गुरु हैं, अतः ऐसा करने मात्र से ही मैं शोकरहित हो जाऊंगा। मैं दूसरे किसी को अपना सहारा नहीं मानता।

इत्यूचिवान् स नरपं स्वरूपं तद्ध्येयमाविश्चकमे स मस्तः।
राजाधिराजस्य सुरेन्द्रताया अप्राप्यमेकं परमप्रकाशम्[४]।।६०।।

इस प्रकार कहते हुए राजा के लिए उसके ध्येय अपने स्वरूप को प्रकट करने की इच्छा मस्तनाथजी ने की। उनके सर्वोत्कृष्ट अद्वितीय तेज को राजाधिराज इन्द्र भी नहीं पा सकता।

अवेदि कश्चित् खलु कुण्डलीति पुरा ततोऽलोकि महो महीयः।
शिवः क्रमात्कंसवधोद्यतो यः स गोपिकावल्लभराजराजः[५]।।६१।।

---

१. पाठभेद–मृत्यौ...... ।।४८।। (प्रकाशित प्रति) २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद–सन्दर्शनं देहि दयाकरस्त्वं त्वामेव पश्यामि महेशरूपम्।।४९।। (प्रकाशित प्रति)
४. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
यद्वद् घटानां पटलो विशालो विलोक्यतेऽल्पे किल दर्पणेऽपि।
तथैव मानोऽपि ददर्श रूपं श्रीमस्तनाथस्य विभिन्नभावम्।।५०।।
५. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
पुराऽत्र योगीश्वरकुण्डलीति ततश्च कृष्णोऽयमिति प्रथीयान्।
ततश्च साक्षाज्जगदंडगोप्ता श्रीमस्तनाथः प्रकटीबभूव।।५१।।

पहले राजा ने समझा कि कोई कुण्डलधारी है, फिर बड़ा भारी तेजपुञ्ज प्रतीत होने लगा, फिर क्रम से यह समझा कि कंस का वध करने को तत्पर गोपीनाथ, राजराजेश्वर शिवस्वरूप श्रीकृष्णजी हैं।

दृष्ट्वा स्वरूपं भयमाविवेश भीमोऽयमीदृक् छलवेष ईशः।
परातत्परोऽयं भ्रम एव वाऽयं को वा विशेषोऽत्र विमर्शहानः।।६२।।

उस स्वरूप को देखकर मानसिंह भयभीत होगया कि कहीं कपटवेषधारी भीमसिंह ही न हो अथवा यह मेरा बड़ा भारी भ्रम है इस विषय में कौनसा विचार संदेहरहित है।

स्वकीयसंजप्यगुरौ वितर्कमेवंविधं कर्तुम् प्रवृत्ते।
तस्मिन् नृपे स्वं परिदर्शितं तदाऽऽविर्भवद्ध्यानमयस्य रूपम्।।६३।।

जब मानसिंह अपने आराध्य गुरु के विषय में इस प्रकार वितर्क करने लगा तब मस्तानाथजी ने ध्यान से प्राप्त होने योग्य अपने स्वरूप को प्रकट कर दिया।

तदाब्रवीच्चेममपीतशोकं कर्तुं भवाँस्तं कुरुताद्वितर्कम्।
ज्योतिःप्रकारैरपि योगिवृत्त्या सर्वस्तदीयोऽस्ति कृतो विचारः[१]।।६४।।

तब मानसिंह ने मस्तनाथजी से कहा कि आप इस दास को किसी भी उपाय से शोकरहित करने के लिए विचार कीजिए परन्तु नाथजी को तो ज्योतिःशास्त्र एवं योगविद्या की रीति से सब कुछ हस्तामलकवत् था। अतः उन्हें विचार करने की आवश्यकता नहीं थी।

कूपोऽत्र कश्चित् यवनेशपूज्यो नीरं निपीयास्य[२] सुखी भवान् स्यात्।
तत्रान्नपूर्णञ्च कुशूलमास्ते ततोऽथ ते भोज्यसुभोज्यलाभः[३]।।६५।।

यहां किले में मुस्लिम शासकों से पूजा हुआ एक कूप है। आप उसका जल पीकर सुखी रहो और वहीं अन्न से भरा हुआ एक कोठा है उससे तुम्हारा भोजन खर्च सुचारू रूप से चलेगा।

श्री[५]मस्तनाथं बहुरूपमाहुस्त्वद्ध्यानसन्मानसमर्हमीशम्।
त्वत्कार्यमाविःप्रथितुं समेतमीदृक्स्वरूपं भज कार्यसिद्ध्यै[४]।।६६।।

---

१. ६२, ६३, ६४ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद–अथ…… ।।५२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–तत्रैव चान्नस्य विशालकोष्ठं ततोऽथ ते सैन्यसमस्ततृप्तिः।।५२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–मां…………… ।।५३।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–मत्स्येन्द्रनाथं च जलन्धरं च गोरक्षनाथं बहुधा वदन्ति।।५३।। (प्रकाशित प्रति)

तुम्हारे ध्येय और सत्करणीय कार्य को प्रकट करने के लिए आए हुए मस्तनाथजी को लोग नानारूपधारी कहते हैं। इसी दिव्यस्वरूप ईश को अपनी कार्यसिद्धि के लिए भजो।

इत्येवमुक्त्वा निजकार्यमीशो मायाविनानाविधरूपरूपः।
स शम्भुमूर्तिर्जगतीषु नैजभक्तिप्रदोऽन्तर्दध एव मायी[1]।।६७।।

इस प्रकार अपने भक्त को कर्त्तव्य का उपदेश देकर मायावी की भांति अनेक रूपधारी, शिवस्वरूप, माया के स्वामी, ईश संसार में अपनी भक्ति देनेवाले मस्तनाथजी अन्तर्धान हो गए।

यथा स्फुलिङ्गा बहवश्चरन्ति वह्नेर्यथाऽब्धौ लहरीविशेषाः।
तथेशितुर्लीनतनोस्तथाऽन्यो रूपोऽभवन् मन्दिरपार्श्ववर्ती[2]।।६८।।

जैसे अग्नि से बहुत सी चिनगारियां निकलती हैं और जैसे सागर में अनेक लहरें चलती हैं, उसी तरह अदृश्य देहधारी शिवरूप मस्तनाथजी का दूसरा स्वरूप मन्दिर के पास प्रकट होगया।

समूचिवान् तत्रगत[3] स्म देवनाथं तदा मन्दिर[4]पूजकं तम्।
राजा त्वया बोध्यमिदं तृतीये दिने मृतिर्भीमनृपस्य योक्ता[5]।।६९।।

फिर मस्तनाथजी ने उस मन्दिर के पुजारी देवनाथ से कहा कि राजा को तुम यह समझा देना कि तीसरे दिन भीमसिंह की मृत्यु हो जायेगी।

त्वं राजराजो भवितेति साशीर्देवान् प्रपूज्यैष्यति यर्हि राजा।
पृष्टे प्रवाच्यं भवतः स देष्टा समुक्तवान् मामपि तर्हि शत्रौ।।७०।।

और तू राजाओं का राजा होगा–यह आशीर्वचन मस्तनाथजी ने दिया है और जब देवपूजन करके राजा जाते समय फिर पूछे कि आपसे यह सब किसने कहा? तब तुम कह देना कि जिसने रात्रि के समय आपको कहा था, उसी ने मुझे कहा है।

इत्युक्त्वान्तर्दधे तत्र स्वस्थाने प्राप स क्षणात्।
उपासितः शिष्यगणैर्मस्तनाथो यतीश्वरः।।७१।।

---

१. पाठभेद–................मानं हि मानेन समानयन् सः।
अन्तर्दधे भास्करबिम्बचक्रं घनावलीमध्यगतं यथाऽत्र।।५४।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–श्री मस्तनाथः प्रकटीबभूव रूपान्तरेण खलु मन्दिरेऽपि।।५५।। (प्रकाशित प्रति)
१. पाठभेद–स................।।५६।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–जलंध्रनाथस्य च................।।५६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–भूयात्।।५६।। (प्रकाशित प्रति)

यतीश्वर मस्तनाथ इतना कहकर तिरोहित हो गए क्षणभर में ही अपने स्थान पर जा पहुँचे। तदनन्तर समस्त शिष्यमण्डली उनकी सेवा करने लगी।

देवनाथोऽपि मस्तोक्तं नृपायाऽऽह शिवार्चनम्।
कारयन् प्रातरेताय सान्ध्यं कर्तुं चिकीर्षितम्[1]।।७२।।

सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करने के लिए सवेरे आए हुए राजा से पूजन करवाते हुए देवनाथ ने मस्तनाथजी का कहा हुआ सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया।

तृतीये दिवसे प्राप्ते ममार नर[2]पस्तदा।
अतिमानी भीमसिंहो जातिद्वेषकरः सदा।।७३।।

तब तीसरे दिन के आते ही अत्यन्त अभिमानी, हमेशा ही अपनी जाति से द्वेष करनेवाला राजा भीमसिंह मर गया।

मंत्रिवर्गः सकलं बलाबलं विचार्य तन्माननृपस्य राज्ये।
स्वत्वं तदोरीकुरुते स्म तेन सन्मानपूर्वं ह्वयमान आस[3]।।७४।।

तब भीमसिंह के मंत्रियों ने समस्त ऊंच-नीच का विचार किया कि राजा के कोई सन्तान नहीं है, अतः अब इस राज्य का उत्तराधिकारी राजा मानसिंह ही है और वही इस पद के योग्य भी है। इसके पश्चात् सब मंत्रियों ने एक सम्मति से मानसिंह को सम्मानपूर्वक बुलाया।

स भीतभीतोऽधिगतार्थसिद्धिर्मस्तेन्द्रनाथाधिगतार्थवार्त्तः।
देवेन्द्रतोऽपि स्वयमुक्तवाक्यं स्पशस्य शब्दादिदमेव मेने[4]।।७५।।

मस्तनाथजी एवं देवनाथ के वचन से मनोरथ सिद्ध हो जाने पर तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त के ज्ञात होने पर भी उसे दूत के वचन पर विश्वास नहीं हुआ और वह भय के कारण जोधपुर नहीं गया।

मृतिं विदित्वाऽखिलराज्यमेव राजाधिराजेतिपदेन चाप।
स मानसिंहो जनताभिपूज्यो भूपैरनेकैरभिनन्द्यमानः[5]।।७६।।

---

१. ७०, ७१, ७२ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–नृपतिः.................... ।।५७।। (प्रकाशित प्रति)
३. प्रकाशित प्रति में इसके स्थान पर निम्न पद्य है :–
स्वयं तदा मन्त्रिवरः समेत्य विचार्य सर्वं न हि भीमपुत्रः।
राज्याधिकारं हि समस्तभारं न मानसिंहादपरोऽस्ति वोढा।।५८।। (प्रकाशित प्रति)
४. ७४, ७५ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ५. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

राजा की मौत का समाचार सुनकर जनता ने मानसिंह को सम्पूर्ण राज्य का उत्तराधिकारी बनाना न्यायसंगत समझा क्योंकि वह मानसिंह जनता द्वारा अत्यन्त पूजनीय है अर्थात् जनता उनका खूब आदर करती है और अनेक राजा उसको राजा बनाने का समर्थन भी कर रहे हैं।

स्वयं तदा मंत्रिवर: समेत्य योग्यानुमत्या सह प्राह तेन।
मृतिं विदित्वाऽखिलराज्यमेव राजाधिराजेति पदेन प्राप[1]।।७७।।

फिर स्वयं मुख्यमंत्री ने आकर योग्य सम्मति के साथ कहा तब मानसिंह को भीमसिंह की मृत्यु पर विश्वास हुआ और जोधपूर के सम्पूर्ण राज्य को राजाधिराज की पदवी से सुशोभित किया।

यदा जोधपूराजराज्याभिषेक: समग्रान्तरायैर्विनाऽभारि सम्पत्।
तदा मानसिंहोऽधिप: संकटानां विमोक्तारमानेतुमाहाशु मस्तम्।।७८।।

राजा मानसिंह ने जोधपुर के राज्याभिषेक एवं समस्त सम्पत्ति विघ्न-बाधाओं के बिना ही पा लिया, तब संकटों से मुक्त करानेवाले मस्तनाथजी को तुरन्त बुलाने की आज्ञा दी।

तदादेशमासाद्य दूता नियुक्ता: सुनीतिज्ञसन्मन्त्रिभिस्तत्र तत्र।
नृपाज्ञा तमन्वेषणैराप्य नीत्या स्वयं प्रार्थनाञ्चक्रुरङ्घ्रीं प्रणम्य[2]।।७९।।

उनकी आज्ञा पाकर नीतिवेत्ता मंत्रियों ने जहां-तहां दूतों को भेजा और राजा की आज्ञा से ही अन्वेषकों के द्वारा उनका पता लगाकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम कर नीतिपूर्वक स्वयं प्रार्थना की।

प्रतीक्षते नृपो नाथं संकटे कष्टवारणम्।
समाकर्ण्याह मस्तेश: प्रसन्नो नाथ ईर्य्यताम्[3]।।८०।।

हे नाथ ! राजा भक्तों के कष्टों को दूर करनेवाले आपकी हर समय प्रतीक्षा करता रहता है। उनका ऐसा वचन सुनकर मस्तनाथजी ने कहा कि तुम राजा से कहो कि नाथजी आपके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद–प्रासादोऽलं भवत्वत्र श्रीमतो गमनेन हि।।६१।। (प्रकाशित प्रति)
इसके पश्चात् प्रकाशित प्रति में एक पद्य है जिसमें पुनरुक्ति है :-
मस्तनाथस्तदा प्राह मन्त्रिप्रमुखाञ्जनान्।
गम्यतां कथ्यतां राजा प्रसन्नोऽस्मि तवार्चनात्।।६२।।

दिनानि दश यावच्च स्थितिं स्वस्यावदत् स्वयम्।
दूताः प्रोचुः समागत्य राज्ञेऽसौ मुमुदे बहु।।८१।।

उन्होंने स्वयं कहा कि दस दिन तक मैं यहां निवास करूंगा। यह सुनकर दूतों ने आकर राजा से कहा, यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

तद्धिते भोज्यसामग्रीं प्रैषिषद्दूतमन्त्रिभिः।
द्वितीये दिवसे तत्र दिदृक्षुर्नाथमाययौ।।८२।।

राजा ने उनके उपयोगार्थ खाद्य-सामग्री दूत और मंत्रियों से भिजवा दी। फिर दूसरे दिन स्वयं नाथजी के दर्शन करने गया।

ससत्कारं समानीय सशिष्यं कष्टवारणम्।
गृहे स्वे भोजयामास यथार्थं गुरुमात्मनः[1]।।८३।।

समस्त दुःखों को दूर करनेवाले अपने इष्ट गुरु मस्तनाथजी को शिष्यों सहित राजा अपने भवन में ले गया और अत्यन्त आदर एवं प्रेम से उन्हें भोजन कराया।

शासनस्य प्रणालीञ्च गुरोराज्ञाप्रतीक्षया।
शिक्षितुं निजसामर्थ्यं द्रष्टुं पप्रच्छ सादरम्[2]।।८४।।

गुरुदेव की आज्ञा से शासन प्रणाली की शिक्षा लेने के लिए तथा अपनी योग्यता सम्पादन के लिए आदरपूर्वक पूछा।

तदा शिशिक्षे गुरुणा स राजा प्रजा प्रपाल्या निपुणा विधेया।
भोजादिवत् संस्कृतगीः प्रधाना शस्त्रे च शास्त्रे च कृषौ च शिल्पे।।८५।।

तब गुरुदेव ने उस राजा को शिक्षा दी कि अपनी प्रजा का पुत्र की भांति अच्छी तरह से पालन करो और उनको शस्त्र में, शास्त्र में, कृषि में एवं शिल्प में निपुण बनाना चाहिए और राजा भोज की भांति राज्य में संस्कृतभाषा की प्रधानता होनी चाहिए।

वेद[3]वेदान्तविद्यानां प्रचारः प्रत्यहं पुरे।
घण्टाध्वनिध्वनितानां[4] मन्दिराणां समर्हणा।।८६।।

---

१. पाठभेद–प्रासादे भोजयामास मस्तनाथं स्वकं गुरुम्।।६५।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ३. पाठभेद–योग...... ।।६७।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–पूज्यपूजा देवपूजा.......... ।।६७।। (प्रकाशित प्रति)

नगर में प्रतिदिन वेद और वेदान्त की शिक्षा का प्रचार होना चाहिए और घण्टे की ध्वनि से प्रतिध्वनित मन्दिरों में पूजा होनी चाहिए अर्थात् मन्दिरों में घण्टा बजाकर पूजा होनी चाहिए।

योद्धारो रणविख्यातकीर्तयः संविचिन्वताम्।
दुर्गे प्राज्यसुसंग्रामशिक्षणं समुपास्यताम्।।८७।।

युद्ध में लब्धप्रतिष्ठ वीर योद्धाओं को दुर्ग में एकत्रित करके उन्हें युद्ध की शिक्षा दिलवाओ।

खेटाऽसिपरिघाशक्तिभुशुण्डीशतधाघातनीः।
नानास्त्रशस्त्रनिष्णाताः प्राहरन्तोऽपलायनाः[1]।।८८।।

अन्त में कहा कि कटार, तलवार, भाला, बर्छी, शक्ति, बन्दूक, तोप इत्यादि अनेक प्रकार के शस्त्र रखने चाहिएं एवं नाना प्रकार के शस्त्र चलाने में निष्णात, युद्ध में पीठ न दिखानेवाले योद्धा तैयार करो।

सम्पाद्यन्तां वीरवरा वीरकाव्यप्रियाः सदा।
महारथानां पूर्वेषामितिहासप्रशिक्षणाः।।८९।।

राज्य में वीररस प्रधान काव्य को पढ़नेवाले एवं प्राचीन इतिहास के शिक्षक तथा बड़े-बड़े महारथी योद्धा तैयार करो।

ते कर्णार्जुनैकलव्यलवशामेघसन्निभाः।
अभिमन्यूपमन्युदृक् सदृशा घटभीमगाः[2]।।९०।।

वे कण, अर्जुन, एकलव्य, लव, कुश, मेघनाद के समान वीर, अभिमन्यु, उपमन्यु के समान लक्ष्यवाले, घटोत्कच और भीम के समान पराक्रमी होने चाहिएं।

सन्धिविग्रहयानादेरुपयोगेऽप्रमादिनः।
कार्य्यकालदृशो नीतेः सचिवाः संविधेलिमाः।।९१।।

सन्धि-विग्रह, यान इत्यादि उपायों के प्रयोग में सावधान, कार्य एवं समय के जाननेवाले, नीतिवेत्ता मंत्री रखने चाहिएं।

दूता वाक्पटवश्चेष्टाचेष्टार्थसुविचारकाः।
स्पशा निर्मत्सरा गर्धाविहीना राज्यवर्द्धनाः।।९२।।

वाक्पटु, चेष्टा से आन्तरिक भावों को जाननेवाले, राग-द्वेषरहित, लोभरहित एवं राज्य को बढ़ानेवाले गुप्तचर रखने चाहिएं।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

आधिव्याधिकरा देशप्रजामस्तिष्कनाशनाः ।
वाराङ्गना न प्रचार्याः पदार्था धर्मनाशकाः[1] ।।९३।।

अपने राज्य में शारीरिक एवं मानसिक व्याधि उत्पन्न करनेवाली देश तथा प्रजा के मस्तिष्क (सोचने की शक्ति) को नष्ट करनेवाली वेश्याएँ, धर्मध्वंस करनेवाले लशुन, प्याज, मदिरा, मांस आदि पदार्थों का प्रचार मत होने देना।

क्षीरं घृतं गवां रक्षाः सेवयन्तो निरन्तरम्।
आस्तिका नास्तिका नैव प्रजाः संवद्ध्र्यतां मुदा[2] ।।९४।।

दूध, घी का निरन्तर सेवन करते हुए गायों की रक्षा करो। आस्तिक प्रजाजनों की रक्षा करो, नास्तिकों की नहीं।

विप्रा दरिद्राः सन्तश्च परिचर्य्याः सुराः सदा।
राजप्रजामित्रता च प्रजापालयितुर्हिताः[3] ।।९५।।

निर्धन ब्राह्मण, सन्त एवं देवताओं की सदा सेवा करनी चाहिए तथा राजा व प्रजा में परस्पर मैत्री होनी चाहिए और प्रजा को भी अपने पालक राजा का हित करना चाहिए।

सर्वं नृपः समाकर्ण्याऽपृच्छद् धर्मं सनातनम्।
कोऽयं कुतः प्रवृत्तोऽयं शैवाञ्छाक्ताँश्च वैष्णवान्।।९६।।

राजा ने समस्त उपदेश को सुनकर सनातन धर्म, शैव, शाक्त तथा वैष्णव मत के विषय में पूछा कि यह कैसे हैं आंर कहाँ से प्रवृत्त हुए हैं ?

मस्तो यथार्थं सम्प्राह शान्त्या शास्त्रार्थदेशनाम्।
सृष्टिकर्त्रा दशितोऽर्थोऽनादिधर्मः सनातनः[4] ।।९७।।

मस्तनाथजी ने शान्तिपूर्वक यथार्थ शास्त्र के तत्त्व का उपदेश दिया कि सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ने ही इस समस्त दृश्य पदार्थों को तथा अनादि सनातन धर्म को बनाया है।

---

१. ९२, ९३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
२. पाठभेद–गवेन्द्रास्ते ह्यनड्वाहः पालनीयाः स्वधर्मवत्।।७२।। (प्रकाशित प्रति)
३. इसके स्थान पर प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है :-
दरिद्रा रोगहीनाङ्गा विद्याहीना नराश्च ये।
मातृपितृविहीना ये तेषां रक्षापि संभवेत्।।७३।।
४. ९६, ९७ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

ब्रह्मा वेदविधानेन धर्मस्याऽस्य प्रचारकः[१]।
शैवं वैष्णवशाक्ताद्याः शाखा अस्य प्रविस्तृताः।।९८।।

ब्रह्मा ने वेदविधान से इस सनातन धर्म का प्रचार किया तथा शैव, वैष्णव और शाक्त आदि मत इसी सनातन धर्म की शाखा के रूप में फैले हैं।

अनन्तानि च नामानि शिवस्यैव जगत्पतेः।
नाम्ना न भिद्यते नामी गङ्गा न घट्टयोगतः।।९९।।

जगत् के स्वामी शिव के अनन्त नाम हैं। नामी नाम के कारण भिन्न नहीं होता अर्थात् जिसके अनेक नाम हों तो वह अलग-अलग नामों के कारण अलग-अलग वस्तु या व्यक्ति नहीं होता अपितु एक ही के अनेक नाम होते हैं। जैसे घाटों के कारण गंगा का भेद नहीं किया जा सकता। भाव यह है कि घाट अनेक हैं परन्तु गंगा तो एक ही है उसी प्रकार शिव के नाम अनेक हैं जबकि शिव तो एक ही है।

सृष्टिकाले भवेद् ब्रह्मा रक्षाकाले जनार्दनः।
कल्याणाच्छिवमित्याहुर्दण्डनाद् यम उच्यते।।१००।।

सृष्टि के समय वही ब्रह्मा हो जाता है, रक्षा के समय वही विष्णु जबकि कल्याण करने के कारण इसे ही शिव कहते हैं तथा दण्ड देने के कारण यम कहा जाता है।

वृष्टिकाले भवेदिन्द्रो धारणाच्छेष उच्यते।
नारी नाम्ना भवेद् दुर्गा परेशो न च भिद्यते।।१०१।।

वर्षाकाल में इन्द्र हो जाता है, जगत् को धारण करने के कारण शेषनाग कहा जाता है, नारी नाम से वही दुर्गा हो जाती है और इतना होने पर भी परमेश्वर में भेद नहीं होता अर्थात् अलग-अलग कार्य के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम होने से उसकी सत्ता में भेद नहीं आता।

चन्द्रसूर्याग्निरूपाणि स्वस्मात् कृत्वा महेश्वरः।
द्रष्टृदृश्यात्मको भूत्वा तदेवानुगतः प्रभुः।।१०२।।

सबका स्वामी (प्रभु) परमात्मा अपने ही स्वरूप में से चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप बनाकर द्रष्टृ=देखनेवाला और दृश्य=देखने योग्य लक्षणवाला अथवा स्वरूपवाला होकर उसी में व्याप्त (अनुगत) होगया अर्थात् उसी के अनुरूप होगया है।

---

१. पाठभेद-नियामकः ...... ।।७४।। (प्रकाशित प्रति)

एकस्मिन् पूजिते पूजा ज्ञाते ज्ञाता भवन्ति हि।
तन्मूले सलिलदानात् स्वयं शाखासु गच्छति[१]।।१०३।।

एक के पूजित होने पर निःसंदेह सभी पूजित हो जाते हैं अर्थात् एक देवता की पूजा करने पर सभी देवताओं की पूजा हो जाती है और एक का ज्ञान होने पर सभी का ज्ञान हो जाता है जैसे कि वृक्ष की जड़ में जल डालने से वह स्वयं शाखाओं में पहुंच जाता है।

तुलसीशंखचक्राणि गदां पद्मं धरन्ति ये।
विष्णुमन्त्रान् जपन्तश्च वैष्णवास्ते मता मम[२]।।१०४।।

तुलसी की माला, शंख, चक्र, गदा, पद्म इत्यादि चिह्नों को धारण करनेवाले और विष्णुमन्त्र का जप करनेवाले वैष्णव कहे जाते हैं; ऐसा मैं मानता हूँ।

ओं नमः श्रीभगवते वासुदेवाय राम हे।
कृष्णेत्याद्या मन्त्रवर्णास्तारकाः परमात्मनः।।१०५।।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' तथा हे राम', हे कृष्ण' इत्यादि परमेश्वर के मंत्रवर्ण भक्तजनों को भवसागर से पार उतार देते हैं।

पूजयन्तः[३] शिवत्वेन परमात्मानमव्ययम्।
रुद्राक्षशूलपुण्ड्राणि शैवा ये धारयन्ति ते।।१०६।।

अविनाशी परमात्मा का शिवरूप से जो पूजन करते हैं एवं रुद्राक्ष त्रिपुण्ड्रचन्दन धारण करते हैं वे शैव कहलाते हैं।

ओं नमः श्रीभगवते शिवायेति शिवेति च।
सुखनामेश्वरस्यैते जपन्ति सततं मृडम्[४]।।१०७।।

'ॐ नमः श्री भगवते शिवाय' तथा हे शिव' इस सुखकारी ईश्वर के सुखदायक नाम का जप करते हैं।

एतादृशा महाशाक्ताः शक्तिध्यानपरायणाः।
शक्त्या च बुध्यते शक्तिः शक्त्या च शक्तिमान् भवेत्।।१०८।।

शक्ति के ध्यान में परायण इस प्रकार के व्यक्ति महाशाक्त कहलाते हैं और शक्ति से ही शक्ति जानी जाती है और शक्ति के द्वारा ही शक्तिमान् होता है अथवा शक्ति से ही व्यक्ति शक्तिमान् कहलाता है।

---

१. ९९ से १०३ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं। २. पाठभेद–किल।।८०।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–पूजयन्ति ..... ।।८२।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद–शिवम्।।८३।। (प्रकाशित प्रति)

गकारो गुणसंयुक्तो रकारो रूपलक्षणः।
क्षकारेणाक्षयं ब्रह्म श्रीगोरक्ष नमोऽस्तु ते।।१०९।।

गकार से 'गुण से संयुक्त', रकार से रूप लक्षणवाला, क्षकार से अक्षय (क्षीण न होनेवाला) ब्रह्म, ऐसे हे गोरक्षनाथजी! तुम्हें नमस्कार होवे अर्थात् 'गोरक्ष' शब्द में जो 'ग' है उससे उनके गुण से (सत्त्व, रजस्, तमस्) युक्त होने से अभिप्राय है। रकार से उनका स्वरूप लक्षित है और क्षकार से नष्ट न होने का भाव अभिप्रेत है।

नाकारोऽनादिरूपश्च थकारः स्थिरलक्षणः।
भुवनत्रयमेवैकः श्रीगोरक्ष नमोऽस्तु ते।।११०।।

नाकार से अनादिरूप, थकार से स्थिर लक्षणवाला अभिप्रेत है; इस प्रकार हे गोरक्ष! तीनों भुवनस्वरूपवाले तुम एक ही हो, ऐसे तुम्हें नमस्कार!

शिवगोरक्ष, गोरक्ष! रक्षायां तत्परः सदा।
अनादिनिधनो नाथो नाथानां मन्त्र उच्यते[1]।।१११।।

---

१. ये समस्त पद्य श्री शंकरनाथ योगी की रचना हैं जो यहां पर सर्वथा असंगत हैं।

विमलजनमलदहन! शीलकमललोचनरोचन!
सबलशबलस्मरजयिष्णो शशिकलाशकलाश्रित! (क)

निर्मल अर्थात् जिसका हृदय शुद्ध भावनाओं से युक्त है उस व्यक्ति के मल (पाप) को नष्ट करने के स्वभाववाले, कमल के समान नेत्रवाले, ज्ञान का प्रकाश करनेवाले! शक्तिशाली एवं नाना रूपोंवाले कामदेव को जीतनेवाले और चन्द्रमा की कला के एक भाग से आच्छादित तथा…!

विदकुलार्दितभसितभूषित! विदवनानिलकानल!
प्रणयप्रतिम! प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव! (ख)

विद्वानों से प्रार्थित! भस्म से शोभायमान, विद्वानों से पूजित अथवा ज्ञान से व्यापृत, गति से युक्त, तेजस्वी! प्रेम की प्रतिमा हे गोरक्षनाथजी! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

अनवसंसृतिप्रथमबीज! प्रणववाच्यपरात्पर!
प्रमितिप्रत्यय! सरसभावस्फुरणवैरहसादर! (ग)

श्रेष्ठ लौकिक जीवनवाले, प्रथम कारण (सृष्टि का मूल स्रोत), पवित्र अक्षर ओ३म् से बतलाये जाने योग्य (अथवा सम्बोधित किए जाने योग्य), श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर (सर्वोत्तम)! निश्चित ज्ञानवाला, श्रद्धा=निश्चित विश्वास और भक्तिभाव को उदित करनेवाले, वैर को भी प्रसन्नता से आदर देनेवाले अर्थात् वैरभाव को भी अपनी पवित्र मुस्कान से दूर करनेवाले!

अजप्रजार्दित! प्रभवभूमन्नजप्रजाविरहिञ्जल!
प्रणयप्रतिम! प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव! (घ)

अजन्मा, प्रजा से प्रार्थित, बहुतायत से प्राणियों की उत्पत्ति करनेवाले, अनन्त काल से वर्तमान, उत्पत्ति से रहित, जीवन प्रदान करनेवाले प्रेमानुरूप कृपा करनेवाले गोरक्षनाथजी! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

हे शिवगोरक्ष ! हे गोरक्ष ! सदैव हमारी रक्षा में संलग्न रहो। नाथ आदि और अन्त (निधन) से रहित है ऐसा नाथों का मन्त्र कहा जाता है।

गुणगणालय ! गुणगणालय ! गुणगणार्च्यपदावधे !
विततभारत विततभारत विततशब्दगुणोपम ! (ङ)

गुणों के भण्डार, गुणों (प्रकृति के सत्व, रज और तम) के आधार, गुणराशि के कारण पूजा के योग्य स्थान पर्यन्त अर्थात् तुम्हारे अन्दर इतने गुण हैं कि उसके बाद सीमा ही समाप्त हो जाती है। हे विस्तृत भा=प्रकाश में रत तथा विस्तृत भारत में फैले हुए शब्द के समान तथा हे विस्तृत शब्दगुण की उपमावाले भरतवंशी ! तुम्हारे यश का विस्तार होवे।

सकलपामरसकलगीतैरमरगीतैः संशित !
प्रणयप्रतिम प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव ! (च)

समस्त दुष्टों के समस्त गीतों से एवं देवताओं के गीतों से प्रशंसित ! प्रेम की प्रतिमा गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं। भाव यह है कि गोरक्षनाथजी ऐसे विलक्षण चरित्रवाले हैं जिनकी दुर्जन एवं सज्जन समानभाव से स्तुति करते हैं।

गिरिशगौरव ! गिरिशगौरव कतरकतरवैभव !
अभिकमस्तकमुकुटकोटिमणिप्रभोज्ज्वलपन्नख ! (छ)

हे शंकर के तुल्य महत्त्ववाले ! हे शंकर के तुल्य आदरवाले ! कौन-कौन से ऐश्वर्यवाले अर्थात् प्रत्येक प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त ! कामिजनों के मस्तक के मुकुट की करोड़ों मणियों की कान्ति के समान अथवा कान्ति से प्रकाशित नाखूनवाले अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त कामिजन भी इन्हें प्रणाम करते हैं और प्रणाम करते समय उनके मुकुट की मणियों के प्रतिबिम्ब से तुम्हारे चरणों के नाखून भी देदीप्यमान हो उठते हैं।

सततसततं परमपरमं विलसिताखिलवल्लभ !
प्रणयप्रतिम प्रणिपतामो गोरक्षनाथ ! पदन्तव ! (ज)

हमेशा रहनेवाले अथवा निरन्तर से भी निरन्तर, उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट=सर्वोत्कृष्ट, प्रकट हुई समस्त सृष्टि के सर्वोपरि प्रेमी (पति) ! प्रेम की प्रतिमा गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

मतमतान्तरविषमजालजटिलपाशविमोचन !
जनहितावह ! परपितामह ! भवजदाहरुजाहर ! (झ)

विभिन्न मतों के कारण विषम जाल व अव्यवस्थित (पेचीदा) शृंखला (पाश) से मुक्त करानेवाले ! हे कल्याण करनेवाले ! सर्वोत्कृष्ट पितामह (उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा) ! हे सांसारिक दाहरूप पीड़ा को हरण करनेवाले गोरक्षनाथजी तुम्हें प्रणाम करते हैं।

अमरपदनखमुखरधामधवलधौतधरातल !
प्रणयप्रतिम प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव ! (ञ)

देवों के पैरों के नाखूनों (पैरों की पाजेबों की झंकार) से मुखरित धाम की धवलता से धुले हुए धरातल (निवासस्थल) वाले ! साक्षात् प्रेम की प्रतिमा गोरक्षनाथजी हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं। भाव यह है कि देवता भी नाच-नाचकर गोरक्षजी की स्तुति करते हैं और नृत्य करते समय गिरे हुए उनके अंगराग व पुष्पों से उनका निवासस्थल धवलित हो उठता है अथवा देवों के नाचने से मुखरित धामों की चकाचौंध से धरातल धुला हुआ है।

परमेश्वर के सुखदायी नामों का जाप करनेवाले शैव शिव का ध्यान करते हैं।

विशदशशिधर ! विनतवैभव ! भव ! भवोन्नतिकारण !
पतितपावन ! फलितभावन ! कलितमानवमानव ! (ट)

निर्मल चन्द्रमा को धारण करनेवाले हैं ! शिष्ट महिमावाले ! हे जीवन (शिव) ! संसार की उन्नति के कारण ! गिरे हुए पापी को भी पवित्र करनेवाले ! हे सफलता (सिद्धि) के निमित्त कारण ! स्थिर मानव अर्थात् मनुप्रणीत आदर्शों का दृढ़ता से पालन करनेवाले ! हे मानव ! (इंसानियत से युक्त)।

विपुलखलदलदलन ! दानवबलनिषूदन ! बोधन !
प्रणयप्रतिम प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव ! (ठ)

हे विशाल दुष्टसमुदाय का दलन करनेवाले ! आसुरी शक्ति का विनाश करनेवाले, आत्मज्ञान देनेवाले व प्रेमानुरूप कृपा करनेवाले प्रेम की प्रतिमा हे गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

नमितनरपतिमुकुटमौक्तिकललितपदनखमण्डल !
सकलसुरजनसकलबुधजनसकलमुनिजनरञ्जन ! (ड)

प्रणत राजाओं के मुकुट के मोतियों की आभा के कारण मनोहर चरणों के नखसमूहवाले ! समस्त देवों, विद्वानों व मुनियों को प्रसन्न करनेवाले गोरक्षनाथजी ! तुम्हारे चरणों में हम नमस्कार करते हैं।

भवदमङ्गलजनितदुस्तरदुरितदु:खविमोचन !
प्रणयप्रतिम प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव ! (ढ)

वर्तमान (कलियुग) में होने वाले अमंगल से उत्पन्न दुस्तर पाप से जनित कष्ट से मुक्त कराने वाले ! प्रेम की प्रतिमा गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

चितिकलाहृतहृदयपङ्कज ! कज्जनोद्धृतिकारण !
कमलकोमलमलयचन्दनपवनपूतकलेवर ! (ण)

चितिकला (भक्तिभाव के एक अंश) से भी आकृष्ट हृदय कमलवाले ! रोते हुए (कष्टपीड़ित) जनों के उद्धार के कारण ! कमल के समान कोमल मलयाचल के चन्दन की सुगंध से युक्त वायु से पवित्र शरीरवाले गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।

मदनमदवदहन ! दुर्मतिशमन ! शमनोद्धारक !
प्रणयप्रतिम प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदन्तव ! (त)

हे कामदेव के मदरूप कानन का दहन करनेवाले (कामदेव के अहंकार रूप जंगल को दावाग्नि से जलानेवाले) ! दुर्बुद्धि को शान्त करनेवाले ! मृत्यु (शमन) से छुटकारा दिलानेवाले ! प्रेम की प्रतिमा गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

जय सुधामय ! जय जितामय ! जय हलाहलभूषित !
जय युगन्धर ! जय जलन्धर ! जय जगद्धर ! चिन्मय ! (थ)

हे अमृतमय ! तुम्हारी जयकार होवे ! हे संयमस्वरूपवाले ! तुम्हारी जयकार होवे। हे कालकूट विष से सुशोभित (नीलकण्ठ रूपवाले) ! तुम्हारी जयकार होवे। युगों को धारण करनेवाले ! तुम्हारी जय होवे। जलों (जीवन) को धारण करनेवाले ! तुम्हारी जय होवे ! हे ज्ञानस्वरूप ! तुम्हारी निरन्तर जय-जयकार होवे।

शक्तिं धरन्तः श्रीशक्तिं जपन्ति प्रणमन्ति च।
असिं शूलं गदां चक्रं धारयन्तीह शाक्तिकाः[1] ।।११२।।

हृदय में शक्ति (दुर्गादि भगवती) को धारण करते हुए जो श्रीशक्ति का जप करते हैं और उन्हें प्रणाम करते हैं तथा तलवार, त्रिशूल, गदा, चक्र धारण करते हैं वे शाक्त हैं।

दुं दुर्गे दुर्गकष्टानां हरणे श्रीं ददासि या।
निजापूर्वान् दीक्षया ते जपन्त्याप्यमनून्निजान्।।११३।।

हे दुर्गे, हे अत्यन्त कठोर कष्टों को नाश कर हरनेवाली भगवति ! तुम समस्त सम्पत्तियों को देनेवाली हो, इस प्रकार तुम्हारी दीक्षा द्वारा जो अपने अपूर्व मंत्रों को पाकर नित्य जप करते हैं वे भी शाक्त हैं।

धर्मः सनातनः सर्वो देशरक्षार्थमाश्रितः।
वेदवैधप्रचाराय प्रसादाय परेशितुः।।११४।।

ये समस्त सनातन धर्म के अवान्तर भेद वेद की विधि के प्रचार के लिए और परमात्मा की प्रसन्नता के लिए तथा देशरक्षा के लिए उपयोगी माने गए हैं।

दण्डनीत्या यथा पापमपैति कृतपाकतः।
धर्मनीत्या पापमात्रसंक्षयः कर्त्तुमिष्यते[2] ।।११५।।

जैसे दण्डनीति से फल भोग हो जाने से पाप नष्ट हो जाता है वैसे ही धर्मनीति से पापमात्र का विनाश हो सकता है।

एवं धर्मादिनियमानुपदिश्य गुरुर्ययौ।
राज्ञोपहारो बहुलोऽदायि नोरीकृतोऽपि तैः[3] ।।११६।।

इस प्रकार धर्मादि नियमों का उपदेश देकर गुरु मस्तनाथजी वहां से चले गए। जाते समय राजा ने उन्हें बहुत से उपहार दिए परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किए।

जय स्मरान्तक ! जय मखान्तक ! जय जनान्तकान्तक !
प्रणयप्रतिम ! प्रणिपतामो गोरक्षनाथ पदं तव ! (द)

हे कामदेव का विनाश करने वाले ! हे यज्ञ का विध्वंस करने वाले (शिवस्वरूप) ! हे लोगों का अन्त करने वाले यमराज का भी अन्त करनेवाले गोरक्षनाथजी ! हम तुम्हारे चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हैं।

१. पाठभेद–तां दुर्गां धारयन्ति ते।।८४।। (प्रकाशित प्रति)

२. १०९, १०, ११ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

३. पाठभेद–इत्थं धर्मादिनियमान् व्याप्यव्यापकभेदतः।
संदिश्य मस्तनाथोऽसौ जगाम जगदण्डकृत्।।८९।। (प्रकाशित प्रति)

स्वयं दत्तस्य राष्ट्रस्य स्वदेहेन जिघृक्षणम्।
न च मेऽस्ति मतं प्राह मस्तनाथ: प्रशासक:।।११७।।

स्वयं दिए हुए राज्य का अपने शरीर से उपभोग करना मुझे मान्य नहीं है ऐसा सबको नियन्त्रण में रखनेवाले मस्तनाथजी ने कहा।

अद्यापि राज्यं सुसुखं प्रजानामुमेदसिंहोऽनुगतार्थनामा।
नृपोऽथ तद्वंशधर: प्रशास्ति प्रजाहितो गौरवकीर्तिनामा[1]।।११८।।

आज भी उसी मानसिंह का वंशधर यथार्थ नामवाला प्रजाओं का हितैषी, मर्य्यादापालक, यशस्वी श्री उमेदसिंह राजा प्रजाओं का सुखपूर्वक शासन कर रहा है।

यद्भीमसिंहेन नरेषु भीते रीतेश्च शल्यं कुनयान्निरवातम्।
शोकस्य तापस्य नयेन सम्यक् तदुद्धृतं माननृपेण सद्य[2]।।११९।।

राजा भीमसिंह ने अपनी कुनीति से प्रजाओं के हृदय में भय, मर्यादा, शोक एवं ताप को जो शल्य (कांटा) गाढ़ दिया था, उसको मानसिंह राजा ने शीघ्र ही निकाल दिया।

सच्छास्त्रदैवतगिरां बहुधा प्रचार:
स्वे राजकीयचरिते विपुलं न्यवेशि।
नाऽदण्डनीतिरसितं जनतासु तस्य
दु:खी न कश्चन न चेश्वरनास्तिकत्वम्।।१२०।।

मानसिंह राजा ने अपने राजकीय चरित में उत्तम शास्त्र तथा संस्कृतवाणी का बहुत प्रचार रक्खा। उसके राज्य में दण्डनीति से किसी के साथ अन्याय नहीं किया जाता था और उनके राज्य में कोई दु:खी तथा नास्तिक नहीं था।

चोरप्राया: प्रजा नासन् न देशे विप्लवोऽभवत्।
नेतयो नीतिसन्मानसच्छासनकृतास्तदा[3]।।१२१।।

उसकी प्रजा में चोरी नहीं थी, न ही देश में किसी प्रकार की अशान्ति थी। कहां तक कहें। उनके शासनकाल में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डियां, तोते एवं शत्रु राजा–इन छह प्रकार के कष्टों में से कोई कष्ट नहीं था, क्योंकि वह नीति के द्वारा शासन करता था।

इति श्रीमस्तनाथचरिते भीमसिंहदर्पहरणमानसिंहराज्यप्रापणं नामैकविंश: सर्ग:।

---

१. पाठभेद–..........गुरुमस्तनाथप्रशिक्षया देशधिया प्रशास्ति।
उमेदसिंहो गुणगौरवेण प्राज्यं प्रजानामधिपोऽनुकूलम्।।९०।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

द्वाविंशः सर्गः

श्रीधड़ीनाथबुभुक्षानिवारणादिप्रकरणम्

यो भावः सर्वभावनामनुवृत्तो विभाव्यते।
भावये तं भवं देवं भयाभावाय मुक्तये।।१।।

सभी भावों का अनुगामी जो भाव सुशोभित हो रहा है, उस उदीयमान देव की मैं भय के अभाववाली मुक्ति के लिए कामना करता हूँ अर्थात् मैं देव से ऐसी मुक्ति की कामना करता हूँ जिसमें भय का नितान्त अभाव होता है।

एकं ब्रह्म तथा परे बहुभुजं निर्ब्रह्म पक्षान्तरे
साकारं करुणाकरं कतिपये मायावदांतं परे।
द्वैताद्वैतविलक्षणं तदपरे शून्यातिशून्यं परे
त्वां मायावृत्तचेतनं बहुविधाः मन्यन्त इत्यात्मकम्[1]।।२।।

कोई ब्रह्म, कोई ब्रह्मभुक्, कोई निर्ब्रह्म, कोई करुणाकर साकार, मायावी, कोई द्वैत और अद्वैत होने से विलक्षण, कोई शून्य-अतिशून्य, माया से आवृतस्वरूप तुमको उक्त अनेक स्वरूपवाला मानते हैं।

धड़ीनाथनामा पुराऽभूत् सुशीलः प्रियो मस्तनाथस्य शिष्याग्रणीर्यः।
महाशो बुभुक्षुश्च संसारहानेस्तितिक्षुर्मुमुक्षुश्च शुश्रूषुरेकः।।३।।

पहले धड़ीनाथ नाम का एक अत्यन्त सुशील, मस्तनाथजी का प्रिय एवं अग्रणी शिष्य था जो प्रतिदिन एक धड़ी अन्न खाता था फिर भी संसार से विरक्त, तितिक्षु=सहनशील (सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों को सहनेवाला) और मोक्षार्थी था।

कदाचित्तदीयां हृदिस्थां समाशां विदन् मस्तनाथः समाहेदमेहि।
सुमन्ये भवाँस्तीर्थदेशाटनाय सुलिप्सुः[2] परं तत्त्वधामास्ति पाहि।।४।।

---

१. १, २ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है तथा दूसरा पद्य १७वें सर्ग में भी आया है।

२. पाठभेद–प्रलिप्सुः............।।२।। (प्रकाशित प्रति)

किसी समय उसके हृदयस्थ भाव को जानते हुए भी मस्तनाथजी ने कहा कि यहाँ आओ। मैं जानता हूँ कि तुम तीर्थाटन के लिए जाना चाहते हो। अतः जहाँ परमतत्त्व का धाम हो, वहाँ जाओ।

यथा सम्प्रमाणप्रवादी स जग्राह तं स्वेश्वरादेशमेकश्चचाल।
कुरुक्षेत्रमायापुरीबद्रिकेशामरेशानतीर्थेशवाराणसीं च[१]।।५।।

सत्यवादी वह धड़ीनाथ अपने गुरु से आज्ञा लेकर अकेला ही कुरुक्षेत्र, मायापुरी (हरिद्वार), बद्रीनारायण, अमरनाथ, प्रयाग और काशी आदि तीर्थों पर गया।

पुनर्जग्मिवान् पश्चिमे पश्चिमाशामनेकानि तीर्थानि तत्रापि कृत्वा।
पुनश्चागतः काशिकां पूर्वरूपामनूपां महापण्डितैर्मण्डितां सः[२]।।६।।

फिर उसने पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान किया और वहाँ पश्चिम दिशा में भी अनेक तीर्थों का भ्रमण करके तदनन्तर वह पूर्व में अपने प्राचीन स्वरूप में विद्यमान, धुरन्धर विद्वानों से शोभायमान अनुपम नगरी काशी में आगया।

गयालोकनाथादिकं संगमाब्धे[३]र्जगे सेतुमैरावतीद्वारिकादीन्।
महाकालिङ्गं[४] ददर्शैव गोदामनेकानि तीर्थानि पद्भ्यां लुलोके[५]।।७।।

गया, लोकनाथ, समुद्रसंगम सेतुबन्ध रामेश्वर, ऐरावती नदी तथा द्वारिका आदि सब स्थानों पर गया और उज्जैन में महाकाल के दर्शन किये तथा गोदावरी को भी देखा। उसने इन सब अनेकों तीर्थों को पैदल चलकर ही देखा।

वृन्दावनं तत्र वनं विलोक्य कलिन्दकन्यामगमत्त्वयोध्याम्।
अनेकतीर्थानटितः समेतो नैवोपलेभे निजमीहितं सः[६]।।८।।

फिर वृन्दावन को गया। वहाँ वन और यमुना को देखा। तत्पश्चात् अयोध्या गया। इस प्रकार अनेक तीर्थों पर घूमकर लौट आया परन्तु फिर भी उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ।

---

१. पाठभेद–भूत्वा गुरोर्मस्तनाथस्य वाक्यं विदित्वा।
हरिद्वारकाष्ठासु यावन्ति सन्ति विभिन्नानि तीर्थानि कर्तुं चचाल।।३।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाठभेद–अन्तं............।।५।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–कालं............।।५।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–चकार............।।५।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–अध्यासितां ब्रह्मभिरिद्धबोधैर्महेन्द्रलोकप्रतिमां धटीनः।।६।। (प्रकाशित प्रति)

निर्माणदक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्मासनकौशलस्य।
ऊर्ध्वस्फुरद्रत्नगभस्तिभिर्या स्थितावहस्येव पुरं मघोनः।।९।।

ऊपर की ओर स्फुरण करती हुई रत्नों की किरणों से मानो अभीप्सित सृष्टि के निर्माण में चतुर ब्रह्मा की कुशलता का एवं इन्द्र की नगरी अमरावती का भी उपहास करती हुई मर्यादा की भाँति जो अयोध्या नगरी स्थित है, उस नगरी में घड़ीनाथ गया।

सद्रत्नमुक्ताफलवज्रभाजि विचित्रधातूनि सकाननानि।
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवौघैर्मेरोः शिरांसीव गृहाणि यस्याम्।।१०।।

जिस नगरी में विद्युत् के समान चमकीले सुन्दर रत्न, मुक्ताफल, विचित्र धातुओं की चित्रकारी से चित्रित, उद्यानों से युक्त, अप्सराओं के समान सुन्दर स्त्रियों से युक्त एवं सुमेरु (पर्वत) की शृंखलाओं के समान ऊँचे घर हैं।

अन्तर्निविष्टोज्ज्वलरत्नभासो गवाक्षजालैरभिनिष्पतन्त्यः।
हिमाद्रिटङ्कादिव भान्ति यस्यां गङ्गाम्बुपातप्रतिमा गृहेभ्यः[1]।।११।।

जिसमें भीतर रखे हुए उज्ज्वल रत्नों की कान्ति घरों के रोशनदानों से निकलती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानो हिमालय के उन्नत प्रदेश (टङ्क) से गिरती हुई गंगा की उज्ज्वल धारा हो।

न शान्ति न भक्ति क्वचिद्देवतानामवाप श्रमं केवलं तत्र मेने।
विना सत्सहाय तदर्त्ते सुशास्त्रं निमित्तं विना नैव लभ्यस्य लब्धिः[2]।।१२।।

परन्तु उसको कहीं पर भी शान्ति नहीं मिली और न देवों की भक्ति ही मिली। उसने केवलमात्र कष्ट का ही अनुभव किया क्योंकि सत्सहाय (अच्छी संगति), सच्छास्त्र (उत्तम शास्त्र) एवं निमित्त के बिना पाने योग्य वस्तु की उपलब्धि नहीं होती।

कण्टकैरुपलैः पादावहतौ शोथमापतुः।
श्रान्तः क्लान्तो विपर्य्यस्तः प्राप्तः स गुरुसन्निधौ।।१३।।

---

१. ९, १०, ११ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है तथा इसके पश्चात् प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलता है जिसकी प्रथम पंक्ति ८वें पद्य की प्रथम पंक्ति है। इस पद्य में पुनरुक्ति दोष हैं :-
अनेकतीर्थानटितः समेतो नैवोपलेभे निजमीहितं सः।
न शान्तिसौकर्यमवाप्य योग्यं श्रीमस्तनाथान्तिकमाययौ स्वयम्।।१०।।

२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

उसके दोनों पैर काँटों व पत्थरों से घायल होगए और सूज गए। अन्त में थककर खिन्न हो, भ्रान्त की भाँति वह गुरुदेव के समीप पहुँचा।

उवाह तत्र स्वाशस्याभक्षणे सङ्कटं महत्।
विपुलान्नदानमानभक्तिह्रासात्कलेर्बलात्।।१४।।

उसने वहाँ जाकर कहा कि कलियुग के प्रभाव से अधिक अन्न, दान, मान एवं भक्ति का ह्रास हो जाने से पूर्ण भोजन न मिलने से भोजन के विषय में मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

विप्रा अज्ञा शास्त्रहानान्मंत्रश्राद्धविवर्जिता:।
प्रायस्तीर्थेषु देवेषु लोके सिद्धेर्विनाशत:।।१५।।

तीर्थों के ब्राह्मण शास्त्रों का अध्ययन न करने से मंत्र तथा श्राद्धविधि को भूल गए हैं तथा दैवी एवं लौकिक सिद्धि के नष्ट हो जाने से मूर्ख होगए हैं।

पाखण्डबहुला लोका निन्दका वञ्चने रता:।
अदर्शि तीर्थदुर्गेषु पताका सा कलेर्मता[१]।।१६।।

लोगों में पाखण्ड, परनिन्दा एवं ठगी की मात्रा अधिक बढ़ गई है और समस्त तीर्थस्थलों पर कलियुग की पताका फहरा रही है।

धनिको धार्मिको नास्ति शिश्नोदरपरायण:।
दृश्यते सर्वलोकोऽयं सशोक: कष्टवाञ्च न:।।१७।।

धनिकवर्ग धार्मिक नहीं है, यह समस्त लोक भोग-विलास में लिप्त एवं उदरमात्र भरने में लगा हुआ है हमें तो यह सारा संसार ही शोकाकुल और दु:खी दिखाई दे रहा है।

भ्राता च भ्रातरं द्वेष्टि शिष्याश्चापि गुरुं तथा।
स्वार्थसिद्धिपरो धर्मो भाति कालप्रवाहत:।।१८।।

भाई-भाई से द्वेष कर रहा है और वैसे ही शिष्य गुरु से द्वेष कर रहे हैं। समय के प्रवाह के कारण धर्म भी स्वार्थसिद्धि में लगा हुआ प्रतीत होता है।

गोवर्गो दु:खितो लोके महिषी पाल्यते जनै:।
अनाचार: सदाचार: प्रत्यक्षं दृश्यतेऽधुना।।१९।।

---

१. पाठभेद–तत्र यत्रापि सर्वत्रापि कलेर्बलात्।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

संसार में गोसमुदाय दु:खी है, लोगों द्वारा भैंस पाली जारही है। अब प्रत्यक्ष रूप में अनाचार को ही सदाचार माना जारहा है अर्थात् समाज में दुराचारी का ही सम्मान है।

वञ्चक: पूज्यते लोके धनवानपि यो नर:।
सती च जनतानारी सत्यो भाग्येन विच्युता:।। २०।।

आज संसार में जो व्यक्ति धनी है चाहे वह धोखेबाज भी है तो भी पूजा जा रहा है और सती (पतिव्रता) और वेशनारी (गणिका) सत्य होते हुए भी भाग्य से विच्युत हैं अर्थात् सती नारी को अपनी सच्चाई का फल न मिलकर दु:ख भोगना पड़ रहा है और दुराचारिणी नारी अपने पाप का दण्ड न पाकर परपुरुषों से प्रेम धन-दौलत व सुविधाएं पाकर दु:ख की बजाय सुख भोग रही है।

मातृभि: सह पुत्राणां भगिन्या भ्रातृभि: सह।
पितुश्च पुत्रिभि: सार्धं सम्बन्ध: प्रत्यहं किल।। २१।।

माताओं के साथ पुत्रों का, बहिन का भाइयों के साथ और पिता का पुत्रियों के साथ (अनैतिक) सम्बन्ध नि:सन्देह प्रतिदिन देखने में आरहा है।

यावत्कालं विवाहो न तावत्कालं धनार्जनम्।
अगम्याचरणं लोकै: कार्यते पुत्रिभि: सह।।२२।।

जब तक विवाह नहीं होता तब तक पैसा कमाने के लिये लोगों के द्वारा पुत्रियों से अगम्य आचरण कराया जारहा है।

युवावस्था च सौन्दर्यं धनं च भोजनं तथा।
चतुर्णामादरो दृष्ट: पञ्चमस्य कुतो भवेत्।।२३।।

संसार में युवावस्था और सौन्दर्य, धन और भोजन इन चार का ही आदर देखा जारहा है, पाँचवें (सदाचार) का आदर कहाँ होगा?

युवानो नारीहीनास्ते वृद्धाश्च षोडशीयुता:।
चतु: पञ्च विवाहाश्चावसानेऽपि च षोडशी।।२४।।

युवक नारी से रहित हैं और वृद्ध सोलह वर्ष की युवति से युक्त हैं तथा वे चार-पाँच विवाह करते हैं और अवसान में भी (मृत्यु समय नजदीक आने पर भी) सोलह वर्ष की कुमारी से विवाह रचाते हैं।

कदाचिद् दृश्यते साधुः कोऽप्येको भाग्ययोगतः।
प्रतिप्रतोलिकं सैन्यं साधूनां दृश्यतेऽधुना।।२५।।

कोई विरला ही भाग्य के योग से कभी-कभार साधु दिखाई देता है। इस समय तो साधुओं की सेना का विपरीत मार्ग ही दिखाई देता है अर्थात् साधुता से विपरीत आचरणवाले मात्र साधुवेषधारी व्यक्ति ही सब जगह दिखाई दे रहे हैं।

क्व देवी क्व च देवाश्च क्व ब्रह्मा ब्राह्मणः क्व च।
क्व परात्मा परेशश्च चतुर्धा नास्ति नास्तिता।।२६।।

कहाँ देवी और कहाँ देवता, कहाँ ब्रह्मा और कहाँ ब्राह्मण (विद्वान्), कहाँ परम आत्मा (सर्वोत्कृष्ट स्वरूप) और परम ईश्वर (सर्वोच्च नियन्ता), चार प्रकार की आस्तिता नहीं है ऐसी बात नहीं है अथवा चार प्रकार की नास्तिता नहीं है? अर्थात् फिर भी कुछ लोगों में चार प्रकार की आस्था दिखाई देती है जैसे ईश्वर और परलोक में विश्वास, पवित्रता, भक्ति और श्रद्धा[१]।

धार्मिकाः पीडिताः सर्वे धर्महीनाः सुखं गताः।
भार्यापुत्रधनैश्वर्यकलानैपुण्यसंयुताः।।२७।।

सभी धार्मिक लोग परेशान हैं जबकि धर्म से हीन व्यक्ति सुखी हैं और वे पत्नी, पुत्र, धन ऐश्वर्य, कला और निपुणता से युक्त हैं अर्थात् आज संसार में धर्म पर चलनेवाला व्यक्ति कष्ट भोग रहा है और अधर्मी मनुष्य सब प्रकार के सांसारिक सुख भोग रहे हैं।

विदुषो दिनचर्यापि भक्तस्य सिध्यति न च।
भाग्यहीनाश्च कथ्यन्ते हरसक्ता हरिप्रियाः।।२८।।

विद्वान् की और भक्त की दिनचर्या भी सफल नहीं होती अर्थात् सारा दिन मेहनत करते हैं फिर भी उन्हें संतोषजनक उपलब्धि नहीं होती। अतः जगत् में ऐसे शिव में आसक्त, विष्णु के प्रिय भक्तजन भाग्यहीन कहे जाते हैं अर्थात् वे भक्तजन कलिप्रभाव के कारण ही नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं और ऐसे व्यक्तियों का लोग यह 'बद्किस्मत व्यक्ति है' यह कहकर उपहास किया करते हैं।

पूजा च जीविका जाता कथा च जठरार्थिका।
प्रत्युत्थानादिकं नास्ति वृद्धं दृष्ट्वापि पूजितम्।।२९।।

---

१. द्रष्टव्य-भगवद्गीता (१८/४२)।

सम्प्रति देवपूजा जीविका होगई है और कथा (गीता, भागवतादि की) पेट भरने का साधन। पूजनीय वृद्ध को देखकर भी उनके प्रति सम्मान में उठकर खड़ा होना आदि नहीं है।

मातरं न नमन्त्यत्र पितरं चापि भक्तितः।
धनेन जायते ब्रह्मा धनेन जायते शिवः।।३०।।

यहाँ पर माता-पिता को भी भक्तिभाव से नमस्कार नहीं करते अर्थात् माता-पिता के प्रति भी सन्तान श्रद्धाभावना नहीं रखती। धन से ब्रह्मा बन जाता है एवं धन से ही शिव बन जाता है।

साधुं दृष्ट्वापि नोत्थानं प्रणामस्य च का कथा ?
स्वार्थसिद्धिपराः सर्वे साधवो नामधारिणः।।३१।।

साधु को देखकर भी लोग उठते तक नहीं फिर प्रणाम का तो कहना ही क्या ? और सभी नामधारी साधु भी स्वार्थसिद्धि में लगे हुए हैं।

मानापमानबद्धास्ते विद्वांसः साधवस्तथा।
गुणबद्धा गुणातीताः कथ्यन्ते श्लाघकैर्जनैः।।३२।।

जैसे विद्वान् मान और अपमान में बंधे हुए हैं, वैसे ही साधु भी मान-अपमान के चक्कर में पड़े हुए हैं तो भी प्रशंसक लोगों द्वारा वे गुणों से बंधे हुए भी गुणों से अतीत कहे जाते हैं।

व्याख्याने यस्य लोकानां वृद्धिश्च दृश्यतेऽधुना।
स गुणी स च वक्ता च संयमे साधुता न च।।३३।।

अब जिसके व्याख्यान में लोगों की बढ़ोतरी (विशाल जनसमुदाय) दिखाई देती है वह गुणी, वह वक्ता कहा जाता है चाहे उसकी संयम में साधुता (उत्तम आचरण) न हो।

तीर्थेषु कुटीरं येन निर्मितं वित्तयोगतः।
पूजितः सेवकैर्यश्च स सिद्धः स शिवो भवेत्।।३४।।

धन के योग से जिसने तीर्थों पर कुटीर बना दिया है और जो सेवकों से पूजित है वही सिद्ध और वही शिव होता है अर्थात् जो साधु तीर्थस्थलों पर धन से देवालय अथवा धर्मशाला बना देते हैं उनकी ही सेवकजन पूजा करते हैं और उसे

ही सिद्धपुरुष मानते हैं तथा उसे ही भगवान् शिव मानते हैं, वास्तविक साधु की पूजा नहीं होती।

गृहस्थिता भाग्यहीना धनवन्तो यतीश्वराः।
मन्यन्ते साधवो लोकैस्तपस्या केन गण्यते।।३५।।

गृहस्थी में वर्तमान, भाग्यहीन, धनवान् यतीश्वर लोग साधु माने जाते हैं। अहो ! तपस्या किसके द्वारा गिनी जाती है अर्थात् आज तपस्या को कोई नहीं देखता।

यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।३६।।

जब तक जीवे सुख से जीवे, कर्ज लेकर भी घी पीवे, क्योंकि भस्मीभूत शरीर का पुनर्जन्म नहीं होगा।

साधूनामपि सिद्धान्तः परेषां तत्र का कथा।
संजातश्चैष कालेऽस्मिन् नेश्वरं कोऽपि पृच्छति।।३७।।

साधुओं का भी यही सिद्धान्त होगया है। इस विषय में दूसरों का तो कहना ही क्या। सम्प्रति ईश्वर को कोई नहीं पूछता अर्थात् किसी को ईश्वर की कोई परवाह नहीं। उससे किसी को डर नहीं लगता।

लुण्ठनं वञ्चनं यश्च व्यापारे यश्च शिक्षते।
व्यापारी गण्यते शस्यः प्रशस्यश्चातिबुद्धिमान्।।३८।।

जो व्यापार में लूटने और ठगने की शिक्षा देता है वह व्यापारी गुणी प्रशंसनीय और अत्यन्त बुद्धिमान् माना जाता है।

द्विगुणं त्रिगुणं व्याजं गृहीत्वा विधिपूर्वकम्।
वराका यत्र हन्यन्ते सुरापाः पूजिताः खलु।।३९।।

दुगुना तिगुना विधिपूर्वक ब्याज लेकर जहाँ बेचारे गरीब मारे जाते हैं और निःसंदेह सुरापान करनेवाले (शराबी) पूजे जाते हैं।

युधिष्ठिरत्वमायाति व्याख्याने सर्वतो नृणाम्।
दुर्योधनत्वमायाति पदलाभेऽपि धृष्टता।।४०।।

व्याख्यान में सब मनुष्यों में युधिष्ठिरत्व (सत्यवादिता) आजाता है अर्थात् भाषण के समय सब मनुष्य सत्यवादी युधिष्ठिर बन जाते हैं परन्तु पदलाभ होने पर दुर्योधन बन जाते हैं और धृष्टता दिखाते हैं।

धनिकैश्चान्नसंघातः क्रियते मूल्यवृद्धये।
जठरे पट्टिकां बद्ध्वा वराका भुवि शायिनः।।४१।।

और मूल्यवृद्धि के लिए धनिकों द्वारा अन्नभण्डारण किया जाता है परन्तु पेट पर पट्टी बांधकर पृथ्वी पर सोनेवाले बेचारे भूखे ही सो जाते हैं।

यदा दानं तदा मित्रं यदाऽदानं तदा रिपुः।
लोभेन यमिनां सेवा दृश्यते सर्वतोऽधुना।।४२।।

जब दान तब मित्र, जब अदान तब शत्रु अर्थात् जब किसी को कुछ दे दिया तो वह आपका मित्र बन गया और जब न दे सका तो वह शत्रु बन जाता है। अब सब ओर से योगियों (संयमी, साधुओं) की सेवा भी लोभ के कारण ही दिखाई देती है।

धर्मशालां च निर्माय भाटकेन प्रचाल्यते।
भूसा च भ्रियते तत्र न चान्या सर्वथा गतिः।।४३।।

और धर्मशाला बनाकर भाड़े से चलाई जाती है और वहां भी भूसा ही भरा जाता है अर्थात् व्यापार किया जाता है और दूसरा कोई चारा नहीं है अर्थात् धर्मशाला को जिस उद्देश्य से बनाया जाता है वहां पर भी वह उद्देश्य पूर्ण नहीं होता अपितु उसे भी व्यापार का साधन बना लिया जाता है।

स्थानं च निर्मितं येन तीर्थेषु स च योगिराट्।
कथायां चार्जितं वित्तं तस्य वै सफला कथा।।४४।।

जिसके द्वारा तीर्थों पर स्थान बना दिए गए वह योगिराज कहलाता है और जिसने कथा में धन कमा लिया है, वस्तुतः उसकी ही कथा सफल है।

भूपेन धनिना सार्धं यस्य वार्ता प्रजायते।
परिचयोऽपि कालेन तेन प्राप्तो जनार्दनः।।४५।।

जिसकी राजा एवं धनी के साथ बात (परिचय) हो जाती है, काल के साथ परिचय भी हो जाता है अर्थात् समय उसके अनुसार चलता है। उसके द्वारा श्रीकृष्ण पा लिया जाता है अर्थात् काल (शिव) एवं विष्णु (पालक) से भी उसका परिचय हो जाता है—वह स्वयं को सबका संहार करने में समर्थ और पालक समझने लगता है।

अवस्था दृश्यते चैषा गुणिनां कोऽस्ति चादरः।
शालासु बालिकाः प्रायो नर्त्तयन्ति रसाप्तये।।४६।।

और गुणियों की यह हालत दिखाई देती है कि उनके प्रति कोई आदरभाव नहीं है। रसप्राप्ति (प्रेमरस) के लिए शालाओं=हालों में प्राय: लड़कियां नचाई जाती हैं।

बाल्यादेव च शृङ्गारो बालिकानां च दृश्यते।
क्वचिच्च द्वादशे वर्षे पुत्रस्य जायते जनि:।।४७।।

और बालिकाओं में बचपन से ही शृंगार की प्रवृत्ति दिखाई देती है और कहीं-कहीं बारह वर्ष की आयु में पुत्र के पुत्र की उत्पत्ति हो जाती है।

शम्भुध्यानपरो नास्ति कर्मणां न च साक्षिता।
रजस्तमोवृतो लोको नाथोऽहमिति मन्यते।।४८।।

जगत् शंकर के ध्यान में परायण नहीं है और कर्मों में साक्षिता नहीं है। संसार रज और तम से ढका हुआ है। मैं ही नाथ हूँ इस प्रकार माना जाता है अर्थात् व्यक्ति स्वयं को सर्वोपरि मानता है।

पाशयित्वा च पाशेन निपात: क्रियतेऽधुना।
वाँमानां दृश्यते लोके चातुर्यं सर्वतोऽधिकम्।।४९।।

इस समय पाश से बाँधकर पतन (कारागार) किया जाता है। परन्तु संसार में सबसे अधिक सुन्दर स्त्रियों की चतुरता दिखाई देती है अर्थात् लोग कुटिल नारियों के जाल में फ़ंसकर स्वयं का पतन करते हैं अर्थात् अधिक मरते हैं।

गृहीतस्त्यज्यते ताभिर्गृह्यते ह्यपर: पुन:।
पुनश्च गृह्यते त्यक्तो वामानां कुटिला गति:[१]।।५०।।

उन नारियों के द्वारा ग्रहण किया हुआ छोड़ दिया जाता है और पुन: दूसरा ग्रहण कर लिया जाता है और फिर त्यागा हुआ ग्रहण कर लिया जाता है क्योंकि मनोहारिणी नारियों की प्रवृत्ति कुटिलातापूर्ण होती है अर्थात् जो नारियाँ परपुरुषों को आकर्षित कर अपना अभीष्ट सिद्ध करती हैं वे एक पुरुष को स्वीकार करती हैं और फिर उसे त्याग देती हैं, फिर दुबारा दूसरे को स्वीकार करती हैं और पुन: स्वार्थवश पूर्व के त्यागे हुए पुरुष को पुन: स्वीकार कर लेती हैं। इस प्रकार उनकी प्रवृत्ति कुटिलतापूर्ण होती है।

---

१. १७ से ५० तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

कालः सर्वयुगानां यः सम्प्राप्तस्तेन संकटम्।
आधिव्याधिश्रमा एव तीर्थाटनफलानि मे।।५१।।

सब युगों का काल (विनाश) कलियुग इस समय उपस्थित है इसीलिए संकट, मानसिक कष्ट, शारीरिक रोग एवं थकावट केवल यही मेरे तीर्थाटन के फल हैं।

दुःश्रवा लोकनिन्दा च सोढाप्याधिविवर्द्धना।
तीर्थे भ्रान्त्वा गुरु तीर्थं त्यक्त्वाऽऽप्ता मूढता मया[1]।।५२।।

मैंने न सुनने योग्य मानसिक पीडा बढ़ानेवाली लोकनिन्दा भी सहन की। अतः मैंने तीर्थस्वरूप गुरु को छोड़कर तीर्थों में घूमकर बड़ी मूर्खता की है।

स्वार्थं विना नराणां यः प्रीत्याशां याचये[2]ज्जनः।
निर्हेतुपक्षवादीव सभायां भ्रश्यते फलात्[3]।।५३।।

इस संसार में जो व्यक्ति स्वार्थ के बिना प्रीति की आशा करता है वह बिना प्रमाण के किसी पक्ष को लेकर सभा में बोलनेवाले वक्ता की भांति फल से वंचित रह जाता है।

इत्येव निश्चयः सर्वजनस्थानभ्रमेण मे।
सर्वभ्रमी नास्तिकात्मा त्वभवत् क्रमतो जडः[4]।।५४।।

मेरा तो यही निश्चय है कि सार्वजनिक स्थानों पर घूमने से सर्वविषयक भ्रमवाला हो जाता है अर्थात् सभी लोगों के पास एवं तीर्थस्थानों पर ज्ञान हेतु जो व्यक्ति घूमता रहता है तो उसे ज्ञान की बजाय संदेह और अधिक हो जाते हैं। तदनन्तर वह क्रमशः नास्तिक और मूर्ख हो जाता है।

बह्वाशा[5] भोजनस्यापि दुःखमूलमिदं ततः।
बुभुक्षाणां निवृत्ति मे वरं देहि विशेषतः।।५५।।

भोजन की अधिक आशा भी बड़े भारी दुःख का कारण है। अतः मुझे विशेषरूप से यह वर दीजिए जो मेरी क्षुधा (भूख) की निवृत्ति हो जाए।

विरक्तिर्मे यदार्थासीन्न तीर्थभ्रमणेन तत्।
समसाधि महत्कार्यं बुभुक्षा बाधते हिं माम्।।५६।।

---

१. पाठभेद–न शोभनं कृतम्।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–याचते………… ।।५१।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–एकेनैव स पक्षेण नभो यातुं स इच्छति।।५१।। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। ५. पाठभेद–अधिकाशा…… ।।५२।। (प्रकाशित प्रति)

मेरी जिस कारण विरक्ति (असंतोष) थी वह तीर्थ भ्रमण से निवृत्त नहीं हुई। बड़े-बड़े कार्य सिद्ध हुए परन्तु भूख ने मुझे निःसन्देह बहुत परेशान किया, भूख मुझे बहुत सताती है।

मया भ्रान्ता देशाः सुखमयपरब्रह्मवपुषः
परिप्राप्त्यै लब्धं तदनु बहुलं दुःखमिह मे।
बुभुक्षां तां तां मे शमयतु भवान् दैवततनु-
र्गुरोरिष्टाद् देवानिह न हि समुद्धारकजनः।।५७।।

मैंने सुखस्वरूप परब्रह्म देहवाले के प्रदेशों का भ्रमण किया है परन्तु फिर भी उसके पारितोषिक के रूप में मुझे इस संसार में कष्ट ही कष्ट मिले हैं। अतः देवस्वरूपदेहवाले आप मेरी उस-उस भूख (लालसा) को शान्त करें क्योंकि यहाँ पर निःसन्देह गुरु के इष्ट (कृपा) के अतिरिक्त देवों का भी उद्धार करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है अर्थात् देवों का उद्धार भी गुरु से ही संभव है, तब मनुष्यों का तो उद्धार करनेवाला गुरु के अतिरिक्त कोई हो ही नहीं सकता।

श्रुत्वा गुरुश्च तद्वाक्यमशनाया निवर्तनम्।
चक्रे पुराऽमरस्तेन गततर्षोऽभवत्तदा।।५८।।

और भूख से निवृत्ति विषयक उसका वह वचन सुनकर गुरुदेव ने पहले उसे अमर कर दिया, इसलिए वह तृष्णा से रहित भी होगया अर्थात् अमर होने के पश्चात् उसे भूख भी नहीं सताती थी।

जने जनेऽथ तद्वृत्तं श्रावं श्रावं नरैस्ततः।
पाषाणनाथनामासौ चक्रे भोगस्य हानतः।।५९।।

व्यक्ति-व्यक्ति में लोगों द्वारा उस वृत्तान्त को बार-बार सुनकर अर्थात् एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में उस वृत्तान्त को बार-बार सुनकर भोजन की हानि (त्याग) के कारण लोगों ने इनका पाषाणनाथ नाम रख दिया, तब लोग उन्हें पाषाणनाथ नाम से पुकारने लगे।

तन्नामश्रुतिदुःखेन श्रुतिपाटीयकष्टता।
तिरस्कृता समाधिश्च ततोऽदायि भृशं विभुम्[1]।।६०।।

---

१. ५६ से ६० पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है तथा १६ से २० पद्यवाला पाण्डुलिपि का पृष्ठ उपलब्ध नहीं है।

उस नाम के सुनने से उत्पन्न हुए दु:ख से सम्बोधन (पाटीय) श्रवण से उत्पन्न कष्ट को तिरस्कृत करनेवाली समाधि लगा ली। तब उसने स्वयं को सर्वव्यापी परमेश्वर को समर्पित कर दिया।

शिवं[1] समेत्य प्रोवाच विलासिजनतासु मे[2]।
हंसेष्विव बलाकाया: पदकष्टमवाप्यते[3]।।६१।।

फिर वह शिवस्वरूप मस्तनाथजी के पास जाकर कहने लगा कि विलासी जनता में मुझे वह कष्ट एवं लज्जा का अनुभव होता है जो कि हंसों में बगुले को हुआ करता है। अर्थात् पाषाणनाथ नाम सुनने से उसे ऐसा कष्ट होने लगा जो धड़ी भर अन्न खाने के समय भी नहीं होता था। लोग उसे चिड़ाते थे उससे उसे अत्यन्त मानसिक व्यथा होती थी। अत: वह खिन्न होकर गुरु से अपनी व्यथा को कहने लगा।

न साधुं योगिनं प्राहुर्यतिनं न ब्रह्मचारिणम्।
न नरं भोगिन:[4] किन्तूपलनाथं वदन्ति माम्।।६२।।

भोगीजन मुझे न साधु कहते हैं, न योगी, न संन्यासी, न ब्रह्मचारी और न मनुष्य किन्तु वे मुझे उपलनाथ (पाषाणनाथ) कहते हैं।

नैकाकारेशसंसृष्टिर्देहेन्द्रियमनोधियाम्।
पृथक्त्वं तेन निन्दां स्वां स्तुतिं हित्वा चरेत् क्रियाम्।।६३।।

ईश्वर ने देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इनकी सृष्टि एक तरह की नहीं की है किन्तु ये सब भिन्न-भिन्न रचना हैं अत: अपनी निन्दा व स्तुति का परित्याग कर (परवाह न करके) साधक क्रिया करे।

पावनं जन्मनां दानभजनैर्यजनादिना।
सुकृतानां सदा चित्यै तीर्थं धात्रा विनिर्ममे[5]।।६४।।

दान, भजन तथा यज्ञादि से जन्मों की पवित्रता होती है अत: विधाता ने नित्य धर्मार्जन करने के लिए तीर्थ बनाए हैं।

---

१. पाठभेद–गुरुं.................. ।।५८।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–बहुभोजि समागमे।।५८।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–हंसमध्ये बको भाति तथैव मम भाति सा।।५८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–चादमरा.......... ।।५९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–तीर्थयात्राऽभिधीयते।।६१।। (प्रकाशित प्रति)

ईशस्य सर्वथा तत्त्वं को नु विज्ञातुमर्हति।
दुःखं प्रतीयतेऽस्माकमन्ते च सर्वथा सुखम्[१]।।६५।।

वास्तव में ईश्वर के तत्त्व को कौन जान सकता है ? आरम्भ में योगी को दुःख की प्रतीति होती है और अन्त में सब प्रकार के सुख की प्रतीति होती है अर्थात् साधनाकाल में साधक कष्ट पाता है परन्तु परिणाम में उसे सब प्रकार के सुखों की उपलब्धि होती है।

एकदा तं समाहूय[२] गुरुराह वचः शृणु।
व्यवहारे सुसिद्धे तु[३] परमार्थः प्रसिद्ध्यति।।६६।।

एक बार गुरुदेव ने उसको बुलाया और कहा कि मेरी बात सुनो। व्यवहारसिद्धि हो जाने पर परमार्थ सिद्ध हो जाता है अर्थात् पहले जब व्यावहारिक भोजन आदि की बुभुक्षा (भूख) शान्त हो जायेगी तब फिर तत्त्व-बुभुक्षा की भी शान्ति हो जायेगी।

लोकैषणायाश्च धनैषणायाः सुतैषणायाश्च निवृत्तये वै[४]।
भिक्षाशनं प्रार्थयते तथैव वान्ताशनं तत्र तु गर्धवृद्ध्यै[५]।।६७।।

जो लोकैषणा, धनैषणा तथा पुत्रैषणा-इन तीनों से निवृत्त होकर फिर भिक्षा द्वारा भोजन की प्रार्थना करते हैं, उनकी वह याचना वान्त (उल्टी किए हुए) भोजन जैसी है। वह केवलमात्र इच्छावृद्धि के लिए ही होती है न कि शान्ति के लिए। इसीलिए शान्त हुई भूख को फिर से जगाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

बुभुक्षितः किन्न करोति पापं प्रसिद्धमेतत् सकले हि लोके।
क्षिणोति पापानि धिनोति लोकान् वृणोति तत्त्वं परमार्थगामी[६]।।६८।।

भूखा क्या पाप नहीं करता ? यह समस्त संसार में प्रसिद्ध ही है परन्तु परमार्थगामी पापों को नष्ट करता है, लोगों को सत्कर्म में प्रेरित करता है, परमतत्त्व का वरण करता है अर्थात् भूखा व्यक्ति अपनी मजबूरी के कारण प्रत्येक प्रकार का पाप कर बैठता है जबकि योगी अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों के पापों को नष्ट करके उनका भी कल्याण करता है।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–घटीनाथं........।।६३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सत्यां व्यवहारिसिद्धौ............।।६३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–निवृत्तचित्ताः..............................।।६४।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–चेतो न तेषां कमनीयभोग्ये प्रज्ञानसंज्ञानमुपेयुषां हि।।६४।। (प्रकाशित प्रति)
६. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

ततः पुरा विग्रहनिग्रहार्था व्याध्याधिहेतुस्तु निवर्तितास्तें।
अन्या बुभुक्षा विनिवर्तनीयाः परोपकाराय च मोक्षसिद्ध्यै[१] ।।६९।।

इसीलिए पहले शरीर के निग्रह के लिए मानसिक एवं शारीरिक रोग की व्यथा का कारण तुम्हारी बुभुक्षा (भूख) हट गई, शेष जो सिद्धि एवं तत्त्वज्ञान की बुभुक्षा है उसे परोपकार के लिए तथा मोक्षप्राप्ति के लिए हटाना चाहिए अर्थात् अब सिद्धि के माध्यम से परोपकार और तत्त्वज्ञान के द्वारा मोक्षसिद्धि करो।

चित्तवृत्तिनिरोधार्थान् योगोपायान् समाचर।
दीर्घायुष्ट्वञ्च तेन स्याज्ज्ञानं सम्पत्स्यते तव[२] ।।७०।।

चित्त के व्यापारों को रोकने के लिए योग के उपाय (आसन, प्राणायाम, अभ्यास, वैराग्य) करो। उससे तुम दीर्घजीवी हो जाओगे फिर तुम्हें पूर्ण ज्ञान हो जायेगा।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिस्तद्विना योगं सुदुर्लभम्।
दीर्घायुष्ट्वं विना तन्न दीर्घाभ्यासाद्यपेक्षणात्[३] ।।७१।।

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती और ज्ञान योग के बिना अत्यन्त दुर्लभ है तथा योग दीर्घकाल के अभ्यास के बिना नहीं होता और दीर्घकाल का अभ्यास दीर्घायु के बिना संभव नहीं।

जात्यायुःकर्मपाकाश्च[१] पुरा गर्भाद्धि देहिनः[२] ।
नियतास्तत्र दीर्घायुः शंकापङ्ककलङ्कितम्[३] ।।७२।।

प्राणियों के लिए जाति, आयु और कर्मफल गर्भ से पहले ही निश्चित हो जाते हैं, उनमें दीर्घायु शंकारूपी कीचड़ से युक्त है अर्थात् जब सब कुछ निश्चित है तो फिर आयु कैसे बढ़ सकती है, ऐसी शंका शिष्य ने गुरुदेव से की।

---

१. पाठभेद–परार्थसिद्धिः।।६६।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–दीर्घमायुर्भवि देवज्ञानं संजायते तव।।६७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–........................स्याज्ज्ञानं योगादृते न च।
अभ्यासान्न विना योगो योगो ह्यायुष्यवर्धनात्।।६८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–कर्मसम्बन्धः।।६९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–विनिर्णयः।।६९।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–योगेन दीर्घमायुष्यं कथं वाऽमरता भवेत्।।६९।। (प्रकाशित प्रति)

इत्थं समाकर्ण्य तदुक्तिमाह मस्तः पुरा सञ्चितकर्मजातम्[१]।
प्रारब्धजेता गुरुशास्त्रदर्शी देवेच्छया संचिनुतेऽधिकञ्च[२]।।७३।।

इस प्रकार उसके कथन को सुनकर मस्तनाथजी ने कहा कि पूर्वसंचित कर्मों से प्रारब्ध को जीतनेवाला शास्त्रदर्शी गुरु ईश्वरेच्छा द्वारा अधिक आयु बना सकता है।

सत्यवादी नरो दानी त्वाधिव्याधिर्विवर्जितः।
अल्पनिद्राशनाभोगी[३] दीर्घमायुः सदाश्नुते।।७४।।

सत्यभाषी, दानी, शारीरिक व मानसिक रोग से रहित, थोड़ा सोनेवाला तथा अल्पाहारी मनुष्य हमेशा लम्बी उमर जीता है।

भाषणाद् भोजनाधिक्याद् ग्राम्यधर्माच्च चिन्तनात्।
रूक्षभोज्योपयोगाच्च स्वल्पायुर्जायते नरः।।७५।।

भाषण देने से, अधिक भोजन खाने से, स्त्रीसंभोग (ग्राम्यधर्म), चिन्तन (चिन्ता करने) से और रूखे भोजन के उपयोग करने से मनुष्य स्वल्पायु हो जाता है।

अधिकश्रमसंयोगात् तथा सज्जननिन्दनात्।
सुरामांसप्रयोगाच्च स्वल्पायुर्जायते नरः।।७६।।

अत्यधिक परिश्रम करने तथा सज्जनों की निन्दा करने, शराब और मांस का प्रयोग करने से मनुष्य अल्पायु हो जाता है।

अषड्वर्षवया बालः पठनाय प्रयोजितः।
अल्पायुर्भवेत् सोऽपि नात्र कार्या विचारणा।।७७।।

छः वर्ष से कम उमर का बालक पढ़ने में लगा दिया जाता है वह भी अल्पायु हो जाता है; इस विषय में तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिए।

अत्यन्तबालिकागर्भात् समुत्पन्नः शिशुर्भवेत्।
अल्पायुर्भवेत् सोऽपि दुर्बलोऽपि कृशेन्द्रियः[४]।।७८।।

---

१. पाठभेद–ऊचिवान् श्रीमस्तनाथः कृतकर्मकर्मिणाम्।।७०।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–वाक्यतत्परो भवेदवश्यो विनयेन योगिराट्।।७०।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–.................... कालगत्यनुसारतः।
अल्पनिद्राशनः शान्तो .... ।।७१।। (प्रकाशित प्रति)

४. ७५ से ७८ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

अत्यन्त बालिका (१६ वर्ष से कम उमर की लड़की) के गर्भ से यदि शिशु उत्पन्न हो जावे तो वह भी अल्पायु होता है, दुर्बल भी होता है तथा कमजोर इन्द्रियोंवाला होता है। आयुर्वेद (चरक) में भी लिखा है–

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते।।
जातो वा न चिरं जीवज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्।।

पुरा कृतं चेत्फलति कृतमत्र फलेन्न किम्।
पित्रा सम्पाद्यते द्रव्यमर्जितं किं विनश्यति।।७९।।

पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म फलता है तो क्या इस जन्म में किया हुआ नहीं फलेगा ? जैसे पिता से अर्जित धन को बढ़ाया जाये तो क्या वह नष्ट हो जायेगा अर्थात् कदापि नहीं।

संयोगजाः पदार्थाश्च वडवारासभादिभिः।
अश्वतर्य्यादिका दृष्टास्ततोऽन्येऽधातृनिर्मिताः[1]।।८०।।

दो वस्तुओं के संयोग से पदार्थ उत्पन्न देखे जाते हैं जैसे घोड़ी और गर्दभ के संयोग से खच्चर की उत्पत्ति। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक पदार्थ ब्रह्मातिरिक्त जीव से बनाए गए हैं तथा भविष्य में बनाए जा सकेंगे।

जगत्कर्त्तुः सर्ववेत्तुः सर्वशक्तिमयस्य यः[2]।
कृतौ व्याप्तिं विधत्ते स मेरुं तुलयतेऽणुना[3]।।८१।।

जो व्यक्ति संसार को बनानेवाले, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के व्यापार में परिच्छेद (दखलअंदाजी) करता है वह मानो अणु से मेरु पर्वत की तुलना करता है।

अपारमहिमेशानः संकर्तुं विकर्तुं क्षमः।
अकर्तुञ्चापि तत्राल्पज्ञस्य जीवस्य का मतिः[4]।।८२।।

अपार महिमाशाली परमेश्वर कुछ करने, विपरीत करने तथा न करने में समर्थ है। उस विषय में अल्पज्ञ जीव की बुद्धि कैसे पहुंच सकती है, जो निर्णय कर सके।

---

१. ७९, ८० पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. पाठभेद–सर्वेच्छापूरकस्य यत्............।।७६।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–यः स दंशः किं करिष्यति.....।।७६।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–अपारज्ञानगम्भीरे मृत्युजीवनसक्षमे।
परेश विषयासक्तः परेशे किं करिष्यति।।७७।। (प्रकाशित प्रति)

विनापि योगं भिषजामुपाया दर्शिता यदि।
सम्यग्रसायनासेवाः किन्तु योगसमा न हि[1] ।।८३।।

यद्यपि योग के बिना भी अच्छी प्रकार रसायन वस्तुओं के सेवन से मनुष्य की क्षुधा शान्त हो सकती है तो भी वास्तव में योग के समान उत्तम उपाय नहीं है।

द्रव्यसाध्या नैकसाध्या विरक्तानामसम्भवाः।
बुभुक्षाशान्तिकामस्य तवार्हा न च सम्मताः।।८४।।

रसायनादि साधनों का अवलम्बन विपुल द्रव्यसाध्य है और वह भी विरक्तों के लिए तो असम्भव ही है। उसमें भी बुभुक्षा निवृत्ति के अभिलाषी तुम्हारे लिए तो योग्य नहीं है, यही मेरी राय है।

योगी समं स्थिरं सिद्धपद्मस्वस्तिकगारुडम्।
मायूरतानकादींश्च देहं कृत्वा प्रसाधयेत्।।८५।।

योगी अपनी काया को सम और स्थिर करके सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन, गरुड़ासन, मयूरासन तथा उत्तानासन आदि आसनों को सिद्ध करले।

हठयोगेन तन्वतो नेतीधोतीस्ववस्तिकाः।
नालीचालेन बजरौल्यन्तं कृत्वा विशोधयेत्[2] ।।८६।।

हठयोग के द्वारा नेती, धोती एवं बस्ती का अभ्यास करते हुए योगिजन बजरौली क्रियापर्यन्त योगसाधना करके नाड़ियों के चालन द्वारा शरीर को शुद्ध करें।

श्वासरेचककुम्भाद्यपूरकुम्भकरेचकैः।
भस्त्रादिभिश्च संशोध्य रविचन्द्रदमं चरेत्।।८७।।

श्वास का चढ़ाना, रोकना, निकालना तथा भस्त्रा (लुहार की धौंकनी के समान नासिका को चलाकर श्वास निकालना) आदि के द्वारा शरीर को शुद्ध करके इडा-पिंगला नाम की दोनों नाड़ियों को योगी वश में करे।

सुषुम्णाभ्यासयोगेन सूक्ष्ममानसशब्दनम्।
दमयेच्चित्तसंशोधे वृत्तिप्रसरणं न हि।।८८।।

---

१. पाठभेद–साधनेन विना साध्यं प्रसिद्धं नैव संभवेत्।
तस्माच्च ते घटीनाथ योगसाधनमुच्यते।।७८।। (प्रकाशित प्रति)

२. ८४, ८५, ८६ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

योगी सुषुम्णा नाड़ी के भीतर मन को ले जाने का अभ्यास करने से सूक्ष्म मानसिक शब्द को शान्त करे। इससे चित्त की विशुद्धि हो जाती है वस्तुतः फिर चित्त में वृत्तियों (इधर-उधर का व्यापार) का प्रसारण नहीं होता।

विषये वासनोत्थानं वैराग्यात्संनिरोधयेत्[1]।
आत्मानं सुखमालोक्य मंत्रैः सिद्धार्थतामियात्[2]।।८९।।

विषय में जो वासनाएं उठती हैं उन्हें वैराग्य से रोके। तदनन्तर सुखस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार कर मंत्रों से सिद्धि को प्राप्त करे।

यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद् बहिर्भवेत्।
दण्डमादाय लोकोऽय शुनः काकाँश्च वारयेत्[3]।।९०।।

यदि इस कमनीय शरीर के अन्दर जो रुधिर, मांस, अस्थि आदि हैं वे बाहर हो जावें तो लोग दण्डा लेकर कुत्ते और कौवों को ही हटाते रहें।

भाव यह है कि जिस कमनीय शरीर को देखकर विषयी लोग कामासक्त होजाते हैं वह चिकनी चमड़ी से ढका हुआ रुधिर, मांस, मल-मूत्रादि का संघात है। अविद्या के कारण मनुष्य अशुचि परमबीभत्स काय को शुचि और कमनीय मान लेता है। योगदर्शनभाष्य (२-५) में महर्षि व्यास लिखते हैं–

"नवेव शशांकलेखा कमनीयेयं कन्या मध्वमृतावयवनिर्मितेव चन्द्रं भित्त्वा निःसृतेव ज्ञायते, नीलोत्पलपत्रायताक्षी हावगर्भाभ्यां लोचनाभ्यां जीवलोकमाश्वासयन्तीवेति कस्य केनाभिसम्बन्धः ? भवति चैवमशुचौ शुचिविपर्यासप्रत्यय इति।"

कैवल्यं भजतेऽर्थतत्त्वमननादभ्यासनिर्वेदतः।
चित्तं रोधयते यदात्मनि मतिः शुद्धास्य यावद् भवेत्।।९१।।
सिद्धीरापयते निजस्य जनुषः साफल्यमासादयेत्।
ज्ञानं लोकसुखं स्वकं समधिकं चिन्वीत योगी ततः।।९२।।

तदनन्तर अर्थतत्त्व का मनन करने से कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है और जब अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा चित्त को रोक लेता है तब योगी की बुद्धि निर्मल हो जाती है फिर वह सिद्धि को पा लेता है उससे अपने जन्म की सफलता को प्राप्त कर लेता है, उसके पश्चात् लौकिक सुख, फिर ज्ञान तदनन्तर अत्यधिक सुखस्वरूप मोक्ष को पा लेता है।

---

१. पाठभेद–उत्थाने घृणा दृष्टिं समाचरेत्........ ।।८१।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–वैराग्यात् तत् प्रसिध्यसि.................. ।।८१।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

दुःखं विकारोऽनात्मा चाऽहंकारो दोषदूषितः।
तद्बोधात्मा सुखात्माऽसौ कथं भवति शंकिते[१]।।९३।।

शिष्य ने पुनः शंका की कि जब आत्मा दुःख, विकार, अनात्मा और अहंकार इत्यादि दोषों से दूषित है, तब ज्ञानस्वरूप कैसे हो सकता है।

पुनः प्राह प्रकाशस्य स्वभावोऽयं घनादिवत्।
अर्हाऽनर्ह[२]प्रकाशात्मा भावो हेतुर्न वार्य्यते।।९४।।

गुरुदेव ने पुनः कहा कि आत्मा प्रकाशस्वरूप है, उसका स्वभाव है कि वह योग्य-अयोग्य समस्त पदार्थों को निरपेक्ष भाव से प्रकाशित कर देता है जैसे बादल निरपेक्ष भाव से जल एवं स्थल पर वर्षा करता है।

यदा तु निजसामर्थ्यं दुःखं वारयितुं क्षमम्।
येन केन निमित्तेन यातायातं निवर्तते।।९५।।

जब अपना सामर्थ्य दुःखनिवारण के लिए पर्याप्त हो जाए तब जिस किसी निमित्त से आना-जाना (जन्म-मरण) छूट जाता है अर्थात् योगी आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अहमात्मैव दोषेण मदासक्त्यादिकारणात्।
विकार आम्लदध्यादिभैषजैरिव शोध्यते।।९६।।

मैं आत्मा ही हूँ किन्तु मद, आसक्ति आदि कारणों से दूषित हो जाता हूँ परन्तु वह आत्मा जैसे खट्टे पदार्थों अर्थात् दही आदि उपचारों से पात्र इत्यादि का विकार हटाया जाता है वैसे ही विवेक-वैराग्यादि से आत्मा निर्मल हो जाता है, क्योंकि आत्मा का वास्तविक स्वरूप सुखमय है दुःखादि तो भौतिकता के कारण आनेवाले धर्म हैं।

असङ्गात्मदृशा योगे विरक्तौ दुःखहेतुता।
यदि स्याद्धीयते तच्च कृतकृत्येन योगतः।।९७।।

असङ्ग आत्मा की तरफ से वैराग्य हो जाने पर सांसारिक राग दुःख का कारण हो जाता है और आत्मविषयक समाधि (एकाग्रता) होने से वह दुःख नष्ट हो जाता है।

दुःखदृष्ट्या यत्तद्धेतुवैराग्यासङ्गयोगतः।
निर्वेदे वेशरक्षायै कुण्डलीत्वं न हीयते।।९८।।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. पाठभेद-योग्यायोग्य...... ।।८४।। (प्रकाशित प्रति)

यद्यपि संसार को दुःख समझकर उसके हेतु राग से पृथक् होकर (वैराग्य से) असङ्ग आत्मा में समाधिस्थ हो जाने पर संसार से वैराग्य हो जाता है तो भी साम्प्रदायिक वेशरक्षा के लिए कुण्डल आदि चिह्न नहीं त्यागा जाता।

अतो रागे ममत्वे च दुःखं चेत्प्राप्यते जनैः।
गृहं वा त्यजते दुःखहेतुर्वा दोषसंश्रयात्[1]।।९९।।

अतः राग और ममता में यदि लोग दुःख को प्राप्त होते हैं तब या तो वे घर छोड़ देते हैं या दोषयुक्त होने से दुःख के कारण धन आदि का परित्याग कर दिया जाता है।

आत्मा सुखं तदीहातः सर्वं प्रेयः श्रुतौ श्रुतम्।
स्वरूपैर्दुःखजननैः प्रेयोऽप्यप्रियतां व्रजेत्।।१००।।

आत्मा सुखस्वरूप है अतः आत्मा के लिए ही सब प्रिय होते हैं ऐसा वेद में उल्लेख आता है और दुःखोत्पादन स्वरूपों से प्रिय भी अप्रिय हो जाता है अतः दुःख के कारण अनेक व्यक्ति आत्महनन भी कर लेते हैं।

अस्ति भाति प्रियञ्चेति ब्रह्मरूपं यतस्त्रयम्।
ज्ञानं विद्यासुखं चेति सदात्मा श्रूयते श्रुतौ।।१०१।।

अस्ति (है) भाति (प्रकाशमय) प्रियम् (सुखस्वरूप) ये तीनों ब्रह्म के रूप हैं अतः श्रुति (वेद) में नित्य सत्, ज्ञान और सुखस्वरूप आत्मा कहा है।

अहङ्कारे सुखं यत्र स्वात्मरूपं प्रकाशते।
न हेयं हेयमस्यापि सर्वं दुःखं विवेकिना[2]।।१०२।।

जिस अन्तःकरण (अहंकार) में जो सुख प्रतीत होता है वह आत्मा का स्वरूप प्रकाशित होता है और वह त्याज्य नहीं है क्योंकि जो इसका स्वरूप है वह छूट नहीं सकता परन्तु अन्तःकरण में विद्यमान जो दुःख है वह अनात्मस्वरूप होने से विवेकी व्यक्ति की दृष्टि से परित्याग करने योग्य है।

आत्मतत्त्वं निराकारं साकारं वा वद प्रभो।
साकारे प्रलभेताऽसौ निराकारो न युज्यते।।१०३।।

हे प्रभो ! आत्मतत्त्व निराकार है अथवा साकार–ऐसा कहना चाहिए क्योंकि साकार से तो सुखादि की प्राप्ति संभव है, परन्तु निराकार तो युक्त नहीं है।

इच्छां चक्रे स इत्यादि जगदिच्छा शरीरिणाम्।
न घटेतास्य नामापि रूपं नैव भवेत्तदा[3]।।१०४।।

---

१. ९५ से ९९ तक पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद–.......................निर्गुणे सा न संभवेत्।
नामानि नैव रूपाणि निर्गुणे न भवन्ति हि।।८८।। (प्रकाशित प्रति)

श्रुति में भी कहा है कि सृष्टि से पहले ईश्वर ने इच्छा की। सो जगत् की रचना की इच्छा निर्गुण में कैसे हो सकती है और निराकार है तो उसका नाम व रूप भी नहीं हो सकता।[1]

एवमाशङ्किते मस्तः प्राह भो एक एव स:।
पादांशे नास्ति साकारो निराकारस्त्रिपादपि।।१०५।।

शिष्य के इस प्रकार शंका करने पर मस्तनाथजी ने कहा कि हे शिष्य! यद्यपि वह परमात्मा एक ही है तो भी एक अंश (हिस्से) में माया के सम्बन्ध से साकार हो जाता है और तीन अंश सदा निराकार ही रहता है। जैसे आत्मा भी निराकार है किन्तु मन, इन्द्रिय व शरीर के सम्बन्ध से साकार हो जाता है।

स्वप्ने जीवः कुत्र यात्यस्य खानि
स्वात्मा देहश्चेन्न भ्रान्त्यात्मदृश्यम्।
लीलाक्षिप्तप्रौढलावण्यवीथी
दोषामध्ये सुन्दरी केन भुक्ता।।१०६।।

शिष्य ने पुनः प्रश्न किया कि स्वप्न में जीव कहां जाता है तब गुरुदेव ने कहा कि कहीं नहीं जाता अपितु उसकी समस्त इन्द्रियां एवं देह भ्रान्ति से आत्मा का दृश्य होते हैं। जैसे लीला में बनाई गई अत्यन्त सौन्दर्यवीथी (मूर्ति) सुन्दरी का स्वप्नकाल में कोई भोग नहीं करता है, अपितु भ्रान्ति से भोग प्रतीत होता है।

युक्त्याध्यासत्यागतो विग्रहस्य ग्राह्याभावान्नैव जाग्रत्प्रवृत्तिः।
वृत्तिः स्वेष्वेवं[2] न चेद्रेत आप्तेर्हेत्वत्यन्ताभावतो न स्खलेद्धि[3]।।१०७।।

शरीर का अध्यास (साथ) छूट जाने पर आत्मसम्बन्धी इन्द्रियों का विषय न रहने से जाग्रत व्यापार नहीं रहता, इसी प्रकार वीर्य के सम्बन्ध में उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि के साथ सम्बन्ध नहीं रहता फिर संसार के कारण अध्यास के छूट जाने से संसार में आवागमन नहीं होता।

जागर्ति नो विग्रहनिग्रहेण निमित्तमस्यास्ति तदाऽनिमित्तम्।
अध्यासवादोऽपि न निद्रयास्य विहीनजन्तोर्न हि जातु सोऽर्हः[4]।।१०८।।

---

१. पाण्डुलिपि से संकलित।
२. पाठभेद–स्वमिन् सा.................. ।।९१।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–गौरवाय.................. ।।९१।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–समुद्रवन्मुद्रयते विनिद्रः।।९१।। (प्रकाशित प्रति)

शरीर को नियन्त्रित करने से नहीं जागता है इसका निमित्त (कारण) है, तब अनिमित्त भी है। नींद के द्वारा अध्यासवाद (मिथ्या ज्ञान का आरोप) भी नहीं है। अथवा नींद से रहित इस प्राणी का अध्यासवाद भी नहीं है और न ही कभी भी वह उसके योग्य (उपयुक्त) होता है।

कर्मेन्द्रियाण्यत्र विकर्मभावमुदीयमानं दधते शिवाय।
स्वप्नेऽपि सा सेन्द्रियकेन्द्रवृत्तिर्बध्नाति जीवं निविदा दधाति[1]।।१०९।।

यहां इस विषय में, कर्मेन्द्रियां उदीयमान विकर्मभाव को शिव (कल्याण) के लिए धारण करती हैं। स्वप्न में भी उस-उस इन्द्रिय की केन्द्रवृत्ति जीव को बांध लेती है और निविदा (विशेष ज्ञान, विशिष्ट बोध) धारण करती है। कर्म=प्रकृति और विकर्म=विकृति, अशुद्ध रूप।

रिपुस्थशुक्रेण समोऽस्य शुक्रसम्पर्क आराद्धृतधौतचीरे।
सग्लानिकाम्लानमुखस्य लोकैरालोक्यते केन तदापि देहः।।११०।।

स्त्री से भोग करनेवाले देहरूपी शत्रु में वर्तमान जो वीर्य है उसके साथ इस शरीर के शुक्र का सम्बन्ध पहनी हुई धोती में हो जाता है अर्थात् वीर्यस्खलन हो जाता है। उस काल में ग्लानियुक्त निस्तेज मुखवाले पुरुष का देह लोगों द्वारा किस साधन से देखा जाता है ? केवल आत्मा के प्रकाश से ही ? क्योंकि उस समय ज्ञानेन्द्रियां नहीं हैं अतः आत्मा प्रकाशस्वरूप है, यह सिद्ध हुआ।

लघ्वीं शंकां सर्वथा हापयन् स मस्तः प्राहात्रास्य कर्मेन्द्रियाणि।
नो वा नष्टानि स्खलन्तीह रेतो देहो नाद्धा शीर्यते स्वप्नकाले[2]।।१११।।

इस प्रकार छोटी-छोटी आशंकाओं का समाधान करते हुए मस्तनाथजी ने कहा कि स्वप्नकाल में पुरुष की कर्मेन्द्रियां तथा स्थूल शरीर नष्ट नहीं होते हैं इसीलिए वीर्य का स्खलन हो जाता है।

मनो न बाह्यप्रमुखं तदास्य बाह्यानि वित्तेः करणानि तत्र।
अन्तर्मुखानि ततो हि खिन्नं स्वान्तं नितान्तं निजवासनाश्रितम्[3]।।११२।।

उस समय इसका मन बाह्य विषय में आसक्त नहीं रहता है और बाह्य ज्ञानेन्द्रियां भी अन्तर्मुखी हो जाती हैं इसीलिए अपनी वासनाओं के अधीन हुआ मन अत्यन्त खिन्न हो जाता है।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. ११०, १११ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद–बलम्.................. ।।९४।। (प्रकाशित प्रति)

स्वकल्पनाकल्पितकामिनीनां शिरीषवन्मार्दवपाटवाढ्यम्[१]।
अङ्के समालिङ्गय मनोजतापतप्तं स्त्रवच्छिन्नतयाऽवभाति।।११३।।

अपनी कल्पना से कल्पित कामिनी के शिरीषपुष्प की भांति कोमल व पटुता से परिपूर्ण देह का अंक में आलिंगन करके कामदेव के ताप से तप्त द्रवीभूत स्वाप्निक शरीर इस व्यावहारिक शरीर से पृथक् प्रतीत होता है।

मिथ्येति बौद्धीयमतस्य घोषो मिथ्याप्रवादव्यसनैः स घुष्टः।
अध्यासवादो न हि युज्यते सद्विकारमात्रे दृशि सत्यनित्ये[२]।।११४।।

मिथ्यावादी बौद्धों ने अध्यासवाद की घोषणा की है क्योंकि आत्मापर्यन्त सब पदार्थ मिथ्या हैं। यह बौद्धमतावलम्बियों की घोषणा है किन्तु सत्य, नित्य ज्ञानरूप आत्मा के रहते सबको मिथ्या मानना उचित नहीं है।

प्रज्ञाबलं धावति यत्र निर्णये
तत्रैव गाम्भीर्यमलं प्रतीयते।
प्रज्ञानुकूलं हि लिखन्ति लेखकाः
सा चैश्वरी देवजनैर्न बुध्यते।।११५।।

जहां निर्णय में प्रज्ञाबल भागता है वहीं पर गम्भीरता पर्याप्त प्रतीत होती है अर्थात् बुद्धि भी साथ नहीं देती और गम्भीरता का भी कुछ बस नहीं चलता। निःसंदेह अपनी बुद्धि के अनुसार ही लेखक लिखते हैं और वह ईश्वरसम्बन्धी शक्ति अथवा ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान देवजनों के द्वारा भी नहीं जाना जाता।

रहस्यवादे न हि तत्र वादः
प्रज्ञाविवादेषु च तत्र वादः।
किं कीटकोटीमिलितापि भास्करं
तेजायते द्योतयतीह कथ्यताम्[३]।।११६।।

क्योंकि रहस्यवाद में वाद नहीं है किन्तु प्रज्ञाविवादों में वाद है। क्या करोड़ों कीटों (जुगनू) का मेल भी सूर्य के समान प्रकाश दे सकता है अथवा तेजस्वी हो सकते हैं?

---

१. पाठभेद–हार्दकम्पम्............।।९५।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–आत्मावधि प्रख्यमिदं हि मिथ्या मिथ्याप्रवादो न हि रोचते मे।
बुद्धस्य बौद्धा मतमाहुरज्ञा विज्ञानमात्रं न हि सत्यमस्ति।।९६।। (प्रकाशित प्रति)

३. ११५, ११६ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

एवमाकर्ण्य विधिवद् योगतत्त्वे[1] गुरोस्तदा।
अशंकीह मुखे मौनमुद्रामाप्तेन किंचन[2]।।११७।।

इस प्रकार तब गुरुदेव से योगतत्त्व के विषय में विधिपूर्वक सुनकर शिष्य धड़ीनाथ चुप होगया फिर उसने कोई शंका नहीं की।

किन्तु स्वयं पद्मकादिकाऽवशिष्टासनैः सह।
सर्वो योगो धड़ीत्याख्य शिष्यायाऽदायि तैस्तदा[3]।।११८।।

किन्तु तब गुरुदेव ने स्वयं पद्मासनादि सब योगाङ्गों सहित समस्त योग की शिक्षा अपने धड़ीनाथ नामक शिष्य को दे दी।

धाता रणपतिश्चाथ योगारूढौ सपाठिनौ।
धड़ीनाथस्य संजातौ बलसिद्धिमवापतुः।।११९।।

धाता और रणपति ये दोनों भी धड़ीनाथ के सहपाठी होकर योगसाधना करने लगे तथा फिर उन्होंने भी बल की सिद्धि प्राप्त की।

तैरन्यैः शिष्यमुख्यैश्च भ्रामं भ्राममुपागतः।
खिदवारे क्वचिन्मस्तनाथस्तस्थौ पुराद्बहिः[1]।।१२०।।

उनके तथा और दूसरे बहुत से शिष्यों के साथ मस्तनाथजी घूमते-घूमते खिदवार (खिडवाली) नगर में पहुंचे और नगर से बाहर कहीं ठहर गए।

मस्तनाथो महासिद्धः प्रसिद्धः सिद्धसम्मतः।
बद्धपद्मासनस्तस्थौ क्वचिद् ग्रामाद् बहिर्यतिः[2]।।१२१।।
वाचोपलनिभा लुब्धा लुब्धका इव निर्दयाः।
सतां सङ्गस्य नार्हास्ते नागरा इत्यमानि तैः[3]।।१२२।।

उस नगर के रहनेवाले लोग अत्यन्त कठोरभाषी (पत्थर के समान वाणीवाले) लोभी तथा व्याध (शिकारी) की भांति निर्दय थे। इसीलिए वे सज्जनों के सङ्ग के अयोग्य थे, ऐसा उन्होंने (मस्तनाथजी ने) जान लिया।

---

१. पाठभेद–सर्वं तत्त्वं.. ।।९९।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–विरराम गुरोः सेवी धटीनाथो महामनाः।।९९।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
४. पाठभेद–खड्वालीग्रामसंग्रामे शिष्यग्रामपरिवृतः।।९९।। (प्रकाशित प्रति)
५. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
६. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

तदा धूमाग्नये हूतौ धातृरणपती निजौ।
शिष्यौ छित्वा तरून्नेतुमाज्ञप्तौ तत्पुरं गतौ[१]।।१२३।।

तब नाथजी ने अपने शिष्य धाता एवं रणपति को हवन (धूने) की लकड़ियों के लिए सूखे वृक्ष काटकर लाने की आज्ञा दी तब आज्ञा पाते ही वे दोनों उस नगर में गए।

आदेशमालोच्य गुरोः प्रयातौ यतस्ततो नीरसपादपानि।
लेभात एष्य बहुमार्गणेन नैवाथ याच्ञामपि चक्रतुस्तौ[२]।।१२४।।

गुरुदेव की आज्ञा लेकर वे दोनों सूखे वृक्ष की लकड़ी लेने गए परन्तु इधर-उधर बहुत खोजने पर भी उन्हें सूखी लकड़ी नहीं मिली, तब उन्होंने लोगों से याचना भी की।

कृत्वापि पौरुषमनाश्रितवान् सुपाकम्[३]
याच्ञां करोति हतभाग्यजनो नु लोके[४]।
अद्धा तथापि जनता नु तयोर्वचांसि
श्रुत्वोपहासपरतां तु जगाम सद्यः[५]।।१२५।।

उनके उद्योग करने पर भी रसोई एवं हवन योग्य लकड़ी नहीं मिली। संसार में निर्भाग व्यक्ति ही याचना करता है क्योंकि नगर के लोग उन दोनों के नम्र वचन सुनते ही हंसने लग जाते थे।

तत्राहुः केऽपि सभ्यत्वं मन्यमानाः समादरात्।
धूमार्थं काष्ठदाहोऽयं श्रमः किं क्रियते वृथा[६]।।१२६।।

परन्तु वहां उपस्थित कुछ पुरुषों ने इन्हें सभ्य समझकर आदर से कहा कि यह काष्ठ धुएं के लिए जलाया जायेगा ? यदि ऐसा है तो परिश्रम करना व्यर्थ है।

---

१. पाठभेद–धूनये काष्ठमानेतुं धाता रणपतिस्तथा।
प्रेषितौ मस्तनाथेन शीघ्रं तं ग्राममागतौ।।१०४।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–आदेशमासाद्य गुरोः प्रयातावितस्ततो नीरसशाखिजानि।
लेभात एष्याथ न मार्गणेन अयाचिषातामपि तौ च ताभ्याम्।।१०४।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–सखायं.............................. ।।१०६।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–जगत्याम्.............................. ।।१०६।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–व्यर्थापि स त्वधिगुणे वरमाहु मुचं
श्रद्धोपहासमिलितानि वचांसि नोचुः।।१०६।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–धूमाय नेत्रहान्यर्थं काष्ठदाहो भवेद् वृथा।।१०७।। (प्रकाशित प्रति)

तदुत्तरं प्राहतुरेवमेतौ नाथौ स धूमो भवतां सहायः।
स मेघतामेत्य[1] करोति सस्यफलादिकर्द्धिं[2] किल नीरदानात्।।१२७।।

उन दोनों नाथों ने उन्हें उत्तर दिया कि वह यज्ञ धूम (धुआँ) आपका सहायक होगा क्योंकि वह मेघ बनकर वृष्टि करेगा और उस जलवर्षा से वास्तव में धान्य एवं फलादि बढ़ेंगे।

त्रिकालमेवं हि कृशानुदेवसपर्य्यया तुष्यति देवता नः[3]।
समीरभूनीरसुशुद्धितश्च[4] नीरोगता पूतसमौषधैश्च।।१२८।।

इस प्रकार तीनों समय अग्निदेव की पूजा से हमारे ऊपर देवगण वास्तव में प्रसन्न हो जाते हैं और वायु, भूमि तथा जल की शुद्धि हो जाने से ओषधियां पवित्र हो जाती हैं। फिर उनसे शीघ्र ही आरोग्य प्राप्ति होती है।

न तत्र मार्य्योऽपि भवन्ति यत्र सुहूयते जानपदैर्नगर्य्याम्।
वह्निस्त्रिकालं जनयन्ति देवाः समीहितार्थान् स्वसमर्हणेन[5]।।१२९।।

जिस नगर में लोगों द्वारा तीनों समय में अग्नि में हवन किया जाता है वहां महामारी (हैजा, प्लेग, डेंगू) आदि उपद्रव नहीं होते तथा देवजन अपने पूजन से प्रसन्न होकर अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।

शीतेषु नो शैत्यमहाप्ररोहो घनेन सस्यादिकवृद्धितो नु।
प्रपोषणञ्चाद्य तृणावलीभिर्हितं पशूनामुपपद्यतेऽपि।।१३०।।

वस्तुतः हवन के प्रभाव से शीतऋतु में भी स्वाभाविक से अधिक अनिष्टकारी बर्फ नहीं पड़ती तथा समय पर वृद्धि होने से धान्यादि की वृद्धि से लोगों की रक्षा होती है और घासादि की वृद्धि से पशुओं का भी पोषण होता है।

सभ्या विचार्य्याहुरथापि यात्वा देशान्तरं यद्विंशतिर्मणानाम्।
भारोऽस्य नेयस्तरुरेष याच्ञा चिरं न कर्त्तव्यपथं समेताः[6]।।१३१।।

---

१. पाठभेद–प्राप्य…… ।।१०८।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद–कालिं…… ।।१०८।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–देववर्गः…………………………… ।।१०९।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–भर्गोऽपि भूनीरसदाप्रवाहा……… ।।१०९।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–……………………………नार्यो वैदुष्यगा गोपगणो बलिष्ठः।
वह्निस्त्रिकालं हवनेन तोष्यते तोष्टूय्यमानोऽप्यगुणो गृहस्थैः।।११०।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–आर्या विचार्याहुरयं विलोक्यतां बृहद्बृहद् दण्डविखण्डकोऽधुना।
द्वाभ्यां स्वदोर्भ्यां च समुह्यतां तरुरभाषिषातां खलु योगिनौ जनैः।।१११।।
(प्रकाशित प्रति)

फिर कर्त्तव्यपथ को जाननेवाले सज्जन लोगों ने विचारकर कहा कि दूसरे स्थान पर जाकर जो बीस मण वजन का लक्कड़ पड़ा है उसको ले जाओ, तुम्हारी यह मांग पूरी हो गई है, अब देर न करो।

निशम्य तौ हस्तिबलं स्वमात्रा निर्माणतो[१] धारणया समाधे:।
ध्यानादिना वा विषयाश्रितायाः सुवासनाया अथ संव्यधाताम्[२] ।।१३२।।

फिर उनके उस वचन को सुनकर उन दोनों ने अपने मन को विषयवासनाओं से हटाकर समाधि की धारणा द्वारा अपनी पंचतन्मात्रा के निर्माण से एवं ध्यानादि से हाथी का बल प्राप्त कर लिया।

आपूर्य वा वेगबलं समीरा[३]त्तरुं विना खण्डनतोऽप्यलाताम्।
आनीय विस्मापयमानलोकौ गुर्वाज्ञया च जुहुतां कृशानौ[४] ।।१३३।।

अथवा वायु (प्राणायाम) से अपने में वेगबल को बढ़ाकर उस वृक्ष को टुकड़े किए बिना ही उठा लाए। उस विशाल वृक्ष को लाया हुआ देखकर लोग हैरान रह गए। फिर उन दोनों ने गुरुदेव की आज्ञा से उसको अग्नि (धूने) में लगा दिया।

द्वेष्टृगेहार्थं सुतरुं वह्नौ जुहुवतुस्तदा।
आनीयेवाऽऽढ्यजनता-मदं तेनैव कर्मणा[५] ।।१३४।।

तब मस्तनाथजी से द्वेष करनेवाले के गृहनिर्माण हेतु रखे हुए उस विशाल वृक्ष को उन दोनों ने अग्नि में आधान किया त्यों ही उस नगर के समृद्ध लोगों का मद भी उस कर्म के साथ ही दग्ध होगया।

निन्दन्तो वा तौ गदन्तौ रुदन्त: केचिद् याच्ञाप्रार्थनासंस्तवादीन्।
अन्ये गेह्यं नैव होम्यं वदन्त: काष्ठं खण्डं खण्डमादाय वीता:।।१३५।।

तदनन्तर अनेक ग्रामवासी वहां आए। उनमें से कुछ निन्दा करने लगे और कोई रोने लगा और कोई याचना, प्रार्थना एवं स्तुति करने लगा। कुछ दूसरे लोगों ने कहा कि यह काष्ठ घर बनाने के लिए है, जलाने योग्य नहीं; इस प्रकार कहते हुए वे लोग उस काष्ठ को थोड़ा-थोड़ा काटकर लगभग सारे को ले गए।

---

१. पाठभेद–महाबलं बलीयसां .... ।।११२।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–परिकल्प्य तादृशं बभूवतुर्भीमतनू गुरोर्ग्रहात्।।११२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–स्वकुम्भकात् .... ।।११३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–तौ जुहुतां स्वधूनौ .... ।।११३।। (प्रकाशित प्रति)
५. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

उपालम्भान् बहून् श्रुत्वा प्रोचिवान् वोऽहितो गुरुः[१]।
प्रार्थकान्नैव गेहस्य निष्पत्तिर्भवितेति तान्[२]।।१३६।।

उन लोगों से अपनी बहुत-सी निन्दा सुनकर मस्तनाथजी ने रुष्ट होकर कहा–जाओ ! इस काष्ठ से जो घर तुम बनाना चाहते हो वह कभी नहीं बनेगा।

यत्कृत्यभीताः सम्प्रार्थ्य नामं नामं गता गृहान्।
उपहारान् यथार्हांश्च दत्वा मोदमुपाश्रिताः।।१३७।।

उस कार्य के करने से लोग बहुत डर गए और उनसे बार-बार प्रार्थना और प्रणाम करके तथा यथायोग्य उपहार देकर प्रसन्न हो अपने-अपने घर चले गए।

स तु यद्गेहजननायोपात्तं काष्ठमाहृतम्।
तस्थौ रुदँश्चिरं मस्तनाथः प्राह कृपाभरात्[३]।।१३८।।

जिस व्यक्ति ने गृहनिर्माण हेतु उस काष्ठ को सुरक्षित रखा हुआ था वह मस्तनाथजी के पास खड़ा होकर रोने लगा फिर उसे बहुत देर तक रोता देख, नाथजी ने दयालु हो कहा।

नय काष्ठमिदं तेन जनिता[४] नैव ते गृहम्।
त्वद् नैर्ऋते कोणे निखातं धनमाहर।।१३९।।

यह काष्ठ लेजा, इससे तेरा घर नहीं बनेगा। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ अतः जा तेरे घर के नैर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम) कोने में धन गड़ा हुआ है, उसे निकाल लेना।

आकर्ण्याऽथ मुदा यातो निजं धिष्ण्यं पुनः स्वकम्[५]।
काष्ठं तदपि संगृह्य याने सम्यङ् निवेश्य च[६]।।१४०।।

उस वचन को सुनकर फिर वह व्यक्ति अपने उस काष्ठ को अच्छी तरह गाड़ी में रखकर प्रसन्नता से अपने घर ले गया।

---

१. पाठभेद–योगिसम्मतः .... ।।११५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–चतुःशाला विशाला वो भविताऽनेन नो कदा।।११५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–सुरक्षितं येन काष्ठं गेहनिर्माणहेतवे।
रुरोद मस्तनाथस्य सन्निधौ प्राप्य दुःखितः।।११७।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–भद्र ! भविता .... ।।११८।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–नत्वा नाथ निजं गृहम् .... ।।११९।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–सः .... ।।११९।। (प्रकाशित प्रति)

परन्तु काष्ठापतितं निशातं शस्त्रं गिरौ वज्रमिवाददार।
ततो न किञ्चिद्धुतशेषकाष्ठैर्निजं समासाधयितुं शशाक।।१४१।।

परन्तु पर्वत पर जैसे वज्र नहीं चलता वैसे ही तीक्ष्ण शस्त्र भी उस काष्ठ में नहीं चला इसीलिए हवन से बचे हुए उस काष्ठ से वह अपना कोई कार्य सिद्ध न कर सका।

अद्यापि कीटैर्न घुणैर्न सीमिकानां संचयैर्वज्रसमं व्यशारि तत्।
दावायतं दर्शयते नरीयगावगारलोकेषु च मस्तपद्धतिम्[1]।।१४२।।

वज्र समान उस काष्ठ को आज तक भी कीड़े, घुण तथा दीमक इत्यादि किसी ने नहीं खाया और अत्यन्त विशाल वह काष्ठ मर्त्यलोक में होनेवाले अवतारों में मस्तनाथजी की पद्धति की स्मृति दिला रहा है।

जातु भर्तृहरिस्तत्र यदृच्छितमुपागतः।
चेष्टया सिद्ध[2]वृत्तान्तं वित्त्वा[3]ऽगात् पर्य्यटन् महीम्।।१४३।।

किसी समय भर्तृहरि जी स्वेच्छा से पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए वहां आगए और संकेत के द्वारा सिद्ध मस्तनाथजी का वृत्तान्त जानकर चले गए।

कृतो यदाऽङ्गुलिः स्कन्धे हस्तोऽधायि निरंकुशम्।
नसि दत्तोऽङ्गुलिस्तेन तदाऽङ्गुल्या विबोधितः।।१४४।।

मस्तनाथजी ने जब अंगुली हिलाई तब भर्तृहरिजी ने कंधे पर हाथ रक्खा और एक अंगुली नाक पर रक्खी फिर नाथजी ने संकेत समझकर अपनी अंगुली नीचे करके समझाया।

चेष्टार्थोऽप्रच्छि तच्छिष्यैर्भर्तृकः प्रतिबोधितः।
पृष्टो वङ्गात् स्वागतिं स प्राह पूर्वार्थचेष्टया[4]।।१४५।।

तब उनके शिष्यों ने मस्तनाथजी से संकेत का अर्थ पूछा तब गुरुदेव ने कहा कि यह सिद्ध भर्तृहरि थे और उनको देखकर हमने जो अंगुली हिलाई थी उससे हमने

---

१. पाठभेद–..................च भक्षितं सुरक्षितं वज्रमिवावलोक्यते।
विलोयद्भिर्बहुभिर्दिवानिशं श्रीमस्तनाथस्य यशो यशस्करम्।।१२१।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–नाथ..............................।।१२२।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–ज्ञात्वा..............................।।१२२।। (प्रकाशित प्रति)

४. १४४, १४५ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

पूछा था कि आप किस स्थान से आये हो, तब उन्होंने कंधे पर हाथ रखकर बंगाल देश से अपना आगमन बताया था।

महीं पर्य्यटत: श्वासवातश्रव्यमुदैरयत्।
स्वस्य चर्या मदीयेति बुद्धा[1]यादच्छिकोऽव्रजत्।।१४६।।

श्वासवायु को सुनने योग्य (वाणी के रूप में) प्रेरित किया अर्थात् कहा कि पृथ्वी पर घूमना ही मेरी अपनी दिनचर्या है ऐसा समझाकर इच्छानुसार चला गया।

इत्येवं बहुधा सिद्धीर्दिव्याऽदिव्या अदर्शयत्।
मस्तनाथ: शुद्धसिद्ध ईश: स्वैरसमागति:[2]।।१४७।।

इस प्रकार स्वेच्छाचारी शुद्ध सिद्धिवाले सामर्थ्यवान् मस्तनाथजी ने लौकिक तथा अलौकक नाना प्रकार की सिद्धियाँ दिखाईं।

कियत्कालमवस्थाय वेद[3]धर्मोपदेशनम्।
अकारि मस्तनाथेन ततोऽन्यत्र जगे मुदा[4]।।१४८।।

फिर मस्तनाथजी ने कुछ समय वहाँ ठहरकर वैदिकधर्म का उपदेश दिया और तदनन्तर प्रसन्नता से उस स्थान से अन्यत्र चले गए।

वस्त्रालङ्करणानि पूर्णकलशस्तौर्यध्वनि: पुत्रवान्
शंखादर्शनृपाश्वदन्तिसुरभिस्त्रीपुष्पधान्यानि च।
योगी कुण्डलवान् द्विज: सतिलको वत्सोपगूढा च गौ:
सूर्यो मत्स्यगण: किलिंजकजनो दृश्येत यात्रा शुभा।।१४९।।

वस्त्र और आभूषण, पूर्णकलश (जल भरा घड़ा) तूर्य ध्वनि (बाजों की आवाज), पुत्रवान् व्यक्ति, शुभ्रवर्ण शंख, दर्पण, राजा, अश्व, हाथी, गाय, स्त्री, पुष्प और धान्य, कुण्डलधारी योगी, तिलकधारी ब्राह्मण, वत्स (बछड़े) से आलिंगित गाय, सूर्य, मत्स्यगण, किलिंजकजन (बढ़ई) दिखाई दे जाएं तो यात्रा शुभकारी होती है।

---

१. पाठभेद–ज्ञात्वा .... ।।१२३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–माया जवनिकाच्छन्नो मस्तनाथ स्वयं शिव: ।।१२४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–योग .... ।।१२५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–ययौ मुदा .... ।।१२५।। (प्रकाशित प्रति)

नाथानां नवकं तथा च दशकं सिद्धाः प्रसिद्धा भुवि
भस्मोद्धुलितगात्रको यमिवरो दृश्येत यात्रा शुभा।
गङ्गा दुग्धनदी समुद्रजलदा वृष्टिश्च चन्द्रानलौ
क्षीरं क्षेत्रपवित्रशस्यविलसद्गोत्रालियुक्ता क्षितिः।।१५०।।

धरती पर नौ नाथ और दस सिद्ध प्रसिद्ध हैं, भस्म रमाये हुए वे योगिश्रेष्ठ दिखाई दे जाएँ तो यात्रा शुभ होती है तथा दुग्धनदी (शुभ्रवर्णा) गंगा, समुद्र के समान जल देनेवाली वृष्टि, चन्द्र और अग्नि (सूर्य), दूध, खेतों में पवित्र फसल-विलास (लहलहा) कर रही हो तथा गौओं के समूह से युक्त पृथिवी हो तो यात्रा शुभ होती है।

इत्यादिशुभचिह्नानि दर्शं दर्शं महायमी।
मस्तनाथः स्वयं भद्रः पश्यन्नपि तथा ययौ[1]।।१५१।।

इत्यादि शुभचिह्नों को बार-बार देखकर अत्यन्त संयमी सन्त मस्तनाथजी स्वयं कल्याणों को देखते हुए वैसे ही (पहले की भांति) चले गए।

ततो दिष्टात्तन्नगर्य्या लोकैर्नास्तिकता हृदा।
पराचक्रे पिशाचीव चक्रे धर्मोन्नतिः परा[2]।।१५२।।

फिर मस्तनाथजी के उपदेश से उस नगर में रहनेवाले लोगों ने अपने हृदय से नास्तिकता को पिशाची की भांति दूर कर दिया, तदनन्तर धर्म की अत्यधिक उन्नति हुई।

इति श्रीमस्तनाथचरिते धड़ीनाथबुभुक्षानिवारणरणपतधातृहस्तिबल-प्रापणकाष्ठानयन-गुप्तधनदाननाम द्वाविंशः सर्गः।

---

१. १४९, १५०, १५१ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. यह पद्य प्रमाणित प्रति में नहीं है।

त्रयोविंशः सर्गः

धातारणपत्यानयनादिप्रकरणम्

श्रौतार्हन्तीचणैः स्तुत्यः परात्मा परमेश्वरः।
मस्तनाथो महासिद्धो दुरितानि धुनोतु मे।।१।।

वेदज्ञान एवं योग्यता में प्रसिद्ध (विद्वानों) से स्तुत्य, परम आत्मा, परमेश्वर, महासिद्ध मस्तनाथजी मेरे समस्त पापों को दूर करे।

गोविन्दं गोकुलानन्दं रक्षायां तत्परं सताम्।
क्षमासारं रसाधारं नाथं वन्दे परात्परम्[1]।।२।।

गोविन्द, गोकुल ही जिसका आनन्द है, सज्जनों की रक्षा में तत्पर रहनेवाले, शान्ति एवं आनन्द के आधार सर्वोत्कृष्ट नाथजी की मैं वन्दना करता हूँ।

योगारूढं योगयुक्तौ धातारणपती सुखम्।
प्रापितौ येन तं देवं शिवं मस्तं नुमो विभुम्[2]।।३।।

जिसके द्वारा रणपति और धाता योगक्रिया में सिद्धहस्त करके सुखी कर दिये गए उन शिवस्वरूप सर्वव्यापक एवं दिव्यरूप मस्तनाथजी को हम नमस्कार करते हैं।

रममाणो महीतीर्थगिरिकन्दरमन्दिरम्।
पावयन् सकलं कर्हि खरकग्राममागमत्।।४।।

किसी समय मस्तनाथजी पृथ्वी, पर्वत, तीर्थ, गुफा और मंदिरादि समस्त स्थलों को पवित्र करते हुए 'खरक' नामक ग्राम में आ पहुंचे।

पौरा द्रष्टुं समायाता उपदिष्टाः सुशिक्षिताः[3]।
दानैर्यज्ञैर्विप्रप्रजासाधुसेवासुसंगमैः[4] ।।५।।

वहां समस्त पुरवासी नाथजी के दर्शन करने आए उनको नाथजी ने दान व यज्ञ करने, ब्राह्मण, साधु और प्रजाजनों की सेवा तथा संगति करने की शिक्षा दी।

---

१. १. २ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–नमाम्यहम्।।३।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–धर्मशिक्षया.................................।।५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–यज्ञदानतपस्तत्त्वं साधुसेवापि बोधिता।।५।। (प्रकाशित प्रति)

कर्हिचिल्लोकसंप्रश्ने स्वशिष्यग्रहणेच्छया।
समागतिं स्वस्य तत्र प्राह मायाविवक्षया[१]।।६।।

फिर कभी लोगों के पूछने पर मस्तनाथजी ने अपनी माया दिखाने की इच्छा से कहा कि इस गांव के अपने दो शिष्यों को लेने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।

धातारणपती शिष्यौ मम ग्रामेऽप्यवस्थितौ।
इत्युक्ते मायिकौ[२] शिष्यौ तदाकारौ बभूवतुः।।७।।

मेरे रणपति और धाता नामक दो शिष्य इसी गांव में रहते हैं, ऐसा कहते ही एक आकार के मायानिर्मित की भांति वे दोनों शिष्य आकर उपस्थित होगए।

पुरा सार्थात्त्यक्तौ[३] बहुतिथमुदीक्ष्याथ समयम्
समायातौ कृष्टाविति नतिः पुरःसारि वचनम्[४]।
समुच्चार्य्य स्वार्थं निजसहचरत्वं[५] दुढतमम्
मुदं यातौ याच्ञा बहुपरिकरौ प्राहतुरलम्[६]।।८।।

पहले बहुत दिनों से बिछड़े हुए, बहुत दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् मस्तनाथजी के आकर्षण से आए हुए उन दोनों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रणामपूर्वक कहा कि हे गुरुदेव ! हम दोनों को अवश्य ही अपने साथ ले चलो। इस प्रकार उन्होंने बहुत प्रार्थना की।

इत्युक्तौ गुरुभक्तौ स प्राह तातौ विपृच्छताम्।
प्रथमौ सर्ववर्णानामाश्रमाणां गुरू मतौ[७]।।९।।

इस प्रकार कहते हुए गुरुभक्त उन शिष्यों को नाथजी ने कहा कि अपने माता-पिता से पूछ आओ क्योंकि सब वर्णों एवं आश्रमों के प्रथम गुरु माता-पिता माने गए हैं।

---

१. पाठभेद–अस्मिन् ग्रामे मदीयौ द्वौ विद्येते शिष्यतल्लजौ।
तावानेतुं समायात उक्तवान् नाथ उत्तमः।।६।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–इत्युक्तौ प्ररितौ .... ।।७।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–मुक्तौ .... ।।७।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–तनिं प्रार्थ्य वचनम् .... ।।७।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–निखिलनिगमार्थं .... ।।७।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–याञ्चां सह गमनवाच्छां विदधतुः।।८।। (प्रकाशित प्रति)

७. पाठभेद–मस्तनाथस्ततः प्राह गुरुभक्तौ नतौ पुनः।
पृष्ट्वा भो जननीं तातं गृहं गत्वाऽऽगतिः शुभा।।९।। (प्रकाशित प्रति)

न गृहस्थाश्रमादन्य आश्रमः सुमहत्तरः[1]।
योगादिसर्वभिक्षूणां गृहस्थाज्जनिरीरिता[2]।।१०।।

गृहस्थ आश्रम से बढ़कर कोई उत्तम आश्रम नहीं है क्योंकि योगी, संन्यासी आदि सभी भिक्षुकों का जन्म गृहस्थ आश्रम से ही होता है।

आश्रमान्तरतो भ्रष्टः पतनं तस्य श्रूयते।
गार्हस्थ्याद् भ्रश्यते नैव भक्तिदेवार्चनादिना।।११।।

दूसरे आश्रमों से जो गिर जाता है उसका पतन हो जाता है ऐसा वेदों में उल्लेख आता है किन्तु गृहस्थाश्रम में रहता हुआ व्यक्ति पतित नहीं होता क्योंकि वहाँ भक्ति व देवपूजनादि अधिक होते हैं।

गृह्णाति गृहमित्युक्तमाश्रमान्तरगानिति।
गच्छ तं धाम स्वं मातापितरावनुपृच्छताम्।।१२।।

यह आश्रम दूसरे आश्रमों में जानेवालों को भी धारण करता है इसीलिए इसको 'गृह' (घर) कहा जाता है अर्थात् यह दानादि से सब आश्रमों का पालन करता है, अतः अपने उस घर जाओ और अपने माता-पिता से पूछो।

अन्तर्जलं पितुः स्वाशाबन्धसौख्यममत्वतः।
द्रवं चित्तं सास्त्ररोदैराश्रमं सागरं नयेत्।। १३।।

अपनी आशा के बन्धन से उत्पन्न सुख की ममता से तुम्हारे पिता का चित्त साश्रु रोदन (आंसुओं के साथ रोना) के द्वारा गृहस्थाश्रम को समुद्र बना देगा अर्थात् तुम्हारा पिता तुम्हारे वियोग में बहुत रोयेगा अतः पहले उनसे अनुमति लेकर आओ।

मातुर्जन्म पुरावृत्तं कष्टं वैतरणी नदी।
मज्जयेन्नरके घोरेऽननुज्ञाताश्रमेहया।।१४।।

माता से जन्म लेने का प्राचीन वृत्तान्त अत्यन्त कष्टदायी है और वैतरणी नदी के समान है अर्थात् माता बड़े कष्ट से सन्तान को उत्पन्न करती है और पालन करती है इसीलिए उन (माता-पिता) की आज्ञा के बिना दूसरे आश्रम में जाने की इच्छा घोर नरक में गिरानेवाली है।

---

१. पाठभेद–विश्रमो महान्.. ।।१०।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–योगिन्यासिविरक्तानां गृहस्थाज्जायते जनिः।।१०।। (प्रकाशित प्रति)

जाताः सन्तो भविष्यन्तः समीहन्ते निजांशकम्।
तेषां सन्तोषणं कार्य्यं सर्वं धात्रा विनिर्मितम्[१]।। १५।।

भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल के प्राणी अपने-अपने अंश पुत्रादि को चाहते हैं अतः उनको संतुष्ट करना पुत्र का धर्म है, क्योंकि यह संसार ब्रह्मा द्वारा बनाया हुआ है। अतः इसकी मर्यादा भंग करके ब्रह्मा का नियम नहीं तोड़ना चाहिए।

मनसा कर्मणा वाचा तन्वा च भार्यया सह।
आर्यैः समर्च्यते पूज्यो गृहगोऽतिथिरात्मवान्।।१६।।

अपनी पत्नी के साथ आर्यों के द्वारा मन से, कर्म से, वाणी से और शरीर से घर में आया हुआ आत्मवान् गतिशील, कर्मशील, अतिथि भली प्रकार पूजा जाता है अर्थात् आर्य लोग पत्नी सहित अतिथि की पूजा करते हैं।

समस्तासारसंसारे सारमात्रं जिघृक्षुणा।
मुमुक्षुणा भैक्ष्यभोज्यं गृहस्थादेव गृह्यते।।१७।।

सम्पूर्ण सारहीन संसार में केवल सार को देखने के इच्छुक, मोक्ष के जिज्ञासु के द्वारा भिक्षा के योग्य पदार्थ एवं खाने योग्य वस्तुएं गृहस्थ से ही ग्रहण की जाती हैं।

स आदावीश्वरः पूज्यस्ततो माता ततः पिता।
ततश्च स्वगुरुः पूज्यस्तदभावे गुरुर्मतः[२]।।१८।।

सर्वप्रथम वह ईश्वर पूजनीय होता है, उसके अनन्तर माता, फिर पिता और तदनन्तर अपना गुरु पूज्य होता है उसके न होने पर गुरु (कुलगुरु) माना जाता है।

एवं धर्मनीतिशास्त्रतत्त्वसिद्धान्तमुत्तमम्[३]।
गुरुवाक्यं समाकर्ण्य जग्मतुर्जन्मभूस्थलम्।।१९।।

इस प्रकार धर्म, नीति एवं शास्त्रों के तत्त्व और सिद्धान्तभूत गुरु के उत्तम वाक्य को सुनकर वे दोनों अपने जन्मस्थान को चले गए अर्थात् अपने घर चले गए।

---

१. ११ से १५ तक पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
२. १६, १७, १८ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं हैं।
३. पाठभेद—जगत्कृता विधिः प्रोक्तो महिमा तस्य गीयते······ ।।१४।। (प्रकाशित प्रति)

नामं नामं भजनयजनोद्‌बद्धचित्तौ द्रढीय:
ताताम्बीयं चरणयुगलं प्रार्थयन्तौ स्म दीनौ।
भारोद्वाहे[1] सहनरहितौ नौ विरक्तौ समाज्ञां
दत्तं नेहेत विपुलमतिर्बन्ध्यतो वंशवृद्धिम्[2]।।२०।।

भजन और यज्ञादि में दृढ़ता से संलग्न चित्तवाले माता-पिता के चरणों में बार-बार प्रणाम करके उन दोनों ने कहा कि हम घर का कार्यभार सहन नहीं कर सकते क्योंकि हमारा चित्त संसार से विरक्त होगया है इसीलिए जैसे वन्ध्या नारी नपुंसक पुरुष से वंशवृद्धि की आशा नहीं करती उसी प्रकार अब हमसे घर के काम की आशा मत करो और हमें तपस्या हेतु आज्ञा दीजिए।

पुरा कृतानीह फलन्ति पुंसां तदाश्रिता एव परिश्रमाश्च।
बीजानुसारीणि फलानि नित्यं द्रुमेषु तेनात्र च शेमुषी तथा[3]।।२१।।

प्राणियों के पूर्वजन्म में किये हुए कर्म ही इस जन्म में फलते हैं और उन्हीं कर्मों के अनुसार उद्योग होता है, अर्थात् व्यक्ति प्रयत्न करता है। जैसे वृक्षों में बीज के अनुसार ही फल लगते हैं, अत एव बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है, अर्थात् व्यक्ति ने पूर्वजन्म में अच्छे कर्म किये हैं तो वह इस जन्म में भी सत्कर्म ही करता है और पूर्वजन्म में बुरे कर्म किये हैं तो उसके फलस्वरूप उसे बुरी संगत मिलती है जिस कारण वह पाप में प्रवृत्त हो जाता है अत: व्यक्ति को अपना मनोबल मजबूत करके पापाचरण का त्याग कर देना चाहिए जिससे वह भविष्य में सदाचारी बन सके।

योगे विरक्त्याधिकसंख्यजन्म[4]परिक्रमो नौ प्रतिभाति तेन।
तत्रैव नौ धीरधियोगमेषोऽनारब्धपाक: खलु राजभोग:[5]।।२२।।

इसी कारण हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वैराग्य के द्वारा योग में हमारा परिश्रम अनेक जन्मों से किया हुआ है इसीलिए उस योग में ही हमारी बुद्धि जाती है क्योंकि हमें राजभोग वस्तुत: प्रारब्ध के बिना नहीं मिल सकता।

---

१. पाठभेद–गृहोद्वाहे .... ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–दत्तं तातौ तनयवचनं यातमाद्यं स्वधाम .... ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–लगन्ति शाखिष्वपि शेमुषी सा .... ।।१६।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–जन्मवैभवात् .... ।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–धावति धीर्बलाद् यद् वायोरयेणाथ यथा पताका।।१७।। (प्रकाशित प्रति)

श्रुत्वा वचो लालनपोषणादिममत्वजातैरधिकारहीनम्।
चित्तं समाकर्षति पाणिलब्धं न नाशमेत्वित्य[1]भिवीक्ष्य पित्रोः।।२३।।

इस प्रकार पुत्र का वैराग्ययुक्त वचन सुनकर माता-पिता का संकुचित चित्त लालन, पालन आदि की ममता के वशीभूत होकर यह पुत्ररत्न हाथ से न निकल जाए ऐसा विचार कर उद्विग्न होगया।

धर्मे प्रारीप्सिते विघ्नं न कार्यमिति केचन।
न सुतौ हेयकौ चेत्येवं दोलास्थितौ हि तौ[2]।।२४।।

किसी ने कहा कि जो धर्म करना चाहे तो उसके धर्मकार्य में विघ्न नहीं डालना चाहिए और कोई कहने लगा कि पुत्रों को नहीं छोड़ना चाहिए। ऐसी-ऐसी बातें सुनकर उसके माता-पिता का चित्त डावांडोल होगया।

तथापि सुखमत्यन्तं प्राप्यं मत्वा मुमुक्षुवत्।
दुःखं हेयं सुतत्यागादनात्मत्वान्निजात्मवत्[3]।।२५।।
स्वदेहांशाद्वंशजन्म पृथग्भूतमिव स्थितम्।
निश्चिक्यतुर्न हेयं तत्तन्निषिषिधतुः स्म तौ[4]।।२६।।

तो भी नाना प्रकार के संदेह होने पर भी जैसे मोक्ष का अभिलाषी व्यक्ति अत्यन्त सुखस्वरूप आत्मा को प्राप्तव्य मानकर अनात्म पुत्रादि के परित्याग से दुःख नहीं मानता है, वैसे ही उसके माता-पिता अपने शरीर का अंश होने से आत्मरूप पुत्र से वंशवृद्धि होती है, इसीलिए वह त्याज्य नहीं है, ऐसा निश्चय कर, उनको साधु बनने से रोक दिया।

न गन्तव्यं गृहं त्यक्त्वा वृद्धावावां सुपालितौ[5]।
गौप्तारौ नौ भवेतां वामित्युक्तौ तस्थतुर्गृहे[6]।।२७।।

---

१. पाठभेद–पुत्ररत्नं न निर्गतं स्याद्.................।।१८।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–रोधव्यो न च धर्मार्थी तीर्थार्थी न कदाचन।
सुतो न हीयतां कर्हि तयोर्दोलायितं मनः।।१९।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–तथापि ममतावशात्ताभ्यां रुद्धौ सुतौ स्वकौ।
योगमार्गपदाधानाज्ज्ञानाद् वंशविवृद्धये।।२०।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
५. पाठभेद–पुरस्तव.................................।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–द्वावित्युक्तौ न गतौ गृहात्..........।।२१।। (प्रकाशित प्रति)

तुम घर छोड़कर मत जाओ क्योंकि तुम्हारा लालन-पालन करनेवाले हम दोनों अब वृद्ध होगए हैं। तुम चले जाओगे तो हमारी देखभाल कौन करेगा? माता-पिता के ऐसा कहने पर वे दोनों घर पर ही रह गए।

परन्तु दानसत्कारसाधुपूजासु तत्परौ[1]।
अपव्ययौ तौ स्वानर्हौ बुद्ध्वा ताभ्यां[2] विसर्जितौ।।२८।।

परन्तु घर पर रहते हुए भी वे निरन्तर दान, अतिथि-सत्कार, साधुपूजा में ही लगे रहते थे इसीलिए उनके माता-पिता ने अपव्यय करनेवाले और अपने गृहकार्य के अयोग्य जानकर उनको त्याग दिया।

युवां स्वकेहासमचेष्टतायां प्रारब्धकर्मार्जितधीसहायौ[3]।
ततोऽथ यातं सुशमीशचिन्ताऽनुध्यानयोगाप्तसमाधिधाम्ना[4]।।२९।।

प्रारब्ध कर्म से अर्जित बुद्धि की सहायता से तुम दोनों अपनी अच्छानुसार कार्य करो, ऐसी आज्ञा मिलने के पश्चात् वे परमात्मा के चिन्तन-ध्यानरूप योग से प्राप्त समाधि के प्रभाव से परम आनन्द के पात्र बन गए।

गुरूपदेशेन ससेवनेन नित्यं गुरोरन्तिकवासभासा[5]।
तेजस्विनौ स्वहितसिद्धिभाजावाऽऽशीभिरिवं जहतुश्च तौ तौ[6]।।३०।।

इस प्रकार उन दोनों ने घर का परित्याग कर दिया तथा गुरु के पास रहने के प्रभाव, उनके आशीर्वाद एवं उपदेश तथा सेवा करने से उन्होंने अपने अभीष्ट की सिद्धि करली और वे अत्यन्त तेजस्वी होगए।

विन्ध्याटवीत्यक्तजनो यथा भवेत्
सर्गाटवीमुक्तिमथोऽभिलाषुकौ।
तौ ध्यानयोगाश्रितमानसौ तदा
बभूवतुः सिद्धनभोविहारिणौ[7]।।३१।।

---

१. पाठभेद–पूजापरायणौ..........।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–अपव्ययगतौ ज्ञातौ तौ च ताभ्यां..........।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–पुण्यभाजौ..........।।२३।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–यातं भवतं यथेच्छमभाषिषातां तनयौ च ताभ्याम्।।२३।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–वासमापतुः..........।।२४।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–तन्मयौ योगाश्रितौ तौ जहतुर्निजं गृहम्।।२४।। (प्रकाशित प्रति)
७. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

विन्ध्याटवी को छोड़कर जैसे व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है वैसे ही सब सर्ग रूप बीहड़ जंगल (अटवी) से मुक्ति के अभिलाषी, ध्यानयोग में लीन मनवाले वे दोनों तब सिद्धरूप अन्तरिक्ष (नभ) में विहार करनेवाले होगये अर्थात् जब वे घर छोड़कर निकले तो ऐसे प्रसन्न हुए जैसे कि कोई विन्ध्याटवी से बाहर निकल आया हो। तदनन्तर ध्यानयोग के अभ्यास से सिद्ध बन गए।

रामो यथा कौशिकसार्थगोऽभूदाज्ञात एवं निगडाद् विमुक्तौ।
तौ वन्दिनावेव गृहाद्वियुक्तौ कुपञ्जरात् कीर इव प्रगाढात्।।३२।।

श्रीराम जैसे पिता की आज्ञा लेकर विश्वामित्र के साथ गए थे, वैसे ही वे दोनों भी माता-पिता की आज्ञा लेकर घर छोड़कर गुरु के आश्रम में चले गए और जैसे शुक (तोता) पिंजरे से मुक्त हो जाता है वैसे ही वे घर के बन्धन से मुक्त होगए।

विपर्य्ययं मूढधियो व्रजन्ति प्रबद्धरागाश्च तदीयवर्त्मनि।
तेऽनीतिमार्गे सुनयप्रतिष्ठा नयेऽप्यनीतित्वधियः पतन्ति।।३३।।

मूढ़बुद्धि पुरुष भ्रम को प्राप्त हो जाते हैं और भ्रान्त मार्ग में बद्धराग हो जाने से कुमार्ग पर चलते हुए भी स्वयं को सुमार्गगामी मानते हैं तथा नीति में अनीति (कुनीति) बुद्धि हो जाने से कल्याणमार्ग से च्युत हो जाते हैं।

स्वके परत्वञ्च कुपात्रलोके पात्रत्वबुद्धिं जनयन्ति साधौ।
असाधुतां तेऽनुविदन्ति विप्रेऽविप्रत्वबुद्धिं समुपार्जयन्ति।।३४।।

स्वयं में परम (श्रेष्ठ) बुद्धि और कुत्सित लोगों में सज्जनता बुद्धि कर लेते हैं इसी प्रकार साधु में असाधुता तथा ब्राह्मण में अब्राह्मणता मान बैठते हैं।

विदोऽविदस्तेऽनुविदन्ति कर्मिणोऽप्यकर्मिणश्चञ्चलमाहुरेवम्।
धीरं च पापं सुकृतं गदन्ति दानं व्ययं ते नु वृथा वदन्ति।।३५।।

विद्वान् को अविद्वान्, कर्मशील को अकर्मण्य, चंचल को धीर और पाप को धर्म कहने लगते हैं तथा दान को व्यर्थ व्यय कहते हैं।

नित्यं ह्यनित्यं प्रवदन्त्यसन्तः सन्तं न सन्तं किल बुद्धलोकाः[१]।
इवाहुरन्ये न तथा तदीया मतिर्विरागस्य हि साधनं सा[२]।।३६।।

१. पाठभेद–लोकलोकाः .... ।।२२।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमादिनं वादिनमद्भुतं तत्।।३०।। (प्रकाशित प्रति)

भ्रान्त लोग वस्तुतः बुद्ध धर्मानुयायी लोगों की भांति नित्य को अनित्य तथा सत् को असत् मानते हैं, किन्तु बौद्धों की बुद्धि वैसी भ्रान्त नहीं थी, परन्तु वे वैराग्य को दृढ़ करने के लिए ही संसार को असत् समझते थे।

पुनः प्राप्तावल्पकालाद् गुरुधारितकुण्डलौ।
योगिनावुत्तमौ जातौ तेपतुस्तौ तपस्विनौ।।३७।।

फिर थोड़े समय के पश्चात् ही उन्होंने गुरु की आज्ञा से कुण्डल पहन लिए और उत्तम योगी बन गए और तपस्वी बनकर वे दोनों तप करने लगे।

शीतोष्णसहनौ धीरौ तपसोऽनन्तरं जपम्।
शास्त्राभ्यासं योगशिक्षां गुरूक्त्या चेरतुः श्रमात्[१]।।३८।।

सर्दी तथा गर्मी को सहनेवाले, धीर स्वभाववाले उन दोनों ने तप के पश्चात् जप और शास्त्र का अभ्यास तथा योग की शिक्षा गुरुमुख से ली।

शारीरं कुकृतं पूर्वजन्मना समुपार्जितम्।
पञ्चाग्नितापवर्षाभिः शीतेन जहतुर्भृशम्[२]।।३९।।

उनके पूर्वजन्म में संचित शरीरसम्बन्धी समस्त पापकर्म पंचाग्नि के ताप से तथा वर्षा और शीतादि के सहन करने से नष्ट होगये।

तपसाऽपेतपापानां देहजं[३] सुकृतं महत्।
द्रढीयस्तमतां प्राप्तं चित्तं निर्मलतां गतम्।।४०।।

तप के प्रभाव से पाप हट जाने पर उनके कायिक धर्म की वृद्धि होगई। उससे चित्त निर्मल होकर अत्यन्त दृढ़ होगया।

योगेन चैत्तं निजबोधरूपं गुरूक्तिजश्रावणतः प्रपुष्टम्।
शास्त्रेक्षणाभ्याससुपाटवेन सुपुष्टिपुष्टं बहुकालदर्शि[४]।।४१।।

---

१. पाठभेद–शीतोष्णसहमानौ तावजपाजापतत्परौ।
मेरुदण्डगतप्राणौ कुण्डलीबोधबोधितौ।।३२।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–पञ्चाग्नितापवर्षाभिः शीतेन जहतुर्भृशम्।
शारीरं मलसंघातं विघातं चक्रुतुस्तदा।।३३।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–कायजं..............................।।३४।। (प्रकाशित प्रति)

४. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

योग के द्वारा उत्पन्न हुआ मानसिक ज्ञान गुरु के वचन सुनने से और भी अधिक पुष्ट होगया। फिर धीरे-धीरे शास्त्र अवलोकन की अभ्यास चातुरी से अत्यन्त पुष्ट होकर दूरदर्शी होगया।

जपेन मन्त्रार्थविचारशक्त्या तद्बृंहितं दैवततुल्यरूपम्।
तदाऽभवत्तेन तयोः स्वसिद्धरूपं निजं दर्शितसद्गुरूक्तिः[१]।।४२।।

जप के द्वारा तथा मंत्रार्थ की विचारशक्ति से उन दोनों का रूप देवतुल्य तेजस्वी होगया। तब जिस ग्रामीण शरीर से उन दोनों ने गुरु का उपदेश सुना था वह देह भी सिद्धस्वरूप होगया।

यथावतारे किल गोरक्षस्य श्रीनानकं प्रत्युपदेशजातैः।
नीता गुरुत्वस्य जगत्प्रसिद्धिस्तदीयका तद्वदियं प्रपूर्तिः[२]।।४३।।

जैसे गोरक्षनाथजी के अवतार में श्री नानकदेव के प्रत्युपदेशों से उनके गुरुत्व की संसार में प्रसिद्धि होगई वैसे ही धाता और रणपति को उपदेश देने से मस्तनाथजी के गुरुत्व की प्रसिद्धि होगई अर्थात् जब कोई शिष्य बहुत आगे बढ़ जाता है तो उसके गुरु का भी नाम रोशन हो जाता है अतः गुरु की खासियत तभी है जब उसके शिष्य जगत् में कोई असाधारण उन्नति करके दिखाएं।

तयोरकारि प्रचुरोपदेशैः श्रीमस्तनाथेन कृपाभरेण।
तथैव शिष्येषु गुरोः कृपा स्याच्छिक्षा प्रदत्ता निजसम्प्रदाये[३]।।४४।।

मस्तनाथजी ने कृपापूर्वक नाना प्रकार के उपदेशों से उन दोनों का उपकार किया और अपने सम्प्रदाय के अनुकूल शिक्षा भी दी, क्योंकि शिष्यों के ऊपर गुरु की ऐसी ही कृपा होनी चाहिए।

अजीगणन्नाथतपोनिधित्वमवीवचद् दिव्यतमं प्रभावम्।
अध्वनद् दुन्दुभिशब्दमुत्तमं श्रीमस्तनाथस्य च लोकवर्गः[४]।।४५।।

जनसमुदाय नाथजी के तप भण्डार की बार-बार गणना करने लगे, दिव्यतम प्रभाव को बार-बार कहने लगे और मस्तनाथजी की स्तुति में दुन्दुभि का उत्तम शब्द बार-बार करने लगे अर्थात् प्रसन्न होकर जोर-जोर से नगाड़े बजाने लगे।

---

१. पाठभेद–समृद्धं श्रीमस्तनाथेन सह स्वभावम्।।३५।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।
३. पाठभेद–सशक्तिपातोऽपि च गौरवाय।।३६।। (प्रकाशित प्रति)
४. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

ज्ञानं भक्त्यर्थमेवेति ज्ञानाद् भक्तिर्गरीयसी।
देवता सत्कृतात्मीयदर्शनाद्विहितं स्वतः[1]।।४६।।

श्रवणात्मक ज्ञान भक्ति के लिए ही है इसलिए ज्ञान से भक्ति बड़ी है फिर भक्ति के द्वारा देवताओं का सत्कार करने से आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर शास्त्रोक्त मोक्ष स्वतः प्राप्त हो जाता है।

वाचां मलं मौखिकमान्तरञ्च स्वान्तैकतान्तं प्रथितस्वशब्दम्।
तस्यापहानाय तदेव पूर्वं समागतं श्रौतमुपासनं यत्[2]।।४७।।

मौखिक और मानसिक जो वैखरी ध्वनि रूपी शब्द व्यवहार में प्रसिद्ध है वह तो वाणी का मल है। वह चित्त की एकाग्रता से पूर्व ही रहता है। उस मल को दूर करने के लिए जो श्रौत उपासना है वही पहले करनी चाहिए अर्थात् वेदोक्त पूजा पद्धति योगसाधना का प्रथम सोपान है।

जीवानां राक्षसानां च[3] प्रेतानां देवतात्मनाम्।
पृथक्कृत्य वचो ज्ञातं जपशास्त्रस्वयोगतः[4]।।४८।।

जप और शास्त्र के साथ दृढ़ सम्बन्ध हो जाने से अपनी योगसाधना से जीव, राक्षस, प्रेत तथा देवताओं का शब्द अलग-अलग ज्ञात होने लग जाता है।

सिद्धाऽभ्यासात् त्रिकालज्ञपदमात्रानुकूलतः।
प्राप्तं लोकोपकृतये तन्मात्रावेशसत्फलम्[5]।।४९।।

सिद्धि का अभ्यास हो जाने पर शब्दादि पंच तन्मात्राओं में समाधि लग जाने से योगी उनके ऊपर विजय पा लेता है तब उस समाधि का फल–तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है जिससे योगी जगत् का उपकार करते हैं।

आज्ञाचक्रस्वयोगेन मनोवेगस्य रोधनात्।
ईश्वरस्य दयालोकाद् दृश्यते सूक्ष्मदर्शनम्।।५०।।

---

१. पाठभेद–यत्र यथोक्तं फलमाप्यते।।३८।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–मलापहाराय तदेवमादिमं समागतं श्रौतमुपासनं सताम्।।३९।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–रजसां पुंसां.................।।४०।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–बुद्धं सात्त्विक्या धारणावशात्।।४०।। (प्रकाशित प्रति)
५. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

आज्ञाचक्र में अपनी योगसाधना से, मनोवेग को रोकने से, ईश्वर की कृपा से सूक्ष्मदर्शनवाला परमतत्त्व दिखाई देता है अर्थात् सूक्ष्मस्वरूपवाले परमतत्त्व का दर्शन हो जाता है।

अहिंसाऽनुग्रहौ यत्र सार्वभौमस्वरूपतः।
असाध्यं साधयेद् धीमान् धारणाध्यानयोगतः।।५१।।

जहां पर अहिंसा और अनुग्रह (कृपा, दया) सार्वभौम स्वरूप से वर्तमान रहते हैं वहां पर बुद्धिमान् योगी धारणा और ध्यानयोग से असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है।

श्रीमद्गोरक्षनाथेन सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ।
यथोक्तं वर्णितं ताभ्यां सम्प्रापि स्वात्मयोगतः।।५२।।

श्रीमान् गोरक्षनाथजी के द्वारा कही गई योगविषयक बातें **'सिद्धसिद्धान्त-पद्धति'** में वर्णित की गई हैं, उन्हीं को उन दोनों ने अपने आत्मयोग के माध्यम से पा लिया।

जन्मनः प्रागनित्यत्वमवसानेऽपि तत्तथा।
षड्विकारोपसक्तस्य देहस्य नित्यता कुतः।।५३।।

जन्म से पहले अनित्य (हमेशा न रहना) वैसे ही समाप्ति पर भी, फिर छः विकारों से युक्त शरीर की नित्यता कहां से होगी ? अर्थात् जन्म से पहले भी शरीर की सत्ता नहीं होती और जीवन की समाप्ति पर भी प्राणी की सत्ता नहीं रहती, अतः शरीर अनित्य है।

भोगेन चरितार्थत्वात् प्रारब्धकर्मसम्फलम्।
भोगस्य सत्यताभ्रान्त्या व्यसनं बहु जायते।।५४।।

भोग से चरितार्थत्व के कारण प्रारब्ध कर्म का उचित फल मिलता है और भोग की सत्यता की भ्रान्ति से अनेक व्यसन उत्पन्न होते हैं अर्थात् भोग को सच मानने से अनेक प्रकार के व्यसन मनुष्य में उत्पन्न हो जाते हैं।

अनिच्छयापि यद् वित्तं यो भोगो लभ्यते स्वतः।
ज्ञानिना दीर्घजीवित्वमिति प्रारब्धयोगतः।।५५।।

बिना इच्छा से भी जो धन, जो भोग अनायास ही पा लिया जाता है, वैसे ही ज्ञानी के द्वारा प्रारब्धयोग से दीर्घजीवित्व भी स्वतः प्राप्त हो जाता है।

न चात्मा स्त्रीपुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
स यं यं देहमादत्ते तेन तेन तथोच्यते।।५६।।

और यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न ही यह नपुंसक है। वह जिस-जिस देह को धारण करती है उस-उस नाम से वैसे ही कही जाती है।

मूषाया रूपतां ताम्रं सुवर्णं रजतं तथा।
देहस्य रूपतां चात्मा न जीवो स्त्रीनपुंसकौ।।५७।।

तांबा, सोना और वैसे ही रजत (चाँदी) मूषा (साँचा) के स्वरूप को प्राप्त जो जाते हैं और उसी प्रकार शरीर की रूपता को आत्मा प्राप्त करती है। जीव स्त्री नपुंसक नहीं होता अर्थात् यदि देह पुरुष है तो आत्मा पुरुषरूप हो जाती है और यदि स्त्री है तो स्त्रीरूप हो जाती है परन्तु उसमें विद्यमान सूक्ष्म चैतन्यस्वरूप जीव पर स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक के भाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

इत्यादिज्ञानमाश्रित्य योगतत्त्वविवेकतः।
प्राणनिष्क्रान्तितुल्योऽयं समाधिः समपद्यत[1]।।५८।।

इत्यादि उपर्युक्त ज्ञान को योगतत्त्व के विवेचन से पाकर उसका आश्रय लेकर प्राणनिष्क्रान्ति के समान यह समाधि को प्राप्त हुआ अर्थात् उन दोनों ने समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लिया।

ब्रह्मवेत्तृपदं ब्रह्मभूतं गोरक्षवेशजम्।
साक्षात्कृतस्वरूपेण प्रापि शास्त्रैकबोधजम्।।५९।।

गोरक्षनाथजी के वेश से जायमान (उत्पन्न) ब्रह्मवेत्ताओं का ब्रह्मस्वरूप पद भी उन दोनों ने 'तत्त्वमसि' आदि शास्त्रीय प्रत्यक्षज्ञान से प्राप्त कर लिया।

जीवतोरेव हि तयोर्जीवन्मुक्तपदाश्रयात्।
प्राणनिष्क्रान्तिहीनेव समाधिः समपद्यत[2]।।६०।।

---

१. ५० से ५८ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. ५९, ६० पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है तथा ६० के स्थान पर निम्न पद्य मिलता है–
जीवन्मुक्तौ महाबोधौ स्वप्नमायामनोरथौ।
धातारणपतिस्तुल्यौ जातौ लीनावि स्वयम्।।५०।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

जीवन्मुक्त पद की प्राप्ति से उन दोनों की समाधि प्राणरहित पुरुष की भांति होगई। जीवन्मुक्त पुरुष राग-द्वेषरहित होकर केवल इस संसार को देखता रहता है, किसी कार्य में आसक्त नहीं होता और नित्य कर्मादि में जो प्रवृत्ति है वह प्रारब्ध कर्म के बल से प्रकृति करती रहती है, वह तो केवल साक्षीमात्र ही रहता है।

कुलं कुलं यस्य यदाऽकुलं कुलं
मनोऽमलो यस्य हि नामलो मलः।
स धन्यधन्यो विषयैरनादृतो
द्रुतं द्रुतं चित्तमलं सदात्मनि[३]।।६१।।

जिसका कुल (वंश) कुलीन है और जिसका शरीर (आकुल) पुष्ट है, जिसका मन निर्मल है और निश्चय ही उसमें दोषयुक्त विकार नहीं है तथा विषयों से पराङ्मुख जिसने शीघ्रातिशीघ्र अपने चित्त को पर्याप्तरूप से (दृढ़ता से) सदात्मा में लगा दिया है वह अत्यन्त भाग्यशाली है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते धातारणपत्यानयनमोक्षणं
नाम त्रयोविंशः सर्गः।

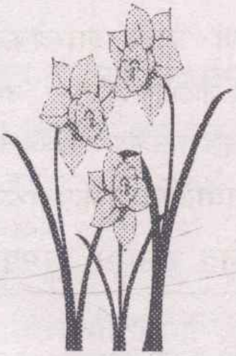

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

चतुर्विंशः सर्गः

जनतोपदेशादिप्रकरणम्

न ज्ञाता तव भासि सर्गलतिका माया यया त्वं वृतो
विद्वद्भिः किल शास्त्रकर्तृकरणैर्वैकल्पिकैः खण्डनैः।
प्रत्यक्षैरपि चाद्वितीयवचनैराचार्यचर्यापरै-
र्भो मस्तेश्वर! साक्षिता गुणगता लीलापि लीना तव[१]।।१।।

हे मस्तेश्वर! जिस माया से तुम परिछिन्न प्रतीत होते हो ऐसी सृष्टि की प्रवाहमयी लतास्वरूपा तुम्हारी माया निःसन्देह विद्वानों (दार्शनिकों), शास्त्रकर्त्ताओं, इन्द्रियों और वैकल्पिक खण्डनों, प्रत्यक्षादि प्रमाणों, अद्वितीय वचनों एवं आचार्य (गुरु) की सेवा में लगे हुओं के द्वारा ज्ञात नहीं होती। साक्षिरूप बनी हुई, गुणों को प्राप्त हुई तुम्हारी लीला भी प्रच्छन्नरूपा ही है अर्थात् तुम्हारी माया और लीला अपरम्पार है, उसे जानना अत्यन्त कठिन है। उसका दर्शन प्रत्यक्ष रूप से नहीं हो सकता, वह तो मात्र अनुभूति का विषय है।

भरतपुर्निकटस्थ-पिगोरनगरप्रसूः।
तोतानाथो मस्तनाथशिष्यो गुरुमतेऽभवत्[२]।।२।।

भरतपुर के समीपवर्ती 'पिगोर' नामक नगर में जन्मे तोतानाथजी मस्तनाथजी के शिष्य हुए।

स्वामिमाया योगभक्त्याकृष्टदेह उपागतः।
एकान्तवासिता देवभक्त्यर्थं प्रभुसन्निधौ[३]।।३।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. ऐसे भाव के प्रकाशित प्रति में निम्न दो पद्य मिलते हैं–

(क) भारते धर्मकर्माद्यैर्विख्यातं नगरं महत्।
श्रीभरतपुरं रम्यं मथुरामण्डले गतम्।

(ख) तत्रापि च पिगोराख्यो धार्मिको ग्राम उत्तमः।
तस्य ग्रामस्य वास्तव्यस्तोतानाथोऽभवत् यतिः।।३।। (प्रकाशित प्रति)

३. ऐसे भाव निम्न पद्यों में मिलते हैं–

(क) स एव मस्तनाथस्य शिष्यः शिष्यगुणाश्रयः।
शुकतुल्यः समागत्य बभूवेश्वरमानसः।।४।।

प्रभु .(नाथजी) की माया से तथा योगविषयक दृढ़भक्ति से आकृष्ट हो तोतानाथजी एकान्तवास तथा देवभक्ति हेतु गुरु के समीप आए।

स्वतो ज्ञानञ्च वैराग्यमदात्तस्मै गुरुर्यदा।
अन्ते सर्वस्य यद्योग्यं[१] साधोर्जन्मफलं हि तत्।।४।।

जब गुरुदेव ने उसे ज्ञान और वैराग्य का उपदेश दे दिया तब सबके अन्त में तोतानाथजी ने जो कि उनके लिए उचित था, अपने साधु जन्म को सफल कर दिया।

काममात्रे मतिर्नीचे स्वार्थे[२] कामे च मध्यमे।
त्रिवर्गे च गृहस्थानामुत्तमानां मतिर्भवेत्।।५।।

अच्छी या बुरी, केवल कामविषयक समस्त इच्छाएं नीच पुरुष में होती हैं और अर्थ और कामविषयक इच्छा मध्यम कोटि के व्यक्तियों में होती हैं तथा जो उत्तम श्रेणी के गृहस्थ पुरुष हैं उनकी धर्म, अर्थ, काम इन तीनों में इच्छा होती है।

मुक्तरूपे काममात्रे मुक्त्यर्थकामगा तथा।
चतुर्वर्गे गृहस्थेषु यन्मतिस्ते तदुत्तमाः[३]।।६।।

वैसे ही जिन गृहस्थियों की केवल मोक्षरूप काम में इच्छा होती है ऐसे मुमुक्षुजन तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों में जिनकी इच्छा होती है, वे व्यक्ति उत्तम श्रेणी के होते हैं।

निर्विद्य ये त्रिवर्गात्स्युः साधुवेशा विरक्तितः[४]।
इहाऽमुत्र वीतरागा न गृहस्था न भाजनाः[५]।।७।।

जो धर्म, अर्थ, काम इन तीनों से विरक्त होकर साधु वेष के अनुराग से इस लोक तथा परलोक की तृष्णा का परित्याग कर देते हैं वे गृहस्थजन न किसी वस्तु के अधिकारी है अर्थात् उन्हें किसी भौतिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं रहती और वे ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

(ख) नाथमायासमाकृष्टो योगमायासमावृतम्।
स मस्तनाथमस्तेशं समावव्राज भक्तितः।।५।। (प्रकाशित प्रति)

१. पाठभेद–योगं............ ।।६।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–धने............ ।।७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–मोक्षमात्राभिलाषेऽस्मिन् मुक्त्यर्थकामना तथा।
चतुर्वर्गोपवर्गोऽपि.................................... ।।८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–साधुवेषपरायणः............ ।।९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–कथं ते गृहगा मताः....... ।।९।। (प्रकाशित प्रति)

इत्येवं वीतविषयस्पृहाणां यतिमार्गिणाम्।
भुक्तभोगप्रकृत्येव त्यक्तानां मतिरुच्यते।।८।।

इस प्रकार विषयों की लालसा से मुक्त हुए संयम मार्ग का अवलम्बन करनेवालों की बुद्धि भोग भोगने के पश्चात् वीतप्रकृति पुरुषों की भाँति हो जाती है, अर्थात् वे मुक्तपुरुष के समान हो जाते हैं।

सांख्येऽधमास्तुष्टिसिद्धौ भुक्तिमुक्तिषु मध्यमाः।
तुष्टिपुष्टिपुष्टभक्तौ योगे योगविचक्षणाः।।९।।

भाग्य से ही मुक्ति होगी फिर परिश्रम क्यों करें अथवा प्रकृति ही कर देगी इत्यादि प्रकार की तुष्टि सिद्धि में रहनेवाले सांख्यमतावलम्बी अधम (निकृष्ट) कहे गये हैं तथा भोग और मोक्ष में रहनेवाले मध्यम एवं तुष्टि की पुष्टि से परिपुष्ट भक्तिवाले योगशास्त्रावलम्बी उत्तम माने गये हैं।

रमन्ते साधवः केचित्तीर्थेषु निजमन्दिरे।
गुरुमार्गसम्प्रदायरता अन्ये भवन्ति हि[1]।।१०।।

कुछ साधु तीर्थों में रमण करते हैं और कोई दूसरे गुरुसम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार अपने मन्दिरों में रहते हैं।

वैराग्यवृत्तिशून्यानां विषयैर्विषयो जयः।
अनन्तकोटिजीवानां स्थेमा च विषयैः कृतः।।११।।

वैराग्यवृत्ति से शून्य व्यक्तियों के विषय विषयों के द्वारा जीत लिए गए और अनन्त जीवों की स्थिरता (स्थिति) भी विषयों के द्वारा ही की गई है।

वैराग्यज्ञानयोगैश्च स्थिरता पुण्यशालिनाम्।
विषयाबन्धमासाद्य सर्वः सर्गो विराजते।।१२।।

और पुण्यशाली व्यक्तियों की वैराग्य और ज्ञानयोग के कारण स्थिरता है क्योंकि विषयों से समझौता (आबन्ध) करके सारी सृष्टि विराजमान है।

युध्यमाना विनश्येयुर्विषया विषयैर्विना।
स तद्वेगोपरोधाय सृष्टवान् विषयान् प्रभुः।।१३।।

विषयों के बिना विषययुक्त सांसारिक प्राणी विषयों से युद्ध करते हुए परस्पर नष्ट न हो जाये इसीलिए उस ईश्वर ने उस वेग को रोकने के लिए विषयों का सृजन किया है।

---

१. ८. ९. १० पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

कोटीनामेकल: कोऽपि ज्ञाततत्त्वो भवेदिह।
अबुद्धानां दशा का स्यादित्येवं विषयासव:।।१४।।

इस जगत् में संभवत: करोड़ों में कोई अकेला (एकाध) ही पुरुष तत्त्व को जान पाता है फिर अज्ञानियों की क्या दशा होगी क्योंकि विषयों का मद (नशा) इस प्रकार का ही होता है (वह ब्रह्मतत्त्व की तरफ ध्यान जाने ही नहीं देता) अर्थात् विषयासक्त व्यक्ति ब्रह्मतत्त्व को पाने में सर्वथा असमर्थ होता है।

एतावता न सत्यत्वं विषयाणां विचार्यताम्।
आपातरमणीयत्वं न सारस्तेषु विद्यते।।१५।।

इसी से विषयों की सत्यता नहीं है; इस पर विचार करो कि उन आपातरमणीय= प्रथम दृष्ट्या सुन्दर लगनेवाले विषयों में कोई सार नहीं है।

विषयाणां चेत् सत्यत्वं को नु धावेत् तप: प्रति।
हीरको यदि मुक्ता स्यात् को नु मुक्ताफलं त्यजेत्[१]।।१६।।

यदि विषयों में सत्यता होती तो वस्तुत: कौन तप में प्रवृत्त होता क्योंकि यदि हीरा मुक्ता होता तो नि:संदेह कौन मुक्ताफल को छोड़ता। अत: विषय और तप अलग-अलग चीज हैं और उनके परिणाम भी अलग-अलग ही हैं। विषय प्रारम्भ में मधुर प्रतीत होते हैं परन्तु परिणाम में कष्टदायी होते हैं जबकि तप प्रारम्भ में कष्टकर है और परिणाम में सुखदायी है।

एवं विचार्य गृहभारमुदस्य नैजे
तेभ्योऽन्यकाश्रमजिघृक्षुकतां निवेद्य।
आज्ञानुमत्यनुगती: प्रतिगृह्य सेवा-
मैच्छद्गुरो: सकलमीहितमेव तस्या:[२]।।१७।।

इस प्रकार विचार करके तोतानाथजी ने घर के भार को अपने आत्मीयजनों को सौंपकर उनके सम्मुख संन्यासाश्रम ग्रहण करने की अपनी इच्छा प्रकट की और उनकी आज्ञा, सम्मति तथा अनुमोदन पाकर गुरुसेवा की इच्छा की, जिस सेवा से समस्त मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं।

---

१. ११ से १६ तक पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद–विदिततत्त्वमति: शुकोऽयम्।।१६।। (प्रकाशित प्रति)

एत्य स्वाश्रमपीठेऽर्हे स्वामिचर्य्यापरोऽभवत्[1]।
तत्राऽन्या समुपायाता वेला परमदारुणा[2] ।।१८।।

अपने पूजनीय गुरुस्थल में आकर वह स्वामी की सेवा में संलग्न होगए परन्तु वहाँ एक और अन्य अत्यन्त कष्टमय घड़ी आगई।

अन्तर्धानकथावृत्तं गुरुवाचा श्रुतं तदा।
शिष्याणां सन्निधौ प्राह स्वामी स्नेहानुपूर्वत:[3] ।।१९।।

तब सब शिष्यों के सामने स्नेहपूर्वक गुरु के मुख से स्वयं के अन्तर्धान होने का वृत्तान्त सुनकर तोतानाथजी उद्विग्न होगए।

कदाचित्तपसे वन्यफलमूलाशनं कृतम्[4]।
करीरच्छायामाश्रित्य मर्त्यजन्मकरीरजाम् ।।२०।।

किसी समय तपस्या करने के लिए मस्तनाथजी मनुष्यजन्म रूप करीर से उत्पन्न करीर (कैर) वृक्ष की छाया में जा बैठे और वहाँ वन्य फल-मूलादि का भोजन किया।

निराहारो यताहारस्तन्मनस्क: समाहित:।
बोधतृप्त: प्रसन्नात्मा जगाद शिष्यमण्डलीम्[5] ।।२१।।

निराहार एवं संयमित भोजन करते हुये (अथवा संयमरूप भोजन करनेवाले) तन्मय मनवाले अर्थात् ब्रह्म में लीन, ब्रह्मज्ञान से संतुष्ट, प्रसन्नात्मा मस्तनाथजी अपनी शिष्यमण्डली से कहने लगे।

---

१. पाठभेद–नाथसेवा............ ।।१७।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–तोतानाथो गुरो: सेवी तीव्रवैराग्यतत्पर: ।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
इसके पश्चात् ऐसे ही भाव का अन्य पद्य भी प्रकाशित प्रति में मिलता है–
तत्रान्या समुपयाता वेला परमदारुणा।
अन्तर्यामिसमायोगादप्रतर्क्या स्वभावत: ।।१८।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–मस्तनाथ: कृपाकर: ।।१९।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–एकदा तपसे वृक्षं संसारं हापितुं भृशम्......... ।।२०।। (प्रकाशित प्रति)
इसी भाव का पद्य प्रकाशित प्रति में मिलता है–
फलानि वनजन्यानि मूलानि मधुराणि स:।
आनाय्य मस्तसिद्धोऽथ बुभोज भोजयन् प्रभुम् ।।२१।। (प्रकाशित प्रति)

५. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

फाल्गुनस्य सिते पक्षे यात्री यास्यति निर्गुणः।
निर्विकल्पो विकल्पाँश्च स्थानस्य त्यक्ष्यति ध्रुवम्।।२२।।

फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में यह यात्री निर्गुण, विकल्पशून्य ब्रह्मरूप होकर चला जावेगा तथा इस स्थान के समस्त क्रियाकलापों का निश्चितरूप से परित्याग कर देगा।

श्रुत्वा वचः परमदारुणमीरितं तत्
कालोऽथ कः किमिति लोकचयग्रसोऽसौ।
केनैष को जयति चैनमितिप्रभावं[1]
{कालो न वेत्ति किमसौ गुरुवर्यतेजः}।।२३।।

गुरुदेव के वियोगसूचक एवं अत्यन्त हृदयविदारक वचन सुनकर शिष्यों के मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि सबका संहार करनेवाला यह काल क्या चीज है और इसको कौन किस उपाय से जीत सकता है और क्या कारण है जो गुरुदेव का भी काल आगया। क्या वह काल गुरु के ऐश्वर्य को नहीं जानता ?

अन्यन्निजीयमतियोगविरक्तिभाजां सत्सम्प्रदायपरिचारकधर्मवृन्दम्।
आदेशशब्दपरिभाषणबीजभूतं पप्रच्छुरादरधिया शुकनाथकाद्याः।।२४।।

तब तोतानाथ आदि शिष्यों ने योग-वैराग्य का अवलम्बन करनेवाले, सम्प्रदायप्रवर्त्तक अपने समस्त धर्म और निज सम्प्रदाय में प्रचलित 'आदेश' शब्द के गूढार्थ के विषय में पूछा।

क्रमादमूनर्थचयान् समुक्तान् श्रुतौ षडङ्गेषु च दर्शनेषु।
सिद्धान्तमाश्रित्य यथार्थपृच्छं मस्तः स धीरं वचनं जगाद[2]।।२५।।

तब मस्तनाथजी ने श्रुति (वेदों) छः अंगों (वेदांगों) और छः दर्शनों में कहे गए अपने सिद्धान्त के अनुकूल यथार्थ प्रश्नानुसार क्रम से गम्भीर एवं सिद्धान्तभूत (सारभूत) वचन कहे।

---

१. पाण्डुलिपि में अन्तिम पंक्ति खण्डित होने के कारण उपलब्ध नहीं है तथा प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य है। कोष्ठकीय पाठ सम्पादिका ने लिखा है।
श्रुत्वा वचः परमदारुणदाहदावं कालोऽपि कालगरिमाणमुपेयिवांसम्।
मस्तं समस्तजनता जनभावगम्यं नम्यं नमन्ति शिरसा पुनरूचुरेनम्।।२४।।

२. पाठभेद–ह्युवाच।।२६।। (प्रकाशित प्रति)

वर्तमाने लडर्थोऽस्ति स भूते लुङ्लृट्शेषगः।
कालरूपो मृत्युरसौ बृहदारण्यके मतः।।२६।।

वर्तमानकाल में लट् का, भूतकाल में लुङ् और भविष्यत्काल में लृट् का अर्थ अभिव्यक्त करनेवाला वह कालरूपी मृत्यु है जो क्रम से लोगों को क्षीण करके समाप्त कर देता है ऐसा उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् में आया है।

कलयन् सर्वलोकान् स प्रारब्धगणको मतः।
परमात्मा परत्रभोगाय संग्रसेज्जनान्।।२७।।

वह काल सब लोगों को गिनता हुआ प्रारब्ध, भोग और आयु का गिननेवाला माना गया है उसी काल के द्वारा परमात्मा परलोक के भोगों का उपभोग कराने के लिए लोगों का संहार करता रहता है।

मासर्तुक्षणभोगादीन् विपाकान् भूतसाधनैः।
भौतिकैरेव मात्राणां क्षपणेन ग्रसत्यसौ[1]।।२८।।

मात्राओं के बिताने (क्षीण होने) से पृथ्वी आदि पंचभूतरूपी साधनों से तथा भौतिक मनुष्यादि द्वारा मास, ऋतु, क्षणसम्बन्धी समस्त भोगों को ग्रसता रहता है।

योगेन भूतीनथ[2] देहसिद्धीनात्मानमात्मीयप्रभावतन्त्रम्।
विधाय जन्मात्मन एव तन्त्रं जयेत् स कालं श्रितकालकालः।।२९।।

योग के द्वारा ऐश्वर्यों (भूति), देहसिद्धियों और आत्मा को अपने प्रभाव के अधीन करके जो योगी आत्मजन्म को स्वाधीन कर लेता है वह काल का भी काल बनकर काल को जीत लेता है।

स वेत्ति तं वा प्रभुकृत्यजातं गवादिकोज्जीवनकार्य्यकालम्।
परन्तु यो यच्चरितं विधत्ते श्रेष्ठोऽस्त्यतो लोकनयस्तथासौ[3]।।३०।।

यद्यपि वह काल गौ को जीवित करना इत्यादि मेरी समस्त महिमाओं को जानता है तो भी अपने अधिकार की शक्ति से मेरे ऊपर भी आक्रमण कर सकता है, क्योंकि जो जिस काम को करता है उस कार्य में वही श्रेष्ठ माना जाता है, यह लोकदृष्टि से भी सिद्ध है।

---

१. पाठभेद–स रसादितन्मात्राणां क्षपणेन ग्रसत्यलम्।।२९।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–भूतानथ.................................।।३०।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–स स्वाधिकारेऽपरवान् बलीयान्।।३१।। (प्रकाशित प्रति)

जानात्यसौ नैव गुरोर्मृतिं च[१] सर्वत्र नैकान्ततया स्थितिञ्च[२]।
तस्माद्गुरोरैहिकमैहिकं यत् तथोक्तमत्रास्ति न कालदोषः[३]।।३१।।

यह काल मेरी मृत्यु और सर्वत्र एकान्त रूप से मेरी स्थिति को नहीं जानता है, इसीलिए मेरा जो इस लोक का कर्त्तव्य है वह मेरी ऐहलौकिक चेष्टाओं से सम्बन्ध रखता है। इस विषय में काल का कुछ दोष नहीं है अर्थात् मैं कालवश होकर संसार से नहीं जारहा हूँ अपितु लोकमर्यादा की रक्षा हेतु इच्छा से जारहा हूँ।

योगाधिमार्गं श्रयतां स्वयोगः प्रतीत्य विक्षेपमुपायजातैः।
समाहितत्त्वस्य हठेन राजयोगादिकाङ्गीयबलैः सुसाध्यः।। ३२।।

योगमार्गानुयायी पुरुषों को अपने योग में विक्षेप जानकर उपायों द्वारा हठयोग से राजयोग के अंग यम-नियमादिकों के द्वारा अपना योग सिद्ध करना चाहिए अर्थात् अपने चित्त को विषयों से बार-बार जबरदस्ती रोकने के अभ्यास से योगसिद्धि प्राप्त करनी चाहिए।

स्वसम्प्रदायोऽखिलब्रह्मचर्यदीक्षादिमार्गैर्गुरुतः स मर्त्यः।
सर्वोऽपि वाचा स हि गुह्यरीत्या सुरक्षणीयः स्फुट एष वित्त[४]।। ३३।।

ब्रह्मचर्य के पालनादि द्वारा तथा गुरु के उपदेश से अपने सम्प्रदाय की रक्षा करनी चाहिए और उपदेशात्मक वचनों द्वारा तथा गुप्त मंत्र आदि के द्वारा समस्त प्राणियों की सुरक्षा को स्पष्ट रूप से अपना कर्त्तव्य समझो।

यूयं यथा साधयत प्रकामं
यथेच्छमाराधयत स्वदेवम्।
सोऽयं वियोगो हि शरीरभाजां
विभात्यवश्यं भवतान्न चिन्ता।।३४।।

तुम सब अपने-अपने कार्यों को पूर्णरूप से सिद्ध करो और अपने देव की इच्छानुसार आराधना करो क्योंकि यह वियोग निःसंदेह अवश्य ही शरीरधारियों (देह में आसक्त) में शोभायमान होता है, अतः तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। तुमसे चिन्ता की अपेक्षा नहीं है।

---

१. पाठभेद–कदापि मे...... ।।३२।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद–मम...... ।।३२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–न कालपारवश्यतया व्रजामि भो विजानत स्वात्मनि शिष्यतल्लजाः ।।३२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–३२. ३३ पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

आचार्यचर्या प्रभुभक्तिरुत्तमा
द्विजोत्तमानामपि सेवनं तथा।
सदान्नदानं जलदानमुत्तमं
विधीयतां शिष्यजनैरनारतम्[1]।।३५।।

आचार्य की सेवा करना ही परमेश्वर की उत्तम भक्ति होती है, वैसे ही श्रेष्ठ द्विजों (ब्राह्मणों) की सेवा करना भी। अन्नदान और जलदान सदैव उत्तम कहा गया है, अत: शिष्यों को लगातार इनका दान करना चाहिए।

सन्ध्या विधेया च विधाप्यतां पुन-
र्नैसर्गिको यज्ञविधिर्न हीयताम्।
प्रगीयतां स्तोत्रकथा महीयसां
न दीयतां कर्मविधिं विना क्रिया[1]।।३६।।

और सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। फिर प्राकृतिक विधि (धूना चेतन करना आदि) स्थापित करनी चाहिए। यज्ञविधि को नहीं छोड़ना चाहिए और कोई भी दानादि की क्रिया कर्मविधि के बिना नहीं करनी चाहिए।

दानं सुविद्याऽध्ययनं गृहस्थजनोपकाराय तपोनिदेश:।
जप: सुमन्त्रार्थचयग्रहोऽपि दीक्षादिशिक्षा सुविधेश्च चर्य्या[2]।। ३७।।
धर्मप्रचारश्च तथेदृशां यैर्लोकेषु स्याद्दुरितप्रवृत्ति:।
नैसर्गिकीयेन परत्र पुंसामिहार्थसौख्यादिसुलब्धिरब्धि:[3]।। ३८।।

गृहस्थी लोगों के उपकार के लिए दान, सद्विद्या का अध्ययन, तप का उपदेश, जप, उत्तम मंत्रों के अर्थ का ज्ञान, दीक्षा-मंत्रादि की शिक्षा, प्रतिदिन संध्या उपासना करनी चाहिए (अहरह: सन्ध्यामुपासीत) इत्यादि विधि का पालन और धर्म का प्रचार, इस प्रकार के कार्यो में रत रहनेवाले पुरुषों की पाप में प्रवृत्ति नहीं होती और वे स्वाभाविक सदाचार के पालन करने से परलोक में तथा इस लोक में सुखसागर को पाते हैं, अर्थात् सदाचरण से उन्हें इस लोक और परलोक दोनों में सुख ही सुख मिलता है।

---

१. ३४, ३५, ३६ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।
३. पाठभेद—न पाठमात्रेण भवन्ति विज्ञा यस्तु क्रियावान् पुरुष: स विद्वान्।।३६।। (प्रकाशित प्रति)

बृहदारण्यके वेदे छान्दोग्यादौ यथा विदाम्।
आदेश उपदेशोऽसौ गुरुणा समुदीरितः।।३९।।

बृहदारण्यक तथा छान्दोग्यादि उपनिषद् में जिस प्रकार से 'आदेश' शब्द का उपदेश आया है वंही गुरु ने भी दिया अर्थात् वहां ब्रह्म का उपदेशात्मक वचन 'आदेश' शब्द से कहा गया है। तैत्तिरियोपनिषद् में तो ब्रह्म की उपमा के वाक्य को आदेश कहा है वही गुरु ने शिष्यों से कहा अर्थात् गुरु मस्तनाथजी ने अब शिष्यों को ब्रह्म के स्वरूप के विषय में भी बता दिया।

असत् किं सच्च किमिति पुनः प्रश्ने समादिशत्।
मस्तः सद्भावषट्कीयविकाररहितं विदुः।।४०।।

असत् क्या है और सत् क्या है; इस प्रकार शिष्यों के पुनः पूछने पर मस्तनाथजी ने कहा कि जो भाव के जन्म, वृद्धि, क्षय, विनाश, परिणाम, ह्रास इन छः विकारों से रहित एवं कूटस्थ है उसी को विद्वान् सत् कहते हैं और वही चित्स्वरूप ब्रह्म है।

त्रिकालसममित्याहुर्ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः।
तद्विपर्य्ययमेवाऽथाऽसज्जगद्विदुरञ्चिताः।।४१।।

ब्रह्मवेत्ता विद्वज्जन उसी चिद्रूप ब्रह्म को तीनों कालों में एकरस कहते हैं, उसके विपरीत जड़ पदार्थमय समस्त ब्रह्माण्ड को असत् कहते हैं।

कालो भास्करतः प्राहुरेके तत्र विकल्पना।
जातेयं रविचन्द्रौ किं चलतो वा न गच्छतः[1]।।४२।।

कुछ एक आचार्य कहते हैं कि काल सूर्य से होता है वहाँ पर यह विकल्प उठता है कि सूर्य और चन्द्रमा चलते हैं अथवा नहीं।

जीवः सुषुप्तौ किं भूतो लीनश्चेत् परमात्मनि।
मुक्त एव भवेत् कस्मात् सृष्ट्यादौ[2] तत्र वाऽजनि।।४३।।

गाढ निद्रा में जीव का क्या स्वरूप होता है ? यदि ऐसा कहा जाये कि परमात्मा में लीन हो जाता है तो मुक्त हो जाना चाहिए, तब क्यों फिर निद्रा के पश्चात् अथवा सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हो जाता है।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं। २. पाठभेद–सर्गादौ...... ।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

अनादिवासनाबद्धो जलकुम्भ इवोदके।
तज्जलं बाह्यरूपं न जीवो जागर्ति तद्वशात्[1] ।।४४।।

जिस प्रकार जल में विद्यमान भी घटनिष्ठ जल जलरूप नहीं होता अपितु बाह्यरूप ही होता है, उसी प्रकार अनादि वासनाओं से घिरा हुआ जीव उसी कारण जागता नहीं है अर्थात् ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाता तथा घटोपाधि के कारण वैसे ही सुषुप्तिकाल में और सर्गादिकाल में ब्रह्म के विद्यमान होने पर भी जीव ब्रह्मरूप नहीं होता अनादिवासना से बद्ध होने के कारण। जल में गए हुए रस्सी से बंधे घड़े की भांति पुन: खींच लिया जाता है उसी प्रकार अनादिवासनाओं से बंधा होने के कारण जीव को बार-बार देह धारण करना पड़ता है।

चण्डांशुविधुतारादिवानं वाताच्छ्रुतौ श्रुतम्।
प्रवाहणान्महाकालादन्यस्तैस्तैर्विरच्यते[2] ।।४५।।

प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि नक्षत्रों का गमन प्रवह नामक महाकालरूप वायु से होता है और सूर्यादि के द्वारा ही अन्य सब की उत्पत्ति होती है, ऐसा उल्लेख श्रुतियों में आता है।

स एष भगवान् कालो भास्करो जगदन्तकृत्।
चरीकर्त्ति बरीभर्त्ति संजरीहर्ति यो जगत्[3] ।।४६।।

वह यह काल ही भगवान् सूर्यदेव है जो जगत् का अन्त करनेवाला है और जो संसार को बार-बार उत्पन्न करता है और बार-बार इसका भरण-पोषण करता है तथा बार-बार इसका संहार करता है।

जीवोऽणु: प्रभवोऽस्य सर्वजगतामादीशलीलाकृत:।
आदेशादिनय: प्रभाति नियतं वात: समीर: सदा[4] ।।४७।।

सूक्ष्म जीव और समस्त जगत् की उत्पत्ति, आदेशादि कर्मोपासना, नीति तथा प्रवणशील प्रकृतिवाली–वायु ये सब ईश्वर की लीला से रचित होकर सदैव नियत रूप से देदीप्यमान हो रहे हैं।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद–.......................नक्षत्राणि कथं वद ?
प्रवहकालद्वाराणि विधृतानि सता सह।।४२।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

४. पाठभेद–कालानलौ खं क्षिति....................... ।।४३।। (प्रकाशित प्रति)

भूस्तिष्ठत्यचला विना कुसमायाद् भूकम्पनाम्नः समा[१]।
मुक्तौ तत्र विलीनता कृतचयैः साकं सुषुप्तौ न हि।।४८।।

भूकम्प नाम के कुत्सित काल के अतिरिक्त यह पृथ्वी अचला[२] (जो हिलती नहीं है) होकर खड़ी रहती है अर्थात् केवल भूकम्प के समय ही पृथ्वी चलती (हिलती) है बाकी समय में नहीं इसी तरह मुक्ति होने पर किये हुए कर्मसमुदाय के साथ जीव पूर्णरूप से लीन हो जाता है इसीलिए मुक्त जीव की पुनरुत्पत्ति नहीं होती किन्तु सुषुप्ति काल में सबका लय नहीं होता है। अविद्या और संस्कार की सत्ता रह जाती है अतः फिर उत्पत्ति हो जाती है।

मस्तनाथजी ने इस पद्य के माध्यम से पृथ्वी का सततचलनवादिमत और मुक्त की पुनरुत्पत्तिवादी मत का युक्तियुक्त खण्डन योगसिद्धान्त से किया है।

भूम्नः स्वामिन् देवतानामृषीणां नैयत्यं यच्छ्रेय इष्टं नु तत्र।
कस्येत्येवं शिष्यपृक्षां विविच्य प्राहेशानो मस्तनाथोऽत्र तत्त्वम्।।४९।।

हे प्रभो ! देवता तथा ऋषियों का जो नाना रूप का कल्याणकारी नियम है, वह उन्हें किस सामर्थ्य से प्राप्त है ? इस प्रकार के शिष्यों के प्रश्न को विचार कर इसमें जो तत्त्व था उसके विषय में पुनः कहने लगे।

भूम्नो भावो मानसो देवतानां तद्द्वाराऽसौ कार्यकारी हि नित्यम्।
तद्रूपोऽसौ बुध्यते दृश्यते च साकारोऽयं कार्य्यकृन्नान्यथेति।।५०।।

देवताओं की जो नाना रूप की सत्ता है, वह मन के संकल्प से है। उसी मानसिक संकल्प के द्वारा वह जीव सदैव कार्य करता रहता है, क्योंकि साकार ही कार्य कर सकता है, निराकार नहीं। इसीलिए यह अनेक रूप में जाना जाता है और देखा भी जाता है।

आर्षं ज्ञानं तद्धि सत्यं तदीयं यत्स्यादन्यल्लोकवन्नैव किञ्चित्।
एकं तत्त्वं भासते यत्र यत्र तत्तत्सत्यं मानसेऽव्याप्तिरत्र।।५१।।

ऋषियों का जो ब्रह्मविषयक ज्ञान है वही सत्य है और इसके अतिरिक्त ज्ञान व्यवहारदशा में सत्य होता हुआ भी पारमार्थिक रूप से काल्पनिक है और जो एक तत्त्व ब्रह्मरूप सर्वत्र भासमान है, वह मन का विषय नहीं।

---

१. पाठभेद–विना ………………।।४३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–भूमि को अचला मानना भूगोल-विज्ञान के प्रतिकूल है।

न स्याद् व्याप्तिस्त्वाकृतेर्लोकवच्च नाकारं वाथर्त्त ईशत्वकृत्यो:।
कश्चिल्लोके सम्भवस्त्वेव मुक्ते शिष्यैर्मस्त उक्तवानुत्तरं तु[1]।।५२।।

साकार वस्तु व्यापक नहीं हो सकती, जैसे हमारा शरीर व्यापक नहीं है और आकार के बिना ईश्वरत्व और कृति (कार्य करने का प्रयत्न) इन दोनों के कारण संसार में कोई नहीं हो सकता। फिर परमेश्वर नाना आकार की सृष्टि की रचना कैसे करेगा ? यदि उसका आकार है तो वह व्यापक कैसे ? इस प्रकार शिष्यों के पूछने पर गुरुदेव ने उत्तर दिया कि.........।

उपादानं निमित्तं वा तटस्थं चोभयं तथा।
ब्रह्म तत् कीदृशं नाथ ! कृपया वद साम्प्रतम्[2]।।५३।।

हे नाथ ! ब्रह्म उपादान कारण है अथवा निमित्त कारण है और तटस्थ (उपादान और निमित्त से भिन्न है) है वैसे ही दोनों है ? वह ब्रह्म कैसा है ? इस समय कृपया उसके विषय में बताइए।

निमित्तवादिनामत्र परिच्छिन्नेऽपि सम्भव:।
योगसामर्थ्यता वस्तु निरुपादानमेव यत्।।५४।।

परमेश्वर को निमित्त कारण कहनेवाले नैयायिकों के मत में ईश्वर के साकार होने से परिच्छिन्न मान लेने पर भी सृष्टि की उत्पत्ति हो सकती है, अर्थात् ईश्वर का शरीर परिच्छिन्न होने पर भी आत्मा को व्यापक मान लेने से सृष्टि के नियमादि में कोई क्षति नहीं हो सकती और बिना उपादान के जो द्व्यणुकादि सकल वस्तु पैदा होती है वह सम्बन्ध का सामर्थ्य है, अर्थात् दो अणुओं के संबंध से द्व्यणुक, तीन अणुओं के संबंध में त्र्यणुक इसी प्रकार संबंध करने से सारे पदार्थ बन जाते हैं। इसी का नाम आरम्भवाद है।[3]

एकदेशिमतं ह्येतदुपादानं श्रुतौ श्रुतम्।
ब्रह्म तस्यैकता तेन निमित्तत्वं न युज्यते।।५५।।

उपर्युक्त पद्य में जो मत कहा गया है वह एकदेशी है। जबकि श्रुतियों में जगत् का उपादान कारण ब्रह्म बताया गया है और वह ब्रह्म एक ही है, अत: केवल निमित्त कारण मानना उचित नहीं है।

प्रकाशोऽस्य स्वभावो य: सर्वत्राऽसौ व्यवस्थित:।
आवृतोऽसौ जडे सत्त्वं नावृतं तेन संस्थित:।।५६।।

---

१. ४९ से ५२ तक पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं हैं।

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाण्डुलिपि से संकलित।

प्रकाश इस (ब्रह्म) का स्वभाव है, जो सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु जड़ पदार्थ में वह अन्तर्हित है अर्थात् ढका हुआ रहता है परन्तु उसमें भी सत्ता तिरोहित नहीं है। इसी से जड़ में भी स्थित है, परन्तु प्रकाश आवृत होने से ज्ञानशून्य है।

अनावृतस्वरूपं च चेतने ज्ञानमुच्यते।
सर्वात्मा पादरूपेण कार्य्यमाक्रम्य तिष्ठति।।५७।।

चेतन प्राणी (मनुष्यादि) में विद्यमान अनावृत स्वरूप प्रकाश ही ज्ञान कहलाता है। सर्वात्मा ब्रह्म एकपाद (अंश) से संसार को आक्रान्त करके स्थित है, तीन पाद (अंश) शुद्ध चिद्रूप हैं।

सर्वकार्यस्वामिरूपमीशत्वं गुरुवाक्यतः।
लीलानिमित्तमुद्दिश्य शिवादेः सर्वगं मतम्।।५८।।

लीला रूप निमित्त को उद्दिष्ट (लक्ष्य) करके सर्वत्र सर्वकार्य स्वामिरूप ईश्वरत्व शिवादि का है, यह गुरुवचन से ज्ञात हुआ।

अपरिच्छिन्नरूपोऽसौ सच्चिदानन्दलक्षणः।
तटस्थस्तु परिच्छेदं तत्तत्कार्यार्थमाश्रितः।।५९।।

सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म–देश, काल, वस्तु–इन तीनों से परिमित नहीं है, किन्तु तत्तत्कार्य करने के लिए उदासीन रहता हुआ भी माया द्वारा परिच्छिन्न है, अर्थात् शरीर अदि ग्रहण कर लेता है।

मुहुः पृच्छाऽभवत्तत्र[१] राजाऽत्र यदि दण्डकः।
परत्र धर्मराजादि सत्त्वं कस्मात्प्रगीयते।।६०।।

शिष्यों ने पुनः प्रश्न किया कि यदि इस लोक में दण्ड देनेवाला राजा विद्यमान है तो परलोक में धर्मराज आदि की सत्ता किस कारण मानी जाती है ?

प्राप्ताऽत्र पापफलतः पुनरावृतौ स्याद्
दण्डस्य याम्यविफलत्वमनर्हगत्वम्।
वैयर्थ्यमत्र यदि जातकृतिर्मुहुः[२] स्यात्
तत्रापि वात्र न हि तत्र नृपो वृथैव[३]।।६१।।

---

१. पाठभेद–पुनरूचुस्तथा शिष्या.......... ।।५१।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–दण्डकृतिः पुनः.................. ।।५२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाण्डुलिपि में इसके बाद के पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं।

यदि यहां पर ही राजा द्वारा पाप का फल मिल चुका है और वहां यमराज भी देगा तो पुनरावृत्ति हो जायेगी। ऐसा होने से निपराधियों में दिया हुआ यमराज का दण्ड अनुचित होगा और यम का कर्म विफल हो जायेगा और यहां के राजा का दिया हुआ दण्ड भी व्यर्थ ही होगा।

तदुत्तरं प्राह स मस्तनाथः
सर्वस्य लोकस्य न राजदण्डः।
सत्त्वेऽपि पूर्णोऽप्यथ सत्यवाद-
विनिश्चयान्नैव कृतान्ततुल्यः।।६२।।

इसके उत्तर में मस्तनाथजी कहने लगे कि सभी लोगों के लिए राजा दण्ड नहीं देता अपितु प्राणी के सत्य और पूर्ण होने पर भी सत्यवाद का निश्चय करने के कारण यमराज के समान उचित दण्डविधान नहीं किया जा सकता क्योंकि कोई भी राजा निश्चय नहीं कर पाता कि अपराधी ने अमुक अपराध भी किया है अथवा नहीं, जबकि यम तो सभी के कर्मों और मन में विद्यमान भावों तक को भी जानता है। अतः उसके द्वारा किया गया दण्डविधान उचित है। यम के तुल्य सत्य और असत्य का निश्चय न कर पाने के कारण राजा का दण्डविधान सभी लोगों के लिए उचित नहीं हो पाता। कभी-कभी बेकसूर दण्ड पा लेता है और कभी-कभी अपराधी दण्ड से मुक्त भी हो जाता है।

यथार्थतत्त्वस्य न सिद्धिरत्र
सर्वत्र सर्वैरपि वादिवाक्यैः।
स्वन्यूनताभिस्त्वथ च प्रमाणे
सम्पद्यते न नृपनीतिरेषा।।६३।।

सभी जगह वादी के सम्पूर्ण वचनों से इस अपराध विषय में यथार्थ तत्त्व का निर्णय (सिद्धि) नहीं हो पाता और अपनी कमियों के कारण यह नृपनीति प्रमाणित नहीं होती, अर्थात् सत्य के उद्घाटन में समर्थ नहीं हो पाती।

अपूर्वदण्डस्य च युज्यतेऽद्धा
समस्तभूपेषु कृतेऽपराधे।
न चाधिको दण्डविधिर्विधाने
न न्यूनता नापि भवेत्प्रमादः।।६४।।

और अपराध किये जाने पर भी सभी जगह समस्त राजाओं के विषय में दण्ड देखा जाता है। अपूर्णता का क्या कहना, कहीं दण्ड दिया ही नहीं जाता और कहीं निर्दोष को दण्ड दे दिया जाता है। उस दण्ड को अपूर्ण दण्ड कहा जाता है। अतः और दण्डविधान होने पर अधिक दण्डविधि नहीं की जानी चाहिए और न ही अपराध से कम दण्ड देना चाहिए तथा न ही दण्ड देने में लापरवाही (प्रमाद) करनी चाहिए।

अतश्च धर्मोऽपि च धर्मराजो
यमस्य याम्यं यमदूततत्त्वम्।
सा चित्रगुप्तेऽपि विचित्रगुप्तिः
संदृश्यते नीतिरनेकरूपा।।६५।।

और इसीलिए धर्मराज और धर्म भी यम का यमसंबंधी यमदूततत्त्व है। वह अनेकरूपोंवाली नीति चित्रगुप्त में भी विचित्र गुप्तिवाली दिखाई देती है अर्थात् धर्मराज की भांति धर्म भी पुण्य-पाप का फल देने में समर्थ है तथा चित्रगुप्त की नीति विचित्र एवं गुप्त है जो गूढ़ बातों की भी जानकारी रखती है और तदनुसार दण्डित करती है।

कथं नरो विपश्चित्स्यादेवं पृष्टे समादिशत्।
मस्त आत्मापि श्रोतव्यो मन्तव्यश्च समाहितैः।।६६।।

मनुष्य कैसे विद्वान् (आत्मज्ञानी) होवे–इस प्रकार पूछने पर मस्तनाथजी ने उपदेश दिया कि ध्यानयोग में संलग्न मनुष्यों के द्वारा ही आत्मा के विषय में सुनना चाहिए और मनन करना चाहिए।

योगात्समाधाय मनःप्रवाहं
श्रुत्या मतस्यास्य मतं निरूप्य।
आलोक्य चात्मानमलंप्रकाशं
संकाशसंवेदनवेदभावम्।।६७।।

योग से मन के प्रवाह (विचारों) को संयमित करके और श्रुति (विदशास्त्र) से इस मत का निरूपण करके निर्मल प्रकाशस्वरूप, चमक से युक्त, ज्ञानस्वरूप और वेदस्वरूप (सब कुछ जानने के भाववाली) आत्मा को देखकर ही उसे जानने में व्यक्ति समर्थ होता है।

सर्वत्र मन्दिरेष्वेको यादृशः पूज्यते शिवः।
शिवस्य किन्नु मूर्त्तिश्च नारीभिः पूज्यते न वा ?।।६८।।

सभी जगह मन्दिरों में मुख्यरूप से एक लिङ्ग रूप में शिव का जैसा पूजन किया जाता है, क्या स्त्रियों द्वारा शिव की वह लिङ्ग रूप मूर्ति पूजी जाती है अथवा नहीं ?

लिङ्गं ज्योतिः समाख्यातमाकाराकारवर्जितम्।
ऊर्ध्वज्वलनज्वाला या तादृशी मूर्त्तिरस्य भोः।।६९।।

विशेष आकार से रहित ज्योति को लिङ्ग कहा गया है। अरे ! जो ऊर्ध्वगामी, ज्वलनशील ज्वाला है उसी प्रकार की इसकी मूर्ति (आकार) है, अर्थात् जलती हुई अग्नि की जो ऊपर की ओर जाने के स्वभाववाली ज्वाला है उससे उत्पन्न ज्योति भी उसी प्रकार की होती है। भाव यह है कि लिङ्ग की पूजा नहीं है अपितु ज्योति की पूजा है।

बिन्दुर्नादः कारणं विश्वमात्रे तस्माच्चिह्नं पूज्यते कार्यहेतोः।
गोलाकारं चिह्नरूपं यदासीत् सांख्ये तत्त्वं जायमानं प्रकृत्याः।।७०।।

संसार में बिन्दु और नाद कारण है इसीलिए कार्य के प्रयोजनवश चिह्न (लिङ्ग) की पूजा की जाती है जो गोलाकार चिह्नरूप था वह सांख्यदर्शन में प्रकृति से उत्पन्न होता हुआ (महत्) तत्त्व था। अर्थात् संसारमात्र का कारण बिन्दु एवं नाद है। पहला प्रकृति से बिन्दु के समान गोलाकार चिह्न उत्पन्न होता है। सांख्यदर्शन में इसी का नाम महत्तत्त्व है। बिन्दु से ओंकाररूप प्राथमिक एक शब्द उत्पन्न है। यह ही अनाहत 'नाद' है। यह शब्द आकाशरूप गुणवाला है। इसी का नाम शब्द तन्मात्रा है। उस बिन्दु का ही यह पूजन है।

धातुर्विष्णोर्विवादोऽभूत् पुरा सर्गे महत्तमम्।
शैवीमायाप्रभावेण लिङ्गाकारं विलोक्य किम्।।७१।।

प्राचीनकाल में सृष्टि में शैवी माया के प्रभाव से ज्योति को लिङ्गाकार रूप में देखकर ब्रह्मा और विष्णु में बड़ा भारी विवाद हुआ कि यह ज्योति क्या है।

तस्मात् सर्वत्र तस्यैव ततः प्रारभ्य पूजनम्।
सर्गारम्भात् प्रचालितं ज्योतिर्लिङ्गस्य पूजनम्।।७२।।

इस कारण सब जगह तब से उसका पूजन आरम्भ करके सृष्टि के प्रारम्भ से ही ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा का प्रचलन होगया।

सर्ववर्णैर्द्विजैर्नारी-नरैः पिण्डशिवार्चनम्।
ओंकारजापसंयुक्तं सप्रसादं विधीयताम्।।७३।।

अतः सभी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) को प्रत्येक नर-नारी को पिण्डरूप शिव की पूजा ओंकार जाप करते हुए प्रसन्नता से करनी चाहिए।

यथा नरास्तथा नार्यो गायत्रीपाठसत्तमाः।
साधिकारास्तथा प्रोक्ता वेदवादेऽपि सम्मताः।।७४।।

गायत्री पाठ का जितना अधिकार पुरुषों को है उतना ही स्त्रियों को भी है। वेद से ही यह सिद्धान्त प्रमाणित है।

मुक्तिः सत्त्वे च सर्वेषामुच्छेदो जीवसंसृतेः।
सत्त्वे सर्वज्ञता तस्य परेशस्य मता ध्रुवम्।।७५।।

और यदि सभी प्राणियों की मुक्ति हो जाये तो समस्त जीवसमुदाय का विनाश ही हो जायेगा, क्योंकि प्राणी के विषय में उस परमेश्वर की सर्वज्ञता निश्चित मानी गई है, अर्थात् जब सभी विद्यमान होंगे तभी तो वह परमात्मा उनके विषय में जानेगा। यदि ज्ञेय पदार्थ ही नहीं होगा तो ज्ञाता किसका होगा ?

स्वातन्त्र्यान्मुक्तजीवस्य स्थानस्य पूर्त्तये प्रभुः।
अन्यं जीवं समुत्पाद्य न नाशो जीवसंसृतेः।।७६।।

परमात्मा मुक्त जीव के स्थान की पूर्ति करने के लिए स्वतन्त्रता से अन्य जीव को उत्पन्न करके उसकी पूर्ति कर देता है अर्थात् उसकी पूर्ति के लिए अन्य जीव को उत्पन्न कर देता है और इस प्रकार जीवसृष्टि का नाश नहीं होता।

का सादौ सृष्टिराख्याता संकल्पात् कथिता पुरा।
पश्चाच्च मैथुनाज्जाता सुरादिर्मानवक्रमात्।।७७।।

प्रारम्भ में वह सृष्टि कौन-सी कही गई है ? पहले संकल्प से उत्पन्न कही गई है और बाद में देवतादि और मानवक्रम से मैथुन से उत्पन्न हुई अर्थात् प्रारम्भ में सृष्टि परमात्मा के संकल्पमात्र से उत्पन्न हुई और बाद में देवतादि एवं मानवक्रम से नर-नारी के संयोग से उत्पन्न हुई।

इत्थं संवदतां मध्ये चौरंग्यादितपस्विनः।
कैलासाचलतः प्राप्ता दृष्ट्वा नाथं ततो गताः।।७८।।

इस प्रकार कहते हुओं के मध्य में ही चौरंगी आदि तपस्वी कैलास पर्वत से चलते हुए वहां आ पहुंचे और नाथजी को देखकर पुनः चले गए अर्थात् नाथजी का दर्शन करके वहां से फिर चले गए।

बोहरं बिधड़ानात् स तोतानाथः समागतः।
मन्दिरं चन्दिरं चक्रे सुखधाम निजं गुरोः।।७९।।

तभी बिधड़ान गांव से वह तोतानाथजी भी बोहर आगये और आकर उन्होंने अपने गुरु का सुन्दर मन्दिर बनवाया जो सुख का स्थान है।

वेदरसाष्टभूसंख्ये वत्सरे च सिते दले।
नवम्यां फाल्गुने मासे मस्तनाथो गुरुः शिवः।।८०।।
शुभे लग्ने शुभे पादे शुभे योगे शुभे क्षणे।
दशायां भे तिथौ पक्षे मस्तदेवोऽजहाद् वपुः।।८१।।

विक्रम संवत् १८६४ (१८०७ ई०) फाल्गुन मास, शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में शुभ लग्न, शुभ चरण, शुभ योग, शुभ क्षण, शुभ नक्षत्र, शुभ पक्ष और तिथि में शिवस्वरूप मस्तदेव गुरु मस्तनाथजी ने शरीर को छोड़ दिया।

तदोदन्तप्रचारोऽभूत् सर्वतस्ते गिरं जगुः।
मस्तोपकारसंभारां सहारां भूभुजो जनाः।।८२।।

वह समाचार सभी जगह फैल गया तब राजा एवं प्रजाजन मस्तनाथजी के उपकारों को हारसहित सब ओर बखान करने लगे अर्थात् उनके गुणों का बखान करते हुए उन्हें पुष्पाञ्जलि अर्पित करने लगे।

विधड़ान पुरात्पंक्तिक्रोशे देहं समानयन्।
चतुरङ्गीस्थले रम्ये बोहरस्याथ योगिनः।।८३।।

उनके पार्थिव शरीर को विधड़ान नगर से दस कोस की दूरी पर स्थित बोहर के रमणीय चतुरङ्गीस्थल पर योगिजन ले आए।

योगी तदा कश्चिदयं जगाद ह
गोरक्षनाथो भगवाञ्जगद्धरः।
मृतोऽयमस्याथ कथं हि मृत्युमान्
विश्वासमासादितवान्न शङ्कितः।।८४।।

तब किसी शंकित योगी ने कहा कि संसार का उद्धार करनेवाला भगवान् गोरक्षनाथ ही है, यह मर गया है फिर यह कैसे मरणशील है ऐसा विश्वास नहीं हुआ।

यमस्य यामस्य न शङ्कनं क्वचि-
न्नकालकालेयकलङ्कटङ्कितः।
अलंबुभूषुः स्वरनाददेवता
न देवता कापि बतैनमेति न।।८५।।

तब मस्तनाथजी ने आकाश में प्रकट होकर कहा कि कहीं भी मृत्यु (यम) का एवं यमदूतों की शंका (भय) नहीं है और न ही काल के देवता महादेव (कालेय) के चिह्न से चिह्नित (छपा हुआ) कोई पदार्थ है, अपितु उस समय स्वरनाद का देवता शोभायमान हुआ, इसको कोई भी देवता नहीं पाता अर्थात् उपर्युक्त आकाशवाणी होने के पश्चात् लोगों को अनहदनाद सुनाई देने लगा जो कि देवों के लिए भी अलभ्य है।

मानसं सकलं देहं मायिकं कृतवान् पृथक्।
बहिः प्रत्यक्षरूपं भो योगयुक्तं तपोमयम्।।८६।।

मैंने माया से सम्बन्धित समस्त मानसिक देह (परमात्मा के संकल्पमात्र से उत्पन्न स्थूल देह) को पृथक् किया है अतः देह से बाहर तो मैं प्रत्यक्षरूप हूं। अरे! योगयुक्त हूं और तपोमय हूं।

बाह्यं त्यक्त्वा देहमिमं परेणोवाच सद्गुरुः।
मा भैषत मृतो नाद्धा कार्यो देहः समाधिगः।।८७।।

इस बाहरी शरीर (स्थूलदेह) को त्यागकर दूसरे के द्वारा (सूक्ष्म शरीर से) सद्गुरु ने कहा–डरो मत। मैं निःसंदेह मरा नहीं हूं अपितु मैंने स्थूलदेह का जो सम्बन्ध था, उसका विच्छेद किया है अतः शरीर को समाधिस्थ करो।

वाचं विकल्पशून्यां तां श्रुत्वा संस्कारभीरवः।
मुक्त्वा भियं शिष्यभक्ताः समधिस्थमकारयन्।।८८।।

उस समय विकल्पशून्य (संदेह से रहित) उस वाणी को सुनकर संस्कार (गुरु की समाधि) से डरे हुए शिष्य एवं भक्तजनों ने निर्भय होकर गुरुदेव को समाधिस्थ कर दिया।

अन्तर्हितं सुवासोभिः पुष्पमालानुलेपनैः।
यथाशास्त्रं यथासिद्धं यथानाथपरम्पराम्।।८९।।

सुन्दर वस्त्रों, पुष्पमाला एवं चन्दनादि लेपों से अन्तर्हित उनको शास्त्र के अनुसार, सिद्ध-सिद्धान्त के अनुसार और नाथपरम्परा के अनुसार समाधिस्थ कर दिया।

समाधेस्तद्गुहामध्याद् यथाजन्म स्वमायया।
कैलासलोकमाश्रित्य जीवामीति वदन् ययौ।।९०।।

समाधि की उस गुफा के मध्य से फिर आवाज आई कि जन्म के अनुसार अपनी माया से कैलास का आश्रय लेकर जीवित रहता हूं। इस प्रकार कहते हुए वे चले गए।

जीवो जन्मानि गृह्णाति त्यक्त्वा पूर्वं पुनर्वपुः।
जीवो न म्रियते शिष्या देहो न नश्यति कथम्।।९१।।

हे शिष्यो ! जीव पहले के शरीर को त्यागकर नए जन्म को ग्रहण करता है। जीव नहीं मरता, फिर देह कैसे नष्ट नहीं होता ?

मरणं जीवनार्थाय जीवनं मृत्युहेतवे।
मृतस्य मरणं नास्ति जीवितस्य मृतिः कथम् ?।।९२।।

मरण जीवन के लिए है, जीवन मृत्यु के लिए है, मरे हुए का मरण नहीं है, फिर जीवित का मरण कैसे संभव है ?

देवरूपस्वदेहेन कथयन् भगवान् प्रभुः।
अन्तर्दधद् दिव्यदेहं ध्यानगम्योऽभवत्तदा।।९३।।

देवरूप अपने शरीर से सबके स्वामी भगवान् मस्तनाथजी ने इस प्रकार कहते हुए अपनी दिव्यदेह को भी तिरोहित कर दिया, तब वे केवलमात्र ध्यानगम्य होगए।

फाल्गुनस्य सिते पक्षे मेला भवति वार्षिकी।
नवम्यामद्यपर्यन्तं मस्तदिव्यतपोबला।।९४।।

फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में नवमी तिथि के अब तक भी प्रतिवर्ष मस्तनाथजी की दिव्य तपशक्ति को प्रकट करनेवाला मेला लगता है।

नवरात्रदिने मेला शिवरात्रिदिने यथा।
काश्यादिस्थानमाश्रित्य तथात्रापि प्रजायते।।९५।।

जिस प्रकार काशी आदि स्थानों पर शिवरात्रि के दिन मेला लगता है, उसी प्रकार नवरात्र (नवमी) के दिन यहां पर भी मेला लगता है।

यत्कृपाश्रयणाल्लोका भाग्यवन्तो भवन्ति हि।
अमुष्मै तीर्थराजाय भूयो भूयो नमो नमः।।९६।।

जिनकी कृपामात्र से लोग भाग्यशाली हो जाते हैं, ऐसे इस तीर्थराज को बार-बार नमस्कार ! नमस्कार !!

तदातो मस्तेशस्मृतिपदसमाधिं प्रतिदिनं
प्रसेवन्ते सन्तो गृहजनसुखायापि गृहिणः।
धनं ज्ञानं योगं सुतसुखमथो चेतसि हि यत्
समीहन्ते मस्तो वितरति तथैषामभिमतम्।।९७।।

इसीलिए तब से सन्त, गृहस्थी और सुखी गृहस्थी भी प्रतिदिन मस्त परमेश्वर की स्मृति में बनी इस समाधि की सेवा करते हैं। धन, ज्ञान, योग, पुत्र और सुख मन में जो कामना करते हैं तदनुसार ही मस्तनाथजी इनके अभीष्ट का वितरण करते हैं अर्थात् उनके अभीष्ट को उन्हें प्रदान कर देते हैं।

देशो भातु समृद्धिशालिनि जने सेवाभिभावो भवेत्
पर्जन्यः परिवर्षतु प्रतिदिनं भा भारते वर्धताम्।
राष्ट्रं सौख्यचयं प्रयातु विपुलं गौर्दुग्धदा श्यामला
शस्यैः पूर्वपरम्परापरिवृता यायाद् धरा सिद्धवाक्।।९८।।

देश समृद्धिशाली होकर सुशोभित होवे, मनुष्य में सेवा की भावना होवे, मेघ समय पर वर्षा करे, भारत में तेज (यश) प्रतिदिन बढ़े, राष्ट्र सुख से युक्त होवे, गाएं प्रचुर दूध देवें तथा भूमि सस्य (धान्य) से श्यामला होवे एवं पूर्वपरम्परा से घिरी रहे अर्थात् अपनी प्राचीन संस्कृति का परित्याग न करे, ऐसी सिद्धों की वाणी है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते जनतोपदेशविशेषपरिपूर्णश्रीमस्तनाथनिर्वाण-पदप्राप्तिमस्तनाथशिष्यतोतानाथयोगिसम्प्रदायप्रवेशमन्दिरनिर्माणादि-विषयविशिष्टो नाम चतुर्विंशः सर्गः।

पञ्चविंशः सर्गः

उत्तराधिकारिप्रकरणम्
(महन्तपूर्णनाथपर्यन्तम्)

श्रीमस्तनाथसुरधामप्रयाणतः श्रीकीरादिनाथ इनवद् भ्रमणं प्रचक्रे।
बीकादिनेरपुरदर्शनलालसाऽभूत् स्वेशस्य सिद्धिपरिदर्शनगीतजल्पैः[१] ।।१।।

श्रीमस्तनाथजी के परमधाम (देवों के धाम-स्वर्ग) को चले जाने के पश्चात् तोतानाथजी ने सूर्य की भांति सर्वत्र भ्रमण किया। फिर कभी उनकी गुरुदेव की सिद्धिदर्शन का गान करनेवाले बीकानेर नगर को देखने की लालसा हुई।

केचित्पठन्ति निपतन्ति नमन्ति भूयः
केचिल्लुठन्ति कथयन्ति गुणान् स्वराजः।
श्रीमस्तनाथगुणगुम्फित ! तत्त्वमस्या
ब्रह्मास्मि वाक्यपरतां वद योगसूत्रे[२] ।।२।।

जब तोतानाथजी बीकानेर नगर में पहुंचे तब कुछ लोग उनकी स्तुति में स्तोत्रपाठ करने लगे, कुछ उनके पैरों में गिरने लगे, कुछ उन्हें बार-बार दूर से ही नमस्कार करने लगे और कुछ सिद्ध मस्तनाथजी के गुणों को याद करके तोतानाथजी को ही सिद्ध मस्तनाथ मानते हुए उनके पैरों में लोटने लगे और कुछ अपने राजा के गुणों का बखान करने लगे कि हमारे महाराज इस प्रकार के हैं। कुछ उन्हें पंडित मानते हुए उनसे कहने लगे कि हे मस्तनाथजी के गुणों से गुम्फित तोतानाथ महाराज ! कृपया योगसूत्र (वेदान्त) में उल्लिखित 'तत्त्वमसि' से लेकर 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यपर्यन्त समस्त रहस्य हमें बताइए।

---

१. प्रकाशित प्रति में ऐसे भाव के निम्न पद्य उपलब्ध होते हैं–
(क) श्रीमस्तनाथसुरधामधराधिपत्वं मत्वा जना जनहितानि विधास्यति कः ?
कामं प्रकाममनसोऽपि हिताय नूनं कीरादिनाथमनुमानयुता बभूवुः ।।१।।
(ख) श्रीमस्तनाथशिवधामवियानपृष्ठे कीरादिनाथ इनवद् भ्रमणं बभार।
बीकादिनेरपुरदर्शनलालसाऽभूत् स्वेशस्य सिद्धिपरिदर्शनगीतजल्पैः ।।२।।
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

तोतानाथयोगिसिद्धो गणापः सिद्धिऋद्धितः[१]।
अन्नपूर्णा गृहे यस्य मस्तनाथप्रभावतः।।३।।
बीकानेंरपुरीराजसुरतोऽन्वर्थ एव यः।
सिंहस्तत्सविधे सिद्धिर्दर्शिता बहुधा ततः[२]।।४।।

समस्त ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी अपने गण के मुखिया सिद्ध योगी तोतानाथ जी ने श्री मस्तनाथजी के प्रभाव से जिसके घर में अन्नपूर्णा देवी साक्षात् विराजमान थीं ऐसे बीकानेर नगरी के यथार्थ नामवाले राजा सुरतसिंह वीर के पास जाकर अनेक सिद्धियां दिखलाईं।

राज्ञा ह्वायि[३] पुरातनी गतवती सिद्धिर्न पीठस्थिते
किं वास्तीति विवेक्तुमीशपदतां प्राप्तो न वाऽसौ[४] गुरुः।
वामो वा विधिरस्ति भाग्यमखिलं कर्तुं विकर्तुं[५] प्रभुः
थेड़ीग्रामसुखाय वा किमु जनस्वान्ते नु तान्तो भ्रमः[६]।।५।।

एक बार राजा ने तोतानाथजी को बुलाया, तब वहां के लोगों के मन में अनेक प्रकार के संदेह उठने लगे कि राजा ने नाथजी को क्यों बुलवाया है ? क्या इस गद्दी पर बैठनेवालों में पहले जैसी सिद्धियां हैं अथवा नहीं ? यह परखने के लिए अथवा तोतानाथजी ने सिद्ध पद प्राप्त किया है अथवा नहीं ? इस परीक्षा के लिए अथवा समस्त भाग्य को विपरीत करनेवाला विधाता वाम (विरुद्ध) होगया अर्थात् कोई छिद्र देखकर दण्डादि देने के लिए बुलाया है ? अथवा थेहड़ी गांव का भाग्योदय होगया है अर्थात् क्या थेहड़ी गांव नाथजी को भेंट में देने से वहां के समस्त प्रजाजन सुखी हो जायेगे, इत्यादि तर्क वहां के निवासी लोग करने लगे।

याते तत्र स्वयं प्राप्तः सत्काराय[७] नृपस्तदा।
तोतानाथं समूचेऽद्धा श्रुत्वा सिद्धानुगायनम्।।६।।

---

१. पाठभेद–तोतानाथोऽपि सिद्धोऽभून्मस्तनाथप्रभावतः।
अन्नपूर्णाश्रमे यस्य ऋद्धिसिद्धिप्रदा सदा।।४।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–प्रादर्शि तेन योगिना........ ।।५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–राज्ञाऽऽकारि... ।।६।। (प्रकाशित प्रति) ४. पाठभेद–तोता..... ।।६।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–योगी योगविधानयोगगरिमप्राप्तप्रतिष्ठः........ ।।६।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–सन्तमहिमा ज्ञातुं न शक्यो भवेत्।।६।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–सत्क्रियायै.............................. ।।७।। (प्रकाशित प्रत्ति)

राजा के निमन्त्रण पर जब तोतानाथजी वहां पहुंचे तब राजा स्वयं उनका स्वागत करने के लिए उनके पास आए और लोगों के मुख से उनकी सिद्धियों के विषय में सुनकर उनसे उचित वचन कहा।

मस्तनाथसमः सिद्धः प्रायो हि भुवि दुर्लभः।
वर्तमानजनैः श्रद्धा तत्र कार्य्या कथं भवेत्।।७।।

इस भूतल पर मस्तनाथजी के समान सिद्ध पुरुष प्रायः दुर्लभ है, परन्तु आधुनिक लोगों की उनमें श्रद्धा कैसे हो, जब तक उनका कोई शिष्य वैसी सिद्धि न दिखा दे।

असमो नैव तत्पीठस्थानयोग्यः समुच्यते।
उत्तमो वा गुरोरूनः समो योग्यो न चाऽगुणः।।८।।

क्योंकि उनके समान ही उनकी गद्दी के योग्य हो सकता है। हां ! उसमें उनसे अधिक या कुछ कम गुण हो सकते हैं, परन्तु बिल्कुल निर्गुण पुरुष उनकी गद्दी पर नहीं बैठ सकता।

एवं नीतिविदः प्राहुर्योग्यं योग्याय कल्पयेत्।
मत्पूर्वैरपि सेवास्ति कृता सिद्धेः करोम्यहम्।।९।।

योग्य स्थान योग्य पुरुष को ही देना चाहिए, ऐसा नीतिवेत्ता कहते हैं और मेरे पूर्व पुरुषों ने सिद्धि की सेवा की है। अतः मैं भी सिद्धि की सेवा करने के लिए तैयार हूं।

मद्देशे चिरकालेन[1] वृष्टिं मेघो न वर्षति।
अघो नाहं नीतिशाली तथाऽनीतिस्पृहा न मे।।१०।।

मेरे देश में बहुत समय से वर्षा नहीं हो रही है। मैं नीतिपूर्वक राज्य कर रहा हूं, पापी नहीं हूं और मेरी अन्याय करने की भी कभी इच्छा नहीं होती।

बीकानेरमहीपतेस्तदखिलं श्रुत्वा स मस्तं स्मरन्।
तोतानाथ उवाच कालमहिमा नूनं कले[2]र्विभ्रमः।।
देवो वर्षति को न वेत्ति[3] मघवा किं वा जलेशो रविः।
मर्त्त्याः केन कथं वदामि पुरतो मायां प्रभोस्तां गुरुः[4]।।११।।

---

१. पाठभेद–चिररात्राय .... ।।११।। (प्रकाशित प्रति) २. पाठभेद–क्रिया .... ।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–नैव वेदमघवा .... ।।१२।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–मर्त्त्यो वेत्ति कथं वदामि पुरतो जानाति यो वा गुरुः।।१२।। (प्रकाशित प्रति)

भूपति के समस्त कथन को सुनकर मस्तनाथजी का स्मरण करते हुए गुरु तोतानाथजी कहने लगे कि यह नि:सन्देह काल का प्रभाव तथा कलियुग का विभ्रम है। वर्षा न होने का क्या कारण है इसे इन्द्र, वरुण तथा सूर्य ही जानते हैं। मनुष्य किसके द्वारा और कैसे जान सकते हैं? अर्थात् मनुष्य इस विषय में नहीं जान सकते। मैं तो इस विषय में प्रभु की माया को ही कारण मानता हूं।

संचिन्त्य तं प्रांह तदेत्थमिष्टा वर्षा तृतीयेऽह्नि मुदावहा ते।
विजित्य भाग्यं निखिलप्रजानां सुखास्पदं संभवितेति मन्ये[१]।।१२।।

फिर विचार कर तोतानाथजी ने कहा कि मैं ऐसा समझता हूं कि आज से तीसरे दिन समस्त प्रजाजनों के भाग्य को जीतकर अत्यन्त सुखदायी वर्षा होगी।

जलं स्थलं समं तत्र मंस्यन्ते ते प्रजा: स्वयम्।
गुरो: शक्त्या मृतो नैव सहायो मे सदा गुरु:।।१३।।

तुम्हारी प्रजा स्वयं उस समय सर्वत्र जल-स्थल को समान समझेगी अर्थात् इतनी वर्षा होगी कि जल और स्थल एक समान हो जायेगा। मेरे गुरु की शक्ति अभी लुप्त नहीं हुई है। वे सदैव मेरे सहायक रहते हैं।

सतां संगते: सर्वकार्य्यप्रसिद्धि: सतां योगिनस्त्वाशुतोषा: सुसिद्धा:[२]।
शुको नाथ ईशोऽद्य तुष्टो[३] ममाह प्रजा: सौख्यभाजो नृपो मन्त्रिणं स्वयम्[४]।।१४।।

सज्जनों की संगति से सत्पुरुषों के समस्त कार्यों की सिद्धि हो जाती है। योगी और सिद्ध पुरुष आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) होते हैं। तोतानाथजी ने प्रसन्न होकर आज मुझे कहा है कि तेरी समस्त प्रजा वृष्टिलाभ से सुखी हो जायेगी। इस प्रकार राजा ने अपने मंत्री से कहा।

इत्यादिसर्ववृत्तान्तममात्यं समुवाच स:।
सुरताख्यो महीपालस्तोतानाथप्रसादजम्[५]।।१५।।

उस सुरत नाम के भूपति ने तोतानाथजी की कृपा से उत्पन्न उपर्युक्त सब प्रकार का वृत्तान्त मंत्री को बता दिया।

---

१. पाठभेद–जायेत संजीवनिका जनानाम्।।१३।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–सुवृष्टिर्भविन्नात्र संशीतिराशु .... ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–आनन्दमग्नो .... ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–भवेयुर्नितान्तम् .... ।।१५।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

तथा श्रुत्वा गतो[१] राजा प्रणिपत्य निजं गुरुम्।
दिनद्वयं तदा वर्षा क्वेति पौरा विचुक्रुशुः।।१६।।

वैसा सुनकर राजा अपने गुरु को प्रणाम करके चला गया। तब फिर दो दिन बीतने पर नगरवासी चिल्लाने लगे कि वर्षा कहां है, अर्थात् वर्षा तो हुई नहीं।

तृतीयेऽह्नि गुरुं ध्यायन्नणिमाद्यष्टवैभवम्।
मंत्रशक्त्या तपःशक्त्या देवशक्त्या समन्वितम्।।१७।।
तोतानाथः सिद्धयोगी मस्तेन्द्रं संददर्श ह[२]।
प्राप्तं जपस्थलीशीर्षस्थितं निजवपुर्धरम्।।१८।।

तीसरे दिन मंत्र, तप तथा दैवशक्ति से युक्त अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य से सम्पन्न गुरु का ध्यान करते हुए सिद्ध तोतानाथजी ने जपस्थल के एक ओर खड़े हुए शरीरधारी मस्तनाथजी के दर्शन किये।

आश्वासयँस्तमायाति पश्य व्याप्य घनावलिः।
नभः सर्वं ब्रुवँस्तं च तत्रैवान्तर्दधे विभुः।।१९।।

विस्तृत और घटाटोप (जिसमें बादल उमड़ रहे थे) आकाश को देखो, उस तोतानाथजी को आश्वासन देते हुए मस्तनाथजी वहीं पर अन्तर्धान होगए।

मध्याह्नात्प्रहरं यावन्महानासीद् घनो घनः।
वर्षाऽत्र महती यस्मात्प्रजेहा पूर्णतां गता[३]।।२०।।

दोपहर (१२ बजे) से लेकर एक पहर तक बड़े जोर से बादल उमड़ते रहे और बड़ी भारी वर्षा हुई, जिससे समस्त प्रजाजनों के मनोरथपूर्ण होगए।

सरितो नव्यनीरौघैस्तडागाः पूर्णतामिताः।
अमिता वनवेगाढ्या नवा नद्यः प्रसुस्रुवुः[४]।।२१।।

नवीन जल के प्रवाह से सब नदी और तालाब भर गए और वन के जल के वेग से नवीन नदियां प्रवाहित होने लगीं।

---

१. पाठभेद–तच्छ्रुत्वा चाययौ...................।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–मस्तं ददर्श सः...................।।१७।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–पपात वृष्टिर्मेदिन्यां धारारूपेण सर्वतः।।२१।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–विनिर्गताः...................।।२१।। (प्रकाशित प्रति)

तदाह प्राप्य सद्गुरुर्भाग्यं हित्वा त्वयोदितम्।
मया कृतं वारंवारं नैव वाच्यं कलौ युगे[१]।।२२।।
साभिमानां गिरं कर्हि दैवं कृत्वा निराकृतम्।
मा ब्रूहि वत्स संकाशां वृष्टिश्च कारिता मया[२]।।२३।।

वस्तुतः दैव की अवमानना करके कौन गर्व से युक्त वाणी बोल सकता है अर्थात् कोई नहीं। इसीलिए हे वत्स ! अपनी तेजस्विता से मैंने वर्षा करा दी ऐसा वचन मत बोल। क्योंकि दैवकृपा से ही सब कुछ संभव होता है।

राजा प्रजाः सैनिकमुख्यलोका वणिग्जना आढ्यनरा यथास्वम्[३]।
नम्राः समन्तादथ संघशस्त आनिन्युरर्हार्थमुपाहृतानि[४]।।२४।।

तब राजा, प्रजाजन, सेना के प्रमुख कर्मचारी, व्यापारीजन और धनिकवर्ग सभी यथाशक्ति नम्रभाव से भेंट सहित धन ले लेकर आने लगे।

राजा प्राप्य तदा थेड़ीग्रामं तस्मै ददौ स्वयम्।
सिद्धलोका[५] विना पात्रं न सिद्धिं दर्शयन्ति हि।।२५।।

तब राजा ने स्वयं जाकर थेहड़ी नामक गांव उनको भेंट किया क्योंकि सिद्धजन निःसन्देह योग्य पुरुषों को ही सिद्धियां दिखाया करते हैं, अयोग्यों को नहीं।

वर्षत्रयं स थेड़ीयस्थानं संभूष्य तत्तनुम्।
बोहरे मन्दिरेऽकार्षीद्गुरुभक्तिरतं मुहुः[६]।।२६।।

वह तीन वर्ष तक थेहड़ी गांव में रहकर फिर गुरुभक्ति से प्रेरित होकर बोहर के मन्दिर में आगए।

---

१. पाठभेद–तदा प्राह मस्तनाथः प्रकटीभूय हितकरम्।
तोतानाथं शिष्यवर्यं वक्ष्यमाणं वचोऽमृतम्।।२३।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाठभेद–व्यापारिणो वैश्यजनाश्च नम्राः............ ।।२५।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–आनिन्युरचीर्थमुपाहृतानि योगीश्वरा ये गुरुनाथभक्ताः।।२५।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–सिद्धिसिद्धा............ ।।२६।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–वर्षत्रयावधि ग्रामे निवासं कृतवान् यमी।
बोहराख्ये मठे पश्चात् तोतानाथः समागतः।।२७।। (प्रकाशित प्रति)

मठानां मठिकानां स हठिनां कमठो यथा।
दधार स्थानसंभारं धरित्रीं ध्यानमाश्रितः[१]।।२७।।

जिस प्रकार कमठ (कछुआ) पृथिवी को धारण किये रहता है, उसी प्रकार प्रभु चिन्तन में लीन रहते हुए भी उन्होंने हठयोगियों, मठों और छोटे कुटीरों के सम्पूर्ण कार्यभार को सम्भाला।

फरीजनपदो गौरः परीक्षार्थं मनो दधौ।
तोतानाथदातृशक्तिदर्शनाय निशार्धके[२]।।२८।।

तोतानाथजी की दानशक्ति देखने के लिए तथा उनके सदाव्रत (निरन्तर दिनरात भोजन का दान) की परीक्षा के लिए फरीजन नामक अंग्रेज आधी रात में बोहर मन्दिर में आया।

चिवलिषां योगरीत्या वित्त्वा पाकार्थमादिशत्[३]।
पाचकः प्राप्यतामाज्ञां त्वरया पाकमकृत[४]।।२९।।

तब तोतानाथजी ने योगशक्ति से उनकी अभिलाषा जानकर भोजन बनाने की आज्ञा दी और रसोइए ने आज्ञा पाते ही तुरन्त भोजन बना दिया।

श्रीशुकाख्यनाथवाक्यादुष्णमोदनव्यञ्जनम्।
घृतं सितां पयो भोज्यं शाकचुक्रादिसद्रसम्।।३०।।
आगताय ददौ शिष्यो महानसपदे स्थितः।
आगामिदिन एवाऽथ समाहूय मुहुर्मुहुः[५]।।३१।।

तोतानाथजी की आज्ञा से गर्म-गर्म सुन्दर व्यञ्जन, शाक, चटनी, घी, चीनी, दूध, रोटी आदि सब प्रकार का भोजन पाचक शिष्य ने आए हुए उस अंग्रेज साहब

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

२. पाठभेद–फरीजन्नामकः कश्चिद् गौराङ्गः स मनो दधौ।
सदावर्त्तपरीक्षार्थं निशीथे मठमागतः।।२९।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–योगशक्त्या मनोवाञ्छां तस्य विज्ञाय योगिराट्……।।३०।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–इसके पश्चात् प्रकाशित प्रति में पाठभेद से निम्न पद्य हैं–
(क) ततश्च तोतानाथेन सन्नद्धं पाकषड्रसम्।
प्रादायि श्रद्धया तस्मै भोज्यं प्राज्यमनादरम्।।३१।।
(ख) घृतं सितां पयो भोज्यं शाकचुक्रादिसद्रसम्।
स मोदं मोददं स्वादु दधत्कूर्चसमुच्छ्रयम्।।३२।। (प्रकाशित प्रति)

५. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

को दिया और फिर दूसरे दिन भी उसी तरह बुलाकर उसका भोजनादि से सत्कार किया।

स्वस्वरूपेण गौरोऽसावुत्सवे मिलितोऽभवत्।
लक्षसाधुभोज्यदानात् तुष्टो भूमिं लिलेख सः[1]।।३२।।

फिर वह साहब अपने अफसर के स्वरूप में फाल्गुन में उत्सव देखने हेतु आया और वहां उस आश्रम की ओर से लाखों महात्माओं को भोजन करते हुए देखकर बहुत प्रसन्न हुआ तथा प्रसन्न होकर उसने भूमि का एक पट्टा भी आश्रम के नाँम लिख दिया।

सद्भावतः साधु समर्हणाऽभूद्[2] दानञ्च मानं सुरपूजनादि।
व्याख्यानवार्त्ताश्च विलोक्य तत्तद् गौरः परां प्रीतिमुपाजगाम।।३३।।

उस उत्सव में सत्कारपूर्वक महात्माओं की पूजा, दान, मान, देवपूजन तथा व्याख्यानादि को देखकर वह अंग्रेज अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

वेदनन्दाष्टभूसंख्ये मलयाचलसन्निधौ[3]।
गुरुपार्श्वेऽनयद्देहं मर्त्त्यरीतिमुपादिशन्[4]।।३४।।

संवत् १८९४ में मानव-मर्यादा का पालन करते हुए तोतानाथजी भौतिक शरीर को त्यागकर अपने गुरु के पास मलयाचल जा पहुंचे।

(वेद-चार, नन्द-नौ, अष्ट-आठ, भू-एक=१८९४ वि० संवत्=१८३७ ई०)

मर्यादापालनं कुर्वन् योगाभ्यासपरायणः।
एषणात्रयशून्योऽसौ गुरोः पार्श्वे समाव्रजत्[5]।।३५।।

---

१. ऐसे ही भाव के प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य मिलते हैं–
(क) यदा यदा स आयाति विस्मारयन् दिनान्यसौ।
तदा तदा तथैव स्याद् भोजनादिसमुच्छ्रयः।।३३।।
(ख) एक नवमीकाले स भुञ्जानान् जनान् बहून्।
मुमोद श्रद्धया दृष्ट्वा तुष्टो भूमिं लिलेख सः।।३४।।
२. पाठभेद–समर्चनादि .... ।।३५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–वैक्रमे वत्सरे शुभे .... ।।३६।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–तोतानाथोऽत्यजद्देहमनिच्छन्नाथचालितः।।३६।। (प्रकाशित प्रति)
५. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

योग के अभ्यास में लगा हुआ एवं तीनों प्रकार की एषणाओं से रहित हुआ वह मर्यादा का पालन करता हुआ, गुरु के समीप आगया।

मेघनाथः स्वदेहान्तसमयादर्हतां स्वयम्।
दिदृक्षुणा कीरनाथेनाकारि स्वपदे पुरा[१]।।३६।।

तोतानाथजी ने अपने देहान्त से पहले ही योग्यता देखने के लिए मेघनाथजी को अपने पद पर नियुक्त कर दिया था।

ततो योगी मेघनाथो गुरुयात्रामहोत्सवे।
पानीयकूपसद्गेहसमाधीन् समुदाचरन्।।३७।।

तदनन्तर योगी मेघनाथ ने गुरु के यात्रा महोत्सव पर पानी का कुआं, सुन्दर-सुन्दर भवन और समाधि इत्यादि बनवा दिए।

अश्वियुग्मनन्दविधौ[२] वत्सरे कामसत्तिथौ।
चैत्रेऽगाद्गुरुसान्निध्यं सालोक्यमुक्तिपद्धतिम्[३]।।३८।।

संवत् १९२२ (१८६५ ई०) में चैत्र मास की त्रयोदशी के दिन मेघनाथजी गुरुजी के पास सालोक्य-मुक्ति पथ को प्राप्त होगए अर्थात् उन्होंने भी समाधि ले ली।

मोहरनाथस्तच्छिष्यः सिद्धेश्वरस्ततोऽभवत्[४]।
सिद्धीर्जगति योऽगण्यास्तत्र तत्राप्यदर्शयत्[५]।।३९।।

मेघनाथजी के पश्चात् उनके शिष्य मोहरनाथजी बड़े भारी सिद्ध हुए जिन्होंने संसार में यत्र-तत्र असंख्य सिद्धियां दिखलाईं।

इषु[६]वह्निनन्दचन्द्रे वैक्रमीयेऽथ वत्सरे।
गुरुसांनिध्यसालोक्यमुक्तमार्गे जगाम सः[७]।।४०।।

---

१. पाठभेद–मेघनाथः पुरा यानादभिषिक्तः पदे निजे।
सिद्धतोतानाथेन योग्यं ज्ञात्वा मनीषया।।३८।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–हस्ते पक्षे नाथभूमौ .... ।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–मेघनाथोऽप्यजद्देहं चैत्रे सालोक्यमापिपत्।।४०।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–सिद्धवर्योऽभवत्ततः .... ।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–अनेका दर्शितास्तेन सिद्धयो भुवि लोकपाः।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

६. पाठभेद–बाण .... ।।४२।। (प्रकाशित प्रति)

७. पाठभेद–सोऽयं मोहरनाथोऽपि कैलाशाचलमाश्रितः।।४१।। (प्रकाशित प्रति)

विक्रम संवत् १९३५ (१८७८ ई०) में वह मोहरनाथजी गुरु के पास सालोक्य मुक्ति मार्ग पर चले गए अर्थात् उन्होंने भी समाधि ले ली।

मुद्रानाथाच्चेतनाथो विद्वत्सिद्धाग्रणीर्हि यः।
बाणवह्निनन्दभूमिवत्सरे पूर्णिमातिथौ।।४१।।
पौषस्य सिद्धिरीतीनां दर्शकादर्शवद् बभौ।
बुधवारे बोहरीयपीठीयालंकृतेर्मुखम्[1]।।४२।।

मोहरनाथजी के पश्चात् चेतनाथजी हुए जो निःसन्देह विद्वान् सिद्धों में सर्वमान्य थे, उन्होंने संवत् १९३५ (१८७८) में पौष मास की पूर्णिमा तिथि बुधवार के दिन बोहर की गद्दी को अलंकृत किया जिससे उनका मुखमण्डल सिद्धिमर्यादा के दर्शकों का आदर्श बनकर अत्यन्त सुशोभित हुआ।

तद्देशजाः सौख्यभुजः समन्तात्तदासनाऽलङ्करणात्परस्तात्।
काले प्रवर्षा बहुसस्यऋद्ध्या बुभुक्षितो नैव जनश्च कोऽपि[2]।।४३।।

चेतनाथजी के गद्दी पर बैठने के पश्चात् उस देश के नागरिक बड़े सुख से रहने लगे। समय पर वर्षा होने से बहुत अधिक धान्य की उत्पत्ति होती थी, जिससे उस समय कोई भी भूखा नहीं रहता था।

वनानि रम्याणि फलानि पुष्पाण्याकीर्य लोकान् सुखयाम्बभूवुः।
तथा पुरे वोत्सववृद्धिरासीन्नन्दतिथौ फाल्गुनमासि सार्हा[3]।।४४।।

अत्यन्त रमणीक वन, उपवन एवं फल-फूलों से परिपूर्ण होकर लोगों को सुख देने लगे और फाल्गुन मास की नवमी तिथि में पहले की भांति मेले का उत्सव और भी अधिक धूमधाम के साथ होने लगा।

---

१. ऐसे ही भाव के प्रकाशित प्रति में निम्न पद्य उपलब्ध होते हैं–
(क) श्रीमोहरनाथसिद्धात् पश्चाज्जातो मनीषिणाम्।
चेतनाथोऽग्रगण्योऽसौ नक्षत्राणां यथा शशी।।४३।।
(ख) बाणवह्निनन्दभूमि वत्सरे पूर्णिमातिथौ।
पौषस्य बुधवारेऽसौ सिंहासनमवाप्तवान्।।४४।।

२. पाठभेद–...................भुजार्जिताश्चितावर्जितमानसोऽखिलाः।
खलं विजेतुमलमार्तिनाशने कुशासनेनापि शुशोभ शासने।।४५।।
(प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–पुरे पुरे चोत्सववृद्धिरासीदुदात्तसन्दानितनाथतिथ्याम्।।४६।। (प्रकाशित प्रति)

महात्मानोऽथ विद्वांसस्तत्रायाताः कथादिभिः।
व्याख्यानैर्धर्मवृद्धिञ्च चक्रुर्लोकहितैषिणः[1]।।४५।।

बड़े-बड़े महात्मा तथा विद्वज्जन उस उत्सव में आ-आकर कथा, व्याख्यानादि द्वारा लोगों के कल्याण के लिए धर्म का प्रचार करते थे।

न वारनार्यामनुरक्तसाधनो
न वाधनः कोऽपि नरो विराजते।
व्युदस्य हेमाञ्चितसञ्चितं यशो
यशोधरायां भुवि चेतनाथवान्[2]।।४६।।

यश को धारण करनेवाली अर्थात् जिसकी कीर्ति भूमण्डल पर फैली हुई थी, ऐसी भूमि पर चेतनाथजी के स्वर्ण के कारण संचित किये गए यश को भी परवाह न करके अर्थात् स्वर्णरूप कीर्ति का निराकरण (त्याग) करके निवास करते हुए होने पर, कोई भी व्यक्ति वारनारी (वेश्याओं) से प्रेम नहीं करता था अथवा कोई भी व्यक्ति धन से रहित नहीं था।

दक्षिणोत्तरयोरेका पताका धर्मवर्त्तिनी।
कृपा यस्याः प्रभावेण कलिः स्थानं न चाऽभजत्।।४७।।

स्थान के दक्षिण और उत्तर भाग में धर्म की एक ध्वजा फहरा रही है जिसके प्रभाव से उस आश्रम में कलियुग अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सका।

राजस्थानीयनरपा हस्त्यश्वादीन् समन्ततः।
उपजह्रिरे मुदा चेतनाथसद्गुणकर्षिताः।।४८।।

राजपूताना के भूपालों ने चेतनाथजी के सद्गुणों से प्रभावित होकर हाथी, घोड़े इत्यादि बहुत से उपहार प्रदान किये।

गौराङ्गराजकार्येशास्तन्मतस्याऽविरोधनाः।
परस्परं मंत्रणादिकार्य्येषु बह्वमन्वत।।४९।।

ब्रिटिश राजकर्मचारी (पंजाब गवर्नर) आदि सब उनके अनुकूल रहते थे और परस्पर मंत्रणादि कार्यों (प्रीतिकार्यों) में वे लोग उनका बहुत सत्कार भी करते थे।

---

१. पाठभेद–व्याख्यानाख्यानसंख्याभिः कृतवन्तो जनोद्भवम्।।४७।। (प्रकाशित प्रति)
२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

हिन्दूधर्मसम्प्रदायाः समये विघटे सदा।
पालेलिमाः स्वाऽविरोधाद् गोरक्षनाथमाश्रितैः[1] ।।५०।।
न सदा द्वेषरागाभ्यां कालस्य यापनं शिवम्।
पूर्वे सिद्धा महापुण्या न सिद्धिः सर्वदा भवेत्[2] ।।५१।।

श्री गोरक्षनाथजी के मतावलम्बियों को विपरीत समय आने पर हमेशा ही बिना विरोध के हिन्दू धर्म की रक्षा करनी चाहिए इसीलिए चेतनाथजी ने कहा कि पहले के सिद्ध अत्यन्त पुण्यशाली थे। सिद्धि हमेशा नहीं होती। अर्थात् केवल सिद्धि प्राप्ति की ओर ध्यान न देकर साधु को अपना कर्त्तव्यपालन करना चाहिए।

विद्यान्नदानयोः शिक्षा शिष्येषु बह्वकारि तैः[3]।
प्रतिज्ञा पाठशालार्था हरिद्वारे व्यधायि च।।५२।।

चेतनाथजी ने अपने समस्त शिष्यवर्ग के सम्मुख विद्या की शिक्षा और अन्नदान तथा हरिद्वार में पाठशाला खोलने की प्रतिज्ञा की।

अत्यन्तबालशिष्याणां प्रथा रुद्धा विचारतः।
वैराग्यं न विना साधुः कर्त्तव्यः कठिना स्थितिः।।५३।।

बहुत छोटे शिष्यों की प्रथा को विचार करके रोक दिया गया क्योंकि वैराग्य के बिना साधु नहीं बनना चाहिए। इस प्रकार कठिन परिस्थिति उपस्थित होगई, क्योंकि जब बालकों को नाथसम्प्रदाय में सम्मिलित नहीं किया गया तो साधुओं की कमी होने लगी।

साधुता सा धुता दूरे साधुता सा धुताऽधुना।
मारिता मारिताः केचिद् भ्रमन्ति बहवो जनाः[4] ।।५४।।

इस समय अकम्पित (अधुता) अर्थात् स्थिर (दृढ़चरित्र) साधुता दूर है (अपितु) कम्पित (धुता) साधुता है अर्थात् अब साधु बहुत जल्दी अपने पथ से भ्रष्ट हो रहे हैं। कुछ ने सब कुछ खोकर (मा=धन की देवी लक्ष्मी, मारिः=विनाश, बर्बादी) साधुता को पाया जबकि साधु रूप में घूमते तो बहुत हैं।

---

१. पाठभेद–समये दुर्घटे जातेऽघटिता घटनावशात्।
साधुभिरपि कर्त्तव्या विद्याध्ययनसत्क्रिया।।५२।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाठभेद–बहुधा कृता .... ।।५४।। (प्रकाशित प्रति)

४. ५३, ५४ पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

योगः सर्वविधो रक्ष्यः प्रतीक्ष्य समयं सदा।
विद्योन्नतिकृतो पूर्णनाथैः पूर्णकृताऽखिला[१]।।५५।।

और उनकी यह भी इच्छा थी कि इस वर्तमान समय को देखते हुए यथाशक्ति योगविद्या की हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिए और विद्योन्नति के विषय में जो प्रतिज्ञा की थी उसको पूर्णनाथजी ने पूर्णरूप से पूर्ण कर दिया।

दानं क्षेत्रं भोजनञ्च सत्कारोऽतिथिपूजनम्।
मन्दिरे पूर्ववद्वृत्तं पूर्वसिद्धिबलात् परम्[२]।।५६।।

दान, क्षेत्र, भोजन, सत्कार, अतिथिपूजन इत्यादि समस्त क्रियाकलाप उस स्थान पर पूर्वसिद्धियों के प्रभाव से प्राचीन मर्यादा के अनुसार होते रहे हैं।

शास्त्रे विचक्षणत्वेन शास्त्रवित्सम्यगर्हणम्।
त्रिकालज्ञश्चेतनाथः परकार्यं मतं बहु[३]।।५७।।

स्वयं शास्त्र में पारंगत होने के कारण चेतनाथजी विद्वानों का बड़ा सत्कार करते थे और तीनों कालों के ज्ञाता वे परोपकार को बहुत महत्ता देते थे।

वह्निषड्नन्दभूम्यब्दे मधु-सर्पतिथौ दले।
असिते चेतनाथैः सोपकारा त्यज्यते तनुः[४]।।५८।।

संवत् १९६३ (१९०६ ई०) में चैत्र कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि के दिन चेतनाथजी ने अपने परोपकारी शरीर को त्याग दिया।

उत्क्रान्तिवेलामवगत्य पूर्वमासे परस्तात् करणीयरेखाम्।
विधाय योग्यं सरणेः परस्तादचारिणं नीतिधुरीणचुञ्चुम्[५]।।५९।।

---

१. पाठभेद–गुरोः संकल्पितं सर्वं पूर्णनाथैः कृतं समम्।।५७।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–दीनेभ्यो दीयतां दानं पूर्णेषु पूर्णता न च।
मठस्य पूर्वमर्यादा हापिता नैव कर्हिचित्।।५८.।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–स विद्वानेव जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
चेतनाथः स्वयं विद्वान् योगिषु विदमाचरन्।।५९।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–...............चेतनाथोऽसावजहान्मानवं वपुः।।६०।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–...............आसेदिवान् धर्मधुरीणशिष्यम्।।६१।। (प्रकाशित प्रति)

स्वान्ते स्वपीठस्थितिधू:प्रवाहं योगेन्द्रसिंहासनगं निगद्य।
विधापनीयं किल पूर्णनाथं गुरोः समीपे प्रययुर्मुदा ते[१]।।६०।।

चेतनाथजी ने अपना मृत्यु समय समीप आया जानकर पहले ही मास में पूर्णनाथजी के नाम कागज लिखकर मर्यादानुकूल व्यवहार करनेवाले, नीतियों में निपुण, उत्तराधिकारी के भार को वहन करने में समर्थ और गद्दी के योग्य पूर्णनाथजी को योगिराजों की गद्दी पर आसीन करके निश्चिन्त भाव से परलोक गमन किया।

चौरङ्गीनाथसंख्यातपूर्णनाथेन बोहरः।
पुरा संस्थापितः सिद्ध्या[२]युक्तयोगाश्रमः स्वयम्।।६१।।

चौरङ्गीनाथ का ही दूसरा नाम पूर्णनाथ था, उन्होंने पहले (प्राचीन समय में) अपनी सिद्धि से युक्त योगाश्रम बोहर स्थापित किया था।

यः स्यालकोटीयनृपस्य शालितो वाहनस्य प्रथितो हि सूनुः।
विमातृकोपेन विभिद्य पादाद्यङ्गं निरस्तः स च कूपमध्ये[३]।।६२।।

वह चौरङ्गीनाथ स्यालकोट के राजा शालिवाहन का पुत्र था, यह बात प्रसिद्ध है। उसकी विमाता (सौतेली मां) के क्रोध के कारण उसके हाथ-पैर कटवाकर उसे कुएं में गिरवा दिया था।

स स्यालकोटे सुविशालकूपस्त्वद्यावधि भ्राजति नीरशाली।
नीरञ्च यस्यास्ति समस्तलोके मनोरथं पूरयितुं प्रवीणम्[४]।।६३।।

वह कूप स्यालकोट में आज भी विद्यमान है, जिसका जल मनुष्यों के समस्त मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है।

---

१. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है तथा ऐसे ही भाव का पद्य प्रकाशित प्रति में मिलता है–
श्रीपूर्णनाथं किल पूर्णयोगिनं विधाय सिद्धासनयोग्यसम्मतम्।
श्रीचेतनाथोऽपि जगाम सद्गतिं गतिं च तामीश्वरनिश्चितां ध्रुवाम्।।६२।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–तेन .... ।।६३।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–यः स्यालकोटस्य बभूव पुत्रो राज्ञः प्रहौ शालिति वाहनस्य।
विमातृकोपेन पपात पातितः स पातयामास निजं न सूनुम्।।६४।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद– .... पूर्णस्य पूर्णावयवस्य पूर्णः।
नीरं च यस्यास्त समस्तलोके मनोरथं पूरयितुं समर्थम्।।६५।। (प्रकाशित प्रति)

गोरक्षनाथेन दयालुनाऽथ शिष्यैः समुद्धार्य्य कदापि तस्मात्।
कृतः समस्ताङ्गविशिष्टसत्तनुर्बभूव शिष्यः सुविरक्तचेताः[1] ।।६४।।

फिर किसी समय दयालु गोरक्षनाथजी घूमते-घूमते अपने शिष्यों के साथ उस कुएं के पास जा पहुंचे और अपने शिष्यों से उसे कूप के बाहर निकलवाकर सर्वाङ्ग सुन्दर बना दिया। तदनन्तर वह संसार से पूर्णरूप से विरक्त होकर उनका शिष्य बन गया।

तत्स्थापितं संस्कृतवन्त एव श्रीमस्तनाथाख्यनिजावतारे।
गोरक्षनाथा निजशिष्यपीठे सैद्धं पदं दर्शयितुं स्वकीयम्[2] ।।६५।।

चौरङ्गीनाथ द्वारा स्थापित बोहर योगाश्रम का संस्कार (जीर्णोद्धार) श्रीगोरक्षनाथजी ने मस्तनाथ नाम के अपने अवतार में तथा अपने शिष्य की गद्दी में अपनी सिद्धि का महत्त्व स्थापित करने के लिए किया।

रामषड्नन्दचन्द्रेऽब्दे पूर्णनाथाभिषेचने।
पुरेव योग्यसंभारा भ्रियन्ते स्माऽधिकाधिकाः[3] ।।६६।।

संवत् १९६३ (१९०६ ई०) श्रीपूर्णनाथजी के गद्दी पर विराजमान होने के समय, पहले की भांति अभिषेक के योग्य समस्त सामग्री प्रचुर मात्रा में एकत्रित की गई।

अनन्तरं पूर्णनाथः सिंहासनमभूषयत्।
विद्वान् कृतसाधूनां पाण्डित्यायाश्रमं मुदा।।६७।।

उसके पश्चात् श्रीपूर्णनाथजी ने गद्दी को सुशोभित किया और अत्यन्त प्रसन्नता और उत्साह के साथ साधु और ब्राह्मणों के विद्यापठनार्थ आश्रम का निर्माण करवाया।

---

१. पाठभेद–ततः कदाचिद् भगवान् हिमालयाद् गोरक्षनाथः सुतरां दयानिधिः।
आगत्य भाग्येन निजात्मवैभवं पूर्णं समुद्धार्य चकार चेतनम्।।६६।।
(प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–............ निदर्शम्।।६७।। (प्रकाशित प्रति)

३. पाठभेद–सरामरसनाथेन्दौ पूर्णनाथभिषेचने।
वैक्रमे पूर्वसंभारा भ्रियन्ते.......... ।।२।। (प्रकाशित प्रति)

हरिद्वारे महान् येन छात्रविद्यालयः कृतः।
रक्षार्थं तस्य ग्रामश्च सद्व्ययाय नियोजितः[१]।।६८।।

जिसने उस आश्रम को हरिद्वार में योगाश्रम महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध कर दिया और उसकी रक्षा के लिए (समुचित खर्च के लिए) एक गांव खरीदकर लगा दिया।

द्वादशापि च पन्थानः समागत्य पठन्तु यत्।
रागद्वेषानपाकृत्य मैत्रीभावेन कोऽपि यत्[२]।।६९।।

और आदेश दिया कि बारह पंथों का कोई भी अनुयायी राग-द्वेष छोड़कर मैत्रीभाव से वहां पढ़ सकता है।

वारिगाङ्गं मनोहारि तारणं सुरसेवितम्[३]।
सागरीणां समुद्धारि तत्र सागरपावनम्[४]।।७०।।

जिस महाविद्यालय के समीप देवों से सेवित, साठ हजार सगर के पुत्रों का उद्धार करनेवाला और सागर को भी पवित्र करनेवाला भागीरथी का निर्मल जल निरन्तर बह रहा है।

पुनाति प्रक्षोभं शमयति नितान्तं च मनसः,
प्रधुन्वानः पापं[५] प्रकृतिसुखमोक्षौ जनयति।
धुनोति प्रागल्भ्यं दुरितचयनैदाघदिनयोः,
दुनोत्यासङ्गं स्वे परतरजने गांगसुपयः।।७१।।

जो गंगा का सुन्दर जल स्पर्शमात्र से ही पवित्र कर देता है और मन के उद्वेग को पूर्णरूप से शान्त करता हुआ पापों को निर्मूल कर देता है, सांसारिक सुख तथा

---

१. पाठभेद–हरद्वारे महान् येन योगिविद्यालयः कृतः।
रक्षार्थं तस्य ग्रामोऽपि चलनाय नियोजितः।।७०।। (प्रकाशित प्रति)

२. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

३. पाठभेद–रोगहारकम्.................... ।।७२।। (प्रकाशित प्रति)

४. पाठभेद–सागरा उद्धृता येन सागरस्यापि पावनम्।।७२।। (प्रकाशित प्रति)

५. पाठभेद–धुनाति प्रक्षोभं शमयति नितान्तं स्वमनसः।
दृणाति स्वाज्ञानं.................................. ।।
कृणापि द्राकं पुण्यं ज्वरजनितबाधां तनुजुषां।
पृणाति स्वात्मानं विकसति जनो गाङ्गसलिलम्।।७३।। (प्रकाशित प्रति)

मोक्ष दोनों को देनेवाला है और शीतलता से पापसमुदायरूपी ग्रीष्म की उष्णता को दूर करता है तथा मन को उदार बनाकर 'अयं निज: परो वा' यह मेरा है अथवा पराया है, इस आसक्ति को भी दूर कर देता है।

शिवासंगा गंगा बहुलतरतारङ्गलहरी,
समासंगा तस्या जललवपरीताङ्गवितति:।
किरन्नंशान् गांगान् हरति जनुषो व्याधिनिचयम्,
समीर: साराऽणूनिति भवति सात्म्याय नितराम्[१]।।७२।।

शिव के संग रहनेवाली तथा प्रबल तरंगोंवाली गंगा के निर्मल जलकणों को बिखेरता हुआ शीतल वायु मनुष्यों के समस्त रोगों को दूर कर देता है।

विशुद्धा महीजाह्नवीसंगमेन न वातोऽप्यशुद्धोऽत्र देशे वनं च[२]।
अतो योगयुक्तात्मनां तत्र योगाश्रमोऽभ्याससत्पाटवाय व्यधायि।।७३।।

गंगा के संग से जहां की भूमि, वायु, वन तथा जल सब पवित्र हैं, अशुद्ध नहीं हैं। इसीलिए उस प्रदेश में योगयुक्त आभरणवाले महात्माओं के सदभ्यास के लिए योगाश्रम बनवाया।

विदामालयस्यास्य मध्यप्रभागे प्रधानस्य वासस्य कौबेरगोऽस्ति[३]।
कुबेरस्य वासस्य तुल्योऽथ कोशप्रगारो यत: सर्वभोज्यादिसिद्धि:[४]।।७४।।

इस महाविद्यालय के मध्य में अधिष्ठातृ भवन (कोठी) है, उससे उत्तर की ओर कुबेर के भवन के सदृश कोशभवन है जिससे भोज्यादि सब पदार्थ प्रदान किये जाते हैं।

ततश्चोत्तरे दैत्यदन्तप्रपूज्यं गिरीशानमीशानमाकारयन्तम्।
स शैवालयो राजते रम्यराजिं करोति स्म कायाधवस्यायशोंऽशम्।।७५।।

और उसके उत्तर में दैत्यराज (त्रिपुरासुर, जलन्धर अथवा रावण) से अत्यन्त पूजित गिरीश को भी ईश मानते हुए (अर्थात् शिव की सर्वोच्चता सूचित

---

१. पाठभेद–योगाय महिमा.............।।७४।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–गिरौ काननं यत्.............।।७५।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–कौबेरकोश:.....................।।७४।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–स्फुरन् भाति भानुप्रभाभास्वरो यस्तनोति च्छटां दुर्घटां कूटकोटीम्।।७६।। (प्रकाशित प्रति)

करनेवाला) कयाधु की सन्तान के यश के अंश की रम्यदीप्ति को फैलानेवाला वह शिवालय विराजमान है।

महादेवदेव: स्वयं दिव्यधामा
गिरीशान एव स्वयं राजतेऽत्र।
प्रधूपालिनीला जटाभि: पिशङ्गा
सिता जाह्नवीधारयाऽत्र त्रिवेणी।।७६।।

स्वयं दिव्य तेजवाले, महादेवों के देव शंकर यहां स्वयं विराजमान हैं। जहां पर धूप की गन्ध से आकर्षित जो काले भ्रमर थे वे मानो शिव की पिंगल वर्ण की जटाओं में स्थित थे। वहां भी गंगा की शुभ्रवर्ण की धारा स्वयं ही त्रिवेणी होगई।

ततश्चोत्तरे पण्डितानां सतां च
तप:पूतदेहातिथीनां निवास:।
प्रधानान्निवासात् तथा याम्यगोऽत्र
सुसच्छात्रपाठालय: शोभते हि[१]।।७७।।

और उसके उत्तर में विद्वानों और सज्जनों तथा तपस्या से जिनका शरीर पवित्र होगया है ऐसे अतिथियों का निवास-महल है और वैसे ही प्रमुख आवास भवन से हटकर रात्रि में आनेवाले यात्रियों का विश्रामस्थल और सभ्य छात्रों का अध्यापन-गृह भी विराजमान है।

यतोऽधीत्य तार्काननल्पाँश्च[२] शाब्दानथो ग्रन्थजालान्नु वैदान्ततत्त्वान्[३]।
परीक्षासु वाराणसीदेशगासु समुत्तीर्णतां यान्ति सत्पाठिनो ये।।७८।।

जहां से न्याय, व्याकरण, वेदान्त के ग्रन्थों का पूर्णरीति से अध्ययन करके काशी (वाराणसी) की राजकीय परीक्षाओं में प्रतिवर्ष अनेक छात्र उत्तीर्ण होते हैं।

न सम्प्रदायस्य विशेष आग्रहो न चाश्रमे द्वेषकृतात्र शेमुषी।
समानसद्भोजनपुस्तकादिं प्रपाठनं[४] छात्रसुखाय यत्र च[५]।।७९।।

---

१. ७५, ७६, ७७ पद्य प्रकाशित प्रति से लिए गए हैं क्योंकि पाण्डुलिपि का ६५, ६६ पद्यवाला पृष्ठ उपलब्ध नहीं है।
२. पाठभेद–धीमानधीमांश्च .... ।।८०।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–ग्रन्थिगुम्फान्निवबन्धान् निबद्धान् .... ।।८०।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–अध्यापनं .... ।।८१।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–शोभते .... ।।८१।। (प्रकाशित प्रति)

जहां आश्रम में सम्प्रदाय विशेष का कोई आग्रह नहीं है और न किसी के साथ किसी की द्वेषभावना है तथा जहां छात्रों को सुविधा के लिए पौष्टिक भोजन, दूध आदि, पुस्तक, कलम-दवात, कागज इत्यादि सामग्री उनको समानरूप से मिलती है।

न यत्र पक्षो न विपक्षपातनं
रमारमारामविरामसाधनम्।
हरञ्जनस्यार्त्तिमनारतं रतो
रिपोरपि श्रेयसि सर्वदाऽमदः[1]।।८०।।

जहां पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। विरोधियों का प्रवेश नहीं होता। स्त्रियों के विश्राम हेतु आवास भवन बना हुआ है एवं अहंकार से रहित हुए कर्मचारी वर्ग लोगों की परेशानी को दूर करते हुए शत्रु के भी कल्याण में निरन्तर तत्पर रहते हैं।

सदाचारनिष्ठाः सुशिक्षाप्रवीणाः प्रतीर्णाश्च शास्त्रेषु विद्वद्वरिष्ठाः।
समध्यापका द्रव्यगर्धाविहीना मुदिम्ना प्रकृष्टास्तपोगर्धिनिष्ठाः[2]।।८१।।

जहां के अध्यापक सदाचारी, अध्यापन में चतुर, शास्त्रों में पारंगत, विद्वानों में अग्रगण्य, लोभरहित तथा संतोषी हैं।

श्रीमद्द्रव्येशझाख्यो विलसति विबुधश्रेणिनीराजमानो
मानो विद्यासमानः प्रमितिगतिविधावक्षपाटीयदक्षः।
दान्तो वेदान्तविद्या मलशुकजनकोद्यापनोद्यानसेक्ता
व्यासे व्यासोपमानो वसति यमिबुधाध्यापको व्यापको यः[3]।।८२।।

विद्वत्समुदाय में अपनी ज्ञानवृद्धि से शोभायमान श्री द्रव्येश झा नामक विद्वान् विलास कर रहा है जो स्वाभिमानी, सरस्वती के समान, ज्ञान की प्रत्येक गतिविधि में एवं कानूनी गतिविधि में प्रवीण (अक्ष-कानूनी कार्यविधि-मुकदमा), दानवीर

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. यह पद्य प्रकाशित प्रति में नहीं है।

३. पाठभेद–श्रीमद्द्रव्येशझाख्यो विलसति बिबुधश्रेणिश्रीराजमानो
मानो जिघासमानः सफलगतिविधौ विधौतधौतधामा ललामः।
पादेऽपादे पिताहे जय यदि गतो जडजपूक्कोपि पं कश्चित्
सोऽयं प्राधान्यसाक्षात् निरूपिता बुधगवेणै,स्वाया शिवाया।। (पाण्डुलिपि)

(उदार), वेदान्त विद्यारूपी निर्मल दार्शनिकता का जन्मदाता अर्थात् वेदान्तविद्या में निपुण, व्रतसमाप्ति (उद्यापन) रूपी उद्यानों को सींचनेवाला अर्थात् निरन्तर व्रतादि में तत्पर रहनेवाला संयमी विद्वानों को भी शिक्षा देनेवाला, विस्तृत ज्ञानवाला, संकलन में व्यास के समान पृथ्वी पर निवास कर रहा है।

अन्येऽपि केशवमुखा विबुधाः प्रसिद्धा
मिश्राश्च बोधरमणाः खलु गाङ्गपुत्राः।
मित्रोपमा मतिमतामपि पाठका ये
योगाश्रमे सुरनदीश्वरभूविभागे[1]।।८५।।

देवनदी के स्वामी (भगवान् शंकर) के भूखण्ड पर बसे हुए उस योगाश्रम में दूसरे भी जिनमें केशव मुख्य हैं, विद्वान् प्रसिद्ध हैं और निःसन्देह ज्ञान में रमण करनेवाले गंगा के पुत्र मिश्राजी हैं। जो पढ़नेवाले हैं वे बुद्धिमानों में भी बुद्धिमान् सूर्य की भांति (अपने ब्रह्मचर्य के तेज से) तेजस्वी हैं।

पाठालयस्य सविधे किल विज्ञघुष्ट[2]ग्रन्थालयः सकलशास्त्रविशालदेहा।
श्रीशारदाधृतसुपत्रिसविग्रहेव श्रीशारिका[3] भगवतीप्रतिभाति यत्र।।८६।।

पाठशाला के समीप में ही विद्वज्जनों से देखने योग्य एक पुस्तकालय है जहां समस्त शास्त्र रूप विशाल देहवाली हंसवाहिनी श्रीशारदा (सरस्वती) भगवती विराजमान है।

छात्रावाससमीपे च सर्वकार्य्यालयस्तथा।
गोशालादक्षिणे यत्र मस्तगोपालतास्मृतिः।।८७।।

छात्रावास के समीप में ही एक कार्यालय है और छात्रावास के दक्षिण की ओर एक गोशाला है, जो आज भी मस्तनाथजी के गोपालन की याद दिला रही है।

क्षीरार्णवो गवामूधांसीह छात्रकृतश्रमम्।
पयोदानात्प्रत्यहं संशमयन्ति महीयसः।।८८।।

जिन गायों के ऊधस (ओहड़ी) समुद्र की भांति दूध से भरे हुए हैं, इसीलिए वे प्रतिदिन बहुतसा दूध देकर छात्रों की अध्ययनजनित थकान को भली प्रकार शान्त करती हैं।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है। २. पाठभेद–जुष्टो............ ।।८४।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–श्रीहंसवंशजनिपृष्ठविराजमाना सा शारदा..................... ।।८४।। (प्रकाशित प्रति)

मन्दिरीयपश्चिमान्ते महानससमृद्धय:[१]।
तद्वह्निधूमव्याप्तित्वाद् दृष्टान्तार्थमुपस्थिता:।।८९।।

मन्दिर के पिछले भाग में अत्यन्त समृद्ध बड़ी भारी पाकशाला है, मानो वह "जहां-जहां धूआं होता है वहां-वहां अग्नि अवश्य होती है", इस व्याप्ति का निर्णय करने के लिए दृष्टान्त रूप में उपस्थित है।

कटाहोऽपि महाँस्तत्र सविधे मस्तदर्शित:[२]।
बीकानेरीयकाटाह[३]हैमवृत्तान्तवेदक:।।९०।।

वहां पास में एक विशाल कटाह है, जो श्रीमस्तनाथकृत बीकानेर के सुवर्ण-कटाह की याद दिला रहा है।

प्रधानावासपाश्चात्य: पण्डितावास ईक्ष्यते।
सदाचारनिरीक्षायाऽपशङ्के पण्डिता: स्थिता:[४]।।९१।।

प्रमुख भवन के पीछे पण्डितों का आवास भवन है, जिसमें छात्रों के सदाचार निरीक्षण के लिए पंडित निशङ्क भाव से निवास करते हैं।

पूर्वे कूपो मन्दिराच्च स्वादुनीरमुपस्थितम्[५]।
स्नानागारस्तत्समीपे होमागारस्तपस्विनाम्।।९२।।

मन्दिर से पूर्व दिशा में एक कूप है, उसका जल निर्मल तथा अत्यन्त स्वादिष्ट है और कूप के समीप ही छात्रों का स्नानागार बना हुआ है। स्नानालय के साथ ही तपस्वियों के लिए धूने का भवन है।

उद्यानं पश्चिमे भागे चाम्रदाडिमभूषितम्[६]।
अदूषितं सुतरुभि: फलिभि: कुसुमैर्युतम्[७]।।९३।।

---

१. पाठभेद–पाकशाला विराजते .... ।।८७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–सूचक: .... ।।८८।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–बीकानेरकटाहस्य .... ।।८८।। (प्रकाशित प्रति)
४. पाठभेद–ब्रह्माण्डे ताण्डवं कर्त्तुं नटराजपरीक्षक:।।८९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–वारिर्विराजते .... ।।९०।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–भागधेयेन दर्शनम् .... ।।९१।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–आम्रजम्बीरमन्दारधातृचण्डातभूषितम्।।८७।। (प्रकाशित प्रति)

पश्चिम की ओर आम, अनार, नीम्बू इत्यादि से परिपूर्ण एक सुन्दर साफ-सुथरा बगीचा है, जिसमें फलोंवाले सुन्दर वृक्ष तथा फूलों के पौधे बड़े अच्छे ढंग से लगे हुए हैं।

दाडिमदृढबीजाद्या मोचा मधुमुचस्तथा।
आलुज्वरपनसाद्या मालूराः स्त्रावभेदकाः[1]।।९४।।

वहां पर अनार, अमरूद आदि, केला, सहतूत, आलूबुखारा, कटहल आदि तथा श्रीफल (बेल का फल) और आड़ू के फल लगे हुए हैं।

सदुद्यानं सगन्धैश्च पाटलैश्चम्पकादिभिः।
मुक्तैर्विडम्बयन्तं यं दृष्ट्वा स्वान्तं प्रमोदते।।९५।।

सुगन्धियुक्त गुलाब, चम्पा आदि के पुष्पों से मुक्त पुरुषों के आनन्द का अनुकरण करनेवाले उस सुन्दर उद्यान को देखकर प्रत्येक पुरुष का मन प्रसन्न हो जाता है।

संसारस्य समुद्धारे सिद्ध्या योगेन विद्यया।
प्रतिज्ञाया[2] चेतनाथैः, पूर्णनाथेन पूरिता।।९६।।

चेतनाथजी ने सिद्धि से, योगबल से तथा विद्या के द्वारा जगत् का उद्धार करने की जो प्रतिज्ञा की थी, वह प्रतिज्ञा श्री पूर्णनाथजी के द्वारा पूर्ण की गई।

दिगन्तविश्रान्तपथाः प्रयान्ति
निजेप्सिताः प्राप्य यतो गिरोऽथ।
स्वजन्मसाफल्यमवाप्य लोकान्
स्वसम्प्रदायानपि शिक्षयन्ति।।९७।।

जिस योगाश्रम महाविद्यालय से दूर-दूर देश से छात्र आकर यथारुचि व्याकरण, न्याय, वेदान्तादि शास्त्रों का अध्ययन करके प्रतिवर्ष स्नातक होकर निकलते हैं और अपने जन्म को सफल बनाकर तथा लोगों को अपने सम्प्रदानुकूल धर्म की शिक्षा देते हैं।

मत्स्येन्द्रनाथस्य हि शिष्यवर्य्यो हारीतयोगी प्रथितः पृथिव्याम्।
तस्याऽऽशिषाभून्नृपतिः स 'बप्पा' प्रदर्शितं तेन हि चैकलिंगम्।।९८।।

---

१. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
२. पाठभेद–प्रत्यज्ञायि.....................।।९४।। (प्रकाशित प्रति)

हारीत योगी मत्स्येन्द्रनाथजी के श्रेष्ठ शिष्य के रूप में संसार में प्रसिद्ध था। उस योगी के आशीर्वाद से 'बप्पा रावल' राजा होगया जो आज तक उदयपुर के राणाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उस बप्पा को उस हारीत योगीश्वर ने एकलिङ्ग महादेव का स्वरूप दिखाया था।

तस्मै गोरक्षनाथोऽसिं प्रादाद्रक्षार्थमात्मनः।
उदयपुरेशै[१]र्भक्त्या स पूज्यते त्वधुनावधिः[२]।।९९।।

उस बप्पा को आत्मरक्षा के लिए गोरक्षनाथजी ने एक खड्ग (तलवार) दिया था, उसकी पूजा उदयपुर के नरेश आज तक भी बड़ी भक्ति के साथ करते हैं।

भुशुण्ड्या न हतः सिंहः क्लैव्यं स्यान्मम चौजसः।
न निलीय हतः कोऽपि फतेसिंहेन भूभुजा[३]।।१००।।

पृथ्वी का पालन करनेवाले राजा फतेसिंह ने स्वयं ही कहा था कि मैंने कभी भी कोई भी सिंह बन्दूक से छिपकर नहीं मारा। ऐसा करता तो वह मेरी नपुंसकता होती, मेरा पराक्रम नहीं होता।

उदयपुरनरेशः श्रीफतेसिंहनामा हरिबलगदहारी पुण्यचारित्रकारी।
अभिलषितसुपूर्तिं[४] निःस्वलोकेषु दानादकृत गिरिसहस्राण्यत्र साहाय्यकं च[५]।।१०१।।

सिंह के बल का घमंड तोड़नेवाले, पुण्यकर्म करनेवाले उदयपुर नरेश फतेसिंह महाराणा ने दरिद्रों की समस्त मनःकामनाएं पूर्ण की और योगाश्रम महाविद्यालय को सात हजार रुपये की राशि सहायतार्थ प्रदान की।

योऽसौ नरेन्द्रः शिवभक्तिभाजामग्रे प्रगण्यः सकलं हि राज्यम्[६]।
यस्याधितिष्ठत्यमरेन्द्रवन्द्यं यदेकलिङ्गं मदहं विरञ्चेः[७]।।१०२।।

---

१. पाठभेद–नरेशैः .... ।।९७।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–त्वसिः .... ।।९७।। (प्रकाशित प्रति)
३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।
४. पाठभेद–विपूर्तिं .... ।।९९।। (प्रकाशित प्रति)
५. पाठभेद–रूप्याणि दाने .... ।।९९।। (प्रकाशित प्रति)
६. पाठभेद–सरोऽपीश्वरभक्त एव .... ।।१००।। (प्रकाशित प्रति)
७. पाठभेद–एकैव सत्ता जगदन्तरात्मनो नानात्वरूपेण विभाति सर्वतः।।१००।। (प्रकाशित प्रति)

जो यह फतेसिंह नरेश वस्तुतः समस्त राज्य में शिवभक्तों में अग्रगण्य हैं और जिनके राज्य के अधिष्ठाता सर्वदेववन्द्य ब्रह्मा के गर्व को तोड़नेवाले एकलिङ्ग महादेव हैं।

फतेहसागराह्वं सुपूर्त्तेष्टकेजावितीर्णं सरो येन सम्यग् विधाय[१]।
यदीया प्रतिज्ञेन्द्रप्रस्थ[२]प्रवेशो विजित्येव कार्य्यः पुरं नान्यथेति।।१०३।।

स्मार्त विधि से यज्ञ करनेवाले फतेसिंह नरेश ने फतेसागर नाम का बड़ा भारी सरोवर बनवाकर प्रजा के हित के लिए उसमें से अनेक नहरें निकाल दीं और जिनकी प्रतिज्ञा थी कि "इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को जीतकर उसमें प्रवेश करूंगा, अन्यथा नहीं।" यह प्रतिज्ञा उनके वंश में पहले से ही चली आरही है। उन्होंने इस प्रतिज्ञा की जीवनपर्यन्त रक्षा की।

इष्टापूर्त्तप्रवृत्तोऽपि वराकपूर्तितत्परः।
सर्वेषां नाथभक्तानां स सत्कर्ता मनीषिणाम्[३]।।१०४।।

इष्टापूर्त्त के सम्पादन में लगा हुआ भी शिव की पूर्ति में संलग्न रहनेवाला वह राजा सभी नाथभक्तों एवं मनीषियों का सत्कार करनेवाला था।

भूपालभूपालभुवोऽस्य सूनुः सेनाहि सेनाहितराजपुत्रैः।
गुणैरनूनोऽखिलविद्यसंख्यागुणैरनूनोऽखिलविद्यसंख्यः।। १०५।।

महाराणा फतेसिंह के सुपुत्र भूपालसिंह जी शिव की सेनारूप शिवभक्तों से स्थापित, राजपुत्ररूप गुणों से युक्त और अनेक विद्वज्जनों से सेवित हैं तथा स्वयं भी सकल गुणसम्पन्न हैं।

चित्तौरगढ[४]दुर्गश्रीपितृपद्धतिरेखया।
प्रतापश्रीस्मारकोऽयं दानी मानी महायशाः।।१०६।।

चित्तौड़गढ़ के दुर्ग की, जो पिता-पितामह के समय से आनेवाली रीति है, उसके अनुसार दानी, मानी तथा महायशस्वी प्रतापसिंह की लक्ष्मी का स्मारक भूपालसिंह विराजमान है।

---

१. पाठभेद–फतेसागरो येन सम्यग् व्यधायि कुनद्यो नदा निर्गता यद्धि पूताः।।१०१।। (प्रकाशित प्रति)

२. पाठभेद–धाम .... ।।१०१।। (प्रकाशित प्रति)

३. यह पद्य पाण्डुलिपि में नहीं है।

४. पाठभेद–चितोरः कोट .... ।।१०४।। (प्रकाशित प्रति)

अलवरनरपालो वैरिवृन्दस्य कालः
श्रुतिमतिततिपालो नम्रसद्राजमालः।
अकृत शरसहस्त्रैः राजतैरूप्यकैर्यो
द्विजसुरमहतां योऽप्यर्हणालः सहायम्।।१०७।।

शत्रुनाशक, वैदिक सनातन मत का पालक, समस्त नरेशों में माननीय, देवता, ब्राह्मण, महन्त आदि का सत्कार करनेवाले अलवर नरेश जयसिंह ने योगाश्रम महाविद्यालय को पांच हजार रुपये की राशि सहायतार्थ प्रदान की।

बहुलचरित एते न स्वदेशे प्रचारः
सुकृतगणगणीयो भर्तृसन्मन्दिरेण।
स जयति जयसिंहः क्ष्मापतिर्[१]दानवीरो
ह्यलवरजनपालोऽप्युत्सवैर्दोर्विशालः।।१०८।।

जिसने उत्सवों का आयोजन तथा भर्तृहरिजी के मन्दिर का निर्माण वहां के मेले द्वारा अपने देश में धार्मिक चरित्रों का अत्यधिक प्रचार किया है ऐसे विशाल भुजाओंवाले अलवर-जनता के रक्षक, दानवीर महाराज जयसिंहजी विजय को प्राप्त होवें, विजयी बनें।

वसुरसनवचन्द्रे वैक्रमीये शुभाब्दे
दहनतिथिरभूद् या माधवे कृष्णपक्षे।
भवतपनकृताज्ञानस्य शान्तिं विधातुं
व्यरचि च जगद्धुराय योगाश्रमोऽयम्।।१०९।।

शुभ विक्रम संवत् १९६८ (१९११ ई०) में वैशाख, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा (दहनतिथि) तिथि के दिन संसार को संताप देनेवाले अज्ञान की निवृत्ति के लिए तथा जगत् का उद्धार करने के लिए यह योगाश्रम बनाया गया।

आचारनीत्योः समयोपयोगो विद्यावरिष्ठेषु गरीष्ठप्रीतिः[२]।
देवे गुरौ स्वे परमा स्वभक्तिसक्तिर्विभक्तिश्चरिताजतुल्या[३]।।११०।।

---

१. पाठभेद–भूपतिः ………………… ।।१०६।। (प्रकाशित प्रति)
२. पाठभेद–भावः ………………… ।।१०८।। (प्रकाशित प्रति)
३. पाठभेद–परार्थयोगी गुरुपूर्णनाथः ………… ।।१०८।। (प्रकाशित प्रति)

इस आश्रम के संस्थापक श्री पूर्णनाथ योगीन्द्र का आचार तथा नीति समयानुकूल है और उनकी विद्वज्जनों में अत्यन्त प्रीति है। अपने गुरुदेव में परमभक्ति है और जिनका चरित्र अत्यन्त प्रशंसनीय है, अर्थात् उन्होंने अपने जीवन में समस्त कार्य गुरुवचन के अनुसार ही किए।

पूर्णा विरक्तिः परिपूर्णभक्तिर्देवे गुरौ विप्रजनानुरक्तिः।
विद्यासु सक्तिर्बहुदानशक्तिः सिद्धौ प्रसिद्धिर्बहु पूर्णनाथे[1]।।१११।।

पूर्णनाथजी में पूर्ण वैराग्य और अपने गुरुदेव में पूर्ण भक्ति है, ब्राह्मणों में अनुराग है, विद्या में आसक्ति और बड़ी भारी दानशक्ति तथा सिद्धि में अत्यधिक प्रसिद्धि है।

येन सम्पूर्णतां नीतं पूर्णमन्त्रोऽपि गौरवात्।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।११२।।

जिसके द्वारा '**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते**' इस पूर्णमन्त्र को अपने गौरव के कारण सम्पूर्णता (सार्थकता) को प्राप्त करा दिया गया।

अतिष्ठिपत्स्वयं श्रीमच्छ्रेयोनाथं निजासने।
नाथे रामे स नन्दे च क्षितौ च जीविते सनि[2]।।११३।।

(ऐसे) सिद्ध पूर्णनाथजी ने अपनी जीवित अवस्था में ही सन् १९३९ में शोभा से युक्त श्रेयोनाथजी को स्वयं ही अपने परम्पराप्राप्त आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

श्रीमस्तनाथचरिते पञ्चनदीयमहाकविन्यायाचार्यपंडितहरदत्तविरचिते सिद्धश्रीचेतनाथतदीयोपकृतियोगीन्द्रश्रीपूर्णनाथतद्द्वाराविविध-कार्यसम्पादनतदीयभक्तजनोपकृतिसंस्मरणप्रयुक्तविविध-विषयवर्णनविशिष्टो नाम पञ्चविंशः सर्गः।

समाप्तं चेदं श्रीमस्तनाथचरितम्।

---

१. पाठभेद– ………………… शक्तिर्लीनः परे ब्रह्मणि बोधयोगात्।
कृतं कृतार्थं स्वकजन्मजातं येन प्रसिद्धो गुरुपूर्णनाथः।।१०९।। (प्रकाशित प्रति)
इसके पश्चात् पाण्डुलिपि के पृष्ठ उपलब्ध नहीं है।
२. ये पद्य प्रकाशित प्रति के हैं।

षड्विंशः सर्गः

श्रीमच्छ्रेयोनाथाख्यानादिप्रकरणम्

नाथरामनन्दभूमिवत्सरे फाल्गुने सनि।
अष्टाविंश्यां तारिकायां महत्त्वं लब्धवान् भवान्।।१।।

संवत्सर १९३९ (ई०) फाल्गुन मास की अठाइसवीं (२८) तारीख में आपने (श्रेयोनाथजी ने) महन्तपद को प्राप्त किया।

श्रीमच्छ्रेयोऽधिनाथो जनबलविजयप्राप्तकर्त्ता महात्मा
विद्वान् विद्यानुरागी श्रुतिशतपथिकोद्भ्रान्तमार्गप्रदेष्टा।
आजन्मोद्योगशीलो यमनियमरतो दर्पहीनः प्रवीणोऽ-
दीनो दीनस्य गोप्ता स जयति च नृणां वारिता येन दोषाः।।२।।

जनशक्ति पर विजय प्राप्त करनेवाला (अथवा सभी वर्गों के जनसमुदाय में प्रमुख), महान् आत्मावाला (उदार), विद्वान्, विद्या से प्रेम करनेवाला, श्रुतियों के विभिन्न (सैकड़ों) मार्गों का अनुसरण करने के कारण भ्रान्त लोगों को उचित मार्गदर्शन करनेवाला, जन्म से उद्योगशील, यम[1] और नियम[2] के पालन में निरत, अहंकाररहित, कुशल, अदीन (ने दबनेवाला अथवा तेजस्वी, उदार), दीन का रक्षक वह श्रीमान् श्रेयोनाथ महाराज विजयशील हैं और जिनके द्वारा लोगों की समस्त बुराइयां दूर कर दी गई हैं।

श्रीमच्छ्रेयोऽधिनाथः सकलगुणगणग्रामपुण्याधिवासो-
हासो विद्याविलासः सरसकविकथोद्गीतनीतिज्ञविद्वान्।
नेता जेता जनानां युगजनगणनामुख्यसाचिव्यधाता
ज्ञाता धान्वन्तरं यद् यमियमनियमैर्वश्यचेता महान् यः।।३।।

श्रीमान् श्रेयोनाथ महाराज समस्त गुणराशि एवं पुण्यरूप ग्राम में निवास करनेवाले हैं, विद्या में प्रेम (अनुरक्ति) ही जिनकी हंसी है, जो सहृदय (सरस)

---

१. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

२. शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, दान, ईश्वरभावनम् (परमात्मा में अनुराग रखना)।

कवियों की कथा, गीतों एवं नीति के जाननेवालों में विद्वान् हैं, लोगों का नेता और अपने तेज के कारण उन्हें जीतनेवाले वर्तमानयुग के जनतन्त्र के मुख्य सचिव पद को धारण करनेवाले, धन्वन्तरिप्रणीत आयुर्वेद के ज्ञाता हैं तथा जो योगियों द्वारा बताए गए यम और नियमों से अपने चित्त को वश में करनेवाले महान् पुरुष हैं।

श्रीमस्तनाथस्य मठस्य कायो
नवीनविज्ञाननयेन नीतः।
उच्चस्तरे विंशतिलक्षरिक्थात्
सामाजिकत्वेऽपि सनातनत्वम्।।४।।

श्री मस्तनाथजी के मठ का ढांचा नवीन विज्ञान पद्धति से बनाया और लगभग बीस (२०) लाख की उत्तराधिकार में मिली हुई सम्पत्ति से उच्चस्तर के समाजसम्बन्धी कार्य में भी सनातन धर्म का पालन किया अर्थात् २० लाख की सम्पत्ति अपनी सनातन पराम्परानुसार जनकल्याण हेतु व्यय की।

समस्ता मर्यादा विलसति च देवालयतति-
र्महाविद्यागारो बुधजनमनोहारिविषयः।
चिकित्सा नेत्राणां क्वचिदपि च भैषज्यनिलयो
मठोऽसौ बाभाति प्रथितयशसा भूरिमहसा।।५।।

यहां इस मठ में समस्त मर्यादाओं का पालन होता है, मन्दिरों का विस्तार देखने में आता है, विद्वान् पुरुषों को मनोहर लगनेवाला विद्या का विशाल भवन वर्तमान है, नेत्रों की चिकित्सा की जाती है और कहीं पर औषधि का भण्डार भी है। इस प्रकार यह मठ अपने फैले हुए यश तथा प्रभूत महत्ता के कारण शोभायमान होरहा है।

अथ पञ्चदशाब्दवया वया
न च मत्वा मरणीयमात्मनः।
स विचार्य च योगिपुङ्गवं
गुरुपूर्णं च समागतस्तदा।।६।।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में अपनी उमर की परवाह न करके निवृत्तिमार्ग में अग्रसर होगए और योगिश्रेष्ठ पूर्णनाथजी (पूर्णब्रह्मस्वरूपवाले) को गुरुरूप में प्राप्त करके योगमार्ग में संलग्न होगए।

नरेला जन्मेलो बहुधनजनेलादिसहिते
कुले जातश्चोच्चैः कृषिबलबलैश्वर्यनिचिते।
भवान् श्रेयोनाथो विधिगतिवशाद् योगपथगो-
ऽभवत्प्राप्तः पूर्णं सकलजनकल्याणपथिकः।।७।।

नरेला गांव में प्रचुर धन एवं कुटुम्बादि से युक्त कुल में जन्म लिया, जो उच्चकोटि की कृषि से उपार्जित सम्पत्ति से परिपूर्ण था, परन्तु आप श्रेयोनाथजी दैवयोग से योगमार्ग में प्रवृत्त होगए और समस्त लोगों के कल्याण करने में तत्पर आपने पूर्णनाथजी को गुरुरूप में प्राप्त किया।

किंचित्कालात्पुनः पश्चात् श्रेयोनाथो महामनाः।
स्वाध्ययने प्रवृत्तोऽभूत् कार्याकार्यविचारतः।।८।।

कुछ समय पश्चात् महामनस्वी श्रेयोनाथजी क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है इसका विवेचन करने के लिए अपने अध्ययन में प्रवृत्त होगये अर्थात् कार्य-अकार्य के विवेचन की दृष्टि से अध्ययन में लग गए क्योंकि विद्या से व्यक्ति को करने योग्य और न करने योग्य कर्मों का ज्ञान हो जाता है।

न रात्रिर्गणिता तेन न तेन गणितं दिनम्।
न ध्यानं देहपोषाय स श्रीमान् पठनप्रियः।।९।।

उन अध्ययनप्रिय श्रीमान् ने विद्यार्जन के समय न दिन गिना और न रात गिनी और न ही अपने शरीर पोषण की तरफ ध्यान दिया अर्थात् वे दिन-रात निरन्तर विद्याध्ययन में लगे रहते थे यहां तक कि उन्होंने अपनी सेहत का भी ख्याल नहीं रखा।

देशदेशान्तरे गत्वा शास्त्राणि सकलान्यपि।
अधीतानि समस्तानि विपुलेन श्रमेण यत्।।१०।।

उन्होंने देश-देशान्तर में जाकर अथक प्रयास से (कड़ी मेहनत से) कला सहित समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया अर्थात् शास्त्रों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया।

स श्रिया राजते सोऽयं श्रेयोनाथो महायमी।
अनासक्तो विरक्तश्च परार्थाः सकलाः क्रियाः।।११।।

वे लक्ष्मी से सुशोभित हैं, वहीं अत्यन्त संयमी श्रेयोनाथजी आसक्ति रहित एवं विरक्त हैं तथा जिनकी समस्त क्रियाएं दूसरों का कल्याण करने के लिए ही होती है।

स रससिद्धोऽप्यरस आयुर्वेदविदां वरः।
सिद्धवैद्यः स्वयं सिद्धो निदानादिकृतश्रमः।।१२।।

वह रसवेत्ता होते हुए भी आसक्ति से रहित थे, आयुर्वेद के विद्वानों में श्रेष्ठ थे, एक सफल वैद्य थे, स्वयं ही सिद्ध थे अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र में कामयाब थे, निदान (रोगनिर्णय) आदि में उन्होंने विशेष परिश्रम किया हुआ था।

पठितं स्थापितं चित्ते सदाचारे न चालितः।
लोकसेवां वितन्वानो मन्वानो धर्मसद्गतिम्।।१३।।

वे जो पढ़ते थे उसे हृदयंगम कर लेते थे और सदाचार में उन्हें किसी ने नहीं चलाया अर्थात् स्वयं ही प्रकृति से वे सन्मार्ग में प्रवृत्त थे अथवा वे सन्मार्ग से कभी च्युत नहीं हुए, जीवनपर्यन्त धर्म की सद्गति को मानते हुए उन्होंने लोकसेवा का विस्तार किया अर्थात् जनकल्याण के कार्यों को निरन्तर बढ़ावा देते रहे।

यच्चित्ते च तथा वाचि यथा वाचि तथा क्रियाः।
दृश्यन्ते लोकसेवायै श्रेयोनाथस्य धीमतः।।१४।।

बुद्धिमान् श्रेयोनाथजी के मन में जो होता था वैसा ही वाणी में भी होता था। जैसा वाणी में वैसे ही उनकी क्रियाएं लोकसेवा के लिए दिखाई देती हैं अर्थात् जिस काम के लिए वे कह देते थे, उसे अवश्य पूरा करते थे।

उदारत्वपराकाष्ठा योगः कर्मसु कौशलम्।
सम्यक् संघटते तस्मिन् श्रेयोनाथे महीयसि।।१५।।

कर्मों में कुशलता एवं उदारता की पराकाष्ठा ही योग कहलाता है, वह उदारमना उन श्रेयोनाथजी में भलीभांति घटित होता है।

अमानो मानदोऽमानी व्यसनानां निरासकः।
शासको ज्ञानहीनानां सेवाधर्मपरायणः।।१६।।

ईर्ष्यायुक्त क्रोध से रहित हुए दूसरों को सम्मान देनेवाले, निरभिमानी (विनम्र), व्यसनों में आसक्ति न रखनेवाले, ज्ञानहीनों को भी शिक्षा देनेवाले श्रेयोनाथजी सेवाधर्म में संलग्न हैं।

उच्चावचक्षितिभागान् विगाह्य गिरिगह्वरान्।
तीर्थसार्थं विलोक्याथ स श्रीमान् व्यरमत् स्वयम्।।१७।।

ऊंचे-नीचे भूभागों एवं पर्वत कन्दराओं का अवगाहन करके, तत्पश्चात् तीर्थसमूह को देखकर वह श्रीमान्‌जी स्वयं रुक गए अर्थात् सम्प्रति तीर्थसेवन करने लगे।

अधीत्य शास्त्राणि विगाह्य पण्डितान्
विलोक्य लोकान् समवाप्य तत्त्वम्।
सर्वेषु भावेषु विधाय नैपुणीं
श्रेयोधिनाथो नितरां व्यराजत।।१८।।

समस्त शास्त्रों का अध्ययन करके, विद्वानों (पण्डितों) का अवगाहन करके, लोकों (विभिन्न भूभागों) को देखकर तत्त्व (परमतत्त्व) को पाकर, सभी भावों में निपुणता को प्राप्त करके, श्रेयोनाथ महाराज अत्यन्त शोभित हुए।

ततः समस्तार्यविचार्यतत्परः
परम्पराप्राप्तगुरुप्रभावतः।
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं
मया शरीरं हि चिकित्स्यतामिह।।१९।।

तदनन्तर परम्परा से प्राप्त गुरु के प्रभाव से विचार करके समस्त सर्वोत्कृष्ट कार्यों में संलग्न हुए सोचने लगे कि शरीर ही वस्तुतः धर्म का प्रथम साधन है। अतः मुझे इस जीवन में निःसन्देह शरीर की ही चिकित्सा करनी चाहिए।

यतो विचारास्पदसारयोगतो
धान्वन्तरं शास्त्रमुपेयिवान् बुधः।
धर्मोऽप्यनेनार्थचयोऽप्यनेन यन्
मोक्षोऽप्यनेन क्रमतो यशश्च यः।।२०।।

जिस कारण उस विद्वान् ने विचार के योग्य सारभूत योग से धन्वन्तरिप्रणीत चिकित्साशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया और उन्होंने इसके माध्यम से धर्म एवं धनराशि प्राप्त करके क्रम से मोक्ष को और यश को भी पा लिया।

गुरोर्गिरः पूर्णतया निभाल्य स
समस्तशास्त्राणि विचार्य सर्वतः ।
सर्वानधीत्याथ विमर्शपुस्तकान्
श्रेयोधिनाथो नितरां व्यराजत ।।२१।।

गुरु की वाणी को पूर्णरूप से हृदयंगम करके, समस्त शास्त्रों का सब प्रकार से विचार करके, विवेचनीय समस्त ग्रन्थों का अध्ययन करके वह श्रेयोनाथजी महाराज अत्यन्त शोभित हुए।

परिश्रमोऽप्यस्य परिश्रमं गतो
निरन्तराभ्यासपरिश्रमश्रयात् ।
स विश्वविद्यालयपूर्णतामितः
पुरे जये स्नातकतां वसन्निह ।।२२।।

निरन्तर अभ्यासरूप परिश्रम करते रहने से इनका परिश्रम भी पूर्ण तप बन गया, जिसके फलस्वरूप इन्होंने जयपुर में रहते हुए विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पाकर आयुर्वेद में स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

सौराष्ट्रे च गतो धीमानाचार्यत्वमवाप्य सः ।
आयुर्वेदस्य विज्ञाने विस्मयं जनयन्निह ।।२३।।

और वह बुद्धिमान सौराष्ट्र (गुजरात) में गए और आचार्य की पदवी को पाकर चिकित्साविज्ञान में अनेकानेक आश्चर्यमय कार्य किये।

तद्राजा मूलराजेन काठीतिपदगामिना ।
व्यधायि स्वागतं भव्यं श्रेयोनाथस्य धीमतः ।।२४।।

तब काठियावाड़ के राजा मूलराज ने बुद्धिमान् श्रेयोनाथजी का भव्य स्वागत किया।

चिकित्सा सफला जाता कृता राज्ञश्च या तदा ।
आश्चर्यं न च कर्त्तव्यं योगिनां दुर्लभं किमु ?।।२५।।

और तब राजा की जो चिकित्सा की गई, वह सफल सिद्ध हुई। इस विषय में आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि योगियों के लिए क्या दुर्लभ होता है ? अर्थात् योगियों के लिए प्रत्येक कार्य संभव है।

तद्द्वारा प्राप्तवित्तेन चिकित्साभवनं व्यधात्।
अहंमदावादपुर्यां धर्मार्थं न च लोभतः।।२६।।

तब उनके द्वारा प्राप्त धन से अहमदाबाद नगरी में धर्मार्थ एक चिकित्सा भवन का निर्माण करवाया, न कि लोभ से।

उद्यमः साहसो धैर्यं धर्मः सत्यं पराक्रमः।
षडेते यत्र विद्यन्ते तत्र देवः सहायकृत्।।२७।।

जहां पर उद्यम, साहस, धैर्य, धर्म, सत्य एवं पराक्रम ये छह होते हैं, वहां पर देवता प्रत्येक क्षेत्र में सहायता करते हैं।

इत्याद्यं लक्ष्यमालक्ष्य यशोराशिं तितांसति।
श्रीयुक्ते श्रेयसां नाथे राजद्वारमपावृतम्।।२८।।

इस प्रकार प्रथम लक्ष्य को पाकर राजा उनकी यशोराशि का विस्तार करने लगे और इस प्रकार श्री से युक्त, कल्याणों के स्वामी (श्रेयोनाथजी) के लिए राजद्वार खुल गया अर्थात् राजा के पास उनका आना-जाना बेरोक-टोक होगया।

स आशातीतरूपेण चिकित्सा सफला यदा।
प्रसन्नः सिद्धवैद्योऽद्य वैद्यराजः प्रभाववान्।।२९।।

जब उनकी चिकित्सा आशातीत रूप से सफल सिद्ध हुई, तब वह प्रभावशाली सिद्ध वैद्यराज अत्यन्त प्रसन्न हुए।

ओषधीनां च निर्माणे नाडीनां च परीक्षणे।
स्थानं विश्वोत्तमं प्राप्तं तेन जातं यशो महत्।।३०।।

और उन्होंने दवाओं के निर्माण और नाड़ी-परीक्षण में विश्व में सर्वोत्तम स्थान प्राप्त किया, जिस कारण उनका बहुत यश फैला।

एकदा पूर्णनाथो वित् परिपूर्णमनोरथः।
आरचय्यार्चनाशेषमशेषामानयन्निशाम्।।३१।।

एक बार परिपूर्ण मनोरथवाले विद्वान् पूर्णनाथजी ने शेष पूजा को पूर्ण करते हुए रात्रि में विचार किया अर्थात् मठ की सेवा के दैनन्दिन कार्यों से निबटकर वे रात्रि में विचार करने लगे।

चिन्तयामास को योग्यः ? शिष्येषु शिष्यतल्लजः।
सुष्वाप स्वप्नगं पश्यन् श्रेयोनाथं महामतिम्।।३२।।

कि मेरे शिष्यों में सर्वोत्तम शिष्य कौन है ? ऐसा सोचते हुए वे सोगए, तदनन्तर उन्होंने स्वप्न में महामति (अत्यन्त बुद्धिमान्) श्रेयोनाथजी को सब शिष्यों में से श्रेष्ठ शिष्य के रूप में देखा।

अहो मे सफलं जन्म जाता मे सफला: क्रिया: ।
अहो मे सफलं ज्ञानं योग्यशिष्यो ममाधुना।।३३।।

तब वे कहने लगे कि अहो ! अब अपने योग्य शिष्य को पाकर मेरा जन्म सफल होगया, मेरी सम्पूर्ण कियाएँ सफल होगईं तथा मेरा ज्ञान भी सफल होगया।

एष सिंहासने योग्यो वर्तमानक्रियाविधौ।
जीविते तं च पश्यामि स्थापयामि निजासने।।३४।।

वर्तमान क्रियाप्रणाली में यह सिंहासन के योगय है, अत: उसे अपने जीवन में ही अपने आसन पर प्रतिष्ठित करता हूं और इसकी प्रत्येक गतिविधि का निरीक्षण करता हूं।

एतस्मिन्नेव संरम्भे संरम्भाम्रेडनोत्सुक: ।
आजुहाव स मोदेन श्रेयोनाथं महामतिम्।।३५।।

इसी सन्दर्भ में तैयारी के लिए अत्यन्त उत्सुक उन्होंने प्रसन्नता से कुशाग्रबुद्धि (महामति) श्रेयोनाथजी को बुलाया।

वादीन्द्रवृन्दनागेन्द्रघटासंघट्टकेसरी।
गुरुणाऽऽकारित: श्रीमच्छ्रेयोनाथ: समागत: ।।३६।।

अपने वर्ग का प्रमुख अथवा विद्वानों के समूह में अग्रगण्य, श्रेष्ठ हाथियों की टोली के संघर्ष में सिंहस्वरूप (सर्वोत्तम) श्रीमान् श्रेयोनाथजी गुरु के बुलाने पर तुरन्त उनके समीप आए।

योगान्वितेन धृतरागनवाम्बरेण
श्रीमस्तनाथवनमध्यतलं व्यलोकि।
तेन प्रविष्टमजनिष्ट दिनावसानं
चण्डत्विषा च शिखरं वरुणाचलस्य।।३७।।

योगशक्ति से युक्त, कषयवस्त्रधारी उन्होंने दिन की समाप्ति के समय श्रीमस्तनाथजी के आवास-स्थान के मध्यभाग को देखा। उनके प्रवेश करते ही दिन छिप गया था और उष्ण कान्तिवाले सूर्य ने भी वरुणाचल के शिखर पर प्रवेश कर

दिया था अर्थात् उसी समय सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया था। सूर्य एवं श्रेयोनाथजी के प्रवेश का एक ही समय था।

स्थानद्रुमागतमरुद्विगतः श्रमः सन्
श्रेयोधिनाथ इह वासमलं व्यरंसीत्।
शंसन्ति यत्र तरवो वसतिं यतीनां
शाखाभिरुज्ज्वलमृगाजिनवल्कलाभिः।।३८।।

बोहरमठ स्थानीय वृक्षों से आती हुई वायु से जिसकी मार्गजन्य थकान दूर हो गई थी, ऐसे श्रेयोनाथ महाराज ने यहां के आवासस्थान में पर्याप्त रमण किया। जहां के वृक्ष अपनी टहनियों के माध्यम से उज्ज्वल मृगचर्म के वल्कलों से यतियों के निवासस्थान के विषय में बता रहे हैं।

आदेशमेकमनुयोक्तुमयं व्यवस्यन्
श्रीपूर्णनाथमनवद्यचरित्रमित्रम्।
एत्य स्थितेन गदितं यमिनां गणेन
पूर्णं पवित्रहृदयं गुरुमानतः सः।।३९।।

जिनका एकमात्र मित्र उनका अनिन्दित चरित्र था ऐसे श्रीपूर्णनाथजी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनके प्रति एकमात्र **'आदेश'** पद का प्रयोग करते हुए इन्होंने आकर वहां बैठे हुए यमिगण (संन्यासीवर्ग) के द्वारा प्रशंसित पवित्र हृदयवाले पूर्ण गुरु को पाकर स्वयं को आत्मनिर्भर समझा।

सौराष्ट्राच्च समागत्य दक्षिणां गुरवे स्वयम्।
दत्तवान् पांचसाहस्त्री राजतीं योगिराडयम्।।४०।।

और सौराष्ट्र (गुजरात) से आकर इस योगिराज ने गुरु को स्वयं पांच सहस्त्र चांदी की मुद्राएं दक्षिणा के रूप में प्रदान कीं।

ग्रामणीग्रामसंमान्यो वसुग्रामेण सम्मतः
स्वीकृतो योगिवृन्देन पीठासनमहोत्सवे।
गुरोराज्ञा शिरोधार्या श्रेयोनाथो विविच्य ताम्
आरुरोह मृगेन्द्रेव सिंहासनमदो गिरिम्।।४१।।

पीठासन महोत्सव के अवसर पर गांवों के मुखिया द्वारा संमान्य, धनराशि से सम्मानित, योगिसमुदाय द्वारा अनुमोदित स्वाभिमानी श्रेयोनाथजी **'गुरु की आज्ञा**

शिरोधार्य है' ऐसा विचार करके उस परम्पराप्राप्त सिंहासन पर उसी प्रकार आरूढ़ होगए जिस प्रकार राजसत्ता का अभिमानी मृगराज (सिंह) पर्वत पर आरूढ़ हो जाता है।

सम्बध्नाति प्रबध्नाति जगदात्मा जगद् विभुः।
प्राणिनां सर्वलोकानां सम्बन्धान् संयुनक्ति सः।।४२।।

जगत् का आत्मस्वरूप व्यापक वह परमात्मा जीव को भलीभांति, प्रकृष्टरूप में आवागमन के चक्र में बांध देता है और समस्त लोकों के समस्त प्राणियों के सम्बन्धों को अच्छी प्रकार जोड़ देता है अर्थात् जिसने भी सांसारिक सम्बन्ध होते हैं, वे सब परमात्मा की ओर से निश्चित होते हैं।

मनांसि सर्वलोकानां प्रसन्नानि तदाऽभवन्।
समवायः सतामासीद् योगिनां द्वादशाध्वनाम्।।४३।।

तब सभी लोगों के मन प्रसन्न होगए, उस अवसर पर सज्जनों और बारह पंथों के योगियों का समुदाय मौजूद था।

विद्वद्भिर्मण्डिता जाता वसुधा सकलाऽमला।
असंख्यसमवायेन भुक्तं तत्प्रीतिभोजनम्।।४४।।

उस समय विद्वानों से भूषित समस्त पृथ्वी निर्मल होगई तथा उस प्रीतिभोज को अनगिनत जनसमुदाय ने खाया अर्थात् उस समय मठ में असंख्य लोगों ने भोजन किया।

शास्त्राणां च कथावार्ता प्रचारश्चातिशोभनः।
विभिन्नमतगो लोक ऐक्यमास्थाय भुक्तवान्।।४५।।

और शास्त्रों की कथा एवं वार्ता का अत्यन्त सुन्दर प्रचार होने लगा। उस समय ऐसा लगता था कि विभिन्न समुदाय (विभिन्नमतानुयायी) लोगों ने एकपन को पाकर अर्थात् एक होकर भोजन किया हो।

हृष्टा लोकाः स्वयं तुष्टा दृष्ट्वा नाथमहोत्सवम्
निवृत्ता गीतवाद्याद्यैर्गायन्तः श्रेयसो गुणान्।
पूर्णनाथोऽपि योगीन्द्रो विरक्तिमीयिवान् पुनः
चचार तीर्थयात्रासु न वैरी नापि बान्धवः।।४६।।

नाथों के महोत्सव को देखकर लोग प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होगए गीत-बाजे आदि के माध्यम से श्रेयोनाथजी के गुणों का गान करते हुए शान्त (निश्चिन्त)

होगए। फिर योगिश्रेष्ठ पूर्णनाथजी ने भी वैराग्य को प्राप्त किया और तीर्थयात्राओं में विचरण करने लगे। उनका न कोई शत्रु था और न ही बन्धुजन अर्थात् विरक्त साधुजनों का न कोई अपना होता है और न पराया।

जनकल्याणकार्याणि भूयांसि श्रीमता स्वयम्।
कृतानि तेषु कानिचित् कथ्यन्ते लोकहेतवे।।४७।।

उन श्रीमान्जी के द्वारा बहुत से जनकल्याण के कार्य किये गए परन्तु उनमें से कुछ का ही कथन किया जाता है।

साधुता साधिता येन प्राणरक्षणभोजनः।
साधारणेनैव वेषेण संयतो दृश्यते जनैः।।४८।।

जिनके द्वारा सज्जनता पूरी कर दी गई=सिद्ध कर दी गई, जो प्राणों की रक्षा के लिए ही भोजन किया करते थे और अपने सामान्य वेष से वे लोगों को एक जितेन्द्रिय पुरुष के रूप में दिखाई देते थे।

एकाशनो जितश्वासः सत्यवक्ता निरालसः।
स्वाध्यायध्यानगोऽद्वेषो मैत्रः सर्वजन्तुषु।।४९।।

वे एक समय भोजन करनेवाले, भक्तों के विश्वास को जीतनेवाले, सत्य बोलनेवाले, आलस्यरहित, स्वाध्याय और ध्यान में लीन, द्वेषरहित और सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रखनेवाले थे।

गोशाला स्थापिता येन गोसेवी च यतिः स्वयम्।
मितभाषी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।।५०।।

जिनके द्वारा गोशाला की स्थापना की गई और जो यति (संन्यासी) स्वयं गायों की सेवा करनेवाले, मितभाषी, परिमित भोजन करनेवाले, त्यागभावनावाले एवं योगसाधना में तत्पर थे।

आयुर्वेदे सिद्धवैद्यः शास्त्रज्ञानक्रियात्मकः।
वैशिष्ट्यं स्वानुभूतेश्च श्रेयोनाथो महामना।।५१।।

महान् अन्तःकरणवाले श्रेयोनाथजी आयुर्वेद में सफल वैद्य थे और शास्त्रों के ज्ञान को कार्यरूप में परिणत करनेवाले और अपने अनुभव में विशिष्टता रखते थे।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्।
इत्याप्तवाक्यमाश्रित्य कार्यारम्भे कृतोद्यमः।।५२।।

"मैं दुःख से संतप्त प्राणियों की पीड़ा के नाश की कामना करता हूं" इस आप्तवचन को ध्यान में रखकर ही वे किसी काम की शुरुआत किया करते थे।

वसुवेदनाथभूमिवत्सरे मइमासि यत्।
चिकित्साभवनं रम्यं विशालं चक्षुषोर्व्यधात्।।५३।।

उन्होंने १९४८ वर्ष मई मास में आंखों के विशाल एवं भव्य चिकित्साभवन का निर्माण करवाया।

साङ्गोपाङ्गपरिपूर्णं कर्मचारिसमन्वितम्।
हितकृद् गौरवोपेतं भागद्वयविधानतः।।५४।।

यह अंगों और उपांगों से परिपूर्ण आयुर्वेद से संबंधित प्राचीन एवं नवीन प्रणाली, तत्सम्बन्धी अन्य चिकित्सीय उपचारों सहित, दक्ष कर्मचारियों से युक्त, हितकारी, गौरवपूर्ण दो भागों (नेत्रचिकित्सालय, सामान्य चिकित्सालय) में विभक्त है। अर्थात् यहां पर आयुर्वेद और एलोपैथी के अंगों और उपांगों के साथ अलग-अलग विभाग बने हुए हैं।

योगीन्द्रगुरुपूर्णस्य स्मारकं दुःखहारकम्।
लक्षत्रयाधिकं यत्र व्ययीभूतं धनं यतः।।५५।।

योगिराज गुरुदेव पूर्णनाथजी का स्मारक दुःखों को हरण करनेवाला है, जिसमें तीन लाख से अधिक धन खर्च हुआ।

देशान्तराल्लोकाः प्रत्यहं बहुसंख्यया।
समायान्ति रुजाक्रान्ता नैरुज्यं प्राप्य यान्ति ते।।५६।।

यहां देश-देशान्तर से (विभिन्न स्थानों से) रोग से पीड़ित लोग बहुत भारी संख्या में प्रतिदिन आते हैं और वे नीरोग होकर चले जाते हैं।

नेत्रदानमिदं प्रोक्तं दानानां दानमुत्तमम्।
स नेत्रदानयज्ञोऽयमेतस्माज्जायते ध्रुवः।।५७।।

समस्त दानों में नेत्रदान उत्तम दान कहा गया है और वह नेत्रदान यज्ञ सदैव स्थिर रहनेवाला है जो इसी नेत्रदान से उत्पन्न होता है, अर्थात् यह मृत्यु के पश्चात् भी दूसरे व्यक्ति के माध्यम से रहता है।

सामान्या सर्वरोगाणां चिकित्सा जायतेऽधुना।
विशिष्टा चक्षुक्षामेव प्रत्यक्षा नात्र संशयः।।५८।।

सम्प्रति यहां पर सभी रोगों की सामान्य चिकित्सा भी होती है परन्तु नेत्रों की विशेषरूप से होती है, यह प्रत्यक्ष ही है। इस विषय में तनिक भी संदेह नहीं है।

कार्यारम्भो हि महतामविलम्बेन सिद्ध्यति।
सत्यात्मना कृतं कार्यं फलशालि भवेद्ध्रुवम्।।५९।।

वस्तुतः महान् व्यक्तियों का शुरू किया गया कार्य शीघ्र ही पूरा हो जाता है और सत्य आत्मावाले व्यक्ति के द्वारा किया गया कार्य तो निःसंदेह उत्तम फल देनेवाला होता है। अर्थात् महान् व्यक्ति जो कार्य करते हैं उनका परिणाम हमेशा उत्तम ही होता है।

श्रीमस्तनाथसिद्धस्य पुण्यस्मृतिहितवे।
आयुर्वेदमधिप्राप्य महाविद्यालयस्थितिः।।६०।।

सिद्ध श्रीमस्तनाथजी की पुण्यस्मृति में ही इस आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की गई।

शिवरात्रेरर्चनात् पश्चात् सोमवारे शुभे दिने।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते फाल्गुने स्थापितस्त्वयम्।।६१।।

शिवरात्रि उत्सव के पश्चात् सोमवार के शुभ दिन ब्राह्ममुहूर्त होने पर फाल्गुन मास में इस महाविद्यालय की स्थापना की गई।

स रुद्राकाशपक्षाख्ये वैक्रमे वत्सरे शुभे।
स्थापितः श्रीमता श्रेयोनाथेन मुकुटाकृतिः।।६२।।

विक्रम संवत् २०११ (सन् १९५४ ई०) के शुभ वर्ष में श्रीमान् श्रेयोनाथजी के द्वारा इसका शिलान्यास किया गया।

पूज्यलोकसमारोहशान्त्या सौख्येन सश्रिया।
महाविद्यालयानन्यानतिक्रम्य विराजते।।६३।।

गणमान्य लोगों से इसका स्थापना समारोह सम्पन्न हुआ है, अतः शान्तिप्रद स्थल होने से, सुखदायी होने से और शोभा से युक्त होने के कारण यह दूसरे महाविद्यालयों का अतिक्रमण करके विराजमान है, अर्थात् इसके आगे दूसरे महाविद्यालयों का कुछ भी स्थान नहीं है क्योंकि इसमें अन्य महाविद्यालयों की अपेक्षा सुविधाएं अधिक हैं और इसका भवन सौन्दर्य भी अनूठा है।

विशालः शोभमानोऽयमायुर्वेदस्य भास्करः।
अद्भुतं दर्शनं चास्य व्यनक्ति गौरवं महत्।।६४।।

शोभायमान यह विशाल चिकित्सालय आयुर्वेद के प्रकाश को सर्वत्र फैलानेवाला है और इसका दर्शन भी अद्भुत है, जो इसके विशाल गौरव को प्रकट कर रहा है।

जिघृक्षति नभश्चैव भास्करं द्रष्टुमिच्छति।
विद्युद्व्यजनैर्वृषीभिर्गवाक्षैर्जालिकादिभि:।।६५।।

यह बिजली के पंखों, मोर के आकार के रोशनदानों और जालिका आदि से मानो आकाश को छूना चाहता है और देदीप्यमान सूर्य को देखने की इच्छा करता है, अर्थात् इसका भवन पूर्ण आधुनिक तकनीक से बना हुआ है, जिसमें वायु के प्रकाश की नैसर्गिक सुविधा है।

आमूलचूलरूपेण विभागा: सर्व एव हि।
शतश: सन्ति तत्पूर्त्तौ यथायोग्यव्यवस्थिति:।।६६।।

सभी विभाग पूर्णरूप से हैं और उनकी पूर्ति सैकड़ों करते हैं और उनकी यथायोग्य व्यवस्थिति है, अर्थात् इस चिकित्सालय में चिकित्सा की दृष्टि से समस्त विभाग सुव्यवस्थित हैं तथा उनमें सैकड़ों कर्मचारी कार्यरत हैं।

छात्रावासो विशालो विलसति वसुधा दीर्घरूपा यदीया
कूपो नद्या नदीष्णो वितरति च जलं स्वास्थ्यवर्धिष्णुमिष्टम्।
उद्यानं पाकशाला नलजलविलसत्कोष्ठभागा यदन्त-
र्विद्युद्वातप्रदाद्यैर्दिवि च सुरपतिर्गायति यं च दृष्ट्वा।।६७।।

जिसका विशालकाय छात्रावास भूतल पर विलास कर रहा है और पक्का (नदीष्ण) कुआं (ट्यूब्वेल) नाली (पाइप) के माध्यम से स्वास्थ्यवर्धक यथेष्ट जल का वितरण करता है। इसके अतिरिक्त उद्यान, पाकशाला और कमरों के अन्दर भी जल नल की व्यवस्था है और बिजली के पंखों आदि के कारण जिसे देखकर स्वर्ग में इन्द्र भी इसकी महिमा का गान कर रहा है।

महाविद्यालयावासप्रतिष्ठानविधादिषु।
व्ययो द्वादशलक्षाणां संजात: प्राय एव हि।।६८।।

महाविद्यालय के आवास की स्थापना आदि में नि:संदेह लगभग १२ लाख रुपये व्यय हुए।

आश्चर्यम्

शान्त्या सौख्यश्रियाऽसौ शिवशिवजपतां कोऽयमद्वैतवादो
भासो हासं प्रयातः स्मृतिकृतिकलया विश्वकर्मा विलोक्य !
पद्मा सद्मानि येषां कथयति वसुधा श्रेयसां नाथ एष
आशातीतं परार्थं तमपि च लभते स्वात्मविश्वासचेताः । ।६९ । ।

इसकी शान्ति से, सुखदायी होने से, शोभा से, स्मृतिकला की रचना की दृष्टि से इस विश्वकर्मा ने देखकर कहा कि शिव-शिव जपनेवालों में यह कैसा अद्वैतवाद है, जिसका भास हास बन गया है, अर्थात् उसके गुणों को देखकर सबका मन प्रसन्न हो जाता है, जिनके कमल चित्रित सद्म (स्थान) के विषय में स्वयं पृथ्वी कहती है कि ऐसे यह कल्याणों के स्वामी आत्मविश्वासी चित्तवाले (श्रेयोनाथजी) हैं, जो उस आशातीत परोपकार को भी प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीमच् श्रेयोधिनाथो जयति स नितरां भासते स्वास्थ्यमन्त्री
जातः स्वातन्त्र्यदेशे पुनरपि च पदं त्यक्तवान् स्नेहहेतोः ।
क्वासौ कालः करालः क्वचिदपि च गणे स्वास्थ्यमंत्री महात्मा
आशातीतं परार्थं तमपि च लभते स्वात्मविश्वासचेताः । ।७० । ।

श्रीमान् श्रेयोनाथजी जयशील हैं और स्वतन्त्र देश में स्वास्थ्यमंत्री के रूप में अपने यश के कारण अत्यन्त देदीप्यमान हैं, फिर भी उन्होंने स्नेह के कारण उस पद का भी त्याग कर दिया। वह भयंकर काल कौन है जो उन्हें कभी भी ग्रस लेगा और उन महात्मा स्वास्थ्यमंत्री श्रेयोनाथजी ने प्रत्येक समुदाय में दूसरों का आशातीत कल्याण किया जिसे केवल स्वाभिमानी आत्मविश्वासी व्यक्ति ही पा सकता है।

क्वासौ जातो महात्मा क्वचिदपि पठितं शास्त्रजालं विशालं
क्व भ्रान्तं कुत्र बुद्धं स बहुविधजनान् नाययन् नीतिबोधम् ।
कर्त्ता कर्माप्यकर्ता कठिनतरतपा दृश्यते लोकमध्ये
आशातीतं परार्थं तमपि च लभते स्वात्मविश्वासचेताः । ।७१ । ।

वह महात्मा कहाँ उत्पन्न हुआ, जगह-जगह समग्र साहित्य का अध्ययन किया, कहाँ घूमा, कहाँ विद्वान् बना, अनेक प्रकार के लोगों को नीति का ज्ञान देता हुआ वह कहाँ बुद्ध (उपदेशक) बना ? कर्मों का कर्त्ता होते हुए भी जो अकर्त्ता (निष्काम कर्मयोगी) था। संसार में उनका अत्यन्त कठोर तप दिखाई देता है क्योंकि

अपनी आत्मा पर विश्वास करनेवाला व्यक्ति उस आशातीत पदार्थ को भी पा लेता है।

हस्तौ पादौ समानौ मुखमपि च तथा दृश्यते सर्वतुल्यं
बुद्धिर्वैशद्यमाप्ता भवति न हि नृणां चैकरूपा समेषाम्।
श्रीमच्छ्रेयोऽधिनाथे विलसति मतिभा जापरूपाऽजपानां
योऽर्थोऽसंभावनीयस्तमपि जनयते सर्वशक्तिर्महेशः।।७२।।

जिनके हाथ-पैर और मुख भी सभी के समान दिखाई देता था, वे बुद्धि की विशदता को प्राप्त किए हुए थे जो कि सब मनुष्यों में एक समान नहीं हुआ करती है। जिन श्रीमान् श्रेयोनाथजी में अजपा जापरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाली आभा विलास कर रही है। जो सर्वशक्तिमान् महेश सभी असंभावनीय अर्थों को भी उत्पन्न करा देता है, अर्थात् परमेश्वर की बुद्धि के आगे कुछ भी असंभव नहीं है। वह किसी में भी असाधारण, अलौकिक बुद्धि का समावेश कर सकता है।

त्रिंशत्सहस्रात्मकमेव पश्चान्मुद्राधनं कोषगतं च लब्धम्।
पदप्रतिष्ठापरं स्थिरां तां विहाय नाथेन तदा च कार्षणीम्।।७३।।

तीस सहस्र से भी अधिक जो मुद्राराशि उन्हें खजाने से मिली थी, उस स्थिर (अचल) सम्पत्ति को छोड़कर अर्थात् उसका मोह त्यागकर अपनी सुख-सुविधा के लिए अपने पास न रखकर उससे देवमूर्ति स्थापना करवाई अर्थात् अतुल धनसम्पत्ति से मन्दिर का निर्माण करवाया जिसमें विभिन्न पूर्ववर्ती योगियों की मूर्तियां स्थापित हैं।

ऊषरोद्घातिनी या च या चारण्यसमाश्रिता।
कृषिविज्ञाननैपुण्यात् भूमिः कार्याय कर्षिता।।७४।।

जो ऊसर, उबड़-खाबड़ और जंगल में तबदील हुई जमीन थी उसे उन्होंने कृषि-विज्ञान की निपुणता से कृषि-उपयोग के योग्य बना दिया।

अनेकानेकसंसिद्धेः साधनानां प्रभावतः।
मठस्य वर्धितो ह्यायः प्राचुर्येण समन्ततः।।७५।।

और अनेकानेक संसिद्धि के साधनों के प्रभाव से चारों ओर से मठ की आय को बहुत अधिक बढ़ा दिया।

श्रीमता योगिराजेन लोकप्रियचिकीर्षया।
मठेऽपि रोगिणां सेवा प्रारब्धा च महात्मना।।७६।।

लोगों का कल्याण करने की कामना से योगिराज महात्मा श्रीमान् श्रेयोनाथजी ने मठ में भी रोगियों की सेवा शुरू कर दी थी।

पृथिव्यां केचिदन्येऽपि राजानः सन्ति केवलम्।
वैशिष्ट्यं श्रेयसां नाथे योगिराजोऽपि राजते।।७७।।

कुछ दूसरे राजा तो केवल धरती के राजा हैं परन्तु कल्याणों के स्वामी श्रेयोनाथजी में उन सबसे विशिष्टता है, इसी कारण वे योगिराजरूप में भी शोभायमान हैं।

कृषेः सम्पद्वृद्धिः क्वचिदपि समृद्धिर्मठकृतौ
क्वचित्सा गोशाला क्वचिदपि विशाला स्मृतिकला।
चिकित्साप्रासादः क्वचिदपि च विद्यालयततिः
क्वचिच्छात्रावासः क्वचिदपि च वासो यमजुषाम्।।७८।।

मठ में कृषिसम्पत्ति की वृद्धि, कहीं समृद्धि, कहीं वह गोशाला, कहीं विशाल स्मृतिकला, सिद्धों की स्मृति में बनाई गई शिल्पकला (जिसमें सिद्धों की पाषाण मूर्तियां स्थापित हैं), कहीं चिकित्सा भवन, कहीं विद्यालय शृंखला, कहीं छात्रावास और कहीं यम[1] का सेवन करनेवालों का आवास है।

भूरसनाथभूम्यब्दे खिष्टाब्दे दैवकोपतः।
धराशायी मठः प्रायः क्षतिर्जाता गरीयसी।।७९।।

१९६१ खिष्टाब्द में दैवप्रकोप के कारण मठ प्रायः धराशायी होगया था और उसकी बहुत अधिक क्षति हुई।

जीर्णोद्धारस्वरूपेण मठस्य कायकल्पनम्।
कारिता योगिराजेन भव्यनव्या कलाकृतिः।।८०।।

जीर्णोद्धारस्वरूप मठ का कायाकल्प कर दिया गया और योगिराज ने उस समय भव्य नवीन कलाकृति भी उस पर करवा दी।

आश्रमोऽयं महाञ्जातः सद्मनां च विशालता।
साधूनां च निवासाय यथायोग्यव्यवस्थितिः।।८१।।

यह आश्रम मन्दिरों (भवनों) की विशालता के कारण महान् होगया और साधुओं के निवास के लिए यथायोग्य व्यवस्था भी कर दी गई।

---

१. अक्रूरता, दया, सत्य, अहिंसा, शान्ति, आर्जव (सरलता), प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और कोमलता ये दस यम कहे जाते हैं।

अष्टलक्षात्मको राशिर्मुद्राणां व्ययमभ्यगात्।
तत्सामूहिकरूपेण गृहीत्वा स्मृतिमन्दिरम्।।८२।।

तब सामूहिक रूप से चन्दा लेकर लगभग ८ लाख की मुद्राराशि स्मृतिमन्दिर के निर्माण में खर्च की गई।

सिद्धस्मृतेर्मन्दिरमाहुरन्तिमं
कलाकृतां लोचनहारि सुन्दरम्।
शांखीशिलाकुट्टिमशोभिताद्भुतं
सिद्धाकृतिस्वात्मसुलेखराजितम्।।८३।।

इसे सिद्धों की स्मृति (यादगार) का अन्तिम मन्दिर कहा गया है। यह कला की दृष्टि से नेत्रों को आकर्षित करनेवाला भव्य मन्दिर है जो शांखी (शंख जैसी श्वेत) शिला के फर्श से सुशोभित अद्भुत कलाकृति है। इसमें सिद्धों की प्रतिमाएं बनी हुई हैं तथा यह उनके अपने निजी उपदेशात्मक अनुभवों के सुन्दर लेखों से भी शोभायमान है।

दिग्दन्तावलिदन्तनिर्मितकलासिद्धस्मृतेर्मन्दिरे
कम्ब्वाकारमपास्तदोषमहिमा हैमाभ्रसंविभ्रमः।
भ्रान्तिमानथ शान्तिमानपि जनः संपश्यति प्रश्रयं
श्रेयोनाथयतीन्द्रवृन्दमुकुटच्छायानुकारः स्फुटः।।८४।।

सिद्धों की स्मृति में बनाये गये मन्दिर में श्रेष्ठ हाथियों के दांतों से निर्मित कला है, शंख के समान इसका आकार है। इसकी दोषरहित महिमा है। यह स्वर्णिम मेघों का भ्रम उत्पन्न करनेवाला है। संदेह के गर्त में दोलायमान और शान्ति से युक्त भी तथा श्रेयोनाथ एवं यतीन्द्रसमूह (श्रेष्ठ मुनियों) के मुकुट की छाया का अनुसरण करनेवाला (अनुयायी) व्यक्ति निःसंदेह इसमें आश्रय को देखता है अर्थात् सब प्रकार के सुखी अथवा दुःखी भक्तजन इसका सहारा लेते हैं।

दृश्यादृश्यविचित्रमद्भुतकलासम्पूर्त्तिमूर्त्तिप्रभं
श्रीमन्मस्तशुकादिमेघलसितं सिद्धस्मृतेर्मन्दिरम्।
सिद्धालेखसमस्तशास्त्रवचनप्राणप्रमाणोर्जितं
विद्वद्वृन्दमहेन्द्रवन्दितपदं चाचन्द्रसूर्योदयम्।।८५।।

सिद्धों की स्मृति का मन्दिर दृश्य और अदृश्य विचित्र एवं अद्भुत कलाओं की साक्षात् प्रभावाला है, अर्थात् कुछ कला तो दिखाई देती है और कुछ नहीं दिखाई देती (दृश्यादृश्य) तथा श्रीमान् मस्तनाथ, तोतानाथ, मेघनाथ आदि की मूर्तियों से शोभायमान है। यह सिद्धों के आलेख, समस्त शास्त्रों के साररूप प्रामाणिक वचनों से युक्त है जिसे देखकर अनेक विद्वान् यहां तक कि स्वयं इन्द्र भी इसकी वन्दना करता है और जो जगमगाते हुए उदीयमान चन्द्र एवं सूर्य की भांति देदीप्यमान कान्तिवाला है।

घण्टास्वस्तिकचक्रशूललसितं मालासुमेरूपमं
सान्द्रानन्दसहोदरादरद्रुमच्छन्नावछिन्नं यशः।
कपूरागुरुवर्तिकापरिलसद्धूपेन धूपायितं
श्रेयोनाथयशोभिशोभितमिदं जाज्वल्यमानं महः।।८६।।

यह घण्टा, स्वस्तिक, चक्र और त्रिशूल से शोभित है और मेरुपर्वत की शृंखलाओं की भांति ऊंचा है। घने (सघन) आनन्दरूप सहोदर के समान सम्मानित गुम्मद (गुम्बद) से आच्छादित, अवछिन्न यशवाला है अर्थात् इसका यश सदा रहनेवाला है। कपूर और अगरबत्ती की धूप से सुगन्धित है जो मानो श्रेयोनाथ महाराज के अत्यन्त देदीप्यमान यश से अति शोभायमान हो रहा है।

यावद् विन्ध्यहिमालयौ हरिहरौ यावच्च गङ्गाऽनघा
यावत्सत्यपराक्रमौ विजयिनौ यावद् धरामण्डलम्।
यावत्कार्मुकमैन्द्रमाहुरजितं व्योम्नीव धाम्नीव तत्
तावत् कर्मपरायणं विजयते श्रेयोधिनाथं यशः।।८७।।

जब तक विन्ध्य और हिमालय, विष्णु और शंकर, पापरहित (निर्मल) गंगा, विजय दिलानेवाले सत्य और पराक्रम, धरामण्डल और इन्द्र के अजेय धनुष की स्थिति कही गई है, तब तक गगन की भांति, तेज से युक्त सूर्य की भांति कर्मशील श्रेयोनाथ महाराज का यश जयशील रहेगा।

दिग्यातान् प्रतिवासयन् बहुदलान्निर्मूलयन्मर्दयन्
तुच्छान् कूटधियो बहिः स गमयन् विच्छेदयन् सङ्गतान्।
उद्दण्डान् दमयँश्च निर्धनजनानुत्थापयन् बोहरे
भूपाज्ञासदृशप्रयोगनिपुणः श्रेयोधिनाथो नयी।।८८।।

दिशाओं में गए हुए बंजारे आदि लोगों को पुनः एक स्थान पर स्थापित करते (बसाते) हुए, अत्यन्त अहंकारी अथवा अनेक गुटों में विभाजित लोगों को निर्मूल

करते हुए, उन्हें कुचलते हुए अर्थात् उनकी दुर्भावनाओं को दूर करते हुए, उनकी दुष्ट संगति का नाश करते हुए, तुच्छ कपटमति लोगों को बाहर करते हुए, उद्दण्डों का दमन करते हुए, निर्धन लोगों को ऊपर उठाते हुए बोहर में नीतिज्ञ श्रेयोनाथ महाराज राजा की आज्ञा की भांति आज्ञा देने के प्रयोग में निपुण हैं।

साधुत्वं चरितार्थतामुपगतं संवर्धितं गौरवं
नाथानामपि भारतस्य तपसा त्यागेन सत्येन च।
श्रीमन्मस्तसमस्तसिद्धमहिमग्रामाग्रणीर्यो भवान्
श्रेयोनाथ इहस्थितो हरिगतौ भूम्यां महिम्नामिव।।८९।।

साधुता (सज्जनता) चरितार्थता को प्राप्त हो गई और आपके तप, त्याग और सत्य के कारण भारत के नाथों का गौरव बहुत बढ़ गया। क्योंकि जो श्रीमस्तनाथजी के अनुयायी समस्त महिमाशाली सिद्धसमुदाय के अग्रणी (प्रधान) हैं ऐसे आप श्रेयोनाथजी मानो महिमा से युक्त इस विष्णु से व्याप्त हरियाणा प्रदेश में विराजमान हैं।

अस्त्यभ्यस्तसमस्तपुस्तकचयः स्वाध्यायलग्नः सदा
स्वात्मालम्बनसत्यमार्गकुशल आस्तिक्यभावादरः।
कार्याकार्यविचारचारुचरितः कर्त्ता स्वयं प्रेयसां
श्रेयोनाथयमीन्द्रवृन्दमहितो विभ्राजते बोहरे।।९०।।

समस्त पुस्तक संग्रह का अभ्यास करनेवाला, सदैव स्वाध्याय में तत्पर, स्वावलम्बन एवं सत्यमार्ग में कुशल, आस्तिकों के भावों का सम्मान करनेवाला, कार्य-अकार्य के विवेचन के कारण सुन्दर आचरणवाला, प्रिय (कल्याणमय सत्कर्मों) कार्यों को स्वयं करनेवाला, योगीन्द्रवृन्द से पूजित श्रेयोनाथ महाराज बोहर मठ में अपने यश से प्रकाशमान हैं।

इन्दुर्यस्य विभाति भास्करसमः पद्मं च वह्नेः समं
कर्पूरः करवालधारसदृशः शम्पासमा चन्द्रिका।
वायुर्यस्य सुखायते न च पुनस्तापप्रदं चन्दन-
मुद्योगेन विनाऽमुना स्थितवतः श्रेयोधिनाथस्य यत्।।९१।।

उद्योग के बिना अर्थात् बिना काम किए बैठे हुए श्रेयोनाथ महाराज को वायु सुखदायी प्रतीत नहीं होती, इसी के साथ-साथ चन्दन भी उनके लिए संतापदायी हो

जाता है, चन्द्रमा जिनको सूर्य के समान (उष्ण) प्रतीत होता है और कमल अग्नि के समान हो जाता है, कपूर तलवार की धार के समान कष्टदायी और चांदनी उन्हें विद्युत् के समान कष्ट देने लगती है अर्थात् श्रेयोनाथजी कर्मयोगी थे। कर्म करते हुए ही उन्हें संसार की सुखदायी चीजें सुखदायी लगती थी परन्तु जब वे कर्म नहीं करते थे तो उन्हें समस्त संसार के सुखदायी पदार्थ कष्टकर प्रतीत होते थे।

गाव: सन्तु सुखावहा: प्रमुदिता: सन्तोऽपि बोधोदया
दीना देययुता: स्वधर्मनिरता राजा प्रजारञ्जक:।
सौजन्यं सममभ्युदेतु च नृणां भा भारते वर्धतां
सर्वज्ञो भगवाँस्तनोतु सततं विश्वानुकूलं सुखम्।।९२।।

गौएं सुखदायी होवें, सज्जन भी प्रसन्न होवें, दीन ज्ञान से युक्त होवें अथवा दीन-हीन भी दान दें अर्थात् उनमें इतना सामर्थ्य आ जाए कि वे भी दान देने लगे, राजा अपने धर्म में तत्पर हुआ प्रजा को विभिन्न जनहित के कार्य करने के कारण प्रसन्नता देनेवाला होवे, उदारता के साथ ही मनुष्य उन्नति करे और भारत में मनुष्यों की कीर्ति (सौन्दर्य) बढ़े और सब कुछ जाननेवाला भगवान् विश्व के अनुकूल सुखका निरन्तर विस्तार करे।

गुरवो द्वादशादित्या जयन्त: शरदां शतम्।
यत्कृपालेशमासाद्य भवन्तु मेऽभवङ्गति:।।९३।।

जिनकी लेशमात्र भी कृपा को पाकर मेरी पुन: उत्पन्न न होने की अवस्था होवे, ऐसे गुरु और बारह आदित्य अथवा बारह पंथों के गुरु (मस्तनाथजी) सैकड़ों वर्षों से भी अधिक समय तक विजयशील होवें।

श्रीशान्तिनाथशिष्येण पयालाग्रामवासिना।
योगिशङ्करनाथेन कृता टीका मुदं वहेत्।।९४।।

श्रीशान्तिनाथजी के शिष्य, पयालाग्रामवासी योगी शंकरनाथ द्वारा यह टीका लिखी गई जो सब को प्रसन्नता प्रदान करे।

मूलकर्ता च टीकाया द्वयोश्च सर्गयोरपि।
योगिशङ्करनाथोऽयमवधेयो मनीषिभि:।।९५।।

और मनीषियों के द्वारा दो सर्गों का मूलकर्त्ता और टीकाकर्त्ता यह योगी शंकरनाथ समझना चाहिए अर्थात् विद्वान् जान लें कि प्रथम व अन्तिम इन दो सर्गों का मूलकर्त्ता और समस्त ग्रन्थ का टीकाकर्त्ता योगी शंकरनाथ है।

तनोतु शिवमीशानः सोऽत्र तत्र च सर्वतः।
योगीश्वराश्च ते सर्वे सौमनस्यं च बिभ्रतु।।९६।।

यहां और वहां अर्थात् सब जगह और सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर कल्याण का विस्तार करे तथा योगी और योगिराज एवं सभी भक्तजन आनन्द को धारण करें।

योगाङ्गनिर्हृतदुरन्तमनस्तमोभ्यः
सत्यैकवस्तुपरिमार्गणदक्षिणेभ्यः।
श्रेयः प्रवृत्तिसहयोगहताऽशुभेभ्यो
गोरक्षनाथशुभचिन्तनमस्तु सद्भ्यः।।९७।।

योग के अंगों की साधना से जिनके मन का दुर्भावनारूप अन्धकार निकल गया है, एकमात्र सत्य के अन्वेषण में सक्षम (समर्थ) तथा कल्याणकारी प्रवृत्ति के सहयोग से जिनके अशुभ कर्म नष्ट होगए हैं, ऐसे सज्जनों के लिए गोरक्षनाथजी का शुभचिन्तन होवे अर्थात् गोरक्षनाथजी उनका कल्याण करें।

श्रेयः श्रीमस्तनाथस्य चरितं सारवत्तरम्।
तातर्त्ति प्रखराज्ञानं ज्ञानं दादद्धि चोत्तमम्।।९८।।

श्रीमस्तनाथजी का सर्वोत्तम (आनन्ददायक) चरित तत्त्वयुक्त (सारवान्) है, जो प्रखर अज्ञान का निराकरण करानेवाला (दूर करनेवाला) और उत्तम ज्ञान को देनेवाला है।

मस्तनाथाश्रमे स्थित्वा मस्तनाथदयावशात्।
हरदत्तोक्तपद्यानां कृता व्याख्या समासतः।।९९।।

मैंने मस्तनाथजी की दया से श्रीमस्तनाथ आश्रम में रहकर पं० हरदत्त शास्त्री द्वारा रचित पद्यों की संक्षेप से संस्कृत-व्याख्या की है।

सार्वभौमं समारभ्य ब्रह्मानन्दशिवावधेः।
नामप्राणाग्निविद्यासु काशिका कासते शिवा।।१००।।

सार्वभौम से लेकर ब्रह्मानन्द शिवपर्यन्त नाम, प्राण और अग्नि विद्याओं मे शिवरूपा काशिका (उत्तम स्वरूपवाली बुद्धिरूप अथवा भक्ति, श्रद्धा) प्रकाशित होती है।

इति श्रीमस्तनाथचरिते श्रीमच्छ्रेयोनाथाख्यानोपाख्यानमठोन्नति-देशोन्नतिप्रभृतिविविधविषयवर्णनविशिष्टो नाम षड्विंशः सर्गः।

परिशिष्टम्

सिद्धश्रीचाँदनाथवृत्तम्

इषुवस्वङ्कचन्द्रेऽब्दे पौषे च पूर्णतां गते।
स पुरुषायुषं प्राप्य श्रेयोनाथो दिवं गतः।।१।।

श्री श्रेयोनाथजी महाराज इस संसार में (निष्काम कर्म करते हुए) मनुष्य की पुर्णायु को प्राप्त करके सन् १९८५ ई० एवं पौषमास की पूर्णिमा तिथि, सोमवार, प्रातः सात बजे (७ जनवरी) ब्रह्मस्थिति को प्राप्त हुए (दिवलोक चले गए)।

(इषु-५, वसु-८, अङ्क-९, चन्द्र-१=१९८५ ई०)

वेदवस्वङ्कसूर्याब्दे मईमासे शुभे दिने।
पीठं वोढुं नियुक्तोऽसौ श्रेयोनाथमहात्मना।।२।।

श्री चाँदनाथजी को दिनांक २१ मई, सन् १९८४ ई० को श्री श्रेयोनाथजी महाराज ने सिद्धपीठ का संचालन करने के लिए अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

इषुवस्वङ्कचन्द्रेऽब्दे पौषे च पूर्णतामिते।
यदुवंशावतंसेन सिद्धपीठमलंकृतम्।।३।।

दिनांक १९८५ ई० में एवं पौषमास की पूर्णिमा तिथि को यदुवंश के भूषण श्री चाँदनाथजी ने अस्थल बोहर की सिद्धपीठ को अलंकृत किया (इस पीठ के महन्त बने)।

बेगमपुरनाम्नो हि ग्रामः दिल्ल्यां विराजते।
यादवानां कुले जातश्चाँदनाथो यतीश्वरः।।४।।

दिल्ली प्रान्त में बेगमपुर नामक एक ग्राम है। श्री चाँदनाथजी का जन्म उस ग्राम में धन-धान्य से सम्पन्न एक यादव परिवार में हुआ।

रसेषुनन्दभूम्यब्दे जूनमासे शुभे दिने।
भ्वश्विवतिथौ महात्माऽयं पदं दधौ महीतले।।५।।

दिनांक २१ जून १९५६ ई० के शुभदिन को इस महान् आत्मा ने इस भूतल पर पदार्पण किया (जन्म लिया)।

विश्वविद्यालये दिल्ल्यां महाविद्यालये तथा।
हिन्द्वाख्ये विषये हिन्द्यां प्रापद्यो ज्ञानमुत्तमम्।।६।।

दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत हिन्दू महाविद्यालय से इन्होंने हिन्दी विषय में विशिष्ट ज्ञान अर्जित किया (हिन्दी ऑनर्स की परीक्षा विशिष्ट अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण की)।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येति तत्त्वमवगत्य यः।
प्राणिमात्रहितार्थं हि मुमुक्षुरजहाद् गृहम्।।७।।

ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है–इस आप्त वचन को दृष्टि में रखकर प्राणिमात्र के कल्याण के लिए इस मोक्षाभिलाषी ने गृह का परित्याग कर दिया।

ऋषिपदाङ्कसूर्याऽब्दे मईमासे शुभे दिने।
पञ्चदशतिथौ नूनं योगमार्गमुपेयिवान्।।८।।

१५ मई १९७७ ई के शुभदिन इन्होंने योगमार्ग का अवलम्बन किया।

योगाकृष्टमना भूत्वा संस्कारैर्पूर्वजन्मनः।
प्रपेदे श्रेयसां नाथं मठेऽत्रास्थलबोहरे।।९।।

श्री चाँदनाथजी, जिनका मन पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण योग के प्रति अकृष्ट हो चुका था, अस्थल बोहर मठ में श्री श्रेयोनाथजी महाराज के पास आए।

एकविंशतिवर्षीयश्चाँदनाथो विचक्षणः।
शिष्यो श्रद्धान्वितो जातः श्रेयोनाथस्य योगिनः।।१०।।

और इक्कीसवर्षीय बुद्धिमान् (दीर्घदर्शी) चाँदनाथजी महाराज श्रेयोनाथजी के विनम्रभाव से शिष्य बन गए।

संन्यासपथमाश्रित्य मठेऽस्मिँश्च पदार्पणात्।
आरुणिरिव भक्तिं सोऽदर्शयद् गुरुवत्सलः।।११।।

संन्यासमार्ग के पथिक बनकर गुरुवत्सल इन्होंने मठ में पदार्पण करते ही आरुणि की भाँति अपनी गुरुभक्ति को प्रकट कर दिया।

वसुपदाङ्कचन्द्रेऽब्दे नाथपथानुसारतः।
कर्णभेदनसंस्कारं प्राप्तो गुरुजनाज्ञया।।१२।।

आपने सन् १९७८ ई० को नाथसम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार गुरुदेव की आज्ञा से कर्णभेदन-संस्कार कराया।

हनुमानगढे पुण्यं चिकित्साभवनं दृशाम्।
गुरुणा प्रेषितस्तत्र प्रबन्धकं विधाय सः।।१३।।

तत्पश्चात् गुरुदेव ने आपको हनुमानगढ़ में स्थित नेत्र-चिकित्सालय में उसका प्रबन्धक बनाकर भेज दिया।

इषुवस्वङ्कसूर्याऽब्दे गुरुवर्ये दिवं गते।
बोहरीयमठस्यायं प्राचीरं प्रथमं व्यधात्।।१४।।

१९८५ ई० में गुरुदेव के ब्रह्मलीन होने पर (गुरुदेव का वियोग सहन करके) आपने सर्वप्रथम अस्थल बोहर मठ की प्राचीर (चाहरदीवारी) का निर्माण कराया।

गैरिकवर्णपाषाणैर्गुरुश्रद्धासमन्वितः।
मन्दिरं चन्दिरं चक्रे शान्तिधाम शुभं गुरोः।।१५।।

आपने गेरुए रंग की शिलाओं से गुरुदेव श्रेयोनाथजी महाराज के सुन्दर समाधि-स्थल का निर्माण कराया जो कि शान्ति का स्थल है।

समाधिस्थलपार्श्वेऽयं प्राचीनं शिवमन्दिरम्।
तस्य च श्रद्धया भक्त्या जीर्णोद्धारमकारयत्।।१६।।

समाधि-स्थल के पास ही जो प्राचीन शिवमन्दिर है उसका आपने श्रद्धा और भक्तिपूर्वक जीर्णोद्धार कराया।

प्रतिवर्षं समायान्ति श्रावणे शिवपूजकाः।
वाञ्छितफललाभाय कावड़मर्पयन्ति ते।।१७।।

यहाँ प्रतिवर्ष श्रावण मास में शिव के उपासक आते हैं और वे अभीष्ट पुत्रादि फलों की प्राप्ति के लिए इस शिवमन्दिर में कावड़ चढ़ाते हैं।

विद्याविलासिनाथोऽयं भ्राजन् हि ब्रह्मतेजसा।
लोककल्याणकार्याणि चकार कानि कानि न।।१८।।

विद्याप्रेमी ब्रह्मतेज से देदीप्यमान श्री चाँदनाथजी ने कौन-कौनसे लोककल्याण के कार्य नहीं किये।

प्राणिमात्रहितायासौ पर्यावरणमार्जकम्।
यज्ञादिकं शुभं कर्म करोति बहुदक्षिणम्।। १९।।

आप प्राणिमात्र के हित के लिए पर्यावरण की शुद्धि करनेवाले यज्ञ आदि शुभ कर्म करते रहते हैं और पुरोहितों को पर्याप्त दक्षिणा भी देते हैं।

दैवसन्तापतप्तानां त्राणार्थं यतते सदा।
कष्टनिवारणे लग्नोऽयं महात्मा दयानिधिः।। २०।।

आप दैविक आपत्ति से पीड़ितजनों की रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। संकट-मोचन में तो यह महात्मा अनुपम दया का सागर है।

रोहतकपुर्यां जातं जलप्लावनभीषणम्।
चिकित्सावाससाहाय्यं पीडितेभ्यो ददौ तदा।। २१।।

दिनांक ३ सितम्बर १९९५ ई० में रोहतक नगर में सर्वस्व विध्वंसक जलप्लावन आया, उस समय आपने बाढपीड़ितों के लिए निःशुल्क चिकित्सा, भोजन एवं आवास की सहायता प्रदान की।

डबवाल्यग्निकाण्डे बीभत्से लोकविश्रुते।
सेवार्थं प्रेषयामास नैजं सेवकमण्डलम्।। २२।।

डबवाली नगर में एक अतिभीषण अग्निकाण्ड हुआ, वहाँ अनाथ बालकों एवं जनों के संरक्षण के लिए आपने तत्काल अपने सेवकों को भेजा।

मस्तनाथचरित्रेण जनाः शिक्षणमाप्नुयुः।
भाषायां हरियाणव्यां कैसटान्यस्तृणादसौ।। २३।।

अबोध जनता श्री सिद्ध मस्तनाथजी के चरित से कुछ शिक्षा प्राप्त करले, इस दृष्टि से आपने उनकी जीवनगाथा का हरियाणवी भाषा में कैसटों के माध्यम से प्रचार एवं प्रसार कराया।

मण्डले नगरे चापि नानासाधनसंयुतान्।
आवाससुविधायुक्तान् विद्यालयानकारयत्।। २४।।

आपने रोहतक जिले में अनेक विद्यालयों की स्थापना की तथा रोहतक शहर में श्री बाबा मस्तनाथ पब्लिक स्कूल और अस्थल बोहर में आवासीय विद्यालय की भी स्थापना की।

अस्थलबोहरेऽनेन बी.बी.ए. आदिकाः कृताः।
विद्यालयाश्च धर्मार्थं दन्तातुरालयः खलु।। २५।।

आपने बी.बी.ए., बी.सी.ए., बी. फार्मेसी, डी.एड (जे.बी.टी.), इंजीनियरिंग महाविद्यालय और धर्मार्थ दन्त-चिकित्सालय की अस्थल बोहर में स्थापना की।

विद्याकेन्द्रं निराधीनं स्थापितुमभिकांक्षति।
श्रीमस्तनाथनाम्ना हि जोतिष्यते महीतले।। २६।।

सम्प्रति महाराज चाँदनाथजी की एक अलग ही विश्वविद्यालय की स्थापना करने की अभिलाषा है जो इस भूतल पर श्रीबाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय नाम से प्रसिद्ध होगा।

स्थापितमत्र निःशुल्कं केन्द्रं मद्यविमोचकम्।
लोकोपकारभावं हि यदाचष्टे महात्मनः।। २७।।

आपने अस्थल बोहर में ही निःशुल्क नशामुक्ति केन्द्र की भी स्थापना की जो आपकी समाजकल्याणात्मक प्रवृत्ति को प्रकट करता है।

ननु इस्माइलाग्रामे हितैषिणा महात्मना।
व्यायामाय कृता शाला युवकारोग्यवर्धिनी।।२८।।

आपने ईस्माइला नामक ग्राम में युवकों के हित की अभिलाषा से एक व्यायामशाला की स्थापना की जिससे उनका स्वास्थ्य सदा सुन्दर बना रहे।

बोहरीये मठे दिव्येऽऽयुर्वेदालयसन्निधौ।
चक्रे भव्यं सभागारं कार्षापणैस्त्रिकोटिभिः।।२९।।

आपने अस्थल बोहर मठ में आयुर्वेद महाविद्यालय के समीप ही तीन करोड़ रुपये की राशि के व्यय से एक विशाल सभागार (हाल) का निर्माण कराया।

सभागारमिदं रम्यं नवीनरीतिसंकुलम्।
उपवेष्टुमिहार्हन्ति जनाः सार्धसहस्रशः।। ३०।।

यह दिव्य सभागार आधुनिक नई तकनीक से बनाया गया है। इसमें लगभग १५०० व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं।

तोरणं राजते तस्य गणेशसमलङ्कृतम्।
शारदामस्तनाथौ हि चित्रकारेण चित्रितौ।।३१।।

इसका मुख्य द्वार गणेश की मूर्ति से अलंकृत है और कुशल चित्रकार ने विद्यादेवी सरस्वती तथा श्री बाबा मस्तनाथजी का भी मनोहर चित्र बनाया है।

हनुमानगढे यश्च विराजते मठः शुभः।
जीर्णोद्धारः कृतस्तस्य कृषिक्षेत्रं नवं कृतम्।।३२।।

आपने हनुमानगढ़ में जो एक आश्रम है, उसका जीर्णोद्धार कराया और एक नवीन कृषि फार्म की भी स्थापना की।

रामनन्दाङ्कचन्द्रेऽब्दे तत्रैव शिवमन्दिरम्।
जनविद्यालयश्चापि कृतो लोकहितैषिणा।। ३३।।

आपने सन् १९९३ ई० में वहीं पर एक शिवमन्दिर का निर्माण कराया और पब्लिक स्कूल की भी लोकहित की दृष्टि से स्थापना की।

हिसारे हरियाणास्थे दिल्ल्याञ्च बिजवासने।
कृतानि कृषिक्षेत्राणि चाँदनाथेन धीमता।। ३४।।

बुद्धिमान् श्री चाँदनाथजी ने हरियाणा में बरवाला रोड (मार्ग) हिसार में और दिल्ली में बिजवासन में भी कृषिफार्मों की स्थापना की है।

सः चतुर्धामयात्राभिरपावीद् भारतं खलु।
साधूनां भ्रमणं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।। ३५।।

आपने चारों धामों की यात्रा से भारतभूमि को पवित्र किया। साधुओं का भ्रमण पुण्यकारक होता है क्योंकि साधु स्वयं तीर्थरूप होते हैं।

उत्सवे विश्वहिन्दूनां दर्शिता बन्धुभावना।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।३६।।

आपका विश्व हिन्दूसम्मेलन में जो भाषण हुआ उसमें आपने विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रकट किया क्योंकि उदारचरित महात्माओं के लिए तो यह समस्त वसुधा ही कुटुम्ब है।

आग्लदेशं गतो धीमान् धर्मप्रचारहेतुना।
प्राणिमात्रोपकारं हि साधूनां लक्ष्यमुत्तमम्।।३७।।

बुद्धिमान् आप सनातन धर्म के प्रचार हेतु इंग्लैंड भी गए क्योंकि सन्तों का प्राणिमात्र का कल्याण करना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य होता है।

राजसदसि नेपालेऽयं महात्मा निमन्त्रितः।
नानादेशीयसन्तेषु इन्दुमिव बभौ बुधः।। ३८।।

आपको नेपाल देश में राजसम्मेलन में भी निमन्त्रित किया गया। आप वहाँ नाना देशों से आए हुए सन्तों के मध्य चन्द्रमा की भाँति शोभायमान हुए।

गुरुवर्यस्य शिष्योऽपि नैव न्यूनः कदाचन।
सच्छिष्येषु विशन्त्येव गुरूणां सिद्धयः किल।। ३९।।

श्रेष्ठ गुरु का शिष्य कभी अयोग्य नहीं होता है क्योंकि गुरुजनों की सिद्धियाँ सत् शिष्यों में अनायास ही प्रवेश कर जाती हैं।

दीवाननाथनाम्नो हि नाथशिष्यवरोऽस्ति यः।
नियुक्तो गुरुवर्येण धूनाचालनकर्मणि।। ४०।।

श्री चाँदनाथजी महाराज के एक दीवाननाथ नामक श्रेष्ठ शिष्य हैं जिन्हें गुरुवर ने धूने के संचालन कार्य में नियुक्त किया हुआ है।

वर्षैर्द्वादशभिश्चायं तपस्तपति धूनके।
हरति जनसन्तापं गुरुप्रभावकारणात्।। ४१।।

यह तपस्वी दीवाननाथजी इस धूने पर लगभग १२ वर्ष से तप कर रहे हैं और अपने गुरुवर के माहात्म्य के कारण ही पीड़ितजनों के सन्ताप का हरण करते हैं।

हजारीनाथनामाऽसौ मस्तसमाधिपूजकः।
धर्मवृद्धो महानात्मा सेवाधर्मपरायणः।। ४२।।

श्री हजारीनाथ नामक (श्री श्रेयोनाथजी महाराज के शिष्य) श्री बाबा मस्तनाथजी महाराज की समाधि के श्रद्धावान् पुजारी हैं जो कि एक धर्मवृद्ध महात्मा हैं और (३६ वर्ष से) सेवाधर्म में तत्पर हैं।

ओमप्रकाशनाम्नो हि भक्तिमान् नाथसेवकः।
अजस्रं सेवते धूनिं श्रद्धान्वितो निरीहया।।४३।।

(बोहरग्रामवासी श्री रणधीरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र) श्री ओमप्रकाश नाम के मस्तनाथजी के श्रद्धालु भक्त हैं जो निष्कामभाव से धूने की सेवा में तत्पर रहते हैं।

प्रवृत्तश्चाँदनाथोऽयं जनहिते निरन्तरम्।
वर्णयितुं न शक्नोमि सुचरितं महात्मनः।।४४।।

श्री चाँदनाथजी महाराज निरन्तर लोककल्याण के कार्यों में लगे रहते हैं। मैं सामान्य नारी इस महात्मा के अलौकिक चरित्र का वर्णन करने में असमर्थ हूँ।

ब्रह्मतेजा महायोगी विचरति महीतले।
त्रिविधतापनाशाय साक्षादयं हि शंकरः।।४५।।

वास्तविकता यह है कि ये एक ब्रह्मतेजस्वी महायोगी हैं और संसार के तीन प्रकार के दुःखों के विनाश के लिए साक्षात् शंकर के रूप में भूतल पर विचरण कर रहे हैं।

आशीर्भिरस्य नाथस्य चरितं मस्तनाथकम्।
अनूदितं हि भाषायां लोकोपकारहेतुना।।४६।।

श्री चाँदनाथजी महाराज के आशीर्वाद से ही मैंने '**श्रीमस्तनाथचरितम्**' का यह भाषानुवाद लोकोपकार की भावना से पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया है।

तपःपूतं महात्मानं निष्कामकर्मयोगिनम्।
नमामि शतशः पूज्यं भगवन्तं महेश्वरम्[1]।।४७।।

तप से पवित्र, निष्काम कर्मयोगी, भगवान् महेश्वर रूप इस पूज्य महात्मा को मैं कोटि-कोटि प्रणाम करती हूँ।

।। सर्वसिद्धजनेभ्यो नमो नमः।।

इति सिद्धश्रीचाँदनाथवृत्तम्।

---

१. इस परिशिष्ट की रचना डॉ० सौभाग्यवती ने की है।

सहायक ग्रन्थसूची

१. **श्रीमस्तनाथचरितम्**—पं० हरदत्त शास्त्री, टीकाकार—योगी शंकरनाथ फलेग्रहि। प्रकाशक—श्रीमन्तः श्रेयोनाथमहाभागाः, १९७० ई०

२. **अमरकोषः**—अमरसिंह, मोतीलाल, बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी १९९३ ई०

३. **संस्कृतशब्दार्थकौस्तुभ**—सम्पादक—चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा पं० तारिणीश झा, प्रकाशक—रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९५७ ई०

४. **संस्कृत-हिन्दी कोश**—वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, १९८१ ई०

५. **नालन्दा विशाल शब्दसागर**—सम्पादक—श्री नवलजी, आदीश बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली—११०००५, संस्करण—१९८१ ई०

६. **श्रीमस्तनाथचरितम् एक विवेचनात्मक अध्ययन** (अप्रकाशित) पी०एच०डी० के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध, (श्रीमती) सरोज अहलावत

७. **हरियाणा-संस्कृतवृत्तम्**—रामेश्वरदत्त शास्त्री, प्रकाशक—हरियाणा संस्कृत सम्मेलन भिवानी (हरियाणा), मुद्रक—जे० के० प्रिंटर्ज लोहड़ बाजार भिवानी, सन् १९८२ ई०

८. **सांख्यकारिका**—डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—६, संस्करण—१९७५

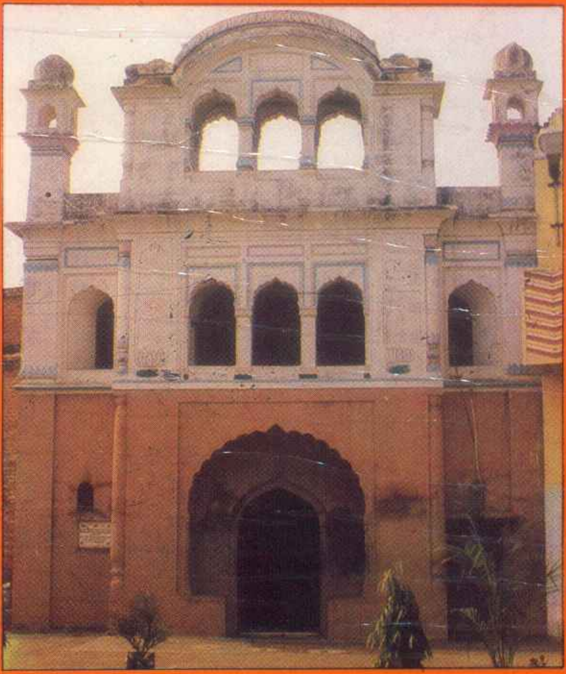

पुण्यप्रदमिदं स्थानं मस्तयोगीश्वरस्य हि।
अमुष्मै तीर्थराजाय भूयो भूयो नमो नमः।।

रणपतमानधात्रोः स्थानं कष्टनिवारकम्।
मस्तनाथस्वभावं तौ प्राप्तौ गुरुकृपावशात्।।